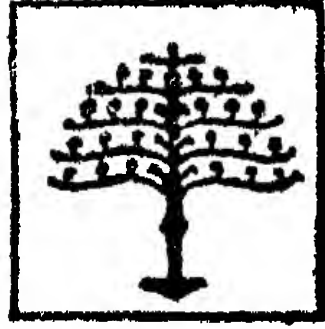


# इन्कलाब

ख्वाजा अहमद अब्बास



राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

अनुवादक  
मुनीश सक्सेना

मूल्य  
प्रथम संस्करण  
प्रकाशक  
मुद्रक

छः रुपये  
अप्रैल, १९६१  
राजमाल एण्ड सन्जि, दिल्ली  
युगान्तर प्रेस, दिल्ली



घिरती घटाएं



## हुरें और कबूतर

मौलवी साहब की रोबदार दाढ़ी पर जब भी अनवर की नजर पड़ती वह हैरत से उसे देखता रह जाता। उस सफेद और लम्बी दाढ़ी पर जब जमुना के किनारे की सुबह की ठंडी हवा के झोंके लगते तो वह अजीब-अजीब शक्लें अस्तित्व में आकर लेती। कभी अबाबील की दुम की तरह नुकीली हो जाती और कभी उड़ते हुए कबूतर के पंखों की तरह फैल जाती, कभी तो इतनी शान्त रहती जैसे कोई बिल्ली सो रही हो और कभी सड़क के उस आवारा कुत्ते की तरह बिफर जाती जिससे पास-पड़ोस के सारे बच्चे डरते थे। जब हवा के तेज झोंके से उनकी दाढ़ी पंखों की तरह फैल जाती उस वक्त उसे सभालने में बूढ़े मौलवी साहब की जो हालत होती उसे देखकर बहुत मजा आता, क्योंकि उस वक्त वे बच्चों को कुरान ठीक से याद न करने के लिए डाटना भूल जाते थे।

अनवर भूम-भूमकर कुरान की आयतें पढ़ता रहता था और बार-बार उन्हें दुहराता रहता था, क्योंकि कुरान रट लेना बहुत सवाब का काम था, चाहे अरबी का एक भी लफ्ज समझे बिना उसे तोते की तरह ही क्यों न रट लिया जाए। मौलवी साहब बच्चों को यह बताना कभी न भूलते थे कि यह जन्नत में पहुंचने का सबसे सच्चा रास्ता है। और जो बच्चे शरीर होते थे और ध्यान देकर कुरान नहीं पढ़ते थे, या मौलवी साहब का अदब नहीं करते थे उनको साफ बता दिया जाता था कि वे जहन्नम में जाएंगे, जहां बेहद गर्मी पड़ती है, दिल्ली की मई-जून की गर्मी से ज्यादा। अनवर को गर्मी से भी सख्त नफरत थी क्योंकि इस मौसम में हर वक्त पसीना टपकता रहता था और दोपहर में बाहर निकलने से लू लगकर मर जाने का डर रहता था। पर इस गर्मी की कुछ अच्छाइया भी थीं। गर्मी में ठंडा शरबत पीने को मिलता था, आइसक्रीम खाने को मिलती थी—लेकिन जब भी अनवर आइसक्रीम खाता था उसका गला दुखने लगता था और उसे खासी-जुकाम हो जाता था। इसीलिए उसके बाप ने उसे न सिर्फ

आइसक्रीम खाने से बल्कि ठंडा पानी तक पीने से मना कर रखा था और इन चीजों का शौक चोरी-छिपे नहीं पूरा किया जा सकता था, क्योंकि उसके बाद खासी का होना लाजिमी था और उससे सारा भंडा फूट जाता था। अनवर अपने मन में सोचता कि कुल मिलाकर देखा जाए तो जन्नत में जाना ही अच्छा है, क्योंकि वहां हर वक्त मौसम ठंडा रहता है, दूध और शहद की नदियां बहती हैं, हरे अठखेलियां करती हैं और पेड़ों पर चिड़िया गाती रहती है।

आखिर ये हरे कौन होती हैं ? अनवर के मन में यह सवाल कई बार उठा था, पर आठ बरस के उस बच्चे का दिमाग इस सवाल का कोई जवाब न ढूँढ सका था। उसे इसमें तो कोई शक नहीं था कि वे किसी तरह की औरतें होती हैं। इतना तो उसे मौलवी साहब की बातों से पता लग गया था। लेकिन किस तरह की औरतें होती हैं ? क्या वे फूफी-अम्मा की तरह होती हैं ? अनवर की फूफी विधवा थी और उनके कोई बच्चा नहीं था और बचपन में ही जब अनवर की मां मर गई थी तो फूफी-अम्मा ने ही अनवर को पाला-पोसा था। उनके सफेद बाल बहुत खूबसूरत थे, वे हर वक्त सफेद कपड़े पहनती थी और बहुत कम बोलती थी। या ये हरे गुलाबों की तरह होती हैं, उस मुटल्ली काली नौकरानी की तरह जिसकी जबान कैची की तरह चलती थी लेकिन जो खाना इतना अच्छा पकाती थी कि उसका नाम याद आते ही अनवर के मुंह में पानी भर आता था। अनवर ने अपनी जिन्दगी में इन्हीं दो औरतों को अच्छी तरह जाना था और वह इनमें से किसीको भी अठखेलियां करनेवाली हरे नहीं समझ सकता था। या वे उन 'दूसरी औरतों' जैसी होती हैं जिनकी अनवर ने बस एक झलक ही देखी थी।

अनवर गा-गाकर कुरान पढ़ता रहा और भूमता रहा। लेकिन 'उन दूसरी औरतों' की बात सोचते ही उसके चेहरे पर लाली दौड़ गई। उसे अच्छी तरह याद था कि एक दिन वह लाल कुएं की किसी दुकान से अपने अम्मा के साथ दरियागज अपने घर जा रहा था। उसके बाप का कद बहुत लम्बा था और उसी हिसाब से उनकी टांगें भी लम्बी थीं। अनवर को उनके साथ चलने के लिए बीच-बीच में भागना पड़ता था। लाल कुएं से वे हौज काजी पहुंचे और वहां से बाए हाथ चावड़ी बाजार में मुड़ गए। काफी रात हो चुकी थी। लोग दुकानें बन्द करके घर जा चुके थे, लेकिन बाजार में काफी चहल-पहल थी। जगह-

जगह फूल-हारवाले 'ले लो फूल चमेली के।' की आवाजे लगाकर चमेली के गजरे बेच रहे थे। अनवर और उसके अम्बा को छोड़कर बाज़ार में किसीको भी कोई जल्दी नहीं थी। सब लोग निहायत इतमीनान से चहलकदमी कर रहे थे, हस रहे थे और ऊपर कोठो की तरफ देखकर एक-दूसरे को कुहनी मारकर कुछ इशारे कर रहे थे। दूकानों के ऊपरवाले छज्जो पर कोई ऐसी चीज थी जिसमें सबको दिलचस्पी मालूम होती थी। अनवर की आखे भी अपने-आप ऊपर उठ गई और वहां उसने हर छज्जे पर एक औरत खड़ी देखी। ये औरतें न तो फूफी-अम्मा जैसी थी, न गुलाबी जैसी। वे रंग-बिरंगे कपड़े पहने थी—लाल, हरे और नीले—जिन्हें देखकर अनवर का जी बहुत खुश हुआ। उनके गाल गुलाबी थे, होठो पर भरपूर लाली थी और काले बाल तेल से चिकने और बहुत सलीके से बने हुए थे। हर औरत के पास लटकी हुई लालटेन से उसके रूप को चार चाद लग गए थे। उन्हें एक झलक देखकर ही अनवर को ऐसा लगा कि वह जितने लोगों को जानता है उन सबसे ये अलग किस्म की है और उन्हें जीवन का कोई रहस्य, कोई ऐसा अनोखा भेद मालूम है जिसके बारे में वह कुछ भी नहीं जानता, पर उसे ऐसा लगा कि बाज़ार में रंगीलो और बेफिकरो की उस भीड़ का हर आदमी उस भेद को जानता है। वह अपने अम्बा से इन औरतों के बारे में पूछना चाहता था पर उसकी हिम्मत नहीं पड़ी, क्योंकि उसके अम्बा यों तो उसके साथ बड़ी नरमी से पेश आते थे और उसकी किसी भी बात पर झुझलाते नहीं थे, पर उन्होंने अपने बेटे को ऊपर की तरफ नज़रे डालते देखकर बड़ी रुखाई के साथ उससे कहा था कि बाज़ार में चलते वक्त कोठो की तरफ देखना शरीफो का काम नहीं है। उसके बाद बाकी रास्ता दोनों ने चुपचाप तै किया और अनवर की फिर ऊपर नज़र उठाने की हिम्मत नहीं हुई। अनवर के अम्बा ने उस दिन के बाद से यह तरीका बना लिया था कि जब भी उनका बेटा साथ होता तो वे बल्लीमारान और चादनी चौक का चक्कर लगाते हुए ज्यादा लम्बे रास्ते से घर लौटते थे।

कू-ऊ ! कू-ऊ ! आव ! आव !

कबूतरबाजों की इस चिरपरिचित आवाज में अनवर और उसकी बहिन



अंजुम की एक बधी हुई धुन से कुरान रटने की आवाज डूबकर रह गई। अंजुम अनवर से दो बरस बड़ी थी और उसके पास ही बैठी कुरान पढ़ रही थी। कबूतरबाजों की आवाज सुनकर अनवर का ध्यान भग हो गया। वह कबूतरों के उड़ते हुए झुंड को देखकर इतना खुश होता था कि उसके मन में उन 'दूसरी औरतो' के प्रति जो थोड़ा-बहुत आकर्षण था उसे भी भूल जाता था। अनवर के अब्बा को कबूतरबाजी से भी सख्त नफरत थी। उनकी राय में यह दिल्ली के उन रईसजादों का शौक था जिनके दिन अब पूरे हो चुके थे और जिनकी रईसी खत्म हो चुकी थी। उन्होंने अपने बेटे और बेटी को कितनी ही बार बताया था कि इसी तरह की चीजों की वजह से मुगलों की सल्तनत मिट गई थी। वे चाहते थे कि उनका बेटा पतंगबाजी या कबूतरबाजी जैसे फजूल शौको में वक्त खराब करने के बजाय कुश्ती और कबड्डी जैसे खेलों में और डड-बैठक की किस्म की कसरत में दिलचस्पी ले जो मर्दों के खेल हैं और जिनसे तन्दुरुस्ती बनती है। अनवर को अपने अब्बा की बात पर पूरा यकीन था पर उसकी तन्दुरुस्ती कभी भी इतनी अच्छी नहीं रही कि वह उन खेलों में हिस्सा ले सके जो उसके अब्बा बताते थे, क्योंकि उनमें बहुत दमदार आदमी की जरूरत होती थी और फूफी-अम्मा इस बात के लिए कभी भी तैयार न होती थी कि उनका लाडला भतीजा अखाड़े में जमा होनेवाले आसपास के मुस्टडों से अपनी हड्डियां तुड़वाए। जहां तक कबूतरबाजी और पतंगबाजी का सवाल था तो अनवर को ये दोनों ही चीजें बेहद पसंद थीं पर वह इस बात को अपने अब्बा से छिपाता था क्योंकि वे बहुत ही सख्त आदमी थे और इन सब बुरी लतों से कोसों दूर रहना चाहते थे। रंग-बिरंगी पतंगें कितनी भली लगती थीं और आसमान पर पहुंचकर वे कैसी अदा से कभी ऊंची चढ़ जाती थीं और कभी नीचे आ जाती थीं ! लेकिन कबूतरों से तो अनवर को और भी ज्यादा लगाव था। पतंग तो सिर्फ उतनी ही ऊंची जा सकती थी जितनी लम्बी डोर हो और उंगली के एक इशारे से उसका रुख मोड़ा जा सकता था या ऊंचा-नीचा किया जा सकता था, और जब भी पतंगबाज का दिल चाहे उसे नीचे उतार सकता था। लेकिन कबूतर अपनी मर्जी से जहां चाहे जा सकते थे। वे अपने अड़्डे पर से एक बादल की तरह उड़ते थे और उनका साया एक छत से दूसरी छत पर होता हुआ आगे बढ़ता रहता था, और फिर वे आसमान पर बहुत ऊंचे उड़ जाते थे यहां तक

कि दूर क्षितिज पर केवल एक धब्बे जैसे दिखाई पड़ते थे । वे कहा जाते थे ? वे बहुत दूर जिन अनजाने देशों में जाते थे वहाँ वे क्या देखते थे ? वे क्या अनुभव और स्मृतियाँ लेकर वापस लौटते थे ? अनवर जब भी कबूतरों को उड़ता हुआ देखता वह मन ही मन इन सवालों पर गौर करता रहता । गुलाबों सोते वक्त उसे जो कहानियाँ सुनाती थी उनमें की अगर कोई परी उससे कभी यह पूछती कि वह क्या बनना चाहता है तो अनवर यही कहता, “कबूतर ।”

लेकिन शीघ्र ही कबूतरबाजों की इस ‘कू-ऊ । कू-ऊ । आव । आव ।’ के पीछे से एक नई आवाज़ सुनाई दी—मधुमक्खी के गुजन जैसी एक हलकी-सी भनभनाहट । बहुत दूर पूरब की तरफ जमुना के उस पार एक अकेला कबूतर आसमान पर उड़ रहा था, शायद अपने झुंड से बिछुड़कर पीछे रह गया था । लेकिन जैसे-जैसे वह उड़कर पास आता गया उसकी आवाज़ तेज होती गई, यहाँ तक कि वह मधुमक्खी की तेज से तेज आवाज़ से भी ज्यादा तेज हो गई । यह कबूतर दूसरे कबूतरों से बिल्कुल अलग था, क्योंकि वह अपने पर नहीं फड़फड़ाता था । वह सीधा उड़ता चला आ रहा था और देखते-देखते वह बड़े से बड़े कबूतर से भी बड़ा हो गया, वह तो बाज से भी बड़ा था और जब वह अनवर के सिर पर से होकर गुजरा तो उसे ऐसा लगा कि वह तो अलिफ-लैला की सिद्दाद जहाजीवाली कहानी के उस उकाब से भी बड़ा था जिसके बारे में गुलाबों ने उसे बताया था ।

इस अनोखे कबूतर को देखकर अनवर और अजुम को इतना कौतूहल हुआ कि वे कुरान की रटाई छोड़कर उठ खड़े हुए और खुशी और आश्चर्य में तालियाँ बजाने लगे । मौलवी साहब, जो बच्चों की कुरान पढ़ने की सधी हुई धुन की लोरियाँ सुनते-सुनते ऊँच गए थे, एकाएक चौककर जाग पड़े ।

“यह क्या हो रहा है ?” उन्होंने बनावटी गुस्से के साथ डाटते हुए कहा, क्योंकि इतने मोटे और नरम स्वभाव के बूढ़े आदमी के लिए गुस्से में अपनी ताकत खर्च करना बहुत ही मुश्किल काम था । “मेरी आख जरा-सी भ्रष्टकी नहीं कि तुम दोनों का ध्यान अपने सबक की तरफ से हट जाता है ।”

वह बड़ा-सा कबूतर उड़ता हुआ कुतुबमीनार की तरफ चला गया था और अब वह दूर आसमान पर एक धब्बे जैसा दिखाई दे रहा था । हालाँकि अनवर जो ~~उड़ता~~ पड़ता था उसका मतलब वह बिल्कुल भी नहीं समझता था, और उसे

यह भी पता नहीं था कि वह दुनिया की एक सबसे समृद्ध भाषा की उच्च कोटि की कविता का पाठ कर रहा है, फिर भी अनवर को उन शब्दों की ध्वनि बहुत अच्छी लगती थी, क्योंकि जब इन शब्दों का उच्चारण मौलवी साहब के बताए हुए तरीके से किया जाता था तो ऐसा लगता था कि जबान से शब्द नहीं बल्कि गाढा शब्द टपक रहा है। कुरान की इन आयतों को सही ढंग से पढ़ सकना सचमुच एक बहुत बड़ा कमाल था और जब भी अनवर उनका उच्चारण सही-सही कर लेता था तो उसे बेहद खुशी होती थी और उसे ऐसा लगता था कि उसने कोई ताकत हासिल कर ली है—शब्दों पर मनुष्य के अधिकार की ताकत, वाक्शक्ति की अनोखी और रोबीली ताकत।

जिस वक्त अनवर कमरे में आया वहां बहुत-से लोग बैठे हुए थे और कई आदमी एकसाथ बोल रहे थे। अनवर अपने अब्बा से उस बड़े-से कबूतर के बारे में पूछने आया था जो उसने आसमान पर उड़ता हुआ देखा था, वह चुपचाप एक कोने में बैठ गया और यह मनाने लगा कि किसीने उसे देखा न हो। जब भी वह अपने अब्बा के इतने बहुत-से दोस्तों को एकसाथ देखता था तो न जाने क्यों घबरा-सा जाता था। वह उन सबको जानता था और अलग-अलग वे सब उसे बहुत अच्छे लगते थे, पर जब वे एकसाथ होते थे तो उसे उनसे डर लगने लगता था, उसे हमेशा ऐसा लगता था कि वे सब मिलकर एक ऐसी भयानक शक्ति बन गए हैं जो एक शर्मिले और दबू लड़के के स्वाभाविक सकोच की दीवारों को ढा देने पर तूली हुई हो।

बाहर बरामदे में बास की गहरे हरे रंग की चिके पड़ी थी ताकि सूरज की तेज रोशनी अंदर न आ सके। गर्मियों में भी दोपहर के वक्त कमरा अंदर से बहुत ठंडा और अंधेरा और आरामदेह रहता था। चूंकि अनवर सीधा छत पर से आया था जहां बैठकर मौलवी साहब हमेशा कुरान पढ़ाते थे, इसलिए कमरे में घुसते ही पहले तो उसे कुछ भी दिखाई न दिया। धीरे-धीरे उसे अंधेरे में कुछ शक्लें दिखाई देने लगी—फर्श पर बिछी हुई सफेद चादनी, दीवार के सहारे लगे हुए सफेद गाव-तकिये ऐसे लगे रहे थे जैसे बिना सिर और बिना टांगों के मोटे-मोटे बछड़े दीवार से लगे बैठे हों, और इनका सहारा लिए हुए



उसे अपने अब्बा और उनके दोस्तों के सफेदपोश जिस्म दिखाई दिए ।

अनवर अपने अब्बा को बेहद प्यार करता था, बल्कि मन ही मन उनकी पूजा करता था । अनवर के अब्बा अकबरअली का कद लम्बा था और वे इस तरह तनकर खड़े होते थे कि कोई कह नहीं सकता था कि वे पचास बरस के हैं । उनका रंग गोरा और चेहरे पर कुछ गुलाबीपन था , छोटी-सी काली दाढ़ी से उनके चेहरे का रोब दुगुना हो जाता था । वे हमेशा सफेद बुर्राक कपड़े पहनते थे और साकार स्वच्छता की मूर्ति दिखाई देते थे—न केवल तन की स्वच्छता बल्कि मन की भी स्वच्छता । उनके दोस्त और कारोबार में उनके साथी उनसे मुहब्बत करते थे और उनपर पूरा एतबार रखते थे , उनके बेटे ने देखा था कि एक बार एक व्यापारी उनके पास बीस हजार रुपये अमानत रख गया था और लाख कहने पर भी उसने रसीद नहीं ली थी । “कमाल करते हो, अकबरअली, रसीद क्या तुम्हारी जवान से बढ़कर है,” उस व्यापारी ने कहा था । और यह देखकर उनका बेटा, जिसके सामने यह सौदा हुआ था, गर्व से फूला नहीं समाया था । उसने मन ही मन दुआ मागी थी, “या खुदा, मुझे भी मेरे अब्बा जैसा बनाना ।”

अकबरअली के पास ही लाला रामेश्वरदयाल बैठे थे, जो व्यापार में उनके साझेदार थे । सच तो यह है कि वे व्यापार में साझेदार होने से भी बढ़कर बहुत कुछ थे । वे अकबरअली के सबसे पुराने दोस्त थे । दोनों स्कूल में साथ पढ़े थे और अनवर ने अक्सर देखा था कि दोनों उस जमाने की शरारतें याद कर-करके कितने खुश होकर हसते थे । रामेश्वरदयाल का कद छोटा और उनके चेहरे का रंग पीला था । बहुत ही तेज तबियत के आदमी थे और खास तौर पर अनवर पर तो बहुत मेहरबान थे । उनकी आदत थी कि बातें करते-करते अपनी आस्तीनें चढा लेते थे और फर्श पर पालथी मारकर बैठे-बैठे अपने बाएँ तलुए को थपकते रहते थे । उनके कुरते के सोने के बटन उस अघेरे कमरे में चमक रहे थे । सोने के उन बटनों को देखकर अनवर का जी बहुत ललचाता था और एक बार रामेश्वरदयाल ने, जिन्हें अनवर ‘काका’ कहता था, कहा था कि वे उसे सोने के बटन बनवा देंगे । लेकिन अकबरअली ने बड़ी सख्ती के साथ यह कहकर इकार कर दिया था कि सोने के बटन बेकार की चीज हैं और अभी से अनवर को अगर इनका शौक पैदा हो गया तो वह बिगड़ जाएगा ।

“मैं चाहता हूँ कि मेरा बेटा अपने पैरो पर खड़ा हो, मैं नहीं चाहता कि वह सोने के बटनो का शौक रखनेवाला निकम्मा रईस बने।”

कमरे में दो आदमी और थे। एक थे हकीम अब्दुलरशीद जिनका पेशा तो हकीमी करना था पर तबियत में शायरी बसी हुई थी और वे ‘बेदिल’ के तखल्लुस से गजले कहते थे। बहुत ही नाजुक तबियत के आदमी थे, हर वक्त कपड़ों से इत्र की खुशबू आती रहती थी, लगातार पान चबाते रहते थे और बात-बात में गालिब, मीर और जौक के शेर दुहराते रहते थे। दूसरे थे चौधरी मुहम्मदउमर जिनकी तबियत हकीम बेदिल से बिलकुल उलटी थी। वे बहुत लम्बे-चौड़े डील-डौल के आदमी थे, मिजाज में शायरी छू भी नहीं गई थी, लेकिन कारोबार के मामले में बहुत तेज थे। कई बरस पहले पंजाब से आए थे और बहुत छोटे पैमाने पर कारोबार शुरू करके उन्होंने चीनी और अल्युमिनियम के बरतनों का बहुत बड़ा कारोबार खड़ा कर लिया था। बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे और अक्सर हकीम बेदिल की बातों की बारीकी और उनके शेर चौधरी साहब की समझ में नहीं आते थे। लेकिन अकबरअली उनकी बड़ी इज्जत करते थे और वे अक्सर अनवर से कहते थे कि ज्यादा से ज्यादा मुसलमानों को मुहम्मद-उमर की तरह तिजारत का रास्ता अपनाना चाहिए, क्योंकि तिजारत के जरिये ही आदमी और कौम दुनिया में तरक्की कर सकती है। वे कहा करते थे, “अंग्रेजों को देखो, सिर्फ तिजारत के बल पर वे दुनिया के मालिक बन बैठे हैं।”

अनवर कोने में बैठा इन बड़े लोगों की बातों का मतलब समझने की कोशिश कर रहा था। आज की बातचीत में हमेशा से ज्यादा गरमी थी। कुछ देर तक तो वह समझ ही नहीं पाया कि किस चीज के बारे में बातें हो रही हैं। उसके कान में बार-बार कुछ ऐसे शब्द पड़ रहे थे जिनसे वह बिलकुल अपरिचित था, जैसे ‘रौलट बिल’, ‘मार्शल लॉ’, ‘हडताल’, ‘कांग्रेस’, ‘मुस्लिम लीग’, इत्यादि। एक नाम जो बार-बार लिया जा रहा था वह ‘गांधीजी’ का था। और हर शख्स ‘सत्याग्रह’ नाम की किसी चीज के बारे में बहुत जोश दिखा रहा था। धीरे-धीरे जब उसकी आंखें कमरे के अंधेरे की आदी हो गईं तो उसने वहां पर एकत्र लोगों को पहचानना शुरू किया; उसके कान भी बातचीत के प्रवाह

का साथ देने लगे और उसका दिमाग बहस की कुछ बुनियादी बातों को समझने लगा। जैसे-जैसे इस बातचीत में उसकी दिलचस्पी बढ़ती गई, अनवर उस अजीब चिड़िया को बिलकुल भूल गया जिसके बारे में वह अपने अब्बा से पूछने आया था। अब उसके दिमाग पर उससे भी विचित्र चीजें, उससे कहीं महत्वपूर्ण बातें छाई हुई थीं।

अनवर को ऐसा लगा कि अंग्रेज सरकार का रवैया बहुत खराब था। योरुप में 'चार साल तक कोई बड़ी लड़ाई' हुई थी और हिन्दुस्तानियों ने उस लड़ाई को जीतने में अंग्रेजों की मदद की थी और उन्होंने वादा किया गया था कि इसके बदले में उन्हें राजकाज के काम में ज्यादा हिस्सा दिया जाएगा। लेकिन अब लड़ाई खतम हो जाने के बाद अंग्रेज इन वादों को भूल गए थे। ऐसा लगता था कि लोगो में इस बात पर गुस्सा था, और कुछ लोग इसके बारे में शोर मचाना चाहते थे और कुछ लोग अंग्रेजों को गोली से उड़ा देना चाहते थे जैसा कि १८५७ में किया गया था। उधर अंग्रेजों ने एक नया कानून बनाया था जिसका नाम 'रौलट बिल' था और इस कानून में सरकार के खिलाफ कोई बात कहने या कोई काम करने के लिए बहुत सख्त सजा रखी गई थी। गांधी नाम का कोई आदमी, जो अभी तक बहुत दूर दक्षिणी अफ्रीका में बैरिस्टरी करता था, लौटकर हिन्दुस्तान आया था और अपने देशवासियों को 'सत्याग्रह' के हथियार के बारे में बता रहा था कि यही एक ऐसा हथियार है जिसकी मदद से सरकार के खिलाफ कामयाबी के साथ लड़ा जा सकता है। अकबरअली और उनके दोस्तों को भी 'सत्याग्रह' के बारे में ज्यादा कुछ नहीं मालूम था, लेकिन ऐसा लगता था कि रामेश्वरदयाल ने गांधी का लिखा हुआ कोई लेख पढ़ा था और उन्हें थोड़ा-बहुत मालूम था कि इसका मतलब क्या है। शायद यह लेख लिखने-वाले का मतलब यह था कि अगर सब लोग बेइसाफी के कानूनों को मानने से इकार कर दें तो सरकार उन कानूनों को वापस लेने पर मजबूर हो जाएगी और फिर अंग्रेजों को गोली से उड़ाने की कोई जरूरत ही नहीं रह जाएगी। दरअसल ऐसा लगता था कि यह आदमी किसीको भी ज़ान से मारने के बिलकुल खिलाफ था, यहां तक कि बेइसाफ और जालिम अंग्रेज अफसरों को भी नहीं। अनवर इन बातों का पूरा मतलब तो नहीं समझ पाया पर दो बातें कुदरती तौर पर उसे बहुत अच्छी लगी—एक तो सरकार के बेइसाफी के कानूनों को न मानना



और दूसरे किसीको भी जान से न मारना । अनवर के अब्बा ने उसे सिखाया था कि सच्चे मुसलमान के लिए बेइंसाफी के सामने सिर झुकाना गुनाह है । अपने खानदान में ही उसके दादा की मिसाल थी जो दिल्ली के आखिरी बादशाह के दरबार में शायर थे लेकिन एक बार अपनी किसी नज्म में उन्होंने बादशाह और उनके दरबारियों की ऐयाशी की जिन्दगी को बुरा-भला कहने की गुस्ताखी की थी और इसके लिए माफी मागने से इकार किया था जिसकी सजा में उन्हें दरबार से अलग कर दिया गया था । अकबरअली अपने बाप के इस किस्से को बड़े गर्व के साथ बयान करते कभी न थकते थे और अनवर के दिल में भी अपने दादा मरहूम के लिए बहुत इज्जत हो गई थी । किसी भी जानदार चीज को मारने के ख्याल से ही उसे घिन आती थी । एक बार उसने गुलाबों को बावचींखाने में चूहा मारते देख लिया था तो दो दिन तक उससे खाना नहीं खाया गया था । किसी आदमी को मारना तो इससे भी भयानक बात थी । अनवर ने फैसला किया कि वह मालूम करेगा कि आखिर यह आदमी गांधी कौन है ।

बहस अभी चल रही थी और अनवर अभी तक यह पता भी नहीं लगा पाया था कि उसके अब्बा गांधी के इन नये विचारों से सहमत हैं कि नहीं कि इतने में घर का पुराना नौकर फकीरा कमरे में आया और उसने अकबरअली के हाथ में एक तार दिया । अपने अब्बा को तार की रसीद पर दस्तखत करते और खाकी लिफाफा फाड़ते देखकर अनवर का दिल जोरों से धड़कने लगा । तार आने पर उसके दिल में हमेशा खलबली मच जाती थी । पहली बात तो यह थी कि उसे इस बात पर बड़ी हैरत होती थी कि खत इतनी जल्दी कैसे आ जाता है—कलकत्ता तक से वह घंटे या दो घंटों में पहुँच जाता था । वह जानना चाहता था कि यह कैसे होता है—क्या ये खत कबूतर लाते हैं, जिस तरह गुलाबों की पुराने बादशाहवाली कहानियों में लाते थे, या इन खतों को वह बड़ा-सा कबूतर लाता था जिसे उसने सुबह आसमान पर उड़ते देखा था ।

तार आने का मतलब हमेशा यह होता था कि कोई बहुत बड़ी बात हुई है । एक बार तार से दस हजार कम्बलों का आर्डर आया था, एक बार और तार से ऊँची कपड़े की एक फैक्ट्री में, जहाँ से अकबरअली और रामेश्वरदयाल का माल आता था, आग लगने की खबर आई थी । अक्सर तार का मतलब होता

था कोई लम्बा सफर—कानपुर या अमृतसर या कलकत्ता तक का सफर। अनवर का मन कितना चाहता था कि वह भी अपने अब्बा के साथ इन जगहों के सफर पर जा सके। वह उन तमाम अनोखी जगहों के स्वप्न देखा करता था जहाँ उसके अब्बा जाया करते थे, पर ये जगहें बहुत दूर थी और किसी लम्बी यात्रा पर जाने की उसकी अभिलाषा अभी तक पूरी नहीं हुई थी।

अकबरअली ने तार अपने साफेदार के हाथ में दे दिया। रामेश्वरदयाल ने अपनी प्रादत के मुताबिक उसे बड़े गौर से धीरे-धीरे पढ़ा।

“इसका मतलब है कि आपको अमृतसर जाना पड़ेगा,” उन्होंने तार अकबरअली को वापस करते हुए कहा।

“हा, लगता तो ऐसा ही है,” अकबरअली ने तार को मोड़कर लिफाफे में रखते हुए उत्तर दिया।

तो यह बात थी। अब्बा फिर अमृतसर जा रहे हैं। अनवर के दिल को बड़ी तसल्ली हुई और उसके दिल में जो दुविधा बैठी हुई थी वह दूर हो गई। लेकिन जैसा कि ऐसे मौकों पर हमेशा होता था अनवर ने आखें बंद करके मन ही मन अल्लाह मिया से दुआ मागी—“या अल्लाह मिया, कुछ ऐसा कीजिए कि अब्बा मुझे भी अपने साथ ले जाए। अल्लाह मिया, बस अगर आप मेरी यह मुराद पूरी कर दीजिए तो मैं वादा करता हूँ कि मैं कभी कोई शरारत नहीं करूँगा। मैं अब्बा का और फूफी-अम्मा का, और हा मौलवी साहब का भी, कहना हमेशा मानूँगा।”

“लेकिन अकबरअली, यह वक्त तुम्हारे लिए इस सफर पर जाने के लिए बिल्कुल मुनासिब नहीं है,” अनवर ने चौधरी मुहम्मदउमर को कहते सुना और उसने आखें खोलकर अल्लाह मिया की तरफ से ध्यान हटाकर वहाँ पर एकत्र लोगो की ओर ध्यान दिया। “पजाब में मार्शल ला लगा हुआ है और वहाँ हर आदमी के लिए जान का खतरा है।”

“जी हाँ,” हकीम बेदिल ने हमेशा की तरह बहुत धीरे से अपनी आवाज खींचकर कहा, “आसमान पर नहूसत के बादल घिर रहे हैं और जमाना बहुत खराब है। जैसा कि गालिब ने कहा है—”

“जाने भी दीजिए कि गालिब ने क्या कहा है,” अकबरअली ने उनकी बात बीच ही में काटते हुए कहा, “मैं घर पर औरतो की तरह चूड़िया पहनकर नहीं

बैठ सकता । और बहरहाल मैं तो अपने कारोबार के सिलसिले में जा रहा हूँ । मैं वहाँ कोई सियासी तहरीक चलाने तो जा नहीं रहा हूँ, फिर मुझे कुछ क्यों होने लगा ?”

“फिर भी भाई साहब,” रामेश्वरदयाल ने हिम्मत करके कहा—रामेश्वर-दयाल यों तो उम्र में अकबरअली के बराबर ही थे पर वे हमेशा उन्हें अपना बड़ा भाई मानकर ‘भाई साहब’ कहते थे—“अगर जरा भी खतरा है तो मैं तो यही कहूँगा कि आप वहाँ न जाएँ ।”

“रामेश्वर, नादानी की बातें न करो । जब तक मैं अमृतसर जाकर मिलो के साथ माल का बदोबस्त नहीं करूँगा तब तक हम अपना यह ठेका पूरा नहीं कर सकते । मैं कल सुबह ही चला जाऊँगा ।”

अनवर को अब्बा का इस तरह दो टूक अपना पक्का इरादा जाहिर कर देना बहुत पसंद था । वे किसी बात से घबराने या डरनेवाले नहीं थे । अगर कोई काम करना होता था तो वे उसे पूरा करके ही छोड़ते थे, चाहे कुछ भी हो जाए । अनवर का हृदय एक बार फिर गर्व से भर उठा । और फिर उसका गर्व से भरा हुआ हृदय जोर से धड़का, उसके कानों में घटिया-सी बजने लगी, और खुशी के मारे उसके सारे शरीर में हलकी-सी कपकपी दौड़ गई ।

“अनवर !” उसके अब्बा ने उसकी तरफ देखकर पुकारकर कहा ।

“जी अब्बा !”

“मेरे साथ अमृतसर चलोगे ?” और यह कहकर वे मुस्करा दिए ।

यह सवाल इस तरह अचानक उसपर टूट पड़ा कि अनवर हक्का-बक्का रह गया ; उससे कोई जवाब देते न बन पड़ा । वह यह सुनने के लिए भी वहाँ न रुका कि अकबर अभी अपने दोस्तों को यह समझा रहे थे कि वे अपने आठ बरस के बेटे को अपने साथ इसलिए ले जा रहे थे कि वे चाहते थे कि उसे दुनिया की खबर हो, यात्राएँ करके उसका दृष्टिकोण व्यापक हो और वह साहसी और निडर बने । अनूपर भागकर जनानखाने में पहुँच चुका था और अपनी बहिन के गले से लिपटकर बेहद खुश होकर कह रहा था, “बाजी अजुम, मैं अमृतसर जा रहा हूँ ।”

गरमी के दिन थे। रात के वक्त आसमान विलकुल साफ था और उसपर लाखों सितारे इस तरह जगमगा रहे थे जिस तरह बाजी अजुम का आसमानी रंग का वह कामदानी का धारीदार दुपट्टा जो उन्होंने ईद के दिन पहना था। अनवर घर के अंदरवाले आंगन में फूफी-अम्मा, अजुम और गुलाबो के पास सोता था। वह बिस्तर पर आखे खोले लेटा था। उसकी बूढ़ी फूफी-अम्मा दिन-भर घर का काम-काज करने के बाद थककर सो गई थी। अजुम भी गहरी नींद सो रही थी, गुलाबो हमेशा की तरह रात को घटे-दो घटे के लिए पडोस में गप्पे लड़ाने के लिए गई हुई थी। सिर्फ अनवर सितारों का साथ दे रहा था। आनेवाले सफर के ख्याल से उसके मन में इतनी खलबली मची हुई थी कि उसे नींद भी नहीं आ रही थी।

रात के सन्नाटे में पुराने भारी फाटक के कब्जों की चू-चू की आवाज सुनाई दी और अनवर ने गुलाबो को अंदर आते देखा। गुलाबो ने यह कोशिश करते हुए कि कम से कम आवाज हो दरवाजा बंद किया और कुडी चढ़ा दी। फिर वह दबे पाव आकर अपनी चारपाई की तरफ बढ़ी।

“बुआ गुलाबो।” हालांकि वह नौकरानी थी लेकिन अनवर को सिखाया गया था कि वह उसे हमेशा इज्जत के साथ ‘बुआ’ कहा करे।

“हा बेटा, क्या बात है?”

“मुझे नींद नहीं आ रही है।”

“तो तुम्हारा मतलब है कि मैं तुम्हें कोई कहानी सुनाऊँ।”

“हा बुआ। मेरी अच्छी बुआ।”

ऐसा लगता था कि सारे सितारों की चमक और भी बढ़ गई है, मानो वे गुलाबो की कहानी सुनने के लिए और पास आ गए हों। अनवर को पक्का यकीन था कि गुलाबो जैसी मजेदार कहानियाँ सुनाती थी वैसे सितारों ने भी कभी न सुनी होगी।

जैसे ही बुआ गुलाबो अपने भारी डील-डौल के साथ अनवर की चारपाई पर बैठीं, चारपाई चरमरा उठी, शायद उसे गुलाबो का वहाँ बैठना अच्छा नहीं लगा। गुलाबो ने मुह का पान थूक दिया और कहानी कहना शुरू किया। गुलाबो की हर कहानी एक ही तरह से शुरू होती थी और अनवर कहानी के



शुरू के इन शब्दों से भली भाँति परिचित हो चुका था ।

“सोवे ससार जागे पाक परवरदिगार । हमारा-तुम्हारा खुदा बादशाह, खुदा का बनाया नबी बादशाह । एक था बादशाह !”

गुलाबो उसे जो भी कहानी सुनाती थी वह इसी तरह शुरू होती थी । उसमें हमेशा एक बादशाह होता था । फर्क सिर्फ इसका होता था कि उसके औलाद कितनी है । कभी उसके सात बेटियाँ होती थी, कभी उसके सात बेटे होते थे । एक कहानी में उसके तीन बेटियाँ थी । इस कहानी में उसके सिर्फ एक बेटा था ।

“बादशाह अपने बेटे से बहुत प्यार करता था,” गुलाबो अपनी नर्म मीठी आवाज में कहानी कहती रही । गुलाबो का शरीर जितना भारी-भरकम और कुरूप था उतनी ही उसकी आवाज मीठी और खूबसूरत थी । “तो जब शाहजादा अठारह बरस का हुआ तो एक दिन बादशाह ने उसे बुलाकर एक घोड़ा और एक तलवार दी और दिशा मालूम करने के लिए उसे एक कुतुबनुमा डिबिया दी ।

“‘बेटा, जाओ, जाकर दुनिया की सैर करो,’ बादशाह ने उससे कहा, ‘और खुद दुनिया को देखो ।’ उसने शाहजादे को एक बात के लिए मना भी किया । ‘बेटा, पूरब जाना, उत्तर जाना, दक्खिन जाना, मगर देखो पच्छिम कभी न जाना । क्योंकि उधर बहुत बुराई और बहुत खतरा है । खुदा हाफिज !’ यह कहकर बादशाह ने अपने बेटे को रुखसत किया ।

“सो शाहजादा घोड़े पर सवार होकर सफर के लिए निकल पड़ा । पहले वह उत्तर की तरफ गया । वह गडरियो और सीधे-सादे पहाड़ी लोगों के साथ रहा और उसने देखा कि उन्हें अपना पेट मालने के लिए कितनी मेहनत करनी पड़ती है और वे आधी-तूफान और बरफ का कितनी बहादुरी के साथ मुकाबला करते हैं । फिर वह दक्खिन की तरफ चला ।

“उत्तर के बर्फीले इलाकों के बाद दक्खिन का इलाका उसे बहुत हरा-भरा दिखाई दिया और वहाँ का मौसम भी अच्छा था । खूबसूरत घाटियों में होकर नदियाँ बह रही थी, खेतों में धान और गेहूँ के खेत लहलहा रहे थे, पेड़ फूलों से लदे थे और जमीन पर से नारियल, आम और अमरूद उठाकर ही आदमी अपना पेट भर सकता था । वहाँ जिन लोगों से वह मिला वे बात बड़ी नरमी से करते थे और घर आए मेहमान की बड़ी आवभगत करते थे, लेकिन साथ ही वे



बहुत काहिल और आलसी भी थे। वे अपना बहुत काफी वक्त नाचने-गाने में और अपने जिस्मों को धुनक के सातों रंगों में रंगने में खराब करते थे।

“ इसके बाद शाहजादा पूरब की तरफ मुड़ा और बहुत बड़े-बड़े शहरों में जा पहुँचा। वहाँ के बाजार तरह-तरह की अनोखी चीजों से भरे पड़े थे। वहाँ के मंदिरों पर सोने के कलश थे और वहाँ के रईस चादी की पालकियों में चढ़कर चलते थे। यहाँ के लोग बड़े तहजीबवाले थे और जिन लोगों से वह मिला उनमें बड़े-बड़े विद्वान और हजारों वर्ष का इल्म जाननेवाले लोग थे।

“ पूरब का सफर पूरा करके शाहजादा एक जगह ठहर गया। अब सिर्फ पच्छिम की तरफ जाना रह गया था, बादशाह ने उसे उधर जाने से बिल्कुल मना कर रखा था। लेकिन इतना घूमने-फिरने के बाद वह पच्छिम की तरफ जाने को इतना बेचैन हो गया था कि उसने अपने बाप की नसीहत न मानकर पच्छिम के भेद भी मालूम करने का फैसला किया।

“ और सो शाहजादे ने अपना थका-मादा घोड़ा पच्छिम की तरफ मोड़ा। न जाने कितनी पहाड़ियों और दूर तक फैले तपते हुए रेगिस्तानों के पार उसे सफर करना पड़ा। आखिर में शाहजादा आधी और तूफान का मुकाबला करता हुआ एक भयानक नगरी में पहुँचा। यहाँ उसकी आँखों ने जो कुछ देखा वह सचमुच बहुत ही भयानक था। हजारों मर्द, औरतें और बच्चे जमीनों से एक बहुत बड़ी चक्की से बंधे हुए थे जिसे वे घुमा रहे थे। उनके बीच में एक बहुत लम्बा-चौड़ा देव खड़ा हुआ था जिसका सिर बादलों को छू रहा था और जिसके पाँव जमीन में बहुत मजबूती से गड़े हुए थे। उसके हाथ में एक कोड़ा था और जो कोई भी काम में ढील करता था उसकी पीठ पर वह बड़ी बेरहमी से कोड़ा फटकार देता था। इस चक्की के पाटों से, जो पहाड़ जितने बड़े थे, बहुत भयानक आवाज निकल रही थी। शाहजादे ने जब पास जाकर चक्की के पाटों को ध्यान से देखा तो उसके होश उड़ गए, क्योंकि इस चक्की में इसान पीसे जा रहे थे। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह देव कुछ लोगों को उठाकर उस भयानक चक्की में भोक देता था। और उस चक्की को चलानेवाले गुलाम सिर मुकाए कोल्हू के बेल की तरह चक्कर लगाते जा रहे थे, उनकी बेड़ियों की झंकार चारों तरफ गूँज रही थी, पर वे खुद अपनी तबाही की इस चक्की को रोक नहीं सकते थे।

“ इन बेचारे बदनसीब लोगों को देखकर शाहजादे का दिल दहल गया और उसने तरस खाकर एक आदमी की ज़मीरे खोलने की कोशिश की, लेकिन उस आदमी ने उसे रोकते हुए कहा, ‘भाई, तुम बेकार परेशान न हो। हम लोग इस चक्की से उस वक्त तक बघे रहेंगे जब तक आसमान पर एक खास सितारा नहीं दिखाई देगा। उस सितारे के दिखाई देने के बाद ही हम आजाद होंगे। तुम जाओ, और जाकर हरी आखवाले राक्षस का पता लगाओ और उसे मार डालो, क्योंकि वह हमारे बहुत-से भाइयों को खा गया है।’

“ और सो शाहजादा हरी आखवाले राक्षस की तलाश में निकल पड़ा। रास्ते में हूरो का बाग पड़ा। हवा में संगीत था, शराब की नदिया बह रही थी, पेड़ों की डालें सुनहरे फलों के बोझ से लचकी जा रही थी और चारों तरफ से खूबसूरत-खूबसूरत हूरे पुकार-पुकारकर उससे कह रही थी, ‘परदेसी, थोड़ी देर के लिए हमारे पास इस खूबसूरत जगह पर ठहर जाओ। ऐसी जल्दी क्या है?’ लेकिन शाहजादा जानता था कि ये सब लालच उसे इसलिए दिए जा रहे हैं कि वह जिस काम को पूरा करने निकला है उसे पूरा न कर सके। उस चक्की से बघे हुए गुलामों की भयानक तस्वीर उसकी आँखों के सामने नाच रही थी, इसलिए उसने हूरो को एक तरफ ढकेल दिया और तेजी से घोड़ा दौड़ाता हुआ हूरो के बाग को पार कर गया।

“ लेकिन इसके बाद उसका रास्ता खौफ की घाटी से होकर गुजरता था, जिसपर जहालत की काली छाया पड़ रही थी। जब वह वहाँ से गुजरा तो भूतों ने उसका गला घोटने की कोशिश की और चट्टानों से भयानक आवाज़ें निकलकर उसके कानों में गूँजने लगी। इन आवाज़ों ने चिल्लाकर कहा, ‘वापस लौट जाओ, तुम हमारे जंगल से बचकर आगे नहीं जा सकते। हम तुम्हें मार डालेंगे।’ डरावने राक्षसों ने आग के भालों से उसपर हमला कर दिया और जोर-जोर से चिल्लाकर उससे कहने लगे, ‘वापस लौट जाओ। आज तक कोई भी इस खौफ की घाटी को जिंदा नहीं पार कर सका है। हम तुम्हें मार डालेंगे।’ लेकिन शाहजादे को उसके बाप ने सिखाया था कि खुदा के अलावा किसी और से न डरना और शाहजादे को उनसे डर नहीं लगा। उसने तलवार खींच ली और कलमा पढ़कर उनसे चिल्लाकर बोला, ‘हट जाओ मेरे रास्ते से। मैं इंसान हूँ, इंसान की औलाद हूँ, मैं सारी दुनिया का मालिक हूँ।’ और उसका

इतना कहना था कि भूत-प्रेत गायब हो गए और डरानेवाली खौफनाक आवाजे सुनाई देना बंद हो गई।

“ चलते-चलते शाहजादे को हरी आखोवाला राक्षस मिला। उसके पुखराज की हरी-हरी चमकदार आखें और सोने की दुम थी और उसका मुंह बहुत बड़ा था। हर बार जब वह मुंह खोलकर सांस लेता था तो न जाने कितने मर्द, औरतें और बच्चे खिचकर उसके मुंह में चले जाते थे और उन्हें वह जिंदा निगल लेता था। शाहजादे ने तलवार खींची और राक्षस पर हमला करने के लिए आगे बढ़ा। लेकिन उसपर तलवार का वार करने से पहले वह कुछ सोचकर रुक गया। राक्षस अपने शिकार के पीछे एक गोल दायरे में घूम रहा था कि अचानक उसने अपनी ही सुनहरी दुम पकड़ ली और खुद अपने-आपको निगलने लगा।

“ शाहजादे ने ऊपर नजर उठाकर देखा तो आसमान पर एक नया सितारा चमक रहा था। थोड़ी देर में उसे बिजली कड़कने की आवाज और तूफान का शोर सुनाई दिया, लेकिन बाद में उसे पता चला कि यह चक्की से बंधे हुए उन गुलामों का ही शोर था जो अब आजाद होकर खुशी के मारे चिल्ला रहे थे। शाहजादा” ”

लेकिन अनवर तो सो चुका था। उसने कहानी आखीर तक सुनी ही नहीं।

उस रात अनवर ने एक बहुत अजीब सपना देखा। वह जानता था कि वह सपना देख रहा है फिर भी उसके मन में एक गहरा आभास यह था कि यह स्वप्न नहीं बल्कि सत्य है। पहले तो उसने आसमान पर एक बहुत बड़ा कबूतर उड़ते देखा जो एक चमकदार सितारे की तरफ चला जा रहा था। फिर उसने देखा कि वह कबूतर नहीं है बल्कि वह खुद उस बहुत बड़े कबूतर की पीठ पर बैठा हुआ है जिसे उसने उस दिन सुबह आसमान पर उड़ते देखा था। उसके दोनों तरफ डैनों के बजाय मौलवी माहब की मफेद दाढ़ी लगी हुई थी जो हवा में अजीब तरह से फड़फड़ा रही थी। उसके अर्बबा कहीं से उसे आवाज दे रहे थे पर जब उसने मुड़कर देखा तो वे उसके अर्बबा नहीं बल्कि काका रामेश्वरदयाल थे। वह आसमान की तरफ उड़ता चला जा रहा था जिसका रंग नीला था और जिसपर सितारे टके हुए थे, पर जब उसने उसे पकड़कर नीचे खींचने की कोशिश



की तो वह बाजी अजुम का आसमानी धारीदार दुपट्टा निकला। एक चिड़िया उड़ती हुई उसकी तरफ आ रही थी—लेकिन नहीं, वह चिड़िया नहीं थी बल्कि अमृतसर से आया हुआ तार था जो हवा में फड़फड़ा रहा था। और इतने में वह बड़ा कबूतर एक सफेद घोड़ा बन गया था और चिड़िया की तरह उड़ा चला जा रहा था। लेकिन थोड़ी देर में वह जमीन पर उतर आया और एक घाटी में से होकर दुलकी चाल से चलने लगा। एक हूर हवा में उड़ती हुई आई और बोली, “परदेसी, थोड़ी देर को रुक जाओ न।” लेकिन वह हूर नहीं थी, बल्कि चावडी बाजार की ‘उन दूसरी औरतों’ में से एक थी। और इसलिए अनवर ने जवाब दिया, “मैं इसान हू, इसान की औलाद हू, मैं सारी दुनिया का मालिक हू।” और इसपर हूर ने जवाब दिया, “मैं औरत हू, औरत की बेटी हू, और तुम मुझसे बचकर नहीं जा सकते।” और इतना कहकर वह अपनी बाहे फैलाकर अनवर से लिपट गई लेकिन वह वहां नहीं था—और न ही वह थी। अब वह खौफ की घाटी में पहुंच गया था और हरी आखोवाला राक्षस उसकी तरफ आ रहा था। वह वही सहमकर खड़ा हो गया और उसे यकीन हो गया कि वह राक्षस उसे मार डालेगा। इतने में एक अजनबी, एक दुबला-पतला छोटा-सा आदमी आकर उसके और राक्षस के बीच में खड़ा हो गया और बोला, “मैं गाधी हू और मैं अफ्रीका से आया हू। राक्षस, इस मासूम बच्चे को न मारना नहीं तो मैं तुम्हारे बेइसाफी के कानून को नहीं मानूंगा। मारना तो तुम्हें किसीको भी नहीं चाहिए—चूहे तक को नहीं।” राक्षस ने अपने नथुने फुफकारकर जोर से सास ली और वह अजनबी और अनवर दोनों उस राक्षस के पेट में पहुंच गए। लेकिन असल में वह राक्षस का पेट नहीं बल्कि उसके अम्बा की बैठक थी और वहां हकीम बेदिल बैठे गालिब के शेर सुना रहे थे। “आसमान पर मनहूस घटाए घिर रही है,” हकीम बेदिल ने कहा और सचमुच आसमान पर गहरे काले-काले बादल घिर आए थे और थोड़ी ही देर में पानी बरसने लगा—कमरे के अंदर भी बरसने लगा।”

लेकिन पानी का छीटा तो अजुम ने हमेशा की तरह अनवर को जगाने के लिए उसके मुंह पर मारा था। अनवर ने हड़बड़ाकर आंखें खोल दीं। उसकी बहन शरारत-भरे अंदाज से मुस्करा रही थी। “उठ, काहिल कहीं का! अगर अमृतसर जाना है तो फौरन उठ जा, नहीं तो अम्बा तुम्हें छोड़कर चले जाएंगे।”

## वह लम्बी सड़क

रेलवे स्टेशन अनवर के लिए एक नई ही दुनिया थी। कभी सपने में भी उसने ऐसी जगह नहीं देखी थी। भयानक काले देव जैसे बड़े-बड़े इंजन धुआ उड़ाते हुए रेल की चमकती हुई पटरियों पर इधर से उधर आ-जा रहे थे। गाड़िया आती थी और बहुत दूर बम्बई, कलकत्ता और पेशावर तक चली जाती थी। स्टेशन में आते हुए और स्टेशन से बाहर निकलते हुए मुसाफिरो की भीड़ एक अजीब पचमेल खिचड़ी थी—हर रंग की पगड़िया, हर शक्ल की टोपिया, सलवारे पहने हुए पठान और धोतिया बांधे हुए बगाली, छोलदारी जैसे बुरको में लिपटी हुई मुसलमान औरते और मुह पर छोटा-सा घूघट काढ़े हुए शरीफ घरानों की हिन्दू औरते और इनके साथ ही कुछ गोरी चमड़ी-वाली औरतें ऐसी भी जो बहुत ही बारीक कपड़े पहने थी जिनमें से उनका सारा शरीर दिखाई देता था। शायद यही चावडी बाजार वाली वह 'दूसरी औरते' थी। लेकिन ऐसा नहीं था। अनवर के अब्बा ने उसे बताया कि ये उन माहब लोगो की, अंग्रेज अफसरों की, बीविया या बेटिया थी जो प्लेटफार्म पर रेल के इंजन की तरह सिगरेट का धुआ उड़ाते हुए चहलकदमी कर रहे थे।

बाद में उसके अब्बा ने उसे बताया कि वे सीधे अमृतसर न जाकर एक दिन के लिए पानीपत में रुकेंगे जो वहां से सिर्फ पचास मील दूर था।

“अब्बा, हम लोग रात तक वहां पहुंच जाएंगे ?” उसने पूछा।

“रात तक ? अरे, अभी तीन घंटे में पहुंचे जाते हैं।”

इतने में वे उस प्लेटफार्म पर पहुंच गए जहां उनकी गाड़ी खड़ी थी। चारों तरफ एक अजीब चहल-पहल थी और शोर-गुल हो रहा था—मुसाफिर और उन्हें छोड़ने के लिए आए हुए उनके दोस्त, कुली और फल और शर्बत बेचनेवाले, किताबें और अखबार बेचनेवाले सब एकसाथ बोल रहे थे और चिल्ला-चिल्लाकर अपना माल बेचने की कोशिश कर रहे थे। और इन तमाम

आवाजो के शोर-गुल में उसे दो आवाजे बिलकुल साफ सुनाई दे रही थी, 'हिन्दू पानी', 'मुस्लिम पानी' ।

मुस्लिम पानीवाले के दाढ़ी थी और वह अपने कंधे पर एक मशक लटकाए हुए था; उसका जोड़ीदार हिन्दू पानीवाला दोनों हाथों में एक-एक बाल्टी लिए हुए था । अनवर सोचने लगा कि क्या इन दोनों के पानी में सचमुच कोई फरक है । लेकिन इतने में वह देखता क्या है कि दोनों पानीवालों ने प्लेटफार्म के बीच में जाकर एक ही नल से पानी भरा ।

अनवर ने देखा कि गाड़ी में भी कई तरह के डिब्बे हैं । फर्स्ट और सैकंड क्लास के डिब्बों के बाहर सोने की तरह चमकते हुए डंडे लगे हुए थे, उनमें चमड़े की गद्दियां थी, आईने लगे थे और बिजली के पखे चल रहे थे । इनमें से ज्यादातर डिब्बों में अंग्रेज मर्द और औरतें बैठी थी । कुछ पैसेवाले हिन्दुस्तानी भी इन डिब्बों में सफर कर रहे थे । लेकिन जाहिर है उन्हें गोरों के साथ नहीं बैठने दिया जाता था । अनवर ने देखा कि एक हिन्दुस्तानी सज्जन ऐसे ही एक डिब्बे में घुसने की कोशिश कर रहे थे और उसमें बैठे हुए दो अंग्रेज उन्हें डांट रहे थे, "गेट आउट, तुम काला आदमी को हम इधर नहीं बैठने मागटा ।" हिन्दुस्तानी सज्जन ने अपना टिकट निकालकर उन्हें दिखाया कि उन्हें सैकंड क्लास के डिब्बे में बैठने का अधिकार है और इस सिलसिले में उन्होंने एक हिन्दुस्तानी टिकट बाबू से भी फरियाद की लेकिन कोई फायदा न हुआ । उन्हें मजबूर होकर सैकंड क्लास के एक दूसरे डिब्बे में बैठना पड़ा जो सिर्फ हिन्दुस्तानी लोगों से खचाखच भरा हुआ था । अनवर को यह देखकर बहुत ताज्जुब हुआ, क्योंकि उसने सुन रखा था कि अंग्रेजों के राज में सब बराबर है । वह सोचने लगा कि अगर ऐसा है तो फिर वह हिन्दुस्तानी सज्जन अंग्रेजों के साथ बैठकर एक ही डिब्बे में सफर क्यों नहीं कर सकते ? उसके लिए यह एक और पहेली थी—बिलकुल उस पहेली जैसी कि एक ही नल के पानी के दो धर्म कैसे हो जाते हैं और वह 'हिन्दू पानी' और 'मुस्लिम पानी' कहकर क्यों पिलाया जाता है ।

वे ड्योढ़े दर्जे के एक डिब्बे में घुसे ही थे कि इंजन ने जोर से सीटी दी और गाड़ी इतने जोर के झटके के साथ चली कि अनवर अपने अम्बा की गोद में जा गिरा । ऐसा लग रहा था कि प्लेटफार्म और उसपर खड़े हुए सब

लोग दूर भागे जा रहे ह। अनवर के लिए यह बहुत ही आश्चर्य की बात थी।

“अब्बा, अब्बा, स्टेशन भागा जा रहा है !” अनवर ने घबराकर चिल्लाते हुए कहा और डिब्बे में बैठे हुए सारे मुसाफिर हस पड़े।

अकबरअली ने मुस्कराकर धीरे से अपने बेटे की बाह को थपक दिया और बोले, “बेटा, स्टेशन नहीं, हमारी गाड़ी भागी जा रही है। वह देखो, सब्जीमंडी के बाग है। चूँकि हम उनसे दूर हटते जा रहे हैं इसलिए तुम्हें ऐसा लगता है कि वे दूसरी तरफ हमसे दूर भागते जा रहे हैं।”

अनवर अपनी इस बेवकूफी की बात पर बहुत लज्जित हो रहा था। लेकिन उसने यह सोचकर अपने-आपको तसल्ली दी कि यह मेरा पहला ही रेल का सफर तो है, और यह सोचकर उसे बड़ी खुशी हुई। जूते उतारकर वह आराम से सीट पर बैठ गया और खिडकी के बाहर पीछे की तरफ भागते हुए तार के खभो को देखने लगा—लेकिन अब उसकी समझ में आ गया था कि वे भागकर कहीं गायब नहीं हो जाते बल्कि सिर्फ ऐसा लगता है कि वे गायब हो जाते हैं।

गाड़ी तेज़ी से पानीपत की तरफ भागी जा रही थी। अनवर खिडकी के पास से तेज़ी से गुजरते हुए दृश्यों को मुग्ध होकर देख रहा था—खेत और फलों के बाग, रेल की गुमटी पर छोटी-छोटी भोपड़िया, कहीं दूर पर किसी मकबरे का सफेद गुम्बद, गांव के पास से घड़घड़ाती हुई गाड़ी को गुजरते देखकर हाथ हिलाते और शोर मचाते हुए बच्चे। अनवर जानता था कि उसके दिल में जो खलबली मची हुई थी उसकी वजह सिर्फ यह नहीं थी कि वह किसी खास जगह, पानीपत या अमृतसर, जा रहा था, बल्कि इसकी वजह यह थी कि वह रेल से जा रहा था। यह सोचकर ही उसके खून में एक सनसनी-सी दौड़ जाती थी कि वह बहुत तेज़ चलनेवाली रेलगाड़ी पर सफर कर रहा था। उसका जी चाहता था कि वह खुशी के मारे तालियाँ बजाने लगे, वह चाहता था कि खूब जोर-जोर से चिल्लाए, उछले-कूदे और जी भरकर नाचे। लेकिन उसका पालन-पोषण बहुत अच्छे ढंग से किया गया था और वह इस बात को जानता था कि इस तरह की चीजें सबके सामने नहीं की जानी चाहिए। उसके अब्बा इस चीज़ को सख्त नापसन्द करते थे कि कोई अपनी खुशी या गम का ढिंढोरा पीटे।



अनवर को सिखाया गया था कि अगर कहीं गिरने से बहुत सख्त चोट भी लग जाए तो भी जोर से न रोए, हकीम बेदिल के अच्छे से अच्छे मजाक पर भी कभी जोर से न हसे और जब दर्जी उसके लिए ईद की कमख्वाब की शेरवानी सोकर लाए तब भी वह खुशी से नाचने न लगे। और इसलिए वह खिडकी के पास चुपचाप बैठा रहा था लेकिन अदर ही अदर वह खुशी के मारे फूला नहीं समा रहा था। उसे ऐसा लगा कि उसमें पहले से ज्यादा जान आ गई है, उसे लगा कि वह पहले से ज्यादा ताकतवर और तन्दुहस्त हो गया है और गुलाबो की कहानियोवाले शाहजादे की तरह कोई भी काम कर सकता है, कहीं भी जा सकता है—हरी आखोवाले राक्षस को मारने भी जा सकता है। लेकिन वह जानता था कि इस तरह के राक्षस, परिया, देव, भूत और प्रेत दरअसल कहीं होते नहीं हैं। उसके अब्बा ने उसे यह बात खास तौर पर बताई थी और उससे कह दिया था कि वह गुलाबो की कहानियो की हर बात को सच न मान लिया करे, नहीं तो वह भी बड़ा होकर फूफी-अम्मा की तरह हो जाएगा जो इन सब चीजों पर यकीन करती थी। लेकिन कभी-कभी अनवर का जी चाहता था कि काश सचमुच ऐसे राक्षस होते। उसे इसकी कोई चिन्ता नहीं थी कि उस राक्षस की आखें कैसी हों, पर इस तरह का एकाध राक्षस हो जरूर, जिससे जाकर उसका जैसा बहादुर लडका लड सके और उसे मार सके और फिर शाहजादी से ब्याह कर सके, जैसाकि गुलाबो की कई कहानियो में होता था।

रेलगाड़ी बहुत लम्बे-चौड़े सपाट मैदान को पार करती हुई भागी चली जा रही थी। रेल की पटरी के किनारे-किनारे अनवर को साप की तरह लहराती और बल खाती हुई सफेद सडक दिखाई दे रही थी जो कभी पेड़ों के पीछे छिप जाती थी और कभी फिर अचानक बाहर निकल जाती थी। वह कभी रेल की पटरी के इतने पास आ जाती थी कि अनवर उसपर जाती हुई ऊटगाडियो को साफ देख सकता था, और दूसरे ही क्षण इतनी दूर हो जाती थी कि क्षितिज के छोर पर केवल एक रेखा जैसी दिखाई देती थी। बहस कुछ ठंडी पड गई थी और इसलिए अकबरअली को अपने बेटे को कुछ बातें समझाने का मौका मिला। अनवर को अपने अब्बा की बातें सुनना बहुत अच्छा लगता था। उन्हें हर बात मालूम थी और वे कभी उसके सवालों का जवाब देने से उकताते नहीं



थे। उन्होंने अनवर को बताया कि इस सड़क का नाम ग्राड ट्रक रोड है जो कलकत्ता से दिल्ली होती हुई पेशावर तक चली गई है और हिन्दुस्तान के पूरब से उत्तर-पश्चिमी सिरे तक डेढ़ हजार मील लम्बी है। “यह सड़क अंग्रेजों ने बनवाई है?” अनवर ने पूछा। “नहीं,” उसके अब्बा ने जवाब दिया, “यह सड़क एक हिन्दुस्तानी बादशाह ने बनवाई थी जिसका नाम शेरशाह सूरी था। उसने यह सड़क इसलिए बनवाई थी कि इस लम्बे-चौड़े मुल्क में लोगों के लिए एक जगह से दूसरी जगह जाना आसान हो जाए।”

‘मेरे अब्बा भी कितने अक्लमंद हैं!’ अनवर ने सोचा।

गाड़ी की रफ्तार धीमी पड़ने लगी। खिड़की से बाहर उसने नज़र दौड़ाकर देखा तो उसे उस सपाट मैदान के क्रम को भग करता हुआ, जिसका अब तक वह आदी हो चुका था, टीले पर बसा हुआ एक छोटा-सा शहर दिखाई दिया। पक्की ईंट के मकानों की कतारे एक-दूसरे के ऊपर दूर तक चली गई थी और उन सबके ऊपर मस्जिदों की मीनारे और गुबद सूरज की तेज रोशनी में चमक रहे थे।

“तैयार हो जाओ,” उसके अब्बा ने कहा, “पानीपत आ गया।”

पानीपत बहुत ही ऊँचा हुआ-सा शहर निकला। अनवर दिल्ली की चहल-पहल का आदी था। उसे यहाँ की हर चीज़ इतनी सुस्त, इतनी बेरग और इतनी बेजान मालूम हुई कि वह बयान भी नहीं कर सकता था। बाजारों में लोग निहायत इतमीनान से आ-जा रहे थे; हर दूकान पर रुककर थोड़ी देर गप लड़ाते या थोड़ी देर हुक्के का कश खींचते। कचरे से लदे हुए गदहे टेढ़ी-मेढ़ी और ऊबड़-खाबड़ सड़कों के ठीक बीचोबीच खड़े ऊँघ रहे थे जिसकी वजह से उस फटीचर तागे का आगे बढ़ना भी मुश्किल हो रहा था। इस शहर की एक और खास चीज़ यहाँ की मक्खियाँ थी—लाखों-करोड़ों मक्खियाँ। और अनवर जिसे आबनूस की लकड़ी पर बहुत खूबसूरत नक्काशी का काम समझ रहा था वे पास से देखने पर एक हलवाई की दूकान के दरवाजे पर चिपकी हुई मक्खियाँ निकली। ऐसा लगता था कि वहाँ बहुत-से लोग उसके अब्बा को जानते थे और अकबरअली ने अपने बेटे को समझा दिया था कि जब भी कोई ‘अस्सलामलैकुम’

कहे तो वह अदब से सलाम का जवाब दे—‘वानेकुम-अस्सलाम’ ।

बाजार से गुजरकर वे मीर फैयाजअली के घर पहुँचे जो अकबरअली के बहुत पुराने दोस्त थे और लडाई के दिनों में चार बरस तक कम्बलों के व्यापार में उनके साथ काम कर चुके थे । अकबरअली और रामेश्वरदयाल ने फौज को हजारों कम्बल सप्लाई किए थे और ये कम्बल ज्यादातर पानीपत से बनकर आते थे । फैयाजअली का कहना था कि वहाँ के कम्बलवाले लडाई के ठेको की बदौलत बेहद पैसेवाले हो गए थे और वे अपनी नई कमाई हुई दौलत शादी-ब्याहों पर, नये घर बनवाने पर और अपनी औरतों के लिए गहने बनवाने पर तबाह कर रहे थे । “हम शरीफ लोगों के लिए नीच जात के इन हरामियों को काबू में रखना मुश्किल हो गया है ।” मीर फैयाजअली की आदत थी कि वे अपनी बातों के बीच-बीच में चुनी हुई गालियों का चटखारा देते रहते थे । और हर बार जब वे अकबरअली के कमउम्र नासमझ बेटे के सामने ‘हरामी’ के किस्म का कोई लफ्ज कहते थे तो उनके जैसे शायस्ता आदमी के दिल पर गहरी चोट लगती थी । जब बात-बात में गाली बकनेवाले शहर के खानदानी रईस मीर फैयाजअली उठकर जनानखाने में गए तो अनवर ने अपने अब्बा से पूछा, “अब्बा, मीर साहब कम्बल बनानेवालों को ‘हरामी’ कह रहे थे । यह हरामी कौन होता है ?”

अकबरअली अपने बेटे के कोई सवाल पूछने पर बहुत खुश होते थे और हमेशा बड़े सब्र के साथ खुशी-खुशी उसके सवाल का जवाब देते थे । लेकिन कुछ सवाल ऐसे भी होते थे जिनका उनसे कोई जवाब देते न बन पड़ता था और इस लफ्ज ‘हरामी’ का मतलब भी ऐसे ही सवाल में आता था । फिर भी उन्होंने अपनी तरफ से उसे इसका मतलब समझाने की पूरी कोशिश की ।

“यों समझ लो बेटा, इसका मतलब होता है—बुरा आदमी ।”

“तो इसका यह मतलब है कि अगर मैं कोई बुरी बात करूँ—जैसे अगर मैं आपका कहना न मानूँ या अपना सबक ठीक से न याद करूँ—तो मुझे भी हरामी कहा जाएगा ?”

अकबरअली पर इस बात का यकायक इतना गहरा असर पड़ा, उनका चेहरा इतना सुर्ख हो गया और वे लाचारी में इतनी बुरी तरह हकलाने लगे कि अनवर समझ गया कि उसने यह सवाल पूछकर कोई बहुत बड़ी गलती की थी ।

“नहीं, नहीं” । ऐसी बात नहीं है । हर बुरे आदमी को हरामी नहीं कहते । वह तो बुरे आदमी से भी बदतर होता है ।”

जाहिर था कि इस लफ्ज ‘हरामी’ में कोई ऐसा भेद था जो अनवर के अब्बा अपने बेटे को नहीं बताना चाहते थे । इतने में मीर फैयाजअली पानो की तश्तरी हाथ में लिये हुए जनानखाने से निकल आए और बाप-बेटे दोनों को बातचीत का रुख बदल जाने पर बहुत खुशी हुई ।

“अच्छा मीर साहब, यह तो बताइए,” अकबरअली ने कहना शुरू किया, “मुल्क में जो कुछ हो रहा है उसके बारे में पानीपत के लोगो का क्या खयाल है ?”

“मुल्क में जो कुछ हो रहा है । क्या हो रहा है ?” पुराने खानदानी रईस मीर फैयाजअली ने जिनकी रईसी अब नाम ही को रह गई थी, एक पुरानी आरामकुर्सी पर लेटकर इतमीनान से हुक्के का कश खींचते हुए चौककर कहा । फिर कुछ रुककर पान की पीक थूकते हुए बोले, “... आपका मतलब इस ‘सत्याग्रह’ से है ? कम से कम पानीपत के हम शरीफ लोग तो आटा-दाल बेचने-वाले इस टटपूजिए बनिये से कोसो दूर रहेंगे ।”

शाम को मीर फैयाजअली अपने मेहमानों को बू-अलीशाह कलदर का मकबरा दिखाने ले गए । बू-अलीशाह सैकड़ों बरस पहले कोई फकीर गुजरे थे और उनका नाम कलदर इसलिए पड़ गया था कि वे चीथड़े पहनकर पागलों की तरह रहते थे और दुनिया की हर बात को भुलाकर खुदा के ध्यान में मग्न रहते थे ।

यह खूबसूरत सफेद मकबरा पत्थर के फर्शवाले एक बहुत बड़े लम्बोतरे आगन के एक कोने में बना हुआ था । अपने जूतों से खट-खट की आवाज करते हुए वे अन्दर के आगन में पहुँचे । अन्दर के आगन में काफी भीड़ जमा थी और अचानक उन्हें गाने की आवाज सुनाई दी । जूते उतारकर वे सगमरमर के चबूतरे पर चढ़ गए । वहाँ अनवर ने एक अनोखा दृश्य देखा ।

पतले-से दरवाजे में से कोठरी के अंदर फूलों से ढकी हुई कलदर साहब की कब्र धुधली-धुधली दिखाई पड़ रही थी । उसके सामने एक चौड़ा-सा बरामदा

था जिसमे बीस-पच्चीस आदमी घेरा बाधकर बैठे हुए थे। उनमे से एक आदमी पूरी आवाज के साथ फारसी के शेर गा रहा था और बाकी लोग तालिया बजा-बजाकर ताल दे रहे थे, शेर के आखिरी टुकड़े पर पहुँचकर सब लोग साथ मिलकर गाते थे। समुद्र की चढ़ती हुई लहरों की तरह गाने की लहर भी लगा-तार ऊँची चढ़ती गई, तालिया और जोर से बजने लगी और लोग तूफान की तरह चढ़ती हुई धुन पर सिर हिला-हिलाकर झूमने लगे। लोगो ने आखे बन्द कर ली और हर शख्स रूमी की सूफियाना शायरी की भावनाओं के प्रबल प्रवाह में विलीन हो गया। फिर अनवर यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि भीड़ के बीच में खड़े हुए एक आदमी ने अपनी आखे खोली और पागलो की तरह मूनी-सूनी नजरों से सामने घूरने लगा। एक क्षण तक वह आदमी बिल्कुल खामोश रहा, तूफान से पहले की खामोशी की तरह, चारों तरफ भावनाओं का जो तूफान उमड़ रहा था उसके बीच वही एक ऐमा था जो बिल्कुल चुपचाप खड़ा था। फिर यकायक उसपर जुनून सवार हुआ, उसका सारा शरीर कापने और हिलने-डुलने लगा। गाना अब तक खौफनाक हृद तक तेज हो चुका था और लगातार उसकी धुन तेज होती जा रही थी और गानेवालों की आवाजे ऊँची होती जा रही थी। उस आदमी ने अपने हाथ हवा में ऊपर उठा रखे थे मानो किसी अदृश्य रस्सी को पकड़े हो। अचानक वह ऊपर की तरफ उछला और पागलो की तरह, बिल्कुल दीवाना होकर नाचने लगा। नाचते-नाचते वह अपने कपड़े फाड़ता जा रहा था, अपने बाल नोच रहा था। उसे अपने तन-बदन का होश न था, वह अपने काबू से बिल्कुल बाहर हो चुका था। उसे किसी भी चीज का होश न था, उसके अन्दर कोई ऐसी रहस्यमयी लहर उठ रही थी जो इस उन्मत्त नृत्य के रूप में प्रकट होना चाहती थी। इतने में यकायक गानेवालों के होठों पर गीत ने दम तोड़ दिया, भावनाओं का ज्वार उतर गया और एकत्र जनसमूह पर मरघट जैसी खामोशी छा गई। इस खामोशी में भीड़ के बीच में खड़े हुए उस आदमी की सूरत बहुत ही हास्यास्पद और डरावनी लग रही थी, कुछ क्षण के लिए तो वह इस तरह खड़ा रहा मानो फिर उसे हाल आनेवाला हो, लेकिन भावनाओं से गीत का सहारा छिन जाने के कारण उसके घुटने जवाब दे गए और वह वही जमीन पर ढेर हो गया।

इस दृश्य का अनवर के हृदय पर इतना गहरा असर पड़ा कि कई मिनट



तक तो वह बोल ही न सका। उसकी नब्ज तेज चलने लगी, उसका दिमाग चकराने लगा और जब गाना यकायक रुक गया तो उसे ऐसा महसूस होने लगा कि उसके अन्दर से कोई चीज निकल गई है और यह खालीपन अन्दर ही अन्दर उसे कुरेदने लगा।

तो यह थी कव्वाली, वह उन्मादपूर्ण प्रथा जिसे फारस के सूफियो ने चलाया था। मीर फैयाजअली को उसपर बहुत नाज था। उन्होंने कहा, “पानीपत जैसी कव्वाली तो कही होती ही नहीं।” लेकिन अकबरअली कुछ झु झुलाए हुए, कुछ लज्जित और कुछ अपमानित अनुभव कर रहे थे। उन्हें भावनाओं का यह उन्मादपूर्ण प्रदर्शन अच्छा नहीं लगा था और उन्होंने यह बात कह भी दी, जिसपर बूढ़े मीर साहब के साथ उनकी बहस छिड़ गई। वे अभी बहस कर ही रहे थे कि इतने में एक आदमी उठा और मज्जार की चौखट पर माथा टेककर सिजदा करने लगा। अकबरअली ने बड़े विजयोत्सास के साथ उसकी तरफ इशारा करके कहा, “यह देखिए। यह है आपका इस्लाम। एक कब्र पर सिजदा — फिर आपमें और बुतपरस्त काफिरो में फर्क ही क्या रह गया?”

लेकिन बाहरवाले आगन में एक और छोटी-सी कब्र थी जिसके सामने जाकर अकबरअली ने चुपचाप अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की और अपने बेटे को वताया कि वह उर्दू के मशहूर शायर ‘हाली’ की कब्र थी, जिन्होंने अपनी अमर रचना ‘मुसद्दस’ में इस्लाम के उत्थान और पतन का वर्णन किया था।

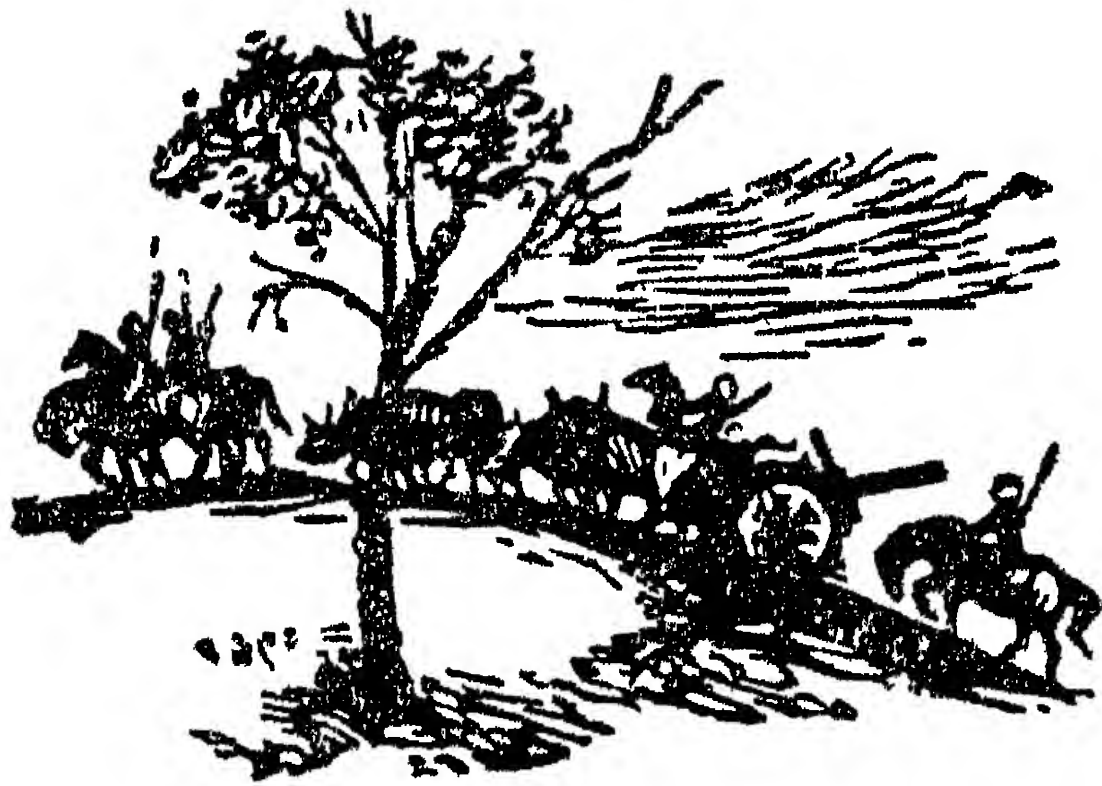
अकबरअली ने शायर की रूह के लिए दुआ मागने के बाद एक बार कनखियों से मीर फैयाजअली को देखा और फिर एकत्र जनसमूह को, जो एक दूसरी कव्वाली की तैयारिया कर रहा था, और फिर बोले, “उन्होंने एक पूरी कौम को जगा दिया लेकिन अफसोस कि खुद उनका शहर अभी तक गफलत की नींद सो रहा है।”

जब अनवर और उसके अब्बी पानीपत से रेलगाड़ी में बैठकर अमृतसर के लिए रवाना हुए तो वह बड़ी सड़क अब भी रेल की पटरी के किनारे-किनारे चल रही थी। जब पानीपत का ऊँचा हुआ शहर पीछे रह गया तो अकबरअली ने एक लम्बे-चौड़े मैदान की तरफ इशारा करके कहा, “यही वह मैदान है जहाँ

पानीपत की बड़ी-बड़ी लड़ाइया लड़ी गई थी। और उससे भी बहुत पहले महा-भारत की लड़ाई का फैसला भी इसी मैदान में हुआ था।”

तो इसका मतलब यह था कि वे बहुत ऐतिहासिक महत्व की पवित्र भूमि से होकर गुजर रहे थे। अनवर ने उस लम्बे-चौड़े मैदान को देखा और शीघ्र ही उसकी कल्पना ने वहाँ कौरवों और पांडवों की सेनाएँ लाकर खड़ी कर दी। हाथी लाशों को और दम तोड़ते हुए घायल सिपाहियों को रौदते हुए आगे बढ़ते जा रहे थे, रथों की गडगडाहट सुनाई दे रही थी, घोड़े सरपट दौड़ने चले जा रहे थे और मौत का संदेश लानेवाले कबूतरों की तरह तीर हवा में उड़ रहे थे। भारत का बहुत कुछ इतिहास रक्त की रेखाओं में इसी विस्तृत मैदान पर अंकित था। इस बड़ी सड़क पर होकर आक्रमणकारियों और विजेताओं की सेनाएँ, देशभक्त और अत्याचारी शासक और लुटेरे सभी गुजरे थे। लेकिन वह दूर पर क्या दिखाई दे रहा था ?

सड़क कोई मील-भर तक बिल्कुल रेल की पटरी के साथ-साथ चली गई थी और उस सड़क पर घुड़सवार सिपाहियों की एक टुकड़ी चली जा रही थी — घुड़सवार सिपाही, तोपों की गाड़ियाँ जिन्हें घोड़े खींच रहे थे और कुछ मोटरे। गाड़ी में बैठे-बैठे अनवर ने पगड़ियाँ बांधे हुए हिन्दुस्तानी सिपाहियों, खाकी टोप लगाए हुए अंग्रेज अफसरों और टट्टुओं पर बैठे हुए साईंसों और कोच-वानों को पहचाना। उसने आगे बढ़ती हुई इस घुड़सवार टुकड़ी को बड़े ध्यान से देखा, घोड़ों की टापों की आवाज साफ सुनाई दे रही थी और वे सफेद धूल के बादल उड़ाते हुए आगे बढ़ते जा रहे थे—हिन्दुस्तान में अंग्रेजों की बहुत बड़ी फौज की एक छोटी-सी टुकड़ी अमृतसर की तरफ कूच कर रही थी।



## मौत का सामना

अमृतसर ।

गाडी स्टेशन पर पहुँची और सैकड़ों मुसाफिरो को प्लेटफार्म पर उगल दिया । लेकिन वहाँ पर कोई भी कुली दिखाई नहीं दे रहा था । कुछ मुसाफिर जो खुद अपना सामान ले जाना पसंद नहीं करते थे 'कुली ! कुली !' चिल्ला रहे थे, पर कुली कोई होता तो आता ।

जब वे स्टेशन से बाहर निकले तो दूर-दूर तक कहीं कोई तागा दिखाई न दिया । कोई मजदूर भी ऐसा नहीं था जो उनका सामान उस होटल तक पहुँचा देता जहाँ अकबरअली अमृतसर में हमेशा ठहरते थे । बड़ी अजीब बात थी ।

“होटल बहुत दूर नहीं है । अनवर, क्या तुम बिस्तर उठाकर होटल तक ले चल सकोगे ?” अकबरअली ने अपने बेटे से पूछा । बेटा भी अपने अम्बा को निराश करना नहीं चाहता था, इसलिए बड़े गर्व से बोला, “जी हाँ अम्बा ।”

और अपना सामान सिर पर लादकर बाप-बेटे बहुत-से दूसरे मुसाफिरो की तरह ही धूल से अटी सड़क पर चल पड़े । सूरज आसमान पर बहुत ऊँचा चढ़ चुका था लेकिन शहर में एक भी दुकान अभी तक नहीं खुली थी । कपड़े की दुकानें, मिठाई की दुकानें, दूध की दुकानें, खाने-पीने की दुकानें, शरबत की दुकानें—सब बंद थी । फिर भी बाजारों में सन्नाटा नहीं था । लोग छोटे-छोटे गिरोहों में दुकानों के पटरों पर बैठे बहुत जोश के साथ बातें कर रहे थे । सड़कों के नुक्कड़ों पर इससे भी बड़ी-बड़ी भीड़ें जमा थी और बहुत-से लोगों की भर्राई हुई आवाज़ें हवा में गूँज रही थी । पुलिसवाले लाठियाँ लिए हुए रोब के साथ चुपचाप गश्त लगा रहे थे ।

“ऐसा लगता है कि आज शहर में पूरी हड़ताल है,” अकबरअली ने दुकानों की कई कतारों के सामने से गुज़रने के बाद कहा । और थोड़ी ही देर में वही के एक आदमी ने, जो उनके साथ चल रहा था, उनके इस अनुमान की पुष्टि

कर दी। उसने बताया कि सरकार को यह बताने के लिए कि रौलट बिल के खिलाफ लोगों में कितना गुस्सा है छ अग्रेल को सारे देश में पूरी हड़ताल करने का फैसला किया गया है।

अनवर के लिए यह विचार बड़ा रोमांचकारी था—दिल्ली, अमृतसर, बम्बई और कलकत्ता में, पेशावर और मद्रास में हजारों दुकानें एकसाथ बंद हो जाएंगी, जिसका नतीजा यह होगा कि अंग्रेज अफसर सिगरेटें, गोश्त और सब्जी और दूध कुछ भी नहीं खरीद सकेंगे। इतने जबर्दस्त प्रदर्शन का असर न पड़े, यह नामुमकिन है और अपनी दुकानें बंद कर देने का सीधा-सादा तरीका अपनाकर वे सरकार को अपने बुरे कानूनों को रद्द कर देने पर मजबूर करने में कामयाब हो जाएंगे।

“अब्बा, क्या दिल्ली में हमारी दुकान भी बंद रहती है?” अनवर ने भारी बिस्तर से बोझ की वजह से हाफते हुए पूछा। हड़ताल के विचार से उसके मन में उत्साह की एक अजीब-सी लहर दौड़ गई थी।

“क्यों नहीं बेटा! रामेश्वर ने हमारी दुकान भी जरूर बंद कर दी होगी। जब सब लोग हड़ताल करने का फैसला करें तो हम सबको उसमें शामिल होना ही चाहिए। लेकिन...” और यह कहते-कहते अकबरअली का स्वर उदास हो गया, “मुझे तो ऐसा लगता है कि हड़ताल पर ही यह किस्सा खतम नहीं होगा। इससे भी ज्यादा गड़बड़ी होना लाजिमी है।”

जिस समय वे होटल में घुस रहे थे अनवर ने सड़क पर पुलिसवालों की एक टुकड़ी कदम मिलाकर जाते हुए देखी। उनके आगे-आगे एक अंग्रेज अफसर जा रहा था जिसकी पेट्टी से एक रिवाल्वर लटक रहा था।

सहसा अनवर के दिमाग में घुड़सवारों के उस दस्ते की तस्वीर घूम गई जिसे उसने ग्राड ट्रक रोड पर कतार बांधकर जाते देखा था—उसी सड़क पर जिसे पहले भी कई विजेताओं ने अपनी सेनाएं एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए इस्तेमाल किया था।

रतन से दोस्ती हो जाने की अनवर को बहुत खुशी थी। रतन का बाप जमादार अजीतसिंह पेशनयाफता फौजी था जो रामपाल ऐंड सन नामक ऊन



की दूकान में दरबान का काम करता था। अकबरअली को हिसाब-किताब के सिलसिले में रोज इस दूकान में आना पड़ता था और उन्होंने खुद ही अनवर से कहा था कि वह कुछ देर जमादार अजीतसिंह के बेटे के साथ खेल लिया करे। रतन था अनवर की ही उम्र का पर उससे ज्यादा तगड़ा और लंबा था और उसमें अनवर जैसा शर्मीलापन और सकोच भी नहीं था। वह बहुत ही हस-मुख और चंचल लड़का था और जब वह मुस्कराता था तो उसके मोती जैसे दात चमक उठते थे। उसने अनवर को बताया कि वह तैरना जानता है, पेड़ पर चढ़ लेता है और अपनी उम्र के किसी भी लड़के के साथ कुश्ती लड़ सकता है। जाहिर है कि दिल्ली के एक नाजूक लड़के के लिए ये सारी बातें बेहद बहादुरी का सबूत थीं। सभी सिखों की तरह रतन भी दाहिनी कलाई पर लोहे का एक कड़ा पहने था और उसके लंबे रेशमी बालों पर एक बसती रंग की पगड़ी बधी थी, पर उसके बालों की कुछ लटे पगड़ी के बाहर निकल आई थी, जिसकी वजह से उसके कासे की मूर्ति की तरह ठोस चेहरे पर एक आकर्षण पैदा हो गया था।

अनवर का बचपन बहुत अकेलेपन में बीता था। जब वह दूधपीता बच्चा था तभी उसकी मा का देहान्त हो गया था और उसकी विधवा फूफी-अम्मा ने ही उसे पाला था। उसकी फूफी उससे बहुत लाड करती थी। उसकी बड़ी बहन अजुम भी उससे बेहद प्यार करती थी, पर उसे अपनी गुड़िया से खेलना पसंद था जबकि अनवर बाहर जाकर भाग-दौड़ के खेल खेलने के लिए बेकरार रहता था। उसे बाहर जाकर पास-पड़ोस के लड़कों के साथ खेलने की इजाजत नहीं थी, क्योंकि उसके अम्मा को डर था कि कहीं वह भी उन बच्चों की तरह गाली बकना न सीख ले, और उसकी फूफी-अम्मा तो यहाँ तक डरती थी कि वह किसी दिन कहीं अपनी हड्डी-पसली न तुड़वा आए। इसलिए अनवर कबूट्र की तरह अपने खोल में सिकुड़ता गया और उसने कल्पना के खेल खेलना सीख लिया। जिन्दगी में रतन उसका पहला दोस्त था और जब दोनों साथ खेलते और बातें करते और हसते थे तो अनवर को ऐसा महसूस होता था कि रतन के प्रति उसकी भावनाएँ वही नहीं हैं जो अपने अम्मा, या अपनी फूफी या अपनी आपा अजुम की तरफ हैं। रतन के साथ उसके सम्बन्ध में एक अजीब रहस्य, एक अनोखेपन का पुट था जो दूसरे लोगों के साथ उसके सम्बन्धों में नहीं था।

वह जानता था कि किसी बात का उसके अब्बा या फूफी पर क्या असर होगा, पर वह यह नहीं बता सकता था कि उसकी किसी बात या हरकत का रतन पर क्या असर होगा—और इस कारण उनके पारस्परिक सम्बन्ध में अनवर के लिए एक अनोखा आकर्षण पैदा हो गया था। मिसाल के लिए जब उसने सकुचाते हुए अपना बड़ा-सा फूलदार रुमाल निकालकर रतन को दिया था उस समय उसे यह पता नहीं था कि उसका यह नया मित्र फौरन उसे अपनी पगड़ी पर बांध लेगा और भागा हुआ अपने बाप को दिखाने जाएगा और वापस आकर अनवर को एक छोटी-सी काली खिलौने की पिस्तौल देगा।

“बाबा मेरे लिए विलायत से लाए थे,” रतन ने जल्दी से कहा ताकि अनवर को यह उपहार अस्वीकार करने का मौका ही न मिले।

“तुम्हारे बाबा विलायत हो आए हैं ?” अनवर ने पूछा। उसे इस बात पर इतना आश्चर्य हुआ कि वह इस सुन्दर उपहार के लिए अपने मित्र को धन्यवाद देना भी भूल गया।

“हां,” रतन ने उत्तर दिया। अपने बाबा के बारे में बातें करते हुए वह खुशी से फूला न समाता था। “मेरे बाबा लडाई में विलायती फौज के साथ लड़े थे। पहले वे फ्रांस में थे फिर वहा से लंदन गए थे। वहा बादशाह जार्ज पञ्चम ने उनकी बहादुरी की तारीफ की थी। बाबा बहुत बहादुर हैं। सरकार ने उन्हें बहुत-से तमगे दिए हैं।”

अनवर ने जमादार अजीतसिंह की खाकी वर्दी पर ऊपरवाली जेब के पाम छोटे-छोटे रंगीन फीतो से लटकते हुए ये सोने और चादी के तमगे देखे थे। इन्हें देखकर उसके मन में बहुत कौतूहल पैदा हुआ था और उसे ऐसा लगा था कि उनके पीछे बहादुरी की कोई बहुत रोमांचकारी कहानी छिपी हुई है। पर वह इतना शर्मीला था कि उस समय डरावनी काली दाढ़ीवाले उस बूढ़े सिपाही में अपने लडाई के कारनामे सुनाने को नहीं कह सकता था। परन्तु अब उसने महसूस किया कि रतन के साथ उसकी दोस्ती की वजह से अब उसे यह फरमाइश करने का हक हो गया है।

“क्या तुम्हारे बाबा,” उसने भिभकते हुए पूछा, “मुझे बताएंगे कि उन्होंने विलायत में क्या-क्या देखा ? आज तक मैंने किसी ऐसे आदमी से बात नहीं की है जो विलायत हो आया हो और लडाई में लड़ चुका हो।”

“क्यों नहीं, जरूर बताएंगे। बाबा मेरे किसी भी दोस्त के लिए कुछ भी बड़ी खुशी से करेंगे।”

‘मेरा दोस्त !’ रतन ने उसे यही तो कहा था। मेरा दोस्त ! दो सीधे-सादे शब्द ! पर अनवर के कानों को कितने मधुर प्रतीत हुए। उसका जी चाहा कि उसके मन में रतन के प्रति स्नेह और प्रेम की जो भावना उमड़ी पड़ रही थी उसे वह किसी तरह व्यक्त कर दे—अब उसकी समझ में आ गया था कि इसी भावना को तो दोस्ती कहते हैं। उसका जी चाहा कि वह अपने दोस्त को गले लगा ले जैसे ईद के दिन लोग गले मिलते हैं, उसे प्यार कर ले जैसे फूफी-अम्मा उसे प्यार करती थी, कम से कम उसी तपाक से उससे हाथ तो मिला ही ले जिस तपाक से उसके अब्बा काका रामेश्वरदयाल से हाथ मिलाते थे। पर उसे तो अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के बजाय छिपाना सिखाया गया था और इसलिए वह बहुत उदास हो गया। उसे ऐसा लगा जैसे किसीने उससे उसका मुख छीन लिया हो और उसकी आंखें डबडबा आईं। पर अपने आसुओं को पीकर उसने फैसला किया कि वह और रतन जिन्दगी-भर वैसे ही गहरे मित्र रहेंगे जैसे कि उसके अब्बा और काका रामेश्वरदयाल थे। और न जाने क्यों यह फैसला करते ही उसकी उदासी दूर हो गई और उसे ऐसा लगा कि उसमें नई ताकत आ गई है, उसे ऐसा लगा कि अब वह अकेला नहीं रह गया है।

वहां पर एक नहीं बल्कि दो स्वर्णमंदिर थे। एक तो चट्टान की तरह अडिग था, पर दूसरा वाला कुछ हिलता था। पहले वाले के ऊपर से जब सफेद रुई जैसे बादल गुजरते थे तो ऐसा लगता था कि वह आकाश पर तैर रहा है और दूसरा पवित्र तालाब के गहरे नीले पानी के अंदर तैर रहा था। अनवर टकटकी बाधे स्वर्णमंदिर का प्रतिबिम्ब देख रहा था और इसलिए जमादार अजीतसिंह उसे उसके इतिहास और धार्मिक महत्त्व के बारे में जो कुछ बता रहे थे उसकी ओर से भी उसका ध्यान एक क्षण के लिए हट गया। परंतु इतना उसने अवश्य सुना कि मंदिर के कलश पर सोने का पत्र चढ़ा हुआ है जिसके लिए लाखों रुपये खर्च किए गए हैं। जमादार अजीतसिंह ने उसे यह भी बताया कि यह सिखों का सबसे पवित्र मंदिर है और देश के कोने-कोने से गरीब और अमीर

यात्री यहाँ माथा टेकने आते हैं और इस मुनहरे कलश की देखभाल के लिए पैसा दे जाते हैं।

अनवर को स्वर्णमंदिर में उतनी दिलचस्पी नहीं थी जितनी कि जमादार की वर्दी पर लगे हुए तमगो में। गौर से देखने पर अनवर को पता लगा कि उनमें से कुछ पर बादशाह का वैसा ही चित्र बना हुआ है जैसा कि रुपये पर या इकन्नी-दुअन्नी आदि पर बना होता है, कुछ पर एक औरत की शक्ल बनी हुई थी, जिसके एक हाथ में भाला था और दूसरे में ढाल। शायद यह किसी देवी की तस्वीर थी जिसकी कि अंग्रेज पूजा करते थे। हर तमगे पर अंग्रेजी में कुछ लिखा था जो अनवर पढ़ नहीं सकता था। अनवर का कौतूहल बढ़ता जा रहा था पर अपने शर्मीलेपन की वजह से वह कुछ कह न सकता था, इसलिए उसने याचना-भरी दृष्टि से रतन की तरफ देखा मानो कह रहा हो, “वह मैंने जिस बात के लिए कहा था उसका क्या हुआ?” रतन समझ गया।

उसने सीधे-सीधे कहा, “बाबा, अनवर आपसे लडाई के बारे में कुछ जानना चाहता है।”

“लडाई।” बूढ़े सिपाही ने कहा और कुछ इस तरह सकुचाते हुए खासा मानो उसे लडाई में अपने कारनामे बयान करते हुए शर्म आ रही हो। “लडाई के बारे में कोई सिपाही तुम्हें इसके अलावा क्या बता सकता है कि जिस तरह उससे लड़ने को कहा गया वह लडा और वाह गुरु की कृपा से दुश्मन की गोलियों का निशाना बनने से बच गया।”

पर रतन अपने मित्र को इस तरह निराश करने को तैयार नहीं था। उसने अनुरोध करते हुए कहा, “बाबा, अनवर को फास के बारे में और मोर्चे पर की उन खदको के बारे में और जर्मन की उन बड़ी-बड़ी तोपों के बारे में कुछ बताइए जो सौ मील तक गोले फेकती हैं।”

अनवर की आखें आश्चर्य के मारे फटी की फटी रह गईं। “जमादार साहब, क्या सचमुच ऐसी तोपें होती हैं?”

“हा बेटा, होती हैं, बल्कि इससे भी ज्यादा खौफनाक चीजें होती हैं।” अब वह अपने युद्ध के सस्मरण सुनाने को तैयार हो गया था। “लेकिन अगर मैं तुम्हें बताऊंगा तो शुरू से बताऊंगा।”

तीनों उस पवित्र तालाब के किनारे आराम से बैठ गए। रतन तो एक क्षण



के लिए भी शांत नहीं बैठ सकता था, उसने एक छोटी-सी ककरी पानी में फेंकी और दूसरा स्वर्णमन्दिर आख से ओझल हो गया।

अनवर अब जिस लड़ाई का वर्णन सुन रहा था वह एक नये किस्म की लड़ाई थी। ऐसा लगता था कि अब नौजवान शाहजादा सफेद घोड़े पर बैठकर लड़ने नहीं जाता था, अब तीरदाज तीर-कमान के कमाल नहीं दिखलाते थे, अब दुश्मन पर धावा बोलने के लिए हाथी और रथ इस्तेमाल नहीं किए जाते थे।

रतन अपने बाबा के इन बहादुरी के कारनामों की कहानी पहले भी कई बार सुन चुका था। इसलिए वह बीच में बोल उठा, “लेकिन बाबा बड़ी-बड़ी तोपों और हवाई जहाजों को तो आप छोड़ ही गए। उनके बारे में भी तो अनवर को बताइए।”

“हां, तो दुश्मन के पास बहुत-सी बड़ी-बड़ी तोपें थी जो उसने कहीं मोर्चों के पीछे लगा रखी थी। थोड़ी-थोड़ी देर बाद कोई गोला हमारे सिर के ऊपर से सनसनाता हुआ गुजरता था और जबर्दस्त धमाके के साथ हमारी खदको के पास आकर फट जाता था। जिस वक्त जर्मन पेरिस से सत्तर मील दूर थे उस वक्त उन्होंने एक ऐसी तोप लगा दी, जो सब तोपों की ‘नानी’ थी। यह तोप सत्तर मील दूर पेरिस के सबसे ऊँचे गिरजाघर की चोटी पर गोला फेंक सकती थी। और यह हवाई जहाज तो एक बहुत बड़ी-सी मनहूस चिड़िया होती है। सिर के ऊपर से उड़ते वक्त एक अड़ा छोड़ती है और यह अड़ा फटकर हजारों की जान ले लेता है। ऐसी चीजों के खिलाफ बहादुर से बहादुर आदमी भी कैसे लड़ सकता है। यह सब कुछ साइंस का करिश्मा है और साइंस जर्मनों के घर की लौड़ी है।”

अनवर के दिमाग में उम बड़े-से कबूतर की तस्वीर घूम गई जो उसने उड़ता हुआ देखा था और उसे याद आया कि उसके अब्बा ने भी उसे बताया था कि वह मौत और तबाही फैलाता है।

“फिर जमादार साहब, आपने जर्मन को हराया कैसे?” उसने हिम्मत करके पूछा।

वह बूढ़ा सिपाही जवाब देने से पहले कुछ देर रुका। “बेटा, ऐसा नहीं था कि हमारे पास कोई साज-सामान था ही नहीं। यह जरूर है कि हमारे पास दुश्मन के मुकाबले में कम हथियार थे। लेकिन जिस वजह से जर्मन की हार

हुई वह बिलकुल ही दूसरी चीज थी ।”

“वह क्या चीज थी ? क्या चीज थी वह ?” अनवर ने बड़ी उत्सुकता से पूछा ।

जमादार अजीतसिंह को इस सवाल का जवाब देने में कुछ सकोच हो रहा था, ऐसा लगता था कि वे अपने-आपको ऐसे सवाल के बारे में राय देने के लायक नहीं समझते थे । “मैं तो एक जाहिल सिपाही हूँ । मैं राजनीति-वाजनीति क्या जानूँ । लेकिन सुलह होने से कुछ दिन पहले मैंने खदक में एक गोरे से यह बात सुनी थी । यह गोरा टामी फौज में भरती होने से पहले किसी कालेज में पढाता था इसलिए वह ठीक ही कहता होगा । हा, तो वह कहता था कि जर्मन लोगो ने, खास तौर पर कारखानों के मजदूरों ने, अपने बादशाह कैसर के खिलाफ बगावत कर दी थी । उनका कहना था कि वे लड़ाई और ज्यादा नहीं चलाना चाहते थे, क्योंकि यह लड़ाई कैसर और उसके मंत्रियों ने अपना राज्य फैलाने के लिए चलाई थी । उन्होंने कैसर को गिरफ्तार कर लिया और खुद अपनी सरकार बना ली । हजारों जर्मन सिपाहियों ने हथियार डाल दिए । ‘हमें कैसर ने बेवकूफ बनाकर अंग्रेजों और फ्रांसवालों से लडवा दिया । हमारा उनसे क्या झगडा है ? अब कैसर नहीं रहा तो लड़ाई भी नहीं रहेगी ।’ ऐसा वे कहते थे । तो बेटा, लड़ाई तो जर्मन लोगो ने हमें जितवाई है ।”

लेकिन पूरे वर्णन में जमादार अजीतसिंह ने लड़ाई में अपने किसी कारनामे का उल्लेख नहीं किया था । उसने यह भी नहीं बताया था कि उसे वह सारे तमगों कैसे मिले थे ? लेकिन अब अनवर के दिल में उसकी बड़ी-सी काली दाढ़ी का भय नहीं रह गया था इसलिए उसे सीधे-सीधे यह सवाल पूछ लेने में कोई सकोच नहीं हुआ ।

“अरे, ये तमगों ।” जमादार अजीतसिंह ने कहा, “ये तो ऐसे ही हैं । मुझे इसलिए इनाम में दिए गए थे कि मैं सरकार का वफादार था और जो कुछ मुझे हुक्म दिया गया उसे मैंने पूरा किया ।”

“और,” रतन ने बात जोड़ते हुए कहा, “इसलिए भी तो कि आपने अपनी जान जोखिम में डालकर एक अंग्रेज अफसर की जान बचाई थी ।”

“हा,” जमादार अजीतसिंह ने स्वीकृति में सिर हिलाते हुए कहा । “एक बार रात को हमने हमला किया जिसमें कर्नल स्मिथ साहब घायल हो गए और



जब हम लोग पीछे हट रहे थे तो वे हमारे और दुश्मन के मोर्चे के बीच बेहोश होकर गिर पड़े। वे हमारे अफसर थे और हमारे साथ उनका सलूक हमेशा बहुत अच्छा रहा था। उनकी जान बचाने की कोशिश करना हमारा फर्ज था। इसलिए मैं रात के अंधेरे में अपनी खदक के बाहर रेंगकर गया और उनको अपने साथ ले आया।”

“लेकिन क्या जर्मनवालों ने आपपर गोली नहीं चलाई?”

“हा, हा, चलाई क्यों नहीं। किसी जर्मन निशानेबाज़ की गोली आकर मेरी टांग में लगी।” और यह कहकर जमादार अजीतसिंह ने बाया पायचा उठाकर अपनी पिंडली पर रुपये के बराबर घाव का निशान दिखाया। घाव बहुत दिन हुए भर चुका था पर उसके विचार से ही अनवर को मतली-सी होने लगी।

दिन बहुत ढल चुका था। मंदिर के विशाल आगन में मंदिर का साया लम्बा होता जा रहा था। अजीतसिंह ने सोचा कि अकबरअली अपने बेटे का इन्तजार कर रहे होंगे। इसलिए तीनों होटल की तरफ लौट चले। अनवर ने तो आज छुट्टी का पूरा मजा लूटा था। लौटते समय इस बात की ओर अनवर का ध्यान ही नहीं गया कि लोग जल्दी-जल्दी अपने घरों को जा रहे हैं, उसके चारों ओर लोग दबी जबान में कुछ खुसुर-पुसुर कर रहे हैं और हर नुक्कड़ पर पुलिसवाले तैनात हैं।

अकबरअली बहुत चिन्तित होकर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। यह उनके लिए एक असाधारण बात थी, क्योंकि वे कभी अकारण चिन्तित या परेशान नहीं होते थे। लेकिन शहर में बड़ी गड़बड़ हो गई थी। चार दिन पहले जो हड़ताल हुई थी उसके सिलसिले में जनता के दो नेता, किचलू और सत्यपाल, गिरफ्तार कर लिए गए थे। यह खबर पाकर विरोध प्रकट करने के लिए एक जन-समूह ने डिप्टी कमिश्नर की कोठी पर जुलूस ले जाने की कोशिश की थी। पर इन लोगों को हाल गेट पुल के पास ही रोक दिया गया था और पुलिस ने उनपर गोली चलाई थी। बहुत-से लोग घायल हुए थे और कुछ लोग मारे भी गए थे।

अजीतसिंह और रतन जल्दी-जल्दी अपने घर की ओर चल दिए और अनवर कुछ बीखलाया हुआ-सा चारपाई पर बैठ गया। अकबरअली उस अंधेरे कमरे में टहल रहे थे। दूर से लोगो के चिल्लाने की धुधली-सी प्रतिध्वनि सुनाई दे रही थी, उसके बाद भागते हुए लोगो के कदमों की आवाज सुनाई दी और फिर उनके पीछे भागते हुए पुलिसवालों के भारी बूटों की आवाज। लोगो का शोर बढ़ता जा रहा था कि इतने में घोड़ों की टापों की आवाज सुनाई दी। फिर एकाएक सन्नाटा छा गया, पर यह खामोशी अनवर को और भी भयानक लग रही थी और उसके लिए असह्य हो उठी थी। जब उसके अब्बा ने मेज पर रखा हुआ लैम्प जलाने के लिए माचिस सुलगाई तो अनवर चौककर चारपाई पर से गिरते-गिरते बचा।

इतने में होटल का एक नौकर हापता हुआ और घबराया हुआ कमरे में आया। उसने बताया कि शहर में गडबडी फैलती जा रही थी। हाल गेट पुल पर पुलिस ने जो गोली चलाई थी उसपर क्रुद्ध होकर लोगो ने कई इमारतों को आग लगा दी थी और बहुत-से अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया था।

जब नौकर वहां से चला गया तो अकबरअली ने फिर कमरे में टहलना शुरू कर दिया। परिस्थिति ने जो उग्र रूप धारण कर लिया था उसका अनवर के दिल पर इतना गहरा असर पड़ा था कि वह बिल्कुल चुप बैठा रहा। स्वर्ण-मंदिर के जिस मनोरम वातावरण में उसने सारा दिन बिताया था—सरोवर का वह शांत जल, सहृदय जमादार अजीतसिंह का प्यार-भरा बरताव, और रतन की दोस्ती—वह दुनिया सहसा चकनाचूर हो गई थी। खिडकी में से हवा का एक झोंका अंदर आया और उसके साथ ही कई बंदूकों एकसाथ चलने की आवाज और फिर रुककर मशीनगन चलने की तड़तड़ाहट।

१३ अप्रैल, १९१६। अनवर इस तारीख को कभी नहीं भूल सकता था।

उस दिन आकाश और दिनों से अधिक स्वच्छ और सूर्य का प्रकाश और दिनों से ज्यादा तेज था। अनवर को जो दो दिन होटल में बंद रहकर बिताने पड़े थे, वे सुदूर अतीत की एक भूली हुई घटना मालूम हो रहे थे। खिडकी की चौखट पर एक पूरा गौरैया-परिवार खुशी से चहक रहा था और हाथ-मुंह धोते

समय तथा कपड़े बदलते समय अनवर बराबर यही उम्मीद कर रहा था कि आज रतन से उसकी मुलाकात जरूर होगी। वह अपने दोस्त से कई दिन से नहीं मिला था और उसे ऐसा लग रहा था कि उससे बिछड़े हुए न जाने कितने युग बीत गए हैं।

अकबरअली ने अखबार अलग रखते हुए बताया कि शहर की हालत बहुत सुधर गई थी और कोई नया दगा-फसाद नहीं हुआ था। उन्होंने उठकर अपनी शेरवानी पहनी और ऊन के व्यापारियों से हिसाब-किताब करने के लिए बाजार जाने की तैयारी करने लगे, क्योंकि यह काम दो दिन से टल रहा था। चलने से पहले उन्होंने अपने बेटे से कहा, “अगर कोई गडबड न हुई तो हम लोग कल वापस लौट सकते हैं।”

अनवर अकेला रह गया। उसका साथ देने को वहां केवल उसके विचार थे। उसने सड़क के पत्थरों पर सहसा भारी बूटों की आवाज सुनी और भागकर छज्जे पर देखने पहुंच गया। एक फौजी टुकड़ी शहर के गश्त पर जा रही थी। आगे-आगे सिख घुड़सवार थे, उनके पीछे एक मोटर में कुछ लाल मुहवाले अग्रेज अफसर थे। इन अग्रेज अफसरों के पास पिस्तौलें थीं और ऐसा लगता था कि वे किसी भी क्षण इन्हें चला देंगे। सबसे पीछे गुरखों की एक टुकड़ी थी, जिनके सिरों पर एक तरफ को बेहद झुके हुए टोप लगे हुए थे और पेटियों से खुखरिया बधी हुई थी। होटल का नौकर बगलवाले कमरे में भाड़ लगा रहा था। उसने अचानक इस फौजी टुकड़ी को देखकर, जो अब दूसरी सड़क पर मुड़ रही थी, बड़े तिरस्कार के साथ जमीन पर थूका और बोला, “सुअर के बच्चे हमें डराना चाहते हैं।”

अनवर अपने कमरे में जाकर आरामकुर्सी पर लेट गया और गौरैया-परिवार की हरकतें देखने लगा। मा अपने बच्चों को दाना खिला रही थी और उन्हें उड़ना सिखा रही थी।

किसीने दरवाजा खटखटाया और रतन ने अदर प्रवेश किया। “रतन ! मेरे यार”—अनवर मारे खुशी के फूला न समा रहा था। शुरू-शुरू में तो दोनों कुछ सकोच में पड़े रहे पर शीघ्र ही दोनों जी खोलकर बातें करने लगे और हसने लगे और दिन-भर के लिए योजनाएं बनाने लगे। रतन ने अनवर को बताया कि आज बैसाखी का त्योहार है और शहर में बहुत बड़ा मेला लगेगा। नये वर्ष का त्योहार

बैसाखी बड़ी धूम-धाम से मनाया जा रहा था। आसपास के गावों से आए हुए किसानों की भीड़ सड़को पर घूम रही थी। अनवर ने सोचा इस भीड़ के साथ घूमने-फिरने में बड़ा मजा रहेगा। अनवर ने अपने अब्बा से शहर जाने की इजाजत नहीं ली थी पर उसके अब्बा ने उसे होटल से बाहर निकलने के लिए मना भी तो नहीं किया था। और फिर वे लोग तो अब्बा के वापस लौटने से बहुत पहले ही घंटे-दो घंटे में बाजार घूमकर लौट आएंगे। वातावरण में एक विचित्र उत्तेजना थी, उसके मन में किसी अज्ञात अनुभव की खोज में जाने की एक अस्पष्ट-सी भावना थी और उसे सबसे बड़ा सहारा यह था कि रतन उसके साथ था। अनवर अपने दोस्त के साथ निकल पड़ा। उसका दिल हमेशा से ज्यादा तेज़ी से धड़क रहा था।

सड़को पर लम्बे-चौड़े डीलडौलवाले काले रंग के किसानों की भीड़ थी। उनके सिर पर बड़ी-बड़ी पगडियां, तन पर खदर के कपड़े तथा पैरों में नोकदार जूते थे जिनपर गर्द की एक तह जमी हुई थी। अनवर ने सोचा यह उसी बड़ी सड़क की गर्द होगी। दोनों लड़के बाजारों में निरुद्देश्य घूमते रहे, कभी किसी दूकान के आगे रुककर उसमें सजी हुई चीजे देखने लगते और फिर भीड़ के साथ आगे बंध जाते। उन्हें न दिशा का कोई ध्यान रहा न समय का।

एक सड़क के नुक्कड़ पर अनवर की ही उम्र के एक लड़के के चारों ओर एक भीड़ जमा हो गई थी। वह लड़का फटे-पुराने कपड़े पहने था और एक दूकान के तख्ते पर खड़ा होकर टीन का पीपा बजाकर डुग्गी पीट रहा था। अनवर ने सोचा यह तो सचमुच कोई मजेदार बात होगी।

डुग्गी पीटनेवाले लड़के ने काफी बड़ी भीड़ जमा करने के बाद ऊंची आवाज में कहना शुरू किया, “भाइयो, आज शाम को चार बजे जलियावाला बाग में लाला हरदयाल की सदारत में एक आम जलसा होगा। आप सब लोग हजारों की तादाद में शरीक होकर जलसे को कामयाब बनाइए।” फिर उसने टीन को कई बार लकड़ी से पीटा और दूकान के पटरे पर से नीचे कूदकर दूसरी जगह डुग्गी पीटने चला गया।

अनवर कभी किसी ‘आम जलसे’ में नहीं गया था और उसे यह जानने की उत्सुकता थी कि आखिर यह ‘आम जलसा’ कैसा होता है। रतन को ज्यादा आज़ादी मिली हुई थी इसलिए वह इस तरह की कई मीटिंगें देख चुका था।



उसने अनवर को बताया कि इन मीटिंगों में बहुत मजा आता है और किसी भी हालत में इनमें जाने से नहीं चूकना चाहिए।

“तो फिर चलो, इसमें चलेगे,” अनवर ने बड़े उत्साह से कहा। “उस लड़के ने क्या बताया था कि मीटिंग कहा होगी ? किस बाग में ?”

“जलियावाला बाग में,” अमृतसरवासी रतन ने उत्तर दिया।

जब वे बाग में घुसे तो अनवर को कुछ निराशा हुई। उसने कल्पना की थी कि यह बाग भी दिल्ली के बागों और पार्कों की तरह होगा—हरी-हरी मखमली घास, छायादार वृक्ष, फूलों की क्यारिया और फव्वारे। लेकिन यह बाग तो दूर तक फैला हुआ एक बजर इलाका था, जिसके बीच में एक सफेद मकबरे के खड-हर थे, एक कोने में तीन-चार पेड़ थे और उनके पास ही एक बिल्कुल अकेला ताड़ का पेड़ खड़ा था जिसकी कमर बुढ़ापे की वजह से झुक गई थी। सारा इलाका चारों ओर के मकानों से बिल्कुल घिरा हुआ था, बस उसमें घुसने के लिए एक ही फाटक था। लेकिन इमारतों के बीच में जहाँ कहीं जगह छूटी हुई थी उसमें से होकर इक्का-दुक्का लोग मैदान में आकर जमा होने लगे थे।

दोनों लड़के अप्रैल की तेज धूप से बचाव की कोई जगह ढूँढ़ रहे थे पर कोई जगह दिखाई ही नहीं दे रही थी। देखते-देखते मैदान भरने लगा। फाटक के पास लकड़ी का एक मंच बनाया गया था जिसपर खड़े होकर लोग भाषण देने-वाले थे। रतन भीड़ के बीच से रास्ता बनाता हुआ मंच के जितना पास हो सकता था पहुँच गया। उसने कहा, “अगर हम मंच के पास नहीं बैठेंगे तो हमें कुछ भी सुनाई नहीं देगा। सबकी तरह वे भी ज़मीन पर बैठ गए और एक-दूसरे की समीपता का सुख अनुभव करने लगे। शीघ्र ही चारों ओर लोगों की भीड़ जमा हो गई और उनकी संख्या लगातार बढ़ती ही जा रही थी।

अनवर के अब्बा ने उसे एक घड़ी दी थी। उसने घड़ी देखी कि अभी उसे कितनी देर और इंतजार करना पड़ेगा। घड़ी में साढ़े चार बजे थे। रतन ने अनवर को कुहनी से टेलते हुए कहा, “देखो, देखो, मीटिंग शुरू हो रही है।”

मंच पर एक वक्ता के आते ही श्वाभोशी छा गई। लोगों ने बातें करना बंद कर दिया। वक्ता ने कहा कि जनता के प्रिय नेता डा० किचलू सभापति का

पद ग्रहण करेंगे। उसने कहा, “हां, मैं जानता हूँ कि सरकार ने उनको नजर-बंद कर रखा है पर वे अभी तक हमारे दिलों में मौजूद हैं।” यह कहकर उसने कुर्सी पर डा० किचलू की एक तस्वीर रख दी। डा० किचलू बहुत खूबसूरत आदमी थे और उनके एक छोटी-सी काली दाढ़ी थी। चारों ओर से तुमुल करतल-ध्वनि गूँज उठी और तालियों की इस तूफानी आवाज को चीरता हुआ एक जोरदार नारा इस तरह गूँज उठा जैसे समुद्र में ज्वार की बड़ी लहर असंख्य छोटी-छोटी लहरों को रौंदकर आगे बढ़ जाती है—‘इन्कलाब जिन्दाबाद !’ अनवर ‘इन्कलाब’ लफ्ज का पूरा मनलब भी नहीं समझता था, वह बस मोटे-तौर पर यह जानता था कि जब कोई बुनियादी उथल-पुथल होती है तो उसे इन्कलाब कहते हैं। पर न जाने क्यों इस नारे से उसके सारे शरीर में उत्तेजना की चिंगारियाँ प्रज्वलित हो उठी, उसे ऐसा लगा जैसे कोई उसका एक-एक रोगटा नोचे ले रहा हो। उसका चेहरा तमतमा उठा और उसका सर उसी तरह चकराने लगा जैसे एक बार लू लग जाने पर हुआ था। उसने रतन की तरफ देखा और उसे ऐसा लगा कि उसके मित्र की भावनाओं पर भी ऐसा ही प्रभाव हुआ था। उसकी मुट्ठियाँ भिँची हुई थी, वह दाँत पीस रहा था और उसकी पीली पगड़ी में से पसीना बहकर बाहर आ रहा था। वास्तव में पूरे जन-समुदाय ने उत्तेजित स्वर में इस नारे को दुहराया, इन्कलाब जिन्दाबाद ! इन्कलाब जिन्दाबाद ! इन्कलाब जिन्दाबाद ! बीस हजार कंठों के गगनभेदी स्वर से वायुमंडल गूँज उठा, और फिर वह चारों ओर की दीवारों से टकराकर प्रतिध्वनित हो उठा। यह स्वर क्रमशः ऊँचा होता गया और फिर सहसा शांत हो गया क्योंकि लोग दम लेने को रुक गए थे और फिर एक बार यही क्रम आरम्भ हो गया। इन्कलाब जिन्दाबाद ! इन्कलाब जिन्दाबाद ! केवल इन दो शब्दों के उच्चारण से एक स्फूर्ति पैदा हो जाती थी। अनवर के लिए यह बिल्कुल वैसा ही अनुभव था जैसे पानीपत की कव्वाली। अन्तर केवल यह था कि यह बिल्कुल ही दूसरे किस्म की कव्वाली थी। और इससे मन में भावनाओं का जो तूफान उठता था उसमें दरगाहवाली आध्यात्मिक पुट नहीं बल्कि रण-क्षेत्रवाला उन्माद होता था—बिल्कुल उन रात्रिकालीन आक्रमणवाला उन्माद जिनका वर्णन रतन के बाबा ने किया था।

अन्त में जब नारेबाजी खत्म हुई तो भाषणों का मिलसिला आरम्भ

हुआ और अनवर के लिए लहर का यह उतार बहुत ही निराशाजनक साबित हुआ। इन भाषणों में हिन्दू-मुस्लिम एकता की अपील की गई, १० तारीख के गोलीकांड के शहीदों के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई और सरकार से नेताओं को रिहा कर देने तथा रौलट ऐक्ट को रद्द कर देने की प्रार्थना की गई। किसी-ने बहुत ही मातमी आवाज में एक कविता पढ़ी जिसमें इस बात पर खेद प्रकट किया गया था कि जनता की फरियाद पर ध्यान नहीं दिया जा रहा था और बीच-बीच में लोग 'हिन्दू-मुसलमान की जय' का नारा लगा देते थे। परन्तु इन सब में उस 'इन्कलाब' के बारे में एक शब्द भी नहीं था जिसके बारे में वे अभी कुछ देर पहले गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहे थे। अनवर को ये सारी बातें बहुत नीरस प्रतीत हुईं और उसे लगा कि ये लोग बात को बहुत धुमा-फिराकर कह रहे हैं। वह परिस्थिति की बारीकियों को पूरी तरह नहीं समझता था। उसकी समझ में तो बस इतना ही आया था कि सरकार ने जनता के साथ बुरा सलूक किया था और लोगों में इस बात पर बड़ा गम और गुस्सा था। 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारों से जो उत्साह पैदा हुआ था वह अब ठंडा पड़ता जा रहा था और जन-समुदाय पर एक शैथिल्य छाता जा रहा था। पार्क के एक सिरे पर कुछ लोगों ने ताश खेलना शुरू कर दिया था, बच्चे इधर-उधर भाग-दौड़ रहे थे और बीच-बीच में कहीं से किसी बच्चे के रोने की आवाज भी आ जाती थी। अनवर घर वापस जाना चाहता था और उसे सहसा जमादार अजीतसिंह को आता देखकर बहुत धीरज बचा। जमादार साहब को रतन को वहां देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

“अरे रतन, यह तेरा क्या तरीका है? मैं मुझे बगैर बताए घर से चला आया और अकबर साहब के बेटे को भी अपने साथ लेता आया। उसके अब्बा उसके लिए बेहद परेशान हो रहे हैं। चलो, दोनों अब चलो यहाँ से।”

अनवर जब जमादार साहब के साथ चलने के लिए उठा तो वह यह सोच-सोचकर डर रहा था कि वह अपने अब्बा को क्या बताएगा कि वह कहाँ चला गया था। लेकिन इतने में आकाश पर गड़गड़ाहट सुनाई दी और सब लोग सिर ऊपर उठाकर हवाई जहाज को देखने लगे। एक शिकारी चिड़िया की तरह हवाई जहाज उनकी तरफ भपटता चला आ रहा था। वह लगातार नीचा होता जा रहा था और ऐसा लगता था कि वह उनके बीच में ही गिर पड़ेगा। मर्द

घबराकर उसे देख रहे थे, औरते चिल्ला रही थी और बच्चे भय के मारे चीख रहे थे। लेकिन सहसा हवाई जहाज फिर ऊंचा उठना शुरू हुआ और थोड़ी देर में वह दूर पर केवल एक धब्बे की तरह दिखाई देने लगा। वक्ता ने अपना भाषण फिर शुरू किया। जो लोग घबराहट के मारे उठ खड़े हुए थे वे फिर बैठ गए और अनवर और रतन जमादार साहब के पीछे चल दिए। जमादार अजीतसिंह अपनी फौजी वर्दी और तमगो का रोब डालता हुआ भीड़ को चीरकर आगे बढ़ता रहा पर एक बार फिर उन्हें रुक जाना पड़ा। किसीने चेतावनी दी और शीघ्र ही इस चेतावनी के गब्द पूरी भीड़ में प्रतिध्वनित होने लगे—  
“वे आ गए, वे आ गए।”

अनवर ने अपनी घड़ी देखी। साढ़े पांच बजे थे। फिर उसने फाटक की तरफ नज़र दौड़ाई और जो कुछ उसने देखा उसे देखकर उसका खून जम गया।

तीस या चालीस अंग्रेज और गुरखा सिपाहियों की एक टुकड़ी आकर बाग के फाटक के सामने तैनात हो गई थी। उनके सबके पास रायफले थी, कुछ गोरे अफसरों के पास रिवाल्वर भी थे। उनमें वह लालमुहा अफसर भी था जिसे अनवर ने अक्सर मोटर पर फौजी सिपाहियों के साथ गश्त लगाते देखा था।

इसके बाद पलक मारते में जो घटनाएँ हुईं वे अनवर की समझ से बाहर थी पर वे अनवर के स्मृतिपट पर वर्षों तक अकित रही। अनवर मूर्तिवत् एक जगह पर खड़ा था और सारी घटनाएँ एक स्वप्न की तरह उसकी आँखों के सामने से गुज़र रही थी। उसे इतना गहरा आघात पहुँचा था कि उसे डर भी नहीं लग रहा था; वह यह सोच भी नहीं पा रहा था कि उसके चारों ओर जो भयानक घटनाएँ हो रही थी उनका महत्त्व क्या है। लालमुहा अफसर ने गोरखों से चिल्लाकर कुछ कहा और उन्होंने अपनी बंदूकें तान ली और भीड़ की तरफ निशाना लगाकर खड़े हो गए। इतने में उसी अफसर ने कर्कश स्वर में आज्ञा दी “फायर।” और गोरखों ने फौरन आज्ञा का पालन किया। परन्तु अनवर ने देखा कि गोली चलाने से पहले उन्होंने अपनी बंदूकों का मुह कुछ



ऊपर को उठा लिया था। सहसा गोलियों की मनहूस खनक से निस्तब्धता कांच की दीवार की तरह भग हो गई। पेड़ों पर से कबूतरों और कौओं का एक झुंड शोर करता हुआ उड़ गया। चारों ओर भगदड़ मच गई। लोग उठ-उठकर भागने लगे। औरतो ने अपने बच्चों को इस तरह सीने से लगा लिया जैसे बाज़ के झपटने पर मुर्गी अपने बच्चों को परो के नीचे छुपा लेती है। पर कोई गोली से घायल नहीं हुआ। बल्कि भीड़ में से किसीने चिल्लाकर कहा भी, “डरो नहीं। वे खाली कारतूस चला रहे हैं।” कुछ लोग भागते-भागते रुक गए और कुछ पलटकर सिपाहियों का सामना करने के लिए खड़े हो गए। वह लालमुहा अंग्रेज गुस्से से पागल हो रहा था। वह अपना रिवाल्वर हिला-हिलाकर गोरखों से टूटी-फूटी हिंदुस्तानी में कह रहा था, “टुम शाला, शुअर का बच्चा लोग इतना ऊंचा मे गोली क्यों चलाता है। नीचा मे गोली चलाओ नई टो हम टुमको गोली मार देगा।” सारे गोरे अफसरों ने अपने-अपने रिवाल्वर निकाल लिए और गोरखों की तरफ निशाना लगाकर खड़े हो गए। लालमुहे अफसर ने आज्ञा दी “फायर।” और गोरखों ने गोली चला दी। इस बार उनकी रायफलों की नालिया सीधी भीड़ की तरफ थी। “लेट जाओ।” जमादार अजीतसिंह ने भी बिलकुल फौजी ढंग से आज्ञा दी और दोनों लड़के तुरत जमीन पर लेट गए। जरा-सी भी देर हो जाती तो वे बच न सकते, क्योंकि वे जमीन पर लेटे ही थे कि उनके ऊपर से गोलिया सनसनाती हुई गुजर गईं।

अनवर जमीन पर औंधा लेटा-लेटा यह खूनी नाटक देख रहा था। उसके लिए यह अत्यंत भयावह अनुभव था। रायफले कुत्तों की तरह भूक रही थी, गोलियों की बौछार एक क्षण के लिए भी नहीं रुकी थी, मर्द और औरते और बच्चे चारों ओर गोलियों का शिकार होकर गिर रहे थे, हर तरफ लोगों की चीख-पुकार और कराह सुनाई दे रही थी। बाग से बाहर निकलने के सकरे रास्तों की तरफ भागते हुए लोगों को अपने जूतों और पगड़ियों का भी होश नहीं रहा था, कुछ लोगों की तो धोतिया तक पीछे रह गई थी। जो लोग जमीन पर लेटे हुए थे उन्हें अपने पैरों तले रौंदते हुए भागनेवाले आगे बढ़े जा रहे थे। एक बार तो अनवर की टांग पर भी किसीका भारी-सा बूट पड़ा और उसकी हड्डी टूटते-टूटते बची। जो लोग बाहर निकलने के रास्तों तक पहुंच भी गए उनकी भी खरिबूत नहीं थी। उस लालमुहे अफसर ने रायफलों के मुह उनकी

तरफ करवा दिए और बाहर निकलने में पहले ही उन्हें गोलियों से भून दिया गया ।

उनके चारों ओर मरे हुए, दम तोड़ते हुए और घायल लोग पड़े थे और गोलियों की तड़तड़ाहट के बीच उनका करुण चीत्कार और 'या अल्लाह !' और 'हे भगवान !' और 'अरे मेरी मा !' की आवाजे सुनाई दे जाती थी । उनके पास ही कोई आदमी बहुत जोर से कराह रहा था । अनवर ने ज़रा-सा सिर उठाकर देखा तो वह होटल का नौकर नदू निकला । उसे देखने में साफ पता चलता था कि गोली उसके पेट में लगी थी, क्योंकि जब भी दर्द की लहर उठती थी वह अपना पेट पकड़ लेता था । एक बार उसने बड़ी कोशिश करके अपना सिर ज़रा-सा घुमाया और दोनों हाथों से पेट पकड़कर जोर से थूका—खून ।

नदू के मुह से गाढ़ा-गाढ़ा कथई रंग का खून निकलते देखकर अनवर को मतली होने लगी । नदू निढाल होकर फिर पहले की तरह लेट गया था और खून की एक पतली-सी धार उसके मुह के कोने से धीरे-धीरे बह रही थी । यों तो हर तरफ लाशें और घायल शरीर पड़े हुए थे, परंतु यह तो एक ऐसा आदमी था जिसे अनवर जानता था, जिसके साथ वह बातें कर चुका था और हस चुका था । नदू एक नौजवान आदमी था और अभी कल ही तो उसने अनवर को बताया था कि हाल ही में उसकी शादी हुई है । एक क्षण के लिए सारे जन-समुदाय की व्यथा नदू की उस पीड़ा में सिमट आई ।

अनवर के लिए अपने-आपको और ज्यादा देर वश में रखना असंभव हो गया था । अनजाने ही वह कुहनी के बल कुछ ऊपर की ओर उठा और थोड़ी ही दूर पर तड़पते हुए नदू की तरफ सकेत करके ऊँचे स्वर में बोला, "जमादार साहब, जमादार साहब, इसके लिए हम कुछ नहीं कर सकते क्या ?"

"सिर नीचे करो," जमादार अजीतसिंह ने कड़ककर हुक्म दिया और अनवर ने खट से अपना सिर नीचे कर लिया । वह बाल-बाल बच गया क्योंकि उसी वक्त एक गोली सनसनाती हुई उसके पास से निकल गई । यह आभास होते ही कि वह मौत के मुह से किस तरह बाल-बाल बच गया था अनवर के सारे शरीर से ठंडे पसीने छूटने लगे ।

अजीतसिंह नदू को देख रहा था । "ज्यादा कुछ तो हम कर नहीं सकते

लेकिन कम से कम इसे पेट के बल औधा तो लिटा ही देना चाहिए ताकि खून बह जाए और यह शांति के साथ मर सके।” यह कहकर अजीतसिंह धीरे-धीरे रेगता हुआ नद्दू के पास पहुँच गया। अनवर और रतन दम साधे बड़ी चिंता के साथ उसे देखते रहे। नन्दू खून का बहाव रोकने की कोशिश में अपना पेट दोनों हाथों से दबाए था। जमादार अजीतसिंह ने धीरे से उसे पलट दिया और शीघ्र ही उसकी पीड़ा कम हो गई। अनवर अपना मुँह जमीन से सटाकर चुपचाप लेट गया। परन्तु उनके ऊपर गोलियाँ अब भी अपना भयावह मृत्यु-संगीत सुना रही थी। जब अजीतसिंह फिर रेगकर अपनी जगह पर वापस लौटा तो उसके चेहरे पर क्रोध का एक नया भाव था, उसकी आँखों में खून उतर आया था।

“क्या सरकार पागल हो गई है ? क्या सरकार पागल हो गई है ?” उसने कई बार दुहराया। और फिर इससे पहले कि रतन और अनवर उसे रोक पाते अजीतसिंह उठकर खड़ा हो गया और सीधा उन सिपाहियों की ओर बढ़ा जिनकी बन्दूकें मौत उगल रही थी।

“ओह, जर्नेल साहब,” उसने किसी भी चीज़ की परवाह न करते हुए जोर से कहा। हर तरफ चलती हुई गोलियों की मनहूस सनसनाहट को चीरता हुआ उसका कड़कदार स्वर गूँज उठा।

चारों ओर सनसनाती हुई गोलियों के बीच उसने एक बार फिर चिल्लाकर कहा “ओह, जर्नेल साहब, मैं लडाई में आपकी तरफ से लड़ चुका हूँ। मैंने एक अग्रेज अफसर की जान भी बचाई थी। अगर मेरी बात पर विश्वास नहीं है तो इन तमगों को देख लो। लेकिन यह तो लडाई नहीं। आप निहत्थे लोगों पर गोली नहीं चला सकते। अगर इसी तरह आप गोली चलाते रहे तब तो आप बीस हजार लोगो को भूनकर रख देंगे। हमने तो कभी निहत्थे जर्मनों पर भी गोली नहीं चलाई।”

जमादार अजीतसिंह को इस तरह आगे बढ़ता देखकर कुछ डर भी लगता था पर साथ ही गौरव का अनुभव भी होता था। अनवर मन्त्रमुग्ध होकर उसे देख रहा था। वह यह भी भूल चुका था कि उसकी जान खतरे में है। सारी भीड़ स्तब्ध होकर उसी दिशा में देख रही थी और एक क्षण के लिए ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो उस बूढ़े सिपाही ने बन्दूकधारी सिपाहियों पर जादू कर दिया हो, एक क्षण के लिए उनकी उगलियाँ बन्दूक की लबलबी पर जमी रह गईं।

जमादार अजीतसिंह उस लालमुहे अफसर से कुछ ही गज की दूरी पर रह गया था। वह लालमुहा अफसर हाथ में रिवाल्वर लिए निशाना साधे चबूतरे पर खड़ा था। “बोलो साहब, बोलो ! अपने सिपाहियों को गोली चलाना बन्द करने का हुक्म दो।” अजीतसिंह की आवाज में अब भी चुनौती थी पर उसकी कड़कदार आवाज कुछ लड़खड़ाने लगी थी। “जरनैल साहब, हम सब लोग सरकार के वफादार हैं। हममें से कोई भी बागी या गद्दार नहीं है। आप हम लोगों पर क्यों इस तरह गोली चला रहे हैं ? सरकार, हमारे ऊपर रहम करो। आप हमारे माई-बाप हैं।” उसकी आवाज में चुनौती की जो कड़क थी वह गायब होकर खुशामद के लड़खड़ाते हुए स्वर में बदल गई। यह कह चुकने के बाद अजीतसिंह का तीस बरस की आदत से सधा हुआ हाथ यन्त्रवत् ऊपर उठा और उसने एडिया खड़काकर उस गोरे अफसर को फौजी सलाम भाड़ा।

उसी क्षण एक गोली दगने की आवाज गूँज उठी और जमादार अजीतसिंह का शरीर सहसा निश्चल हो गया। उसका हाथ अभी तक माथे से लगा हुआ था मानो वह चिरकाल तक यो ही सलाम किए खड़ा रहेगा।

वह इस तरह खड़ा था मानो अब आगे कदम बढ़ानेवाला हो, पर सहसा वह वही ज़मीन पर ढेर हो गया। गोली चलना बन्द हो गई। लालमुहे अफसर ने अपने सिपाहियों को कुछ हुक्म दिया और सारे अफसर और सिपाही कदम मिलाए हुए फाटक से बाहर चले गए। जलियावाला बाग पर मौत का सा सन्नाटा छा गया, जो गोलियों की आवाज से भी ज्यादा भयावह था। अनवर और रतन पेट के बल रेगते हुए जमादार अजीतसिंह के पास पहुँच गए। गोली एक तमगे को चीरती हुई पार निकल गई थी। अजीतसिंह मर चुका था।

अनवर से जमादार अजीतसिंह के चेहरे की तरफ देखा न गया। उसके चारों ओर ज़मीन पर लाशें और घायलों के शरीर इस तरह पड़े थे जैसे गेहूँ की फसल काट दी गई हो। एक बच्चा अपनी माँ को जगाने की कोशिश कर रहा था, पर माँ चिरनिद्रा में सो रही थी। अनवर की ही उम्र का एक और लड़का निष्प्राण पड़ा था। हर तरफ खून ही खून दिखाई देता था। अनवर का सिर चकराने लगा। उसे मतली हो रही थी। लाख चाहने पर भी वह उलटी न कर सका। उसने अपना सिर ज़मीन पर टिका दिया और उसे ऐसा लगा कि आकाश



घूम रहा है, सितारे नाच रहे हैं, मृत्यु का ताड़व नृत्य कर रहे हैं। और खजूर का वह टेढ़ा पेड़ भी तो नाच रहा था। लेकिन बेहोश होने से पहले अनवर ने रतन के चेहरे की एक झलक देखी। रतन के चेहरे पर शोक या विषाद नहीं था बल्कि एक निरीहता थी। वह सिसकियों को रोकने के लिए अपने होंठ काट रहा था और उसकी आंखों में प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी।



## सारी दुनिया से ऊपर

समय हर घाव को अच्छा कर देता है और बचपन में तो शरीर और मन के घाव बहुत जल्दी भर जाते हैं। लेकिन अनवर के लिए अमृतसर की उस बीभत्स घटना को भूल जाना आसान नहीं था। उस पूरे कत्ले-आम से भी बढ़कर जमादार अजीतसिंह और नटू की मौत से उसके दिल पर बहुत गहरा घाव लगा था। उस घटना के आठ महीने बाद भी उन दोनों की सूरत अनवर को सपने में दिखाई देती थी। जब भी वह अपने दोस्त रतन के बारे में सोचता उसे उसकी आखों में वही प्रतिशोध की ज्वाला धधकती हुई दिखाई देती। और वह उस अविस्मरणीय अपमानजनक घटना को भी नहीं भूला था जिसकी चर्चा उसने आज तक किसीसे नहीं की थी। अमृतसर से चलने से एक दिन पहले जबकि उसके अब्बा बाजार गए हुए थे, अनवर चुपके से होटल से निकलकर शहर के उस इलाके में गया था जहाँ रतन अपनी विधवा माँ के साथ रहता था। उस सकरी गली के नुक्कड़ पर कुछ गोरे सिपाही बटूको पर सगीने लगाए खड़े थे। एक बार तो अनवर के जी में आया कि वह उलटे पैर वापस आ जाए। पर वह उस दिन के कत्ले-आम के बाद से अपने दोस्त से मिला नहीं था और दूसरे दिन वह दिल्ली वापस जा रहा था। कौन जाने फिर कब मिलना हो। अनवर डरता-डरता सड़क के किनारे-किनारे सिपाहियों की तरफ बढ़ा। लेकिन उसने गली में कदम रखा ही था कि एक सिपाही ने उसकी गरदन पकड़कर नीचे ढकेल दिया और उसे गली के ऊबड़-खाबड़ और गंदे फर्श पर रेंगकर चलने पर मजबूर किया—बिल्कुल चूहे की तरह रेंगकर। बीच में एक बार वह अपनी दुखती हुई कमर सीधी करने के लिए रुककर ज़रा-सा ऊपर को उठा ही था कि किसीने भारी फौजी बूट से उसे एक ठोकर मारी। गुस्से और लाचारी से अनवर की आखों में आसू छलक आए। अनवर को अपनी ज़िंदगी में इतना बड़ा अपमान नहीं सहना पड़ा था, इतनी लाचारी भी उसने कभी महसूस नहीं

की थी। वह इतना बीखला गया कि उसने अपने अम्बा से भी इस घटना का जिक्र नहीं किया।

समय हर घाव को भर देता है और बचपन में असह्य ऐसी घटनाएं होती रहती हैं जो अतीत की दुःखद स्मृतियों को भुलाए रखने में सहायता देती हैं। अनवर को दिन-भर में फुरसत ही कहा मिलती थी। सुबह उठते ही मौलवी साहब से कुरान पढ़ता था और उसके बाद जल्दी से उलटा-सीधा कुछ खा-पीकर स्कूल भागता था। गर्मियां बहुत दिन हुए बीत चुकी थी और फिर बरसात आ गई थी और अब तो बरसात भी खत्म होकर सर्दिया शुरू हो चुकी थी। अनवर को सर्दियों का मौसम सबसे ज्यादा अच्छा लगता था। यह लिहाफ का मौसम होता था जो रात के समय अपनी गर्म गोद में छिपा लेता था, यह हिमालय पहाड़ की चोटी पर जमी हुई बर्फ की तरह, जिसके बारे में उसने अपनी भूगोल की किताब में पढ़ा था, गरम-गरम खिचड़ी के पहाड़ पर घी का डला रखकर खाने का मौसम था, यह रसदार गन्ने चूसने का मौसम था और यही बेर खाने का मौसम भी था जो खाने के काम भी आते थे और उनकी गुठलिया स्कूल की खाने की छुट्टी के समय खेलने के काम भी आती थी।

अपनी उम्र के बच्चों के बीच अनवर को स्कूल की जिन्दगी में बहुत मजा आता था, हालांकि स्वभावतः शर्मीला होने की वजह से उसके दोस्त बहुत नहीं थे। आजकल उसे अपने अम्बा के कमरे में बैठकर वहां की बातचीत सुनने का भी वक्त नहीं मिलता था। उसे यह नहीं मालूम था कि सरकार ने उस 'लाल-मुहे' अफसर को सजा देने से इंकार कर दिया था और देश में बड़ी राजनीतिक उथल-पुथल थी। स्कूल में मास्टर साहब ने लड़कों को यह बताया था कि अंग्रेज सरकार बहुत न्यायप्रिय और उदार सरकार है और बच्चों को स्कूल में 'ब्रिटिश राज के वरदानों' की एक लम्बी सूची याद कराई जाती थी—रेलें, सड़के, स्कूल, डाक-तार इत्यादि। अनवर के दिमाग में जलियावाला बाग का दृश्य इन सारी चीजों पर एक प्रश्नवाचक चिह्न की छाया डालता रहता था। न जाने क्यों उसे ऐसा लगता था कि जो सज्जन हर समय बेत फटकारते रहते थे और अक्सर लड़कों को सजा देने के लिए उसे इस्तेमाल भी करते थे, वे न उसकी

बात समझेंगे न उसके साथ सहानुभूति करेंगे ।

अनवर के चारों ओर की दुनिया में और भी बहुत-से परिवर्तन हो रहे थे । ऐसा लगता था कि उसके और उसकी बहिन के बीच अंतर बढ़ता जा रहा है, हालांकि वे अब भी एक-दूसरे को बेहद प्यार करते थे । वे दोनों स्कूल जाने लगे थे, लेकिन अब अजुम को मौलवी साहब से कुरान पढ़ने की इजाजत नहीं थी । फूफी-अम्मा ने उसकी कुरान की पढ़ाई छुड़ाने की वजह यह बताई थी कि “अजुम अब ग्यारह बरस की होने को आई, अब उसे परदा करना चाहिए ।” इसका मतलब यह था कि अब अजुम कभी-कभार के अलावा घर से बाहर नहीं निकल सकती थी और सो भी फूफी-अम्मा की तरह सिर से पैर तक बुर्का ओढ़कर । बुर्के के खयाल से ही अनवर का दम घुटने लगता था और उसकी समझ में नहीं आता था कि एक पूरी छोलदारी ओढ़कर औरतें आखिर सास कैसे ले पाती होंगी ।

एक दिन जब गुलाबो बैठी अजुम का बुर्का सिल रही थी और अजुम अपने पहले बुर्के की खुशी में इतरा रही थी, अनवर ने अपनी फूफी से पूछा, “फूफी-अम्मा, जब औरतें बाहर निकलती हैं तो उन्हें बुर्का क्यों पहनना पड़ता है ?”

पहले तो फूफी-अम्मा अनवर के इस दो टूक सवाल को सुनकर बहुत चकराई, फिर उन्होंने किसी तरह यह जवाब दिया, “बेटा, औरतों को परदा इसलिए करना पड़ता है कि हमारे इस्लाम में इसका हुक्म दिया गया है ।”

अनवर को भला इस उत्तर से कहा सतोष होता । उसने दूसरा सवाल पूछा, “लेकिन हमारे मजहब में सिर्फ औरतों के लिए ही क्यों परदा बताया गया है, मर्दों के लिए क्यों नहीं ?”

“इसलिए...इसलिए कि,” फूफी-अम्मा ने अटक-अटककर जवाब दिया, “सड़क पर चलनेवाले लोग बहुत बुरे होते हैं और वे औरतों को बुरी नीयत से घूरते हैं ।”

‘बुरी नीयत !’ यह अनवर के लिए एक नई पहेली थी, यह जिंदगी का कोई ऐसा राज था जिसके बारे में वह कुछ भी नहीं जानता था । उसने चावडी बाजार में मर्दों को उन ‘दूसरी औरतों’ को घूरते देखा था । क्या वे बुरी नीयत से उन्हें घूरते थे ? उनकी बुरी नीयत क्या होती थी ? शायद किसी औरत के



गहने छीन लेने को बुरी नीयत कहते हो ।

उसने बड़ी मासूमियत से पूछा, “फूफी-अम्मा, अगर आप बगैर बुर्का ओढ़े बाहर निकले तो क्या लोग आपको भी बुरी नीयत से देखेंगे ?” और वह समझ न सका कि उसका यह सवाल सुनते ही फूफी-अम्मा के झुर्रीदार चेहरे पर लाली क्यों दौड़ गई और उनकी आवाज रुंध क्यों गई ।

लेकिन अजुम शायद परदे में रहने के खयाल से खुश थी । अपने बुर्के को देखते ही वह नाच उठती थी और यह महसूस करने लगती थी कि वह अब बड़ी हो गई है और उसका भी कुछ महत्व हो गया है । यह बात अनवर की समझ के बाहर थी और उसे ऐसा लगता था कि शायद अजुम फूफी-अम्मा को दिखाने के लिए ही यह सब करती है । लेकिन अजुम में एक दूसरा परिवर्तन भी आ रहा था ।

वह अपना बहुत काफी समय फूफी-अम्मा और गुलाबो से खाना पकाना और सीना-पिरोना सीखने में बिताने लगी थी । और अनवर के लिए सबसे बड़ी पहली तो यह थी कि अजुम अब पहले की तरह अपने भाई से लड़ती नहीं थी बल्कि बहुत शांत रहती थी और उसमें एकसाथ बुजुर्गी आ गई थी जो उसकी उम्र की लड़की को शोभा नहीं देती थी ।

स्कूल में अनवर का एक दोस्त था—गोपाल । गोपाल एक ठेकेदार का बेटा था । उसके बाप ने लडाई के जमाने में बहुत पैसा बनाया था और अजमेरी गेट के बाहर बहुत-सी बजर ज़मीन खरीद ली थी । सुना जाता था कि वहां लाट साहब के लिए बहुत बड़ी बस्ती बसाई जानेवाली थी । अनवर को गोपाल से ईर्ष्या होती थी । वह अंग्रेज़ी ढंग के कपड़े पहनता था, साहब लोगो की तरह बाल बढाता था, उसके पास एक फाउटेन पेन और एक सुनहरी घड़ी थी । लेकिन हर चीज से बढ़कर अनवर को गोपाल की साइकल से ईर्ष्या होती थी—वह काली चमकदार साइकल, चाक़ी की तरह चमकता हुआ उसका हैंडिल का डंडा और मस्त धुन में टिन-टिन करती हुई उसकी घटी । गोपाल रोज इसी साइकल पर चढ़कर स्कूल जाता था और शाम को जब स्कूल की छुट्टी होती थी तो न जाने कितने लड़के साइकल के कैरियर पर बैठने के लिए गोपाल की खुशामद

करते थे। अनवर अपनी ओर से कभी भी कैरियर पर बैठने के लिए गोपाल से न कहता लेकिन एक दिन गोपाल ने, जो पढाई में हमेशा पीछे रहता था, घर पर करने के लिए दिए गए कुछ सवाल हल करने में अनवर की मदद ली और इसके बदले में उसे साइकल पर बैठकर घर चलने का निमंत्रण दिया।

“पहले कहा चले?” गोपाल ने घटी की धुन पर पैडिल मारते हुए पूछा। अनवर अपना पूरा जोर लगाकर कैरियर से चिपका हुआ था। ऐसा लगता था कि वह किसी समय भी गिर पड़ेगा। साइकल की घटी लगातार बज रही थी।

“चलो, स्टेशन चले,” अनवर ने सुभाव रखा। उसे याद था कि अमृतसर जाते हुए उसने स्टेशन पर कैसी-कैसी अनोखी और शानदार चीजें देखी थी।

स्टेशन के फाटक पर बेहद भीड़ थी इसलिए उन्हें साइकल से उतर जाना पड़ा। दोनों सैर-सपाटे के लिए निकले थे, इसलिए साइकल में ताला लगाकर हिफाजत से रख देने के बाद गोपाल ने दो प्लेटफार्म टिकट खरीदे और भीड़ के रेल के साथ वे भी स्टेशन के अंदर पहुँच गए। सब लोग तिलक नामक किसी व्यक्ति के बारे में बातें कर रहे थे जो बम्बई से अमृतसर जाते हुए दिल्ली से गुज़रनेवाला था। गोपाल को शरबतवाले की दूकान पर रखी हुई हरी, लाल, पीली बोतलों में ज्यादा दिलचस्पी थी, लेकिन अनवर तिलक नामक इस व्यक्ति के बारे में जानना चाहता था। अमृतसर का नाम सुनकर उसका कौतूहल और बढ़ गया। उसने एक शरीफ बूढ़े से जाकर तिलक के बारे में पूछा। बूढ़े ने इस जिज्ञासु बालक के प्रश्न का उत्तर देने में कोई सकोच नहीं किया। उसने अनवर को बताया कि तिलक भारत के बहुत बड़े राष्ट्रीय नेता हैं और अपने देशवासियों के अधिकारों के लिए लड़ने के कारण उन्होंने कई वर्ष जेल में बिताए थे। वे वैसे तो मराठा थे पर उन्होंने राष्ट्र की जो सेवा की थी उसके कारण सारे देश के लोगों के दिलों पर उनका सिक्का जम गया था। अब वे कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेने अमृतसर जा रहे थे और सब लोग उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए वहाँ जमा हुए थे।

इतने में गाड़ी आ गई। पूरे प्लेटफार्म पर और गाड़ी के चारों ओर लोगों की ऐसी भीड़ थी कि कहीं तिलक रखने की जगह न थी। हर आदमी इस महान नेता के दर्शन के लिए बेचैन था। हजारों लोग स्टेशन के बाहरवाले बरामदे में जमा थे। रेलवे के अधिकारी भीड़ को बाहर ही रखने की कोशिश में सिर्फ

उन्हीं लोगो को अंदर जाने देते थे जिनके पास प्लेटफार्म टिकट होता था । लेकिन आखिरकार लाचार होकर उन्होंने फाटक खोल दिए और लोग इस तरह अंदर घुस पड़े जैसे नदी का बाध टूट गया हो । इस धक्का-मुक्की में एक फलवाले का ठेला उलट गया, न जाने कितनों के पैर कुचले गए, अनवर की तुर्की टोपी गुम हो गई और भीड़ के धक्को से वे दोनों एक दीवार से जा लगे । भीड़ नारे लगा रही थी, “लोकमान्य तिलक की जय !” “महात्मा गांधी की जय !” “हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई !”

स्टेशन से बाहर निकलते हुए अनवर ने कहा, “कैसे कमाल की बात है कि इतने बहुत-से लोग यहाँ तिलक का स्वागत करने को जमा हुए हैं, जो यहाँ से बहुत दूर बम्बई के रहनेवाले हैं । सचमुच कोई बहुत बड़े आदमी होंगे ।”

“हा, कोई काग्रेसी है ।” गोपाल ने कहा । अनवर की समझ में न आया कि गोपाल ने ये शब्द इतने तिरस्कार से क्यों कहे थे । “मेरे पिताजी इन लोगो को पसंद नहीं करते । वे कहते हैं कि ये लोग सरकार का तख्ता उलटना चाहते हैं । और अगर सरकार ही न होगी तो फिर मेरे पिताजी को ये ठेके कौन देगा ? आओ चले, हमें इस तरह के लोगो से कोई सरोकार नहीं रखना चाहिए ।”

लेकिन अनवर यह महसूस करता था कि उसे इस तरह के लोगो से बहुत सरोकार रखना होगा । वह न जाने कौन-सी शक्ति थी जो बरबस उसे इन लोगो की ओर आकर्षित करती थी । लेकिन वह गोपाल के साथ बहस करके अपनी इस नई दोस्ती को बिगाड़ना नहीं चाहता था ।

जब अनवर घर पहुँचा तो उसे रतन का खत मिला । उसने बड़ी उत्सुकता से खत खोलकर उसे कई बार पढ़ा । रतन के सभी खतों की तरह यह खत भी बहुत छोटा था और उसी जानी-पहचानी खुली-खुली लिखाई में लिखा हुआ था जिसकी वजह से पेज पर छः-सात लाइनो से ज्यादा नहीं आती थी । रतन भी अनवर की तरह ही स्कूल जाता था और अपना सारा वक्त पढ़ाई में लगाता था । उसने वज्रीफ़ पाने की ठान ली थी क्योंकि इसके बिना उसकी माँ उसे हाई स्कूल में पढ़ने नहीं भेज सकती थी । रतन ने लिखा था, “कई महीने तक स्कूल के सब लड़कों को अबर्दस्ती पैदल चलाकर छावनी ले जाया जाता था और वहाँ हमसे

अग्रेजों के झण्डे को सलामी दिलवाई जाती थी। हम लोगों के साथ कुछ टामी भी रहते थे। अगर कोई लडका ढील-ढाल करता था तो उनमें से कोई टामी उसे ठोकर से मारता था। अब यह सिलसिला बद हो गया है। लेकिन यकीन जानो मैं इसे भूलूंगा नहीं—और न ही मैं अपने पिता की हत्या को भूला हूँ।” पत्र के नीचे लिखा था—“तुम्हारा दोस्त रतन”, और उसके बाद फिर लिखा था—“कांग्रेस का सालाना अधिवेशन यहाँ होने जा रहा है। तिलक, गांधीजी, मुहम्मदअली और शौकतअली सभी लोग आ रहे हैं। ये नेता जितने दिन यहाँ रहेंगे उनकी सेवा करने के लिए मैं भी स्वयंसेवकों में भरती हो गया हूँ। मैं बहुत खुश हूँ कि मुझे उनको इतने नजदीक से देखने का मौका मिलेगा। अपने अगले खत में मैं तुम्हें इसके बारे में और भी बहुत-सी बातें लिखूंगा।”

अनवर सोच रहा था कि रतन ज्यादा सजीदा आदमी है और बड़ी-बड़ी घटनाओं में हिस्सा ले रहा है जबकि मैं बच्चों की तरह गोपाल की चमकदार साइकल देखकर मन ही मन ललचाता रहता हूँ। पर वह ज्यादा देर अपने इन विचारों में डूबा न रह सका। उसके अम्मा ने, जो फूफी-अम्मा से बातें कर रहे थे, अनवर को बुलाकर बताया कि उसके ताया-अम्मा अमजदअली—अकबर-अली के बड़े भाई—कुछ दिन के लिए दिल्ली आ रहे हैं। अनवर को यह जानकर खास तौर पर खुशी हुई कि वे अपने साथ अपने बेटे रऊफ को भी ला रहे हैं। अनवर जानता था कि उसके ताया-अम्मा बड़े रोबदाबवाले आदमी थे, जिनसे सबकी रूह फना होती थी। वे बच्चों को पास नहीं फटकने देते थे और नौकरों को हर दम डाटते-फटकारते रहते थे। वे गुडगाव जिले में तहसीलदार थे और बरसों से सरकारी नौकरी करते-करते उनमें एक अकड़ आ गई थी। लेकिन अनवर रऊफ से कभी नहीं मिला था। रऊफ अनवर से कुछ ही साल बड़ा था। “भाई साहब रऊफ को दिल्ली की सैर कराने ला रहे हैं,” अकबरअली ने कहा। लेकिन अनवर को असली खुशी तो उनकी इस बात से हुई कि “तुम दोनों सब जगह एकसाथ देख आना। भाई साहब अपनी मोटर में आएंगे इसलिए घूमने-फिरने में कोई दिक्कत नहीं होगी।”

ऊँची-सी मोटर खडखड़ की आवाज़ करती भोपू बजाती हुई दिल्ली दरवाज़े



से शहर के बाहर निकली। दोनों लड़के सामनेवाली सीट पर ड्राइवर के पास बैठे थे। अमजदअली और अकबरअली पीछे बैठे बातें कर रहे थे। बीच-बीच में उनकी बातचीत का कुछ हिस्सा अनवर के कानों में भी पड़ जाता था। उसके ताया-अब्बा कह रहे थे, “ये बागी और इतशारपसद लोग—अमृतसर में जनरल डायर ने इन लोगों के साथ जो सलूक किया वह बिल्कुल ठीक था। ये लोग इसी लायक हैं। अगर मेरी तहसील में इस किस्म का कोई आदमी मेरे हाथ लग गया तो मैं उसे मजा चखा दूंगा।” अनवर की समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर ‘इतशारपसद’ (अराजकतावादी) कौन होते हैं। वह सोच रहा था कि क्या जमादार अजीतसिंह और नदू और वे सारे लोग जो गोली से मारे गए थे ‘इतशारपसद’ थे? लेकिन शीघ्र ही उसका ध्यान सड़क के बाईं ओर पत्थरों की बनी हुई एक इमारत के शानदार खंडहरों की ओर आकर्षित हुआ। यह पुराना किला था। इसके चारों ओर एक ऊँची-सी दीवार और खाई थी।

अकबरअली को दिल्ली के इतिहास और उसके प्राचीन स्मारकों के बारे में बहुत जानकारी थी और जब भी उन्हें मौका मिलता था वे अपने बेटे को इन चीजों के बारे में बताते थे। रऊफ दिल्ली पहली बार आया था इसलिए उसे उसके इतिहास के बारे में बहुत कम जानकारी थी। अपने बड़े भाई पर अपनी जानकारी का रोब भाड़कर अनवर बहुत खुश हो रहा था। उसने रऊफ को बताया कि दिल्ली हजारों बरसों से हिंदुस्तान की राजधानी रही है। कितने ही शाही खानदान यहाँ हुकूमत कर चुके हैं, सैकड़ों बादशाह यहाँ के तख्त पर बैठ चुके हैं। इसका नाम हमेशा से दिल्ली नहीं था। सबसे पहले इसका नाम था इद्रप्रस्थ—यानी इद्र का शहर। जब मुगल बादशाह शाहजहाँ, जिसने आगरा का ताजमहल बनवाया था, अपनी राजधानी आगरा से यहाँ लाया तो उसने इसका नाम शाहजहानाबाद रख दिया। सात बार दिल्ली उजड़ी और हर बार पुराने खंडहरों से एक नया शहर बसाया गया। इसीलिए हर तरफ इन पुरानी दिल्लीयों के खंडहर आज भी दिखाई देते हैं—महल, मकबरे, वेधशालाएँ और सरायें। अनवर ने यह भी बताया कि सड़क के दाहिनी तरफ दूर तक जो खाली जगह पड़ी है वहाँ कुछ दिन में एक नई दिल्ली बसाई जाएगी—आठवीं दिल्ली—अंग्रेजों की दिल्ली। अनवर जानता था कि इसमें से कुछ जमीन गोपाल के पिताजी की थी। वे वहाँ उन अंग्रेज अफसरों के लिए बगले बनवानेवाले थे, जो बड़े लाट

साहब का शहर बन जाने के बाद वहा आकर रहने लगेगे ।

हुमायू के मकबरे, हजरत निजामुद्दीन की दरगाह और सूफी शायर व फलसफी अमीर खुसरो के छोटे-से मजार से होते हुए वे महरौली गाव पहुचे और वहा पहुचकर मोटर रुक गई । और अनवर ने रऊफ को आसमान को छूती हुई शानदार कुतुबमीनार इस गर्व के साथ दिखाई जैसे वही उसका मालिक हो । दोनो लडके नजरें उठाए सिर पीछे झुकाकर कुतुबमीनार की चोटी देखने की कोशिश कर रहे थे । उन्हें ऐसा लग रहा था कि कुतुबमीनार उनके ऊपर झुकती आ रही है—वह झुकती चली आ रही थी, यहा तक कि उन्हें ऐसा लगा कि वह किसी भी क्षण उनके सिर पर आ गिरेगी । रऊफ डर के मारे सफेद पड गया, लेकिन अनवर ने एक तजुर्बेकार आदमी की तरह उसे समझाया कि वह वास्तव मे गिर नहीं रही है बल्कि आसमान पर चलते हुए बादलो की वजह से ही ऐसा लगता है ।

लडके कुतुबमीनार के ऊपर चढने की जिद करने लगे और सब लोगों ने अघेरी, बदबूदार, चक्करदार सीढियो पर चढना शुरू किया । ऊपर जैसे-जैसे मीनार का घेरा कम होता गया वैसे-वैसे सीढिया भी छोटी होती गई ; अघेरे मे चमगादड अपने पख फडफडाते हुए सामने से गुजर जाते थे । रऊफ का उत्साह ठडा पडने लगा था और वह वापस जाने की बात कर रहा था । लेकिन अनवर जानता था कि ऊपर पहुचकर कितना मज़ा आएगा इसलिए वह अपने भाई को समझा रहा था कि मज़िल के इतने पास पहुचकर उसे हिम्मत नहीं हारनी चाहिए ।

सारी दुनिया से ऊपर—मीनार की चोटी पर पहुचकर चारो ओर नज़र दौड़ाने पर कम से कम उन्हें लग ऐसा ही रहा था—उनकी आखो के सामने सातो दिल्लिया फैली हुई थी । जिस सडक से होकर वे आए थे वह एक पतली-सी पट्टी की तरह पेडो के बीच से चक्कर काटती हुई दूर तक चली गई थी । और इन तमाम दिल्लियो से परे जमुना बह रही थी—जो अब जाडे मे घटकर एक पतली-सी धारा रह गई थी । तीसरे पहर की हवा में कुछ खुनकी थी जो बहुत अच्छी लगती थी । अनवर ने अपनी टोपी उतारी और हवा के सर्द झोके उसकी मुडी हुई चाद को गुदगुदाने लगे । कुतुबमीनार की चोटी पर खडे होकर उसे बहुत खुशी हो रही थी । नीचे ज़मीन पर चलते हुए औरत-मर्द चींटियो

जैसे दिखाई देते थे। मोटर बिलकुल खिलौने की मोटर मालूम होती थी। वे बहुत ऊँचाई पर खड़े थे—पर कुछ चीज़ें उनसे भी ऊँची थी। नीचे से देखने पर जो बादल मीनार की चोटी के चारों ओर एक घेरा बनाए हुए दिखाई देते थे वे अब भी बहुत दूर और बहुत ऊँचाई पर थे। पश्चिमी क्षितिज पर जैसे-जैसे सूरज कुहासे के एक अथाह सागर में डूबता जा रहा था, वैसे-वैसे हवा और ठंडी होती जा रही थी। सर्दियों की एक लहर-सी अनवर की गरदन से रीढ़ की हड्डी के सहारे नीचे तक दौड़ गई। अनवर को छीक आ गई।

“अब घर चले। बहुत देर हो गई है,” अकबरअली ने कहा और सब लोग उन अंधेरी सीढ़ियों से नीचे उतरने लगे। ऊपर की खुली ठंडी हवा में खड़े रहने के बाद सीढ़ियों की बदबू और घुटन कुछ ज्यादा ही मालूम होने लगी थी।



## दीवा बले सारी रात

देखने में बहुत डरावनी थी वे मूछे—बेहद घनी, कुछ बाल सफेद हो चले थे, और मोम लगाकर उनके सिरे ऐंठकर नुकीले कर दिए गए थे। दाढ़ी बहुत साफ बनी हुई थी जिसकी वजह से गाल बहुत चिकने थे, पर भवों के बाल इतने घने और लम्बे थे कि ऐसा लगता था जैसे आखों के ऊपर एक छप्पर पड़ा हो। हाथों पर, उंगलियों पर, यहाँ तक कि कानों पर भी घुघराले बालों के गुच्छे थे। लेकिन बिना फ्रेमवाली ऐनक के साफ-सुथरे शीशों के पीछे से जो आखें चमक रही थी उनमें दया थी और वे अनवर को बड़े वात्सल्य के भाव से देख रही थी।

अनवर डाक्टर मुस्तारअहमद अंसारी के दवाखाने में था। अकबरअली ने उसे बताया था कि डाक्टर अंसारी दिल्ली के सबसे अच्छे डाक्टर थे। उन्होंने विलायत की सबसे अच्छी यूनिवर्सिटियों में डाक्टरी पढ़ी थी और विलायत के कई अस्पतालों में काम भी कर चुके थे।

पन्द्रह दिन तक अनवर हकीम बेदिल का यूनानी इलाज करा चुका था लेकिन कुतुबमीनार की चोटी पर एक छीक से जो जुकाम शुरू हुआ था वह अभी तक ठीक नहीं हुआ था। वास्तव में उसने बढते-बढते ब्राकाइटिस का रूप धारण कर लिया था जिसकी वजह से उसे रात-भर नीद नहीं आती थी और दिन-भर वह निढाल रहता था। अब वह अपने ताया-अब्बा और अपने भाई रऊफ के साथ सैर-सपाटे के लिए भी नहीं जा सकता था। फूफी-अम्मा उसके कमरे की हर खिड़की और दरवाजा बंद रखती थी और हकीम बेदिल उसे ढेरो जोशादा और दूसरी दवाएँ पिलाते थे, पर इन तमाम इलाजों के बावजूद उसकी हालत बिगड़ती गई। आखिरकार अकबरअली ने उसे डाक्टरी अंसारी को दिखाने का फैसला किया जो पास ही दरियागज के सिरे पर एक बंगले में रहते थे। उनके बंगले के एक तरफ पुरानी दिल्ली की फसील थी और दूसरी तरफ जमुना।



अनवर ने जिस वक्त से डाक्टर साहब के कमरे में कदम रखा था तभी से उसका दिल बुरी तरह धडक रहा था। उसने सुन रखा था कि डाक्टर लोग कैसे-कैसे भयानक आपरेशन कर डालते हैं, और पेट चीर देना या हाथ-पैर काटकर अलग कर देना उनके बाए हाथ का खेल होता है। फूफी-अम्मा ने उसके दिल में डाक्टरों का और भी डर बिठा दिया था और इसलिए अनवर ने अपने मन में यह चित्र बनाया था कि जिन डाक्टर साहब के यहाँ उसे ले जाया जा रहा है वे जल्लाद या कसाई किस्म की कोई चीज़ होंगे। और वे खौफनाक मूँछें सचमुच किसी जल्लाद की ही लगती थी, लेकिन अनवर को उन भयानक मूँछों का उनकी दया-भरी आँखों और नर्म मीठी आवाज से कोई सबन्ध नहीं दिखाई देता था। डाक्टर साहब अपने विलायती ढंग के कपड़े पहने हुए थे पर बोल खालिस हिंदुस्तानी रहे थे।

“क्यों बेटा, क्या हाल है?”

उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा लेकिन उनकी इस एक बात से अनवर का सारा डर दूर हो गया और वह उन्हें अपनी स्कूल की पढाई और अपनी अमृतसर की यात्रा के बारे में सारी बातें बताने लगा। उसने उन्हें जलियावाला बाग के बारे में भी बताया। जलियावाला बाग के गोलीकांड की बात सुनते ही डाक्टर साहब के माथे पर बल पड़ गए, उनकी आँखें कुछ धुंधली पड़ गईं, उनमें आसू-से छलक आए और उन्होंने कागज़ काटने का चाकू गुलाबी ब्लार्टिंग पेपर में गड़ा दिया। यह स्पष्ट था कि वे इस विषय पर ज्यादा देर अनवर को बातें नहीं करने देना चाहते थे इसलिए उन्होंने बड़ी होशियारी से बातचीत का रुख बदल दिया। अब वे कबूतरों और पतंगों और हवाई जहाज़ों की बात कर रहे थे और जब डाक्टर साहब ने कहा कि “अनवर, जानते हो, जब तुम बड़े होगे उस वक्त हवाई जहाज़ उतने ही आम हो चुके होंगे जितनी कि आज रेलगाड़ियाँ हैं,” तो अनवर की आँखें आश्चर्य के मारे फटी की फटी रह गईं।

डाक्टर साहब से बातें करते हुए अनवर को न भिन्नक हो रही थी न डर ही लग रहा था। अचानक उसे यह महसूस करके आश्चर्य हुआ कि उसकी बीमारी बिल्कुल गायब हो गई है। उसका गला अब नहीं दुख रहा था, उसे

बुखार भी नहीं लग रहा था और हालांकि चारों तरफ की खिड़किया खुली हुई थी, फिर भी जब से वह कमरे में आया था उसे न छीक आई थी न खासी । ये डाक्टर साहब तो सचमुच जादूगर थे । वे अनवर से इस तरह बातें कर रहे थे जैसे वह बीमार हो ही नहीं—और वास्तव में वह बीमारी था भी नहीं । डाक्टर असारी अनवर से रेलगाड़ियों, मोटरो और दूसरी ऐसी चीजों के बारे में बातें कर रहे थे जिनमें बच्चों को दिलचस्पी हो सकती है । इस बातचीत के दौरान ही में उन्होंने अनवर से एक कोच पर लेट जाने को कहा और एक अनुभवी डाक्टर की तरह बड़े ध्यान से उसकी डाक्टरी जांच की—उसकी नब्ज देखी, आला लगाकर उसका सीना देखा और उगलियों से उसका पेट ठोक-पीटकर देखा । उनका स्पर्श इतना कोमल था और उनकी लम्बी-लम्बी पतली उगलिया इतनी नर्म और नाज़ुक थी कि अनवर को यकीन हो गया कि उन उगलियों से कभी किसीको कोई नुकसान नहीं पहुंच सकता और वह इस बात पर आश्चर्य करने लगा कि डाक्टर असारी उन खौफनाक आपरेशनों को कैसे करते होंगे जिनके बारे में उसने सुन रखा था ।

डाक्टर असारी ने अनवर को उठाकर खड़ा कर दिया और उसका कंधा थपकते हुए बोले, “बेटा, तुम्हें कोई बीमारी नहीं है । लेकिन मैं इस बात को पसन्द नहीं करता कि तुम्हारे जैसे होनहार लड़के स्कूल में अपना वक्त खराब करें । तुम्हारी तो अभी खुले मैदानों और बागों में दौड़ने-भागने की उम्र है । तुम्हें तो देहात की खुली हवा में सैर करनी चाहिए ।” अनवर को उनके ये शब्द ऐसे लगे जैसे कोई बड़ी ममता से अपने कोमल हाथों से उसे थपक रहा हो । फिर डाक्टर साहब अनवर के अम्बा को सम्बोधित करके बोले, “अकबर साहब, क्या आप अपने बेटे को कुछ दिन के लिए शहर के शोर-गुल से दूर किसी गांव में नहीं भेज सकते ?”

अकबरअली डाक्टर असारी से भली भांति परिचित थे । उन्होंने डाक्टर साहब को आश्वासन दिलाया कि इसमें कोई कठिनाई नहीं होगी । अनवर कुछ दिन के लिए जाकर अपने ताया-अम्बा के साथ रह सकता था, जो इस समय मुडगाव में तहसीलदार थे और उनके साथ ही उनकी तहसील के गांवों के दौरे पर जा सकता था ।

वे लौट उठकर जाने ही वाले थे कि अनवर ने लम्बे-चौड़े डीलडौल के दो

दाढ़ीवाले बुजुर्गों को उस छोटे-से कमरे में दाखिल होते देखा। वे दोनों अरब लोगो की तरह ढीले-ढाले लबादे पहने थे और ऐसा लगता था कि उन दोनों के आ जाने से कमरा बिलकुल भर गया था। अनवर उनकी अजीब चाल-ढाल देखकर और उनकी गूँजती हुई आवाजो को सुनकर कुछ भयभीत हो गया था। ढीलडौल तो दोनों ही बुजुर्गों का लम्बा-चौड़ा था पर उनमें से एक दूसरे के मुकाबले में ज्यादा तगड़े थे और जब बोलते थे तो ऐसा लगता था कि बादल गरज रहे हैं। बोले, “असारी, अभी तो हम लोग बाहर जा रहे हैं। तीसरे पहर तुमसे मुलाकात होगी।” दूसरे बुजुर्ग ने, जिनके हाथ में कुछ कागज़ थे, एक कागज़ मेज पर रखते हुए कहा, “तुम जरा इसे देख लेना और शाम को इसके बारे में अपनी राय बताना।” फिर दोनों उसी तरह अचानक बाहर चले गए जैसे वे अन्दर आए थे और चिक मे से अनवर को सिर्फ दो ढीले-ढाले काले लबादे हवा में उड़ते हुए दिखाई दिए।

“जानते हो कौन थे ?” डाक्टर असारी ने विदा होती हुई उन दोनों विभूतियों की ओर देखकर मुस्कराते हुए कहा और अनवर को उनसे अपरिचित देखकर बताया कि वे मुहम्मदअली और शौकतअली थे। अनवर को सहसा याद आया कि अपने अब्बा की बैठक में एक बार किसी बहस के दौरान में उसने इनका नाम सुना था। ये दोनों भाई खिलाफत आन्दोलन के नेता थे और अभी हाल ही में जेल से छूटकर आए थे। अनवर को यकीन था कि ऐसे रोबदार आदमियों से तो सरकार भी डरती होगी।

“अनवर, फिर आना, लेकिन खासी या जुकाम की शिकायत लेकर न आना,” डाक्टर असारी ने अनवर और उसके अब्बा को बिदा करते हुए कहा।

ऐसा लगता था कि डाक्टर असारी के बगले में अजीब-अजीब लोग रहते थे। जिस समय अनवर अपने अब्बा के साथ लॉन पार करके फाटक की ओर जा रहा था उसने देखा कि कई लोग लॉन पर धूप में बैठे हुए एक आदमी को देख रहे हैं। अनवर ने भी देखा कि पतली-पतली टांगोवाला एक आदमी मोटे खहर की धोती और कुर्ता पहने बैठा चर्खा कात रहा है। उसने अपने सिर पर एक सफेद अगोछा भी डाल रखा था जिसकी वजह से अनवर को यह भ्रम हुआ

कि शायद कोई औरत है। जब दोनों उस आदमी के पास से होकर गुजरे तो चर्खा एक क्षण के लिए रुक गया और अगोछे में से बड़े-बड़े गोल शीशोवाली ऐनक पहने हुए एक चेहरा दिखाई दिया और अनवर को देखकर दो आखे ऐनक के पीछे मित्रता के भाव से मुस्करा दी। अनवर सितपिटा गया और उसकी समझ में कुछ न आया कि वह इस अभिवादन का उत्तर कैसे दे, इसलिए वह भी जवाब में केवल मुस्करा दिया। वह छोटा-सा गजा सिर फिर अगोछे में छिप गया और चर्खा फिर अपनी लय के साथ चलने लगा।

जब वे लोग वहाँ से काफी आगे बढ़ गए तो अकबरअली ने बताया, “ये महात्मा गांधी थे। ये, मुहम्मदअली, शौकतअली और डाक्टर असारी सब स्वराज के लिए मिलकर काम कर रहे हैं।”

“स्वराज क्या होता है अब्बा ?” अनवर ने पूछा।

“स्वराज का मतलब होता है अपनी हुकूमत। हिन्दुस्तानियों की हुकूमत बेटा।”

अनवर को कई महीने पहले की वह बात याद आई जब उसके अब्बा और काका रामेश्वरदयाल गांधी के बारे में और अंग्रेजों को मारे बिना उन्हें यहाँ से निकाल देने की बातें कर रहे थे। तो यह था वह महान आदमी जो सपने में उसे राक्षस से बचाने आया था।

उसने सोचा यह आदमी देखने में तो इतना छोटा है पर इसे राक्षस से डर नहीं लगता।

“अब्बा !”

“हा बेटा !”

“महात्मा गांधी बुढ़ियों की तरह, हमारी गुलाबो बुआ की तरह चर्खा क्यों चला रहे हैं ?”

यों तो अकबरअली हमेशा ही अनवर को कोई बात समझाकर बहुत खुश होते थे पर अनवर के इस सवाल का जवाब देकर उन्हें हमेशा से ज्यादा खुशी हुई। “उनका कहना है कि हम विलायती कपड़ा खरीदकर करोड़ों रुपया अपने देश के बाहर भेज देते हैं। इसलिए अगर हम अपने देश का बना हुआ खदर पहनें तो वह रुपया हिन्दुस्तान में ही रहेगा। इसके अलावा हमारे देश में करोड़ों लोग बरोज़गार हैं और करोड़ों लोग ऐसे हैं जो अपनी कमाई से अपनी सारी



जरूरते पूरी नहीं कर सकते। गरीब किसानों को दो फसलों के बीच खाली बैठे रहना पड़ता है। अगर हम सब लोग खदर पहनने लगे तो उनको भी कुछ और आमदनी हो सकती है। उनका यह भी कहना है कि चर्खा कातने से हमारे अंदर सादगी और ईमानदारी पैदा होती है।”

“अब्बा।”

“हा बेटा।”

“आपको महात्मा गांधी अच्छे लगते हैं?”

“हा अनवर। वे बहुत बड़े आदमी हैं। वे मुझे बहुत अच्छे लगते हैं।”

“अब्बा।”

“हा बेटा।”

“मुझे भी महात्मा गांधी बहुत अच्छे लगते हैं।”

गुडगाव की खुश्क और ठण्डी आबोहवा में रहकर अनवर की खांसी बिलकुल जाती रही। वहां वह खुली हवा में स्वास्थ्यप्रद जीवन व्यतीत करता था। उसके ताया-अब्बा बहुत सख्त आदमी थे और इस बात पर जोर देते थे कि तीनों बच्चे—अनवर, रऊफ और रऊफ की नौ साल की बहन बिलकीस—बहुत सुबह उठा करे। इतने सुबह गरम-गरम बिस्तरों से निकलना बहुत बुरा लगता था, लेकिन एक बार जब वे खुले मैदानों में निकल जाते थे और उन्हें ठण्डो हवा में सास लेने का मौका मिलता था तो उन्हें बहुत खुशी होती थी। वे एक-दूसरे का पीछा करते थे। रऊफ सबसे आगे निकल जाता था क्योंकि वह सबसे बड़ा था और सबसे लम्बा भी और बिलकीस सबसे छोटी होने की वजह से सबसे पीछे रह जाती थी और जब अनवर उससे बहुत आगे निकल जाता था तो वह बहुत रोती-चिल्लाती थी। उसे रोता देखकर अनवर रुक जाता था और जब तक वह उसके बराबर नहीं पहुंच जाती थी तब तक वह आगे नहीं बढ़ता था और अगर वह बहुत थकी होती थी तो दोनों खेतों के बीच से होकर मन्द गति से बहती हुई जलधारा के किनारे बैठ जाते थे।

बिलकीस अनवर को बहुत अच्छी लगती थी। वह छोटी थी और नाजूक थी लेकिन उसमें जिन्दगी भरपूर थी। उसके बाल गहरे भूरे रंग के थे जिन्हें

गूधकर एक छोटी-सी चोटी बाध दी जाती थी और जब वह दौड़ती थी तो यह चोटी बहुत ही हास्यास्पद ढंग से ऊपर-नीचे उछलती रहती थी। अनवर को रऊफ भी बहुत अच्छा लगता था लेकिन चूँकि उसका पालन-पोषण बिल्कुल ही दूसरे वातावरण में हुआ था इसलिए रऊफ की कुछ आदतों पर अनवर को बहुत ताज्जुब होता था। अकबरअली अपने बेटे को कभी नौकरो से बदतमीजी से बात भी नहीं करने देते थे। एक बार उसने जब 'बुआ गुलाबो' के बजाय खाली 'गुलाबो' कह दिया था तो उसके अम्मा ने सजा के तौर पर उसे दिन-भर खाना नहीं दिया था। लेकिन रऊफ न सिर्फ अपने नौकरो पर चिल्लाता था बल्कि उन्हें ऐसी-ऐसी गालियाँ भी देता था कि अनवर तो सुनकर ही शर्म से पानी-पानी हो जाता था।

तहसीलदार अमजदअली के घर में नौकरो की कोई कमी नहीं थी। उनमें जाती नौकरो के अलावा कोई आधा दर्जन सरकारी चपरासी हर वक्त अनवर की खुशामद और चापलूसी करने के लिए मौजूद रहते थे और वह भी उनपर रोब भाँडकर बहुत खुश होता था।

जब वे सुबह टहलकर लौटते तो उन्हें बेहद भूख लगी होती थी। रऊफ की माँ, जिन्हें अनवर 'बड़ी अम्मा' कहता था, नाश्ता रखती थी और तीनों डटकर नाश्ता करते थे। बड़ी अम्मा अनवर पर बहुत मेहरबान रहती थी। वे हद दरजे की काहिल थी और दिन-भर में कम से कम सौ पान चवा जाती होगी। चूँकि घर का सारा काम नौकर करते थे इसलिए अनवर ने अपनी बड़ी अम्मा को कभी कोई काम करते नहीं देखा था। वे फूफी-अम्मा की तरह नहीं थी जो दिन-भर बरतन माजने, खाना पकाने, सिलाई करने वगैरह में फसी रहती थी और अजुम को भी घर का कामकाज करने में गुलाबो का हाथ बटाने पर मजबूर करती थी। लेकिन अनवर के ताया-अम्मा ठहरे सरकारी अफसर। उनके घर में बच्चों का सारा काम नौकर करते थे। अनवर को यह बात कुछ अजीब लगती थी और उसकी समझ से बाहर थी कि कोई दूसरा उसका बिस्तर लगाए या उसके जूतों पर पालिश करे।

नाश्ता करके रऊफ स्कूल चला जाता था, अमजदअली कचहरी चले जाते

## इन्कलाब

थे, बड़ी अम्मा दोपहर का खाना खाने से पहले एक नींद सो लेने के लिए लेट जाती थी और बिलकीस अपनी गुड़िया निकालकर बैठ जाती थी। अनवर भी अपनी कोठरी में जाकर अपने सन्दूक में से अपना खुफिया खजाना निकालता था। यह खजाना वे किताबें थी जो उसके अम्मा ने चलते वक्त उसे दी थी और कहा था, “अगर तुम इन सबको पढ़ लोगे तो तुम्हारी स्कूल की पढाई का जो नुकसान होगा वह पूरा ही नहीं हो जाएगा बल्कि तुम्हें उससे भी ज्यादा फायदा पहुंचेगा।”

अकबरअली ने सब किताबों पर एक जैसी जिल्द बधवा दी थी। अनवर को ये मोटी-पतली किताबें बहुत अच्छी लगती थी—उसे उनपर चढ़ी हुई लाल चमड़े की जिल्द और उनपर सुनहरे अक्षरों में लिखा हुआ किताब और लेखक का नाम बहुत ही पसन्द था। उसे उनकी साफ-सुथरी खुशबू भी बेहद पसंद थी—ताजे कागज की खुशबू, छापेखाने की स्याही, लेई और चमड़े की खुशबू और वह एक नामालूम खुशबू जो सभी किताबों में आती है। उसे उन्हें पढ़ने में भी बहुत मजा आता था क्योंकि उन्हें पढ़कर उसे ऐसा लगता था जैसे उसकी आंखों के सामने अनोखी और आकर्षक दुनियाओं के द्वार खुलते जा रहे हैं। अनवर जब भी कोई किताब खोलता तो उसे ऐसा लगता कि वह किताब नहीं पढ़ रहा है बल्कि विस्तृत अनजानी दुनियाओं की यात्रा कर रहा है।

उसने उनमें से कई किताबें पढ़ डाली थी और उनको पढ़कर उसकी कल्पना-शक्ति बहुत जागरित हो उठी थी। जब उसने ‘चार दरवेश’ पढ़ी तो उसे ऐसा लगा कि ईरान के उन चार दरवेशों के साथ वह भी उन विचित्र और अनोखे अनुभवों से गुजर रहा है। सीधी-सादी ज़बान में लिखी हुई ‘हयाते-लुकमान’ से उसने वह बहुत-सा व्यावहारिक ज्ञान सीखा था जो ईसप ने इसानो और जानवरो के बारे में अपने इन किस्सों में भर दिया था। शरर की ‘बहिस्ते-बरी’ पढ़कर उसे ऐसा लगा था कि वह फिर असासियों के उस दुष्ट नेता के जमाने में पहुंच गया है जिसने भोले-भाले लोगों को बहकाकर अपना अनुयायी बनाने के लिए इस ज़मीन पर एक जन्नत बनाई थी जहां हूरे भी थी और दूध-शहद की नदियां भी और चहचहाती हुई चिड़िया भी। लेकिन उसपर सबसे गहरा असर ‘मुसद्से-हाली’ का हुआ था—जिस प्रेरणामय महाग्रंथ में इस्लाम के उत्थान और पतन का रोचक वर्णन पानीपत के उसी शायर ने किया था

जिमकी कब्र पर अनवर और उसके अब्बा ने श्रद्धाजलि अर्पित की थी। नौ बरस का अनवर शायरी की बारीकियों के बारे में कुछ नहीं जानता था, उसमें जिन ऐतिहासिक घटनाओं की ओर संकेत था उनसे भी वह सर्वथा अपरिचित था, पर हाली की इस अमर काव्य-कृति के शब्दों में ऐसा संगीत और ऐसा प्रवाह था कि उनको पढ़कर उसकी भावनाओं में एक लहर-सी पैदा हो जाती थी। इन पक्तियों को पढ़कर उसे वैसा ही आनन्द आता था जैसा कुरान की आयतों को पढ़ते समय और इन पक्तियों में जोर भी वैसा ही था।

हर बार जब अनवर उसे पढ़ता था तो उसे ऐसा लगता था कि शायर का मकसद ही यह था कि पाठकों में कभी उत्साह पैदा हो, कभी वे गर्व अनुभव करें, कभी वे निराश हों और कभी लज्जित। पर इन सब चीजों के मिलने से मन में यह भावना अवश्य पैदा होती थी कि कोई परिवर्तन फौरन होना चाहिए। इन पक्तियों को पढ़कर ज्ञान की ज्योति से अज्ञान के अधरे को दूर करने की इच्छा पैदा होती थी—और निश्चय ही कवि का यही उद्देश्य भी था।

मौसम प्रकृति के नियम के अनुसार बदलते रहे। तहसीलदार साहब के बंगले में जो ठंडी हवा चलती थी उसमें अब वह बर्फीली चुभन नहीं रह गई थी; आसपास के खेतों पर सुबह जो कुहरे के बादल छाए रहते थे वे धूप में गायब हो गए, कुछ दिन बाद मकई के खेत कट गए और गेहूँ बोने के लिए खेत तैयार किए जाने लगे। फिर जून में सूरज तपने लगा और पसीना छूटने लगा। लू लग जाने के डर से बच्चों को दोपहर से शाम तक घर से बाहर निकलने की बिल्कुल मनाही कर दी गई। इस लू में तो खस के पर्दे भी इतनी जल्दी सूख जाते थे कि तहसीलदार अमजदअली के तीन नौकरों को लगातार उनपर पानी छिड़कते रहना पड़ता था।

अनवर सारा वक्त अपने भाई-बहिन के साथ खेलने, अपने अब्बा की भेजी हुई किताबें पढ़ने और कभी-कभी रतन को खत लिखने में खर्च करता था। अमृतसर से उसका दोस्त भी लगभग हर हफ्ते खत लिखता था और उसके खत तहसीलदार साहब के बंगले के ठंडे तथा सुरक्षित वातावरण में हकीकत के त्रेज्जों की तरह आते थे। उसके खतों से पता लगता था कि अमृतसर में कांग्रेस



के अधिवेशन के अवसर पर उसने नेताओं के कैम्प में वालटियर की हैसियत से काम किया था और एक बार तो गांधीजी के लिए पानी भी ले गया था। रतनसिंह ने बड़े विस्तार के साथ इन मीटिंगों और उनमें भाग लेनेवाले नेताओं के बारे में लिखा था—तिलक के बारे में, अलीबधुओं के बारे में और अनवर के डाक्टर असारी के बारे में—और इन सब बातों को पढ़कर अनवर को रतन के सौभाग्य पर ईर्ष्या होने लगी।

रतन के दिन बहुत मुसीबत में कट रहे थे जिसकी वजह से अनवर को अपनी ऐशो-आराम की ज़िन्दगी पर शर्म आने लगी। जमादार अजीतसिंह के मरते ही उसकी पेशन भी बन्द हो गई थी और रतन की विधवा मा को अपने सारे गहने गिरवी रख देने पड़े थे ताकि उसका बेटा स्कूल में अपनी पढ़ाई जारी रख सके। अब तो यह पैसा भी खर्च हो गया था और अब वह दिन-भर चर्खा चलाकर और सूत बेचकर अपना पेट पालती थी। रतन ने लिखा था, “महात्माजी ने अगर हमें यह चर्खा न दिया होता तो हम भूखो मरने लगते और मुझे शायद पढ़ाई छोड़कर स्टेशन पर बोझ ढोना पड़ता।” बड़ी मुसीबत में उनके दिन कटते थे। एक बार महीने-भर तक रतन का कोई खत नहीं आया। बाद में उसके खत से पता चला कि उसके पास पोस्टकार्ड खरीदने को भी पैसे नहीं थे। उस वक्त अनवर के सन्दूक में दस रुपये थे। उसके अब्बा हर महीने उसे दो रुपये भेजते थे, उसीको बचा-बचाकर उसने ये दस रुपये जोड़े थे। वह चुपचाप डाकखाने गया और दस रुपये के टिकट खरीदकर एक लिफाफे में रतन को भेज दिए। लेकिन ऐसा लगता है कि जिसके पास जितना ही कम पैसा होता है उसे इस तरह के उपहार स्वीकार करने में उतना ही ज्यादा सकोच होता है। रतन ने अपने अगले खत के साथ सारे टिकट वापस कर दिए और अपने दोस्त का खत पढ़कर अनवर की आँखों में आसू आ गए। उसने अपने खत में लिखा था—“अब कभी मुझे इस तरह की कोई चीज़ न भेजना। मैं जानता हूँ तुमने दोस्ती का हक निभाने के लिए ही ऐसा किया था फिर भी मुझे इससे ठेस पहुँची। मा कहती है कि खैरात लेने से अच्छा है कि आदमी भूखा मर जाए।”

आकाश पर वर्षा के बादल छाने लगे और पहला छीटा पड़ते ही धरती से

गीली मिट्टी की सोधी-सोधी महक आने लगी। सूखी हुई धरती ने स्पज की तरह सारा पानी सोख लिया और शीघ्र ही हर तरफ नये जीवन की कोपले फूटने लगी। गुडगाव का छोटा-सा गन्दा कस्बा नहा-धोकर निखर आया। सड़को पर गर्द उड़ना बन्द हो गया और तहसीलदार साहब के बगले में जहा भी खाली जगह थी वहा घास और हरियाली उग आई। बड़ी अम्मा ने नीम के छायादार पेड़ की सबसे ऊँची डाल पर सूत की रस्सी का झूला डलवा दिया और तीनों बच्चे लम्बे-लम्बे पेग लेकर उसपर झूलने लगे।

इसी मौसम में, जब न बहुत गर्मी पड़ती थी न बहुत सर्दी, तहसीलदार साहब अपनी तहसील के दौरे पर जाते थे। दौरे पर जाने की तैयारियाँ जोरों पर जारी थी और बच्चे गाव की सैर के खयाल से बहुत खुश थे। रऊफ पहले भी अपने अब्बा के साथ दौरे पर जा चुका था। उसने अनवर और बिलकीस को बताया कि दौरे पर कितना मजा आता है। उसने उन्हें बताया कि “गावों में अब्बा की हैसियत बिलकुल बादशाह जैसी होती है और मेरी शाहजादे जैसी। सब लोग झुक-झुककर हमें सलाम करते हैं।” अनवर पर इस बात का कोई खास रोब नहीं पड़ा लेकिन उसने यह बात रऊफ से कही नहीं। नौकरो से किस तरह बात की जानी चाहिए, इस सवाल को लेकर उसका और रऊफ का झगडा हो चुका था और अनवर अपने ताया के यहा इतने दिन हसी-खुशी गुजार देने के बाद अब चलते वक्त और ज्यादा कटुता नहीं पैदा होने देना चाहता था।

कुछ ही समय बाद उसे यह देखने का अवसर मिला कि रऊफ ने जो बात कही थी उसका क्या मतलब था। अमजदअली तहसीलदार दौरे पर जाते थे तो एक पूरा काफिला उनके साथ होता था। सबसे आगे वे खुद घोड़े पर चलते थे, उनके पीछे एक तागे पर बच्चे और सबसे पीछे एक बैलगाड़ी पर खेमे, बिस्तर, चारपाइया, कुर्सियाँ और बर्तन-भाड़े लदे हुए। इस शाही ठाठ से वे एक गाव से दूसरे गाव का दौरा करते थे। उन्हें देखते ही गाववाले सर्वशक्तिमान सरकार के इस प्रतिनिधि को श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए लपकते थे। वे हाथ जोड़कर उनका स्वागत करते थे और फिर गाव में सबसे अच्छी जगह पर खेमा लगाने, सेवा-टहल करने, लकड़ी चीरने और पानी भरने में तहसीलदार साहब की मदद करने में एक-दूसरे से होड़ करते थे। खेमा लगते ही तहसीलदार साहब अपना हुक्का लेकर एक आरामकुर्सी पर बैठ जाते थे और चीथड़े पहने

हुए मैले-कुचैले किसानों का ताता लग जाता था, जिनमें से हर एक कोई न कोई फरियाद लेकर उनकी कृपादृष्टि की भीख मागता हुआ आता था। “हुजूर, इस साल फसल बहुत खराब हुई,” और “हुजूर, हमारे पास लगान देने को पैसा है ही नहीं” और “हुजूर माई-बाप है”—यही उन सबकी फरियाद होती थी। रऊफ कहता था कि जब कोई ‘माई-बाप’ कहता था तो उसे बहुत हंसी आती थी। इससे यही पता चलता था कि ये किसान कितने बेवकूफ हैं।

नूरपुर बहुत ही छोटा गाव था। उसमें एक कच्चे रास्ते के दोनों तरफ लगभग भोपडिया पड़ी थी। जब पानी बहुत बरसता था तो यह रास्ता बिलकुल नाला बन जाता था। चारों तरफ गदा पानी खड़ा रहता था जिसपर हरी-हरी काई की एक मोटी तह जमी रहती थी जिसमें मच्छर पलते थे। अमजदअली ने सब बच्चों से कह दिया था कि जब तक वे नूरपुर में रहे तब तक बिना उबाला हुआ पानी न पिएं।

तहसीलदार साहब ने गाव के बाहर एक आम के बाग में अपना खेमा लगाया था और खेमा लगते ही बाग का मालिक एक टोकरी में पके हुए रसदार आम लेकर हाजिर हो गया था। खेमे के पीछे बावर्ची ने अपना बावर्चीखाना लगाया था और वहां से मसालेदार खानों की खुशबू आ रही थी और आमों की मीठी-मीठी बोझल खुशबू से होड़ कर रही थी। अनवर ने अपने-आप उस बाग में एक छायादार जगह ढूँढ़ ली और अपनी किताब लेकर वहां जा बैठा। वह उर्दू में राबिंसन क्रूसो का किस्सा था। पढ़ते-पढ़ते वह अपनी कल्पना में एक रेगिस्तानी द्वीप पर पहुँच गया और वहां रेत पर आदमी के पैरों के निशान देखकर उसने फाइंडे को खोज लिया था। उसे इस तरह के किस्से बहुत पसंद थे। उन्हें पढ़कर उसे हमेशा बहुत रोमांच होता था। लेकिन उसने मुश्किल से कुछ ही पेज पढ़े होंगे कि उसे कुछ शोर सुनाई दिया। बावर्ची किसीपर चिल्ला रहा था और उसे गालियाँ दे रहा था और वह आदमी भी उससे झगड़ रहा था। जब अनवर भागकर बावर्चीखाने में पहुँचा तो उसने देखा कि उसके ताया का पहलवान जैसा बावर्ची याकूब,\* जिसके एक बहुत भयानक काली दाढ़ी थी, अनवर की ही उम्र के एक छोटे-से पतली-पतली टांगोवाले लड़के को पीट

रहा है ।

“याकूब, याकूब, क्या कर रहे हो ? खबरदार, जो अब मारा ।” अनवर ने चिल्लाकर कहा । बावर्ची अपने मालिक के भतीजे का हुक्म तो नहीं टाल सकता था लेकिन उसे यकीन था कि जब वह सारी बात अनवर को बताएगा तो उसकी समझ में आ जाएगा कि उस लड़के को बिला वजह सजा नहीं दी जा रही है ।

याकूब ने सरकारी अफसरों के सभी नौकरो की तरह बहुत ही खुशामद-भरे लहजे में कहना शुरू किया, “सरकार, आप इस बदमाश को नहीं जानते । मुझे तहसीलदार साहब के लिए आमलेट बनाना है और सारे गांव में मुझे सिर्फ इसीके घर में अडे मिले हैं । लेकिन यह किसी तरह अडे देता ही नहीं । न जाने उन्हें रखकर क्या करेगा । मेकर बच्चे निकालेगा !”

अनवर ने उस भूखे-नगे लड़के को देखा और उसकी समझ में नहीं आया कि वह उन अडों को बेचकर कुछ पैसे क्यों नहीं बना लेता जबकि ज़ाहिर था कि उसे पैसे की सख्त जरूरत होगी । “क्यों जी, तुम अपने अडे बेच क्यों नहीं देते ?”

याकूब ने खीसे निकाल दी, लेकिन अनवर को इसका मतलब उसी वक्त समझ में आया जब उस लड़के ने जवाब दिया, “हुजूर, मैं तो बेचना चाहता हूँ, लेकिन यह हमें पैसा नहीं देता । यह रामू की बगिया से सब्जी और बनिये की दूकान से घी भी मुफ्त लाया है । मेरे और मेरी मा के पास सिर्फ छः मुर्गिया हैं और हम उनके अडे बेचकर अपना पेट पालते हैं । हुजूर, आप हमें छः अडों के तीन आने दिला दे तो मैं चला जाऊंगा ।”

अब सारा मामला अनवर की समझ में आया । याकूब जोर-जबर्दस्ती से इन गरीबों से सारा सामान मुफ्त लाता था और अपने मालिक से उनके पूरे पैसे वसूल करता था । उसने सोचा कि एक बार जहाँ उसने इसकी शिकायत अपने ताया से कर दी तो यह सारी धाधली खत्म हो जाएगी ।

वह लड़का आसू पोछकर अब अपनी सिसकियाँ रोकने की कोशिश कर रहा था । अनवर ने उससे कहा, “तुम मेरे साथ आओ । और तुम भी आओ याकूब । मैं ताया-अब्बा से तुम्हारी शिकायत करूँगा ।” बावर्ची ने खानसामा को आख मारकर कुछ इशारा किया और अनवर के साथ हो लिया ।

तहसीलदार अमजदअली के पास ही एक कुर्सी पर सफेद गलमुच्छोवाला एक बूढ़ा आदमी बैठा उनसे कुछ बातें कर रहा था ।



वह बूढ़ा उनसे कह रहा था, “तहसीलदार साहब, अब मैं आपको क्या बताऊँ ? ये सुअर के बच्चे किसान, इनके दिमाग सातवे आसमान पर पहुँच गए हैं। इनमें से कुछ तो ऐसे हैं जो न हमारी बात सुनते हैं न सरकारी अफसरों की। ये अब हर काम के लिए मजदूरी मागतें हैं, जैसे इनके बाप-दादा को जमींदार का काम करने की मजदूरी ही तो मिलती थी। और मैं आपसे सच कहता हूँ कि यह सब उस बनिये की औलाद गांधी का किया-धरा है, उसने ही जनता के अधिकारों की बातें कर-करके इनके दिमाग बिगाड़ दिए हैं।”

तहसीलदार साहब ने हुक्का गुड़गुड़ाते हुए जवाब दिया, “लेकिन आप फिक्र न करें, ठाकुर साहब। सरकार ऐसे लोगों से निबटना अच्छी तरह जानती है। पानी में रहकर कोई मगर से बैर नहीं कर सकता।”

“ताया-अब्बा,” अनवर ने उनकी बातचीत में दखल देते हुए ऊँचे स्वर में कहा, “याकूब इस लड़के को अडों के पैसे नहीं देता और ऊपर से उसे गालियाँ दे रहा है और पीट रहा है।”

लेकिन अमजदअली को अपने भतीजे की शिकायत बिल्कुल समझ में नहीं आई। वे बोले, “क्यों याकूब, क्या हुआ ? जब वह अडे देने को तैयार है तो तुम इस लड़के को पीट क्यों रहे हो ?”

“लेकिन सरकार, यह हरामी तो इकार करता है और कहता है कि पैसे लिए बिना तो वह लाट साहब को भी अडे नहीं देगा। सरकार असल में इसने आपकी बड़ी तौहीन की है।”

यह सुनकर उस गाँव के पुस्तैनी जमींदार ठाकुर चननसिंह ने मामला अपने हाथ में ले लिया। यह तहसीलदार साहब पर अपनी धाक जमाने का अच्छा मौका था और बूढ़े जमींदार साहब यह मौका हाथ से नहीं जाने देना चाहते थे।

‘क्यों बे लौड़े, क्या नाम है तेरा ?’

“मेरा नाम भोला है ठाकुर साहब।”

“तेरे बाप का क्या नाम है ?”

“मेरा बाप तो मर चुका है ठाकुर साहब। पिछले साल जब हैजे की बीमारी फैली थी उसीमें मर गया था। उसका नाम रामू था।”

“तू जानता है, ये कौन साहब है ?” उन्होंने अमजदअली की तरफ इशारा करते हुए पूछा। भोला चुप खड़ा रहा, केवल उससे अपना सिर हिला दिया।

“तू इन्हे जानता है फिर भी तू इनके नाशते के लिए कुछ अडे देने से इकार करता है ? जानता है ये तुम्हे उस पेड से बाधकर तेरी खाल खिंचवा सकते है ? खैरियत जान कि तहसीलदार साहब बहुत दयालु आदमी है, नही तो सरकार का हुक्म न मानने के जुर्म मे तुम्हे गिरफ्तार करवाकर जेल मे बंद करवा देते । समझा ?” भोला डर के मारे पत्ते की तरह काप रहा था—“अच्छा, इस बार तो मैं तुम्हे माफ कराए देता हू । सलाम कर तहसीलदार साहब को और भाग जा यहा से ।”

“सलाम तहसीलदार साहब ! सलाम ठाकुर साहब ।” और भोला खाल खिंचवा ली जाने के डर से कापता हुआ अपनी फुर्तीली टांगो से वहां से जान बचाकर भागा । बूढ़े ठाकुर साहब ने विजय-गर्व के साथ अमजदअली की तरफ देखा और याकूब भी वहा से चल दिया । चलते-चलते उसने अनवर को इस तरह देखा मानो कह रहा हो, ‘मैं तो पहले ही से जानता था कि यही होगा ।’ अनवर बहुत अपमानित अनुभव कर रहा था । वह जानता था कि उसने भोला का पक्ष लेकर बहुत बड़ी बेवकूफी की थी । अब हर आदमी उसका मजाक उड़ाएगा , रऊफ और बिलकीस भी उसपर हसेगे । लेकिन उसका मन कहता था कि उसने ठीक किया । उसकी आखो मे आसू छलक आए और इस विचार से कि कहीं कोई उसे रोता देख न ले और उसे लज्जित न होना पड़े, वह भागकर अमराई के एक कोने मे जा बैठा । दोपहर के खाने के वक्त उसे बिलकुल भूख नहीं लगी । वह जानता था कि अब जिंदगी में कभी भी वह आमलेट शौक से नहीं खा पाएगा ।

.

अनवर गाव की तरफ जा रहा था । रास्ते मे उसे दो किसान बैसाख की तपती हुई धूप मे खेत जोतते हुए दिखाई दिए । उनकी काली नगी पीठे धूप मे चमक रही थी । खेमे मे सब लोग तीसरे पहर खाना खाकर सो रहे थे लेकिन अनवर की आखो मे नींद नहीं थी । भोला का भयभीत चेहरा उसका पीछा कर रहा था, उससे फरियाद कर रहा था और उसपर इल्जाम भी लगा रहा था । अब वह इसी भूत को शांत करने जा रही था । उसकी जेब मे लगभग दो रुपये की रेज़गारी खनक रही थी जो वह भोला को देने जा रहा था । इस प्रकार वह

उन तीन आनो का बदला चुका देना चाहता था जो याकूब ने भोला को नहीं दिए थे। लेकिन उस बेचारे जाहिल बावर्ची का क्या कसूर ? अनवर ने सोचा। इस शर्मनाक हरकत की असली जिम्मेदारी उसके ताया-अब्बा अमजदअली पर थी। एक क्षण के लिए उसके मन में अपने ताया-अब्बा के लिए सख्त नफरत पैदा हुई और उसने फैसला किया कि वह जल्दी से जल्दी घर वापस चला जाएगा।

गाव में घुसते ही अनवर ने एक बहुत ही दर्द-भरा गीत सुना। एक भोपड़ी में कुछ लडकिया मिलकर ढोलक पर एक बंधी हुई धुन से गा रही थी जिसकी वजह से उस धुन में और दर्द पैदा हो गया था। अनवर को दिल्ली के रईस-जादो की शायस्ता जबान सुनने की आदत रही थी। इसलिए वह पंजाबी के इस लोकगीत के बोल तो नहीं समझ पाया पर गाने की ठेक कुछ इस तरह थी—  
'दीवा बले सारी रात, मेरिया जालिमा, दीवा बले सारी रात।' दिया सारी रात क्यों जलता है ? औरत किसका इंतजार कर रही है ? यदि अनवर पंजाब के इस मशहूर लोकगीत से परिचित होता तो उसे यह भी मालूम होता कि औरत सदियों से अपने प्रेमी का इंतजार करती रही है। और वह अभी तक नहीं आया है।

लेकिन अनवर के दिमाग पर तो भोला का आसुओं से भीगा हुआ चेहरा छाया था। थोड़ी देर में अपने प्रेमी की प्रतीक्षा करनेवाली विरहिनी का करुण गीत दूर से आती हुई एक धुन के समान प्रतीत होने लगा। फिर भी न जाने क्यों इस गीत की धुन और बोल दोनों ही भोला की हालत पर पूरे उतरते थे। आखिर प्रेमी कहा चला गया था ? क्या जमींदार ने बेगार लेने के लिए पकड़ लिया था ? या तहसीलदार साहब ने पेड़ से बाध दिया था और उसकी खाल खिंचवा रहे थे।

गाव के कुछ बड़े-बूढ़ों को एक छायादार पेड़ के नीचे बैठकर आराम करते देखकर उसने उनसे पूछा, "रामू के बेटे भोला का घर कौन-सा है ?" उनमें से एक दाढ़ीवाले बूढ़े ने एक भोपड़ी की तरफ इशारा कर दिया। वह भोपड़ी बाकी सब भोपड़ियों से नीची और ज्यादा टूटी-फूटी दिखाई देती थी।

अपनी मजिल पर पहुँचकर अनवर को अदर जाते शर्म आ रही थी। लेकिन जो उद्देश्य लेकर वह निकला था जब तक उसे पूरा न कर लेता तब तक उसके मन को शांति नहीं मिल सकती थी।

“भोला ! भोला !” उसने जोर से आवाज दी । सफेद बालोवाली एक दुबली-पतली औरत ने दरवाजा खोला । वह भोला की मा थी और उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि साफ-सुथरे कपड़े पहने हुए एक लड़का उसके दरवाजे पर खड़ा है । लेकिन भोला ने, जो एक कोने में बैठा रूखी रोटी खा रहा था, अनवर को पहचान लिया और उसका स्वागत करने के लिए उठ खड़ा हुआ ।

“मा,” उसने कहा, “ये तहसीलदार साहब के भतीजे हैं । इन्होंने.. ”

लेकिन अनवर ने उसे वाक्य पूरा नहीं करने दिया । उसने जल्दी से अपनी जेब से पैसे की थैली निकाली और उसे भोला की आश्चर्यचकित मा के हाथों में रखकर बोला, “इसे आप ले लीजिए । भोला को स्कूल भेज दीजिएगा ।” और इतना कहकर वह वहां से भाग आया ।

गाव के वही बूढ़े जिन्हे अनवर ने आते समय देखा था, बैठे इस बात पर विचार कर रहे थे कि तहसीलदार साहब के भतीजे के गाव में आने के पीछे क्या रहस्य हो सकता है । कुछ ही मिनट बाद उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वही लड़का तेजी से भागा चला जा रहा है जैसे कोई भूत उसका पीछा कर रहा हो । शहर के इन अमीरों के ढंग भी निराले होते हैं ।

अनवर ने गाव के बाहर ही निकलकर दम लिया । उसे डर था कि कहीं भोला या उसकी मा पैसे वापस करने उसके पीछे न आ रहे हों । खेतों के किनारे पहुंचकर वह दम लेने के लिए रुका । उसके मन में सतोष की एक विचित्र-सी पुलक थी । पीछे से एक धुन के साथ ढोलक की आवाज सुनाई दे रही थी और लड़कियां मिलकर अभी तक वही गीत गा रही थी—दीवा बले सारी रात ।

उसके सामने जुते हुए खेत फैले थे । कुछ खेतों को किसान अभी तक जोत रहे थे । बीच-बीच में वे अपने बैलों की रपतार तेज करने के लिए उनकी पीठ पर एक चाबुक जड़ देते थे । और खेतों के ऊपर थोड़ी ही ऊंचाई पर काले-काले बादल मंडरा रहे थे । यह आनेवाले तूफान का स्पष्ट संकेत था ।



तूफान से पहलें

## सुसराल

जिन दिनों अनवर अपने ताया-अब्बा के यहा था उन्ही दिनों एक तूफान की तैयारी हो रही थी। देश-भर में कानून तोड़ने की एक अजीब हवा फैल गई थी। हर तरफ विद्रोह की भावना फैली हुई थी और इस भावना की अभिव्यक्ति बिल्कुल ही अप्रत्याशित क्षेत्रों में हो रही थी। जिन लोगों को राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं थी, जो स्वभावतः नम्र तथा शांतिप्रिय थे, जो स्वार्थी और दबू थे, जिन्होंने जिन्दगी-भर सरकारी अफसरों के तलुए चाटे थे और उनकी खुशामद की थी—वे सभी लोग राजनीतिक आंदोलन में खिचकर आ गए थे। दिल्ली लौटने के कुछ दिन बाद अनवर ने एक दिन अपने अब्बा की बैठक में सुना कि सरकार को अवज्ञा के जुर्म में सारे देश में जो पहले दो आदमी गिरफ्तार किए गए थे वे पानीपत के दो मुसलमान थे, पानीपत के उसी सोए हुए शहर के जहा वह पिछले साल गया था। अकबरअली को मीर साहब के ये शब्द याद आ गए कि “कम से कम पानीपत के हम शरीफ लोग तो आटा-दाल बेचनेवाले इस टटपूजिए बनिये से कोसों दूर रहेंगे।” और इन शब्दों को याद करके वे मुस्करा दिए। जब पानीपत में इतनी ज़बर्दस्त लहर आई थी तो बाकी देश में क्या हुआ होगा ?

इस तूफान के पीछे, जिसने सारे देश को अपनी लपेट में ले लिया था, ऐतिहासिक, जातीय, राजनीतिक तथा आर्थिक शक्तियां काम कर रही थी। अनवर की समझ में यह तो नहीं आया था कि यह सारा भगडा किन समस्याओं को लेकर हो रहा था, पर उसे इतना आभास जरूर था कि सरकार जुल्म कर रही थी और लोग त्रस्त होकर सरकार के इस जुल्म का विरोध कर रहे थे—उसके मन में यह चित्र जलियावाला बाग की घटना के रूप में अंकित हो चुका था और इस भयानक घटना की छाप जिसे उसने स्वयं अपनी आंखों से देखा था, उसके हृदय से कभी नहीं मिट सकती थी। इस राजनीतिक आंदोलन की

जड में गहरा आर्थिक असंतोष छिपा हुआ था। दरिद्रताग्रस्त किसानों में अपने अधिकारों की चेतना पैदा हो रही थी, वे इस बात को समझते जा रहे थे कि वे जीवन-भर दूसरों की गुलामी करने और भूखो मरने के लिए ही नहीं पैदा होते, उनका भविष्य अधिक उज्ज्वल हो सकता है। अनवर ने गुडगाव के आसपास के गावों में किसानों की हालत देखी थी और वह उस छोटे-से किसान लड़के भोला को नहीं भूल सकता था जिसने तहसीलदार साहब के जालिम बावर्ची को छः अडे देने से इकार कर दिया था। सारे देश में अवज्ञा की जो भावना फैलती जा रही थी, भोला उसीका प्रतीक था।

अनवर फिर स्कूल जाने लगा लेकिन ऐसी हलचल के जमाने में पढाई में मन लगाने का कोई सवाल ही नहीं हो सकता था। हर तरफ जुलूसों, सार्वजनिक सभाओं, देशभक्ति के गानों और नारों का दौरा-दौरा था। हर तरफ एक नया शब्द सुनाई देता था—‘बायकाट’। हर चीज का बायकाट किया जा रहा था—सरकारी नौकरियों का, अदालतों का, स्कूलों और कालेजों का और विलायती कपड़ों का। रोज सरेबाजार विलायती हैटों और सूटों के ढेर जलाए जाते थे और बड़े-बड़े फैशनवाले लोग भी गर्व के साथ खद्दर के कपड़े पहनते थे। एक दिन जब अनवर ने डाक्टर असारी को दरियागंज में अपनी मोटर पर जाते देखा तो वह उन्हें आसानी से पहचान भी न सका। उनका ठाठदार विलायती सूट अब उनके जिस्म पर नहीं था। उसके बजाय वे खद्दर का लम्बा-सा कुरता और पाजामा पहने हुए थे। उनकी मूँछें अब भी डरावनी लगती थीं पर उनकी मुस्कराहट में पहले जैसी ही मिठास थी। अनवर को इस बात पर बड़ा गर्व हुआ कि डाक्टर साहब उसे भूले नहीं थे। उसे देखते ही उन्होंने अपनी मोटर रोकी और उसके स्वास्थ्य के बारे में पूछने लगे।

बहुत ही रोमांचकारी और अविस्मरणीय दिन थे। इससे पहले शायद ही कभी हिंदुओं और मुसलमानों ने इतने खुले तौर पर और इतने उत्साह के साथ आपस में भाईचारा दिखाया होगा। जुलूसों में हिंदू और मुसलमान मिलकर ‘अल्लाहो-अकबर’ और ‘वदेमातरम्’ के नारे लगाते थे। अपनी सद्भावना का प्रमाण देने के लिए वे एक-दूसरे के हाथ से पानी पीते थे और हिंदू नेताओं

को जुम्मे की नमाज के बाद मुसलमानों के सामने भाषण देने के लिए जामा मस्जिद में भी बुलाया जाता था ।

रोज सड़को पर नये-नये गीत सुनाई देते थे, जोशीले गीत जिन्होंने देश के नौजवानों में उत्साह की ज्योति जगा दी थी । कराची में अली-बधु गिरफ्तार कर लिए गए थे और उनकी बूढ़ी माँ महात्मा गांधी के साथ आंदोलन में शामिल हो गई थी । जैसे-जैसे समय बीतता गया दर्जनो नये गीत हवा में गूँजते गए । अनवर ने भी बिना किसी कठिनाई के इनमें से कुछ गीत सीख लिए थे :

कह रहे हैं कराची के कैदी  
हम तो जाते हैं दो-दो बरस को ।  
बोली अम्मा मुहम्मदअली की  
जान बेटा खिलाफत पे दे दो ।

कुछ गीत ऐसे भी थे जिनमें अंग्रेजों का मजाक उड़ाया गया था, जैसे .

बोल गई माई लार्ड कुकडू-कू

जब कभी कोई अंग्रेज अकेला जाता हुआ दिखाई दे जाता तो लड़के मुर्गे की बोली की नकल करते और हवा में कुकडू-कू की आवाज़ गूँज उठती जिसकी वजह से अपनी अकड़ में भूले हुए अंग्रेज साहब को बड़ी उलझन होती । अनवर स्वभाव से ही बहुत दबबू था इसलिए वह खुले-आम उपहास के इन प्रदर्शनों में कोई भाग नहीं लेता था, लेकिन विद्रोह की जो भावना चारों ओर फैली हुई थी उसका असर उसपर भी हुआ था और एक दिन स्कूल से लौटते समय उसे चादनी चौक में एक अंग्रेज सिपाही अकेला जाता हुआ दिखाई दिया । उससे न रहा गया और उसने चिल्लाकर कहा, “बोल गई माई लार्ड कुकडू-कू ।” सिपाही ने मुड़कर देखा कि उसका यह अपमान किसने किया था । अनवर ने जब उसका क्रोध से लाल चेहरा देखा तो वह जान लेकर भागा । इससे पहले कि शासक-जाति का वह कुद्ध सिपाही उसका पीछा करता, वह वहाँ से भाग खड़ा हुआ । लेकिन अनवर के दिल में उस अंग्रेज का भय समा गया था इसलिए वह पूरी तेजी से भागा चला जा रहा था । उसकी कल्पना में जलियावाला बाग का वह भयानक चित्र घूम रहा था—लालमुँहें सिपाही उसकी तरफ बढ़के ताने कतार बांधे चले आ रहे थे और उस रात इन सिपाहियों ने स्वप्न में भी उसका पीछा नहीं छोड़ा ।



अनवर एक ऐसे युग से गुजर रहा था जब हर तरफ उथल-पुथल हो रही थी । लेकिन अभी तक यह उसके लिए एक रोचक तथा रोमाचकारी नाटक-मात्र था । उसकी निजी जिन्दगी पर इसका कोई असर नहीं पडा था । वह तट पर खडा हुआ तूफान की लहरों से सघर्ष करनेवालों का तमाशा देख रहा था ।

अमृतसर से खत आया था । रतन की मा ने लिखा था कि रतन गिरफ्तार कर लिया गया था और एक गैरकानूनी जुलूस में शामिल होने के जुर्म में उसे साल-भर की कैद की सजा दी गई थी । अनवर रोज सारे देश में गिरफ्तारियों की खबरे पढता और सुनता आया था । इनमें बड़े-बड़े नेता भी थे, पर यह खबर पाकर कि उसका दोस्त जेल में था उसे आघात-सा पहुँचा । मध्यमवर्ग के रूढ़ियों में जकड़े हुए वातावरण में पालन-पोषण होने के कारण अनवर जेलखाने को एक बुरी जगह समझने लगा था, जहाँ चोर, डाकू और बदमाश लोग रखे जाते थे । लेकिन अब हालत बदल गई थी और जेल में सजा काटना बड़ी इज्जत की बात समझा जाने लगा था । देश-भर में हजारों लोग जेल जा रहे थे । अखबारों में इतनी जगह नहीं थी कि उन सबके नाम छाप सकें । कुछ दिन बाद उसके पास अमृतसर डिस्ट्रिक्ट जेल से रतन का खत आया ।

“मेरे प्यारे दोस्त अनवर, तुम्हें यह जानकर खुशी होगी कि मैं यहाँ आजकल अपनी सुसराल में हूँ ”

सुसराल ! रतन ने जेल को सुसराल कहा था और फिर जेल के जीवन का वर्णन किया था । वहाँ वह बहुत खुश मालूम होता था । उसके साथ कांग्रेस और खिलाफत के बहुत-से कार्यकर्ता थे । रतन ने बड़े गर्व से लिखा था—“मैं यहाँ सबसे छोटा हूँ और सब लोग मेरा बेहद ध्यान रखते हैं । मेरा साल-भर की स्कूल की पढाई का तो हर्ज होगा पर यहाँ बहुत-से विद्वान लोग हैं जो मुझे हर वक्त कुछ न कुछ सिखाने को तैयार रहते हैं । मुझे यकीन है कि यहाँ मैं स्कूल के मुकाबले में ज्यादा काम की बातें सीखूँगा ।” जाहिर है कि रतन मानसिक स्तर पर अनवर से बहुत आगे था । अनवर का दिमाग अभी तक बच्चों जैसा था ।

सुसराल ! जेल हिन्दुस्तान के लाखों लोगों के लिए सुसराल बन गई थी । जब भी कोई गिरफ्तार किया जाता था तो उसके दोस्त और साथी उसे हार

पहनाते थे, उसपर फूलों की वर्षा करते थे, उसे बधाइया देते थे, उससे देर तक हाथ मिलाते थे और गले मिलकर हस-हसकर उसे इस तरह विदा करते थे जैसे वह सचमुच अपनी दुलहिन को लेने जा रहा हो।

एक दिन वह भी आया जब अकबरअली ने काका रामेश्वरदयाल और अपने दूसरे दोस्तों के साथ बातचीत के दौरान में बिलकुल इस ढंग से कहा जैसे वे व्यापार के काम से अमृतसर या कानपुर जाने की बात कहते थे, “कल मैं सुसराल जा रहा हूँ।”

कोने में बैठे हुए अनवर का दिल धक् से रह गया और उसे ऐसा लगा जैसे किसीने उसके दिल में छुरा उतार दिया हो। इस विचार से कि उसके अब्बा साल-भर के लिए या शायद दो साल के लिए चले जाएंगे, अनवर को बहुत दुख हो रहा था। लेकिन साथ ही यह उसके लिए बड़े गर्व की भी बात थी। अनवर जानता था कि अब वह गर्व से अपना सिर ऊंचा करके चल सकेगा और अपने मित्रों से कह सकेगा, “मेरे अब्बा भी सुसराल गए हैं।” और सब लोग उसकी उसी तरह इज्जत करेंगे जैसे किसी बहादुर आदमी के बेटे की इज्जत की जाती है।

दूसरे दिन अकबरअली गिरफ्तार कर लिए गए और रस्मी अदालती कार्रवाई के बाद उन्हें पंद्रह महीने की सजा हो गई।

अनवर को इस महान घटना की एक-एक बात याद थी। उसके अब्बा रोज के मुकाबले में जल्दी उठे थे और नहा-धोकर उन्होंने धुले हुए कपड़े पहने थे और फिर अपनी दाढ़ी पर कघा किया था। हर जुम्मे को उनका यही दस्तूर था, पर आज उन्होंने हर बात की ओर कुछ ज्यादा ही ध्यान दिया था, उन्होंने नहाने-धोने और कपड़े बदलने में कुछ ज्यादा ही वक्त लगाया था। जब वे तैयार हो गए तो उन्होंने फूफी-अम्मा को नोटों की एक गड्डी देकर कहा, “लो, यह रखो। शायद मैं काफी दिन तक वापस न लौट सकूँ।” फिर उन्होंने अजुम को गले लगाकर उसे प्यार किया और अनवर की बांह पकड़कर उसे अपने साथ जनानखाने से बाहर ले गए।

दोपहर के वक्त अनवर अपने अब्बा के साथ जुम्मे की नमाज पढ़ने जामा

मस्जिद गया। जामा मस्जिद के लाल पत्थर सूरज की रोशनी में चमक रहे थे। मस्जिद में लोग खचाखच भरे हुए थे और मुअज्जिन के इशारे पर एक के बाद एक लोगो की न जाने कितनी कतारे खड़ी हो जाती थी। अनवर इस दृश्य से हमेशा बहुत प्रभावित होता था। उसे धर्म के बारे में इससे ज्यादा कुछ नहीं मालूम था कि उसके अब्बा सचाई और सदाचार पर जोर देते थे और मौलवी साहब जन्नत और जहन्नुम की जो बातें करते थे, उससे ज्यादा अनवर को मजहब के बारे में कुछ भी नहीं मालूम था। हजारों लोगो को एकसाथ नमाज पढ़ते देखकर, उन्हें एकसाथ उठते और एकसाथ सिजदे में गिरते देखकर वह मन्त्रमुग्ध रह जाता था। उसके अब्बा ने अक्सर उसे बताया था कि इस्लाम में जमात बाधकर नमाज पढ़ने का जो तरीका बताया गया है उसका एक लोक-तान्त्रिक आधार है। हमेशा की तरह आज भी जब अनवर ने चारों ओर नजर डाली तो उसने देखा कि सभी वर्गों के लोग कंधे से कंधा मिलाकर वहां नमाज पढ़ रहे हैं—कलफदार मलमल के कुरते पहने हुए गोरे-चिट्टे रईस, कढ़ी हुई गोल टोपिया पहने हुए छोटे-मोटे दूकानदार, करखनदार और मोटे गाढ़े के कपड़े पहने हुए किसान सभी वहां मौजूद थे। जब सारे नमाजी एकसाथ सिजदे में गिरते थे और कुरान की आयते पढ़ते थे तो अनवर के हृदय में धार्मिक उत्साह के बजाय भाईचारे और बिरादरी की एक अजीब भावना पैदा होती थी।

नमाज के बाद एकत्र जनसमूह ने एक सार्वजनिक सभा का रूप धारण कर लिया और कई खद्दरपोश हिन्दू मस्जिद में आए और उन्हें नमाजियों के मजमे के सामने लाल पत्थर के फर्श पर बैठने की जगह दी गई। लोगो ने भाषण दिए। सबसे आखिर में अकबरअली का भाषण हुआ और वह सबसे अच्छा भाषण था। अनवर ने बड़े गर्व के साथ अपने अब्बा को उठकर मिम्बर पर जाते देखा। घनी काली दाढ़ी में उनके चेहरे पर गर्व और तेज की चमक थी। उनके मच पर आते ही चारों ओर से 'अल्लाहो-अकबर' के नारे लगने लगे। इतने में एक कोने से भीड़ को चीरती हुई 'इन्कलाब जिन्दाबाद' की आवाज सुनाई दी और फौरन भीड़ ने नारा उठा लिया। बार-बार लोगो ने एक आवाज से इस नारे को दुहराया और इस गूजते हुए स्वर की लहरें मच

की ओर बढ़ती रही। जनता के उत्साह के इस प्रथम प्रदर्शन के बाद अकबर-अली ने अपना भाषण शुरू किया। अनवर उस आवाज से भली भाँति परिचित था। अकबरअली की आवाज ज़रूरत के मुताबिक बहुत सख्त भी हो जाती थी और बहुत नर्म भी। अपनी इसी आवाज में उन्होंने बताया कि विदेशी शासन में लोगो को कितने जुल्म और कितनी बेइन्साफिया सहनी पड़ती थी, किस तरह लोगो को जलील किया जाता था। उन्होंने बताया कि इतिहास में कितनी ही बार योरूप की ताकतों ने तुर्की के टुकड़े-टुकड़े कर देने की कोशिश की थी। उन्होंने जलियावाला बाग के कत्ले-आम का जिक्र इतने जोशीले शब्दों में किया कि कई सुननेवालों की आँखों में आँसू आ गए।

उन्होंने हजारों गिरफ्तारियों का जिक्र किया, जिसमें मुहम्मदअली और शौकतअली भी शामिल थे और यह ऐलान किया कि और भी बहुत-से लोग गिरफ्तार किए जाएंगे। शायद इसी मस्जिद में मीटिंग के बाद कुछ लोग गिरफ्तार किए जाए। लेकिन साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि जनता शांत रहे और अपने-आपको काबू में रखे। उन्होंने कहा, “महात्मा गांधी ने कसम ली है कि हमारी आजादी की लड़ाई अहिंसा की बुनियाद पर लड़ी जाएगी और हम उन्हें मायूस नहीं करेंगे।” जब उन्होंने अपना भाषण खत्म किया तो लोगो ने फिर ‘अल्लाहो-अकबर’ और ‘इन्कलाब जिन्दाबाद’ के नारे लगाए। अकबरअली के भाषण के दौरान में अनवर ने उनके एक-एक शब्द को बड़े ध्यान से सुना, भले ही उसकी समझ में हर बात न आई हो। वह खुशी और गर्व के मारे फूला नहीं समा रहा था। “मेरे अब्बा सचमुच कितने शानदार और होशियार आदमी हैं।”

मीटिंग खत्म हुई और लोग मस्जिद के तीन फाटकों से बाहर निकलने लगे। घबराहट में अनवर अपने अब्बा का कोट पकड़े हुए उनके साथ चिपका रहा। उसे डर था कि कहीं वह इस भीड़ में अपने अब्बा से अलग न हो जाए। भीड़ के साथ वे भी मस्जिद के पूर्वी फाटक से बाहर निकले। इतने में पुलिस के एक दारोगा छः-सात सिपाहियों के साथ वहाँ आ पहुँचे और अकबरअली के पास आकर बड़ी शराफत से बोले, “अकबरअली साहब, आप मेहरबानी करके मेरे साथ कोतवाली तक चलिए।”

हर आदमी जानता था कि इसका क्या मतलब है। अनवर को भी कोतवाली



के इस बुलावे के बारे में किसी तरह का शुबहा नहीं था। वह जानता था कि उसके अब्बा वहा गिरफ्तार कर लिए जाएंगे। न जाने क्यों वह इस बात के बारे में नहीं सोच रहा था कि उसकी अपनी जिन्दगी में कितनी गड़बड़ी पैदा होगी बल्कि उसे इस बात पर ताज्जुब हो रहा था कि उसके अब्बा को गिरफ्तार करने के लिए जो पुलिस का अफसर आया था वह भी हिन्दुस्तानी था। बड़े आश्चर्य के साथ वह दारोगा साहब की खाकी पगड़ी के कलफदार तुर्रे को घूरता रहा। फिर उसकी नज़रे नीचे उतरी और उनकी काली चमकदार पेटी और उतने ही चमकदार काले चमड़े के केस में रखे हुए रिवाल्वर पर जम गई।

“अच्छा, तो सुमराल से बुलावा आ गया,” अकबरअली ने हसते हुए कहा।  
“चलिए, मैं तो तैयार हूँ।”

लेकिन जो लोग वहा जमा थे उनका रवैया दूसरा ही था। उन्होंने चिल्लाकर कहा, “नहीं, यह नहीं हो सकता! इस दारोगा को शर्म नहीं आती? गद्दार कहीं का! इस तरह के हिन्दुस्तानी तो अंग्रेजों से भी बदतर हैं। उतार लो इसकी पगड़ी।” अनवर ने देखा कि दारोगा साहब के चेहरे का रंग उड़ गया, उनकी ऐंठी हुई मूँछें कापने लगी, उनकी रंगे तन गई और उनका हाथ रिवाल्वर पर पहुँच गया। अनवर समझ गया कि कोई गड़बड़ होनेवाली है। वहा हजारों की तादाद में लोग जमा थे और पुलिसवाले थे कुल छ-सात। लोगों की आवाज में गुस्सा बढ़ता जा रहा था। “टोड़ी बच्चा! गद्दार! यह अपने को समझता क्या है? कहीं का लाट साहब है? ह, ह, ह! और अब लाट साहब को भी कौन पूछता है!” इतने में किसी हिम्मतवाले ने जोर का एक हाथ मारा और दारोगा साहब की पगड़ी धूल चाटने लगी। लोगों ने बहुत गुस्से में आगे बढ़कर दारोगा साहब को घेर लिया था और वे भीड़ में इस तरह घिर गए थे कि अपना रिवाल्वर भी नहीं निकाल सकते थे। दारोगा साहब की आँखों में खौफ था। अनवर यह सोचकर घबरा उठा कि ‘ये लोग उसे मार डालेंगे। ये लोग उसे मार डालेंगे।’ लेकिन इतने में भीड़ की गुस्से से भरी हुई आवाजों के ऊपर अकबरअली की गूँजती हुई आवाज सुनाई दी—“भाइयो, यह मत भूलिए कि हमने अहिंसा की कसम खाई है।” उन्होंने ये शब्द बहुत नमी से लेकिन बहुत ही दृढ़ता के साथ कहे थे और किसीको उनकी बात टालने की मजाल नहीं हो

सकती थी। भीड़ पीछे हटने लगी। जो लोग दारोगा साहब के बिलकुल पास खड़े थे वे पीछे हटने लगे और दारोगा साहब ने अपनी पगड़ी फिर अपने सिर पर रख ली। उसका तुरा टेढ़ा हो गया था और धूल में भर गया था।

“अनवर, अब मैं जा रहा हूँ,” उसके अब्बा ने कहा। “मेरे पीछे ठीक से रहना। फूफी-अम्मा का कहना मानना और अगर किसी चीज की जरूरत हो तो रामेश्वर काका के पास चले जाना। अच्छा, खुदा हाफिज।” बस इतना कहकर वे दारोगा साहब के साथ चले गए। न उन्होंने प्यार का कोई लफ्ज कहा, न अपने बेटे को प्यार से गले लगाया, न चलते वक्त प्यार ही किया, न पीठ पर थपथपाया ही। अनवर अपने अब्बा को अच्छी तरह जानता था इसलिए उसे इस बात की आशा ही नहीं थी कि वे खुले-आम अपनी भावनाओं का प्रदर्शन करेंगे, फिर भी न जाने क्यों उसका हृदय अपने पिता से प्यार का कोई शब्द सुनने के लिए, उनके प्यार का कोई प्रदर्शन देखने के लिए तड़प उठा ताकि बिदाई के इस क्षण की व्यथा कुछ कम हो सके। अकबरअली दारोगा साहब के साथ चल दिए और भीड़ भी उनके साथ हो ली। अनवर लाल पत्थर की उन सीढ़ियों के ऊपर अकेला खड़ा रह गया। उन सीढ़ियों का हर जीना पिछले जीने से ज्यादा चौड़ा था और सबसे नीचे सड़क से मिला हुआ जो जीना था वह सबसे चौड़ा था। वह कुछ देर आराम करने के लिए वही सीढ़ी पर बैठ गया, उसे पत्थर की गर्मी भी महसूस नहीं हुई। बड़ी देर तक वह वहाँ धूप में बैठा रहा और यह सोचता रहा कि अब्बा के बिना उसकी जिन्दगी कैसी गुजरेगी। वह सोच रहा था कि क्या वह अब्बा के बिना रह भी पाएगा कि नहीं। फिर उसका ध्यान फूफी-अम्मा और अजुम की ओर गया और वह सोचने लगा कि अब्बा की गिरफ्तारी की खबर सुनकर उनपर क्या असर होगा। फिर उसे अपने अब्बा की यह बात याद आई कि “अगर किसी चीज की जरूरत हो तो रामेश्वर काका के पास चले जाना।” हा, वह दूकान पर जाकर काका से मिलेगा। जब वह चलने के लिए उठा तो उसे सामने लालकिला दिखाई दिया जिसके सदर फाटक पर यूनियन जेक लहरा रहा था। “यह झंडा यहाँ कितने दिन तक अभी और लहराएगा,” अनवर सीढ़ियाँ उतरते हुए सोच रहा था।

## इतिहास का एक कण

लाला रामेश्वरदयाल नियम के बहुत पाबद थे। उनका शरीर बहुत दुबला-पतला था और आए दिन कोई न कोई बीमारी उन्हें लगी ही रहती थी, इसलिए डाक्टरों ने उन्हें राय दी थी कि अगर वे जिन्दा रहना चाहते हैं तो उन्हें खाने-पीने के मामले में बहुत परहेज करना होगा; काम करने, आराम करने और सोने का वक्त बाधना होगा। डाक्टरों ने यह भी कहा था कि वे जोश-खरोश-वाली बातों से दूर रहे, और इसीलिए उनकी बीवी उन्हें मीटिंगों में नहीं जाने देती थी। लाजवती का शरीर जितना भारी था उतनी ही भारी उसकी आवाज़ भी थी। उसने सारी गृहस्थी को, और अपने पति को भी, मजबूती से जकड़ रखा था। उसके कोई बच्चा नहीं हुआ था और इसलिए वह अपनी सारी ममता अपने बीमार पति की देखभाल करने और उनका हृद से ज्यादा ध्यान रखने में दिखाती थी, लेकिन साथ ही यह भी चाहती थी कि जो वह कहे उसका पालन किया जाए, मानो वह उनकी पत्नी नहीं बल्कि उनकी मा हो। बड़े वक्त से वह लालाजी को गोलियां खिलाती, दवा पिलाती, उनके गिरते हुए बालों में तेल मलती, उन्हें खाना खिलाती और आराम करने या दूकान जाने की आज्ञा देती और अगर वे ठीक वक्त से वापस न लौटते तो उनकी खैरियत नहीं थी। तीसरे पहर तीन बजे से पांच बजे तक उनका आराम करने का वक्त था और अगर इस बीच में दूकान से कोई जरूरी से जरूरी सदेश भी आता तो वह उन तक न पहुंचाती। इस समय वह किसी भी प्रकार का विघ्न बर्दाश्त नहीं कर सकती थी।

वह अपने पति को पलंग पर लेट जाने की आज्ञा तो दे सकती थी पर उनकी आखों में नींद बुलाना उसके बस में नहीं था। और आम तौर पर रामेश्वरदयाल यह दो घंटे का वक्त अजीब-अजीब बातें सोचने में खर्च करते थे, जिनके बारे में वे अपनी बीवी को कुछ भी बताने का साहस नहीं कर सकते थे। वे पड़े-पड़े अपने बचपन के बारे में, अपने स्कूल के दिनों के बारे में और अपने

दोस्तों के बारे में सोचते रहते थे। वे सोचते रहते थे कि जवानी में उनके दिल में कैसी-कैसी तमन्नाएँ थी, कहा-कहा की यात्राएँ करने के मसूबे उनके दिल में थे, और जिन्दगी में किन रंगीनियों की योजनाएँ उन्होंने बनाई थी। परन्तु शरीर कमजोर होने के कारण और इरादा उससे भी कमजोर होने के कारण वे घर-गृहस्थी से बधकर रह गए थे और ब्याह हो जाने के बाद तो उनके लिए आखिरी रास्ता भी बद हो गया था। अब जिन्दगी की सारी रंगीनी उनके दिमाग में ही रह गई थी और अपनी पत्नी के नादिरशाही क्रोध से बचने का उनके पास केवल यह उपाय रह गया था कि वे दो घंटे के लिए सोने का बहाना करके लेट जाते थे।

आज वे खास तौर पर अकबरअली के बारे में सोच रहे थे। उनके दोस्त और साभेदार को जेल गए तीन महीने से ज्यादा हो चुके थे जिसकी वजह से रामेश्वरदयाल पर काम का बोझ बढ़ गया था। उन्हें इसका कोई दुख नहीं था, क्योंकि वे अकबरअली से मुहब्बत करते थे और कौम की खिदमत में जेल जाने के लिए उनकी बड़ी इज्जत करते थे। वे मन ही मन सोच रहे थे कि काश वे भी अकबरअली की तरह लम्बे-तगड़े, निडर और हिम्मतवाले होते। उनका जी चाह रहा था कि काश वे भी अकबरअली के साथ जेल में होते और उनके साथ उन दिलचस्प बहसों में हिस्सा लेते जिनमें उन्हें बहुत मजा आता था और जो उनके दोस्त की गिरफ्तारी के बाद खत्म हो गई थी।

वे जेल में अकबरअली से जाकर मिलने की भी सोच रहे थे। पर साथ ही उन्हें इस बात की भी फिक्र थी कि उनकी बीवी को इसका पता न चलने पाए। क्योंकि उनकी पत्नी अकबरअली को बिल्कुल पसंद नहीं करती थी और हमेशा बड़े तिरस्कार से उन्हें 'वह तुम्हारा मुमलमान दोस्त' कहती थी और यह बात उनके गले के नीचे नहीं उतरती थी कि उनके पति की एक दूसरे मजहब के आदमी के साथ इतनी गहरी दोस्ती हो। लेकिन वे जानती थी कि अब इतनी पुरानी दोस्ती को तोड़ना असंभव था और इसलिए उन्होंने किसी तरह अपने मन को समझा लिया था।

पासवाले कमरे में कुछ आवाज़ें सुनकर रामेश्वरदयाल का ध्यान भग हो



गया। लाजवती किसीसे बातें कर रही थी। सहसा दूसरी आवाज को पहचानकर उनका दिल खुशी से उछल पड़ा। वह अनवर की आवाज थी।

“मैंने तुमसे कह दिया है कि लालाजी सो रहे हैं और मैं उनको जगा नहीं सकती,” लालाजी ने अपनी पत्नी को कहते सुना। “अगर तुम्हें मिलना ही है तो कल दूकान पर मिल लेना।”

“लेकिन काकी मैं अकबरअली साहब का बेटा अनवर हूँ। मेरे अम्मा ने कहा था कि अगर कोई जरूरत पड़े तो काका से मिल लेना। सुबह मुझे स्कूल जाना होता है। इसलिए अगर आपको कोई एतराज न हो तो काका के उठने तक मैं यहाँ इंतजार कर लूँगा।” अनवर की आवाज़ में बड़ी शिष्टता और विनम्रता थी, पर ललाइन पर उसका कोई असर नहीं हुआ।

“नहीं, नहीं। तुम किसी और वक्त उनसे मिल लेना। मालूम नहीं कितनी देर में उठेंगे।”

“अच्छी बात है काकी। काका से इतना कह दीजिएगा कि अनवर आया था।” अनवर के स्वर में घोर निराशा थी। वह निराश होकर वापस जा रहा था।

“अनवर ! अनवर ! अदर आ जाओ। मैं जाग रहा हूँ।” उन्होंने चिल्लाकर कहा और अनवर भागकर कमरे में पहुँच गया। उसका चेहरा खुशी से खिल रहा था। लाजवती भी झुंझलाई हुई उसके पीछे-पीछे आई और उन्होंने तीसरे पहर का आराम करने का नियम भंग करने के लिए अपने पति को घूरकर देखा और फिर झल्लाकर पैर पटकती हुई कमरे के बाहर चली गई।

“कहो बेटा, कैसे हो ?” रामेश्वर काका ने बड़े प्यार से अनवर को गले लगाकर कहा। वे अनवर को हमेशा ‘बेटा’ कहते थे और हालांकि इसमें कोई असाधारण बात नहीं थी कि पिता के मित्र पिता जैसा व्यवहार करे पर अनवर को इससे हमेशा उलझन होती थी। उसके अम्मा अपनी मुहब्बत को इतना कम जाहिर करते थे कि इस तरह के लाड-प्यार से अनवर को कुछ शर्म भी आती थी और वह कुछ झुंझलाता भी था।

“तो बेटा, बताओ किस काम से आना हुआ ?” अजुम और फूफी-अम्मा और खुद अनवर के स्वास्थ्य और उसकी स्कूल की पढ़ाई के बारे में सारी पूछ-ताछ करने के बाद उन्होंने पूछा।

“काका, जेल से अब्बा का खत आया है,” अनवर ने बड़े उत्साह से कहा। “उन्होंने लिखा है कि मैं आपके साथ उनसे मिलने आ सकता हूँ। हम दोनों को सरकार से उनसे मिलने की इजाजत मिल सकती है। काका, आप डिप्टी-कमिश्नर को खत लिख दीजिए और हम लोग जल्दी उनसे मिलने चले। तीन महीने से मैंने अब्बा को नहीं देखा है। क्या हम लोग कल चल सकते हैं?”

रामेश्वरदयाल लडके की अधीरता पर बड़े स्नेह से मुस्करा दिए। “हा, हा अनवर। तुम्हारे अब्बा से मिलने जरूर चलेगे। लेकिन मुलाकात की इजाजत लेने में एक दिन से ज्यादा का वक्त लग जाएगा। पर तुम चिन्ता न करो। जब सब कुछ तै हो जाएगा तो मैं तुम्हें खबर कर दूंगा।”

अनवर को यह जानकर बहुत सतोष हुआ कि रामेश्वर काका अब्बा से मुलाकात का इतजाम करने की पूरी कोशिश करेंगे। वह चलने के लिए उठा पर उसके काका ने उसे रोक लिया।

“जरा रुको अनवर, यह लो।” और इतना कहकर उन्होंने तकिये के नीचे से एक रुपया निकालकर उसकी तरफ बढ़ा दिया। अनवर के अब्बा उसे खर्च करने के लिए रोज सिर्फ एक आना देते थे। चादी का चमकता हुआ रुपया देखकर अनवर बहुत खुश हुआ। पर उसका पालन-पोषण बहुत सख्ती के वातावरण में हुआ था और उसे इस प्रकार के उपहार लेने से मना किया गया था।

“एक रुपया काका।” उसने आश्चर्य से कहा। “मैं इसका क्या करूंगा?”

“ले लो बेटा,” और यह कहकर रामेश्वरदयाल ने रुपया उसके हाथ में रखकर जल्दी से उसे कमरे के बाहर कर दिया।

जेल की ऊँची-उँची दीवारें किसी किले की दीवारें लगती थीं। लोहे के बड़े-से फाटक में मोटी मोटी सलाखें लगी थीं, लेकिन अनवर और रामेश्वरदयाल के अदर आने के लिए फाटक की एक छोटी-सी खिड़की खोल दी गई। एक सतरी कंधे पर सगीन लगी हुई बटूक रखे, उस बरामदे के आगे पहरा दे रहा था जिसमें जेल के दफ्तर के दरवाजे खुलते थे। जिस समय उन्हें सुपरिटेण्डेंट के दफ्तर में ले जाया जा रहा था उस समय अनवर बहुत डर रहा था। कहानियों में उसने सुना

और पठा था कि लोगो को किस तरह तहखानो मे डाल दिया जाता था और उन्हे कैसी-कैसी यातनाए दी जाती थी। इस समय उसकी कल्पना मे वही चित्र आ रहे थे। वह समझ रहा था कि इस जेल का सुपरिटेण्डेंट भी वैसा ही कोई पिशाच होगा। लेकिन वह तो बहुत ही शरीफ आदमी निकला। वह कुछ थका हुआ जरूर मालूम पड़ता था लेकिन उसने अनवर को देखते ही मुस्कराकर उसका स्वागत किया। रामेश्वर काका ने उसे मुलाकात की इजाजत दिखाई और सुपरिटेण्डेंट उन्हे बगलवाले कमरे मे ले गये जहा कुछ राजनीतिक कैदी बंठे अपने रिश्तेदारो और दोस्तो से बातें कर रहे थे। एक वार्डर कोने मे स्टूल पर बैठा चुपचाप उन्हे देख रहा था।

“तुम्हारे अब्बा अभी एक मिनट मे यहा आते हैं,” सुपरिटेण्डेंट साहब ने अनवर से कहा और उन लोगो से बैठने को कहकर बाहर चले गए।

अनवर ने चारो तरफ नजर दौड़ाकर कमरे को देखा। सुपरिटेण्डेंट के कमरे से वे जिस दरवाजे से निकलकर आए थे उसीकी बगल मे एक दूसरा दरवाजा था। शायद यही जेल के अंदर जाने का दरवाजा था। उस कमरे मे एक ही खिडकी थी जिसमे से चारो तरफ से घिरे हुए आगन मे कुछ कैदी जेल के मोटे कपडे पहने हुए काम करते दिखाई दे रहे थे। वे सिरो पर टोकरिया रखे ईंटे और गारा और सीमेंट ढोकर कहीं ले जा रहे थे। शायद जेल के अंदर कोई इमारत बन रही थी। अनवर को यह देखकर बड़ा तरस आया कि उनमे से कुछ के पैरो मे बेडिया पड़ी हुई थी ताकि वे भाग न सके। रामेश्वर काका ने बताया कि ये बहुत खतरनाक कैदी है जिन्हे कत्ल या डाके के जुर्म मे लम्बी-लम्बी सजाए दी गई है। अनवर पर पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि उसे इस बात पर बड़ी झुंझलाहट हुई कि उसके अब्बा को, जो सबसे ज्यादा शरीफ आदमी थे, ऐसे गुंडो और बदमाशो के साथ रखा जाए। उसे यह बात भी समझ में नहीं आती थी कि आखिर लोग दूसरे लोगो को लूटते क्यों है या उनका खून क्यों कर डालते है।

वह इसी समस्या पर विचार कर रहा था, जिसपर बहुत पहले से उससे बड़े-बड़े विचारक अपना सिर खपाते आए थे। इतने में जेल के अंदर जानेवाला दरवाजा खुला और उसके अब्बा कमरे मे दाखिल हुए।

“अब्बा !” अनवर खुशी के मारे चिल्लाया और अपने अब्बा के गले से

लिपट जाने के लिए आगे बढ़ा। अकबरअली ने हमेशा की तरह बड़े शांत भाव से अपने बेटे की पीठ थपथपाई और अपने प्रेम का इससे अधिक कोई प्रदर्शन किए बिना उन्होंने बड़े तपाक से रामेश्वरदयाल से हाथ मिलाया। फिर उन्होंने उन दोनों से इशारे से कुर्सी पर बैठ जाने को कहा और खुद भी एक कुर्सी लेकर उनके पास बैठ गए।

दोनों दोस्त बातें कर रहे थे और अनवर अपने अब्बा को देख रहा था। वे पहले से कुछ दुबले हो गए थे और उनका चेहरा कुछ पीला पड़ गया था। लेकिन वे हमेशा की तरह ही हसमुख थे और बारी-बारी से कभी वे अपने साभेदार से व्यापार की बातें करते और कभी अपने बेटे से घर का हालचाल पूछते। लेकिन अनवर जेल में अब्बा की जिंदगी के बारे में जानने के लिए बेचैन था। अकबरअली उन लोगों में से नहीं थे जो अपनी मुसीबतों का दुखड़ा रोते और खास तौर पर अपने बेटे के सामने। उन्होंने अनवर को बताया कि जेल में उन्हें किसी तरह की तकलीफ नहीं थी। उन्होंने कहा, “मैं आजकल बहुत-सी किताबें पढ़ रहा हूँ, जो काम मैं कारोबार में फसे रहने की वजह से बाहर नहीं कर पाता था और मेरे साथ यहाँ बहुत अच्छे लोग हैं।” उसी जेल में राजनीतिक कैदियों में वकील और बैरिस्टर, बड़े-बड़े विद्वान, प्रोफेसर, मौलवी और पंडित थे और उनके बीच दार्शनिक, राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक समस्याओं के बारे में लम्बी-चौड़ी बहसें चलती रहती थी। अनवर के मन में इस बात से बड़ा कौतूहल पैदा हुआ और उसने अपने अब्बा से पूछा, “क्या यहाँ लड़के भी हैं—मेरा मतलब है मेरी उम्र के लड़के?” और जब उसके अब्बा ने जवाब में ‘हाँ’ कहा तो उसने अपने मन में फौरन फैसला कर लिया, वह भी वही आएगा जहाँ उसके अब्बा थे।

जब मुलाकात का वक्त पूरा हो गया तो सुपरिटेण्डेंट ने एक बार फिर बड़ी विनम्रता से आकर उन्हें इस बात की सूचना दी और उन्होंने एक-दूसरे से बिदा ली। अनवर ने सुपरिटेण्डेंट साहब से हाथ मिलाया और रामेश्वरदयाल ने, जो स्वभावतः बहुत विनम्र थे, सुपरिटेण्डेंट साहब को उनकी शिष्टता के लिए हार्दिक धन्यवाद दिया। लेकिन जब वे बरामदे से निकलकर उसी छोटी-सी खिड़की के रास्ते बाहर की रोशनी में निकले तो अनवर के मन में यह विश्वास पैदा हुआ कि वह जल्द ही फिर जेल आएगा, लेकिन इस बार किसीसे मिलने



नहीं बल्कि कैदी बनकर ।

वही हिन्दुस्तानी जो अभी कुछ दिन पहले तक कानून के पाबद और शांति-प्रेमी थे उन्हें अचानक न जाने क्या हो गया था । उन्हें अचानक न जाने क्यों जेल जाने का शौक पैदा हो गया था—व्यापारियों ने अपनी दूकानें छोड़ दी, विद्यार्थियों ने स्कूलों और कालेजों में अपनी पढ़ाई छोड़ दी, मुल्लाओं और पुरोहितों ने अपने-अपने मस्जिद-मदिर छोड़ दिए, औरते जनानखाने की ऊंची-ऊंची दीवारों के बाहर निकल आईं, वकीलों को जिस कानून की हिफाजत करना सिखाया गया था उसी कानून को वे खुद तोड़ने लगे, बड़े-बड़े रायबहादुरों और खानबहादुरों ने अपने खिताब वापस कर दिए । सरकारी नौकर राज के दुश्मनों से जा मिले—और ये सब लोग जाकर जेलों में भर गए । ससार के इतिहास में इससे पहले कभी भी इतने बहुत-से लोग अपनी मर्जी से जेल नहीं गए थे ।

जब से अनवर जेल में अपने अब्बा से मिलकर आया था उस वक्त से उसपर जेल जाने का भूत सवार था । वह मोटे खद्वर के कपड़े पहनने लगा था और गांधी टोपी लगाने लगा था, जिसे अब विद्रोह की निशानी समझा जाने लगा था । रात को जब वह अपने कमरे में अकेला होता और घर के बाकी लोग सो जाते तो वह चुपचाप अपना बिस्तर चारपाई पर से उतारकर नीचे जमीन पर बिछा लेता ताकि उसे फर्श पर सोने की आदत हो जाए । उससे किसीने कहा था कि जेल में बहुत खुरदुरे कम्बल ओढ़ने के लिए दिए जाते हैं, इसलिए वह भी अब्बा की दूकान से अपने लिए ऐसा ही एक कम्बल ले आया था । वह काला कम्बल था और उसके रोए बहुत सख्त थे और उसमें से एक अजीब-सी बू आती थी लेकिन अनवर ने उसकी आदत डाल लेने की ठान ली थी । रोज रात को वह नर्म रेशमी लिहाफ छोड़कर उसी कम्बल को ओढ़कर सो जाता था, हालांकि शुरू-शुरू में आदत न होने की वजह से उसे नींद बिल्कुल नहीं आती थी । धीरे-धीरे उसे इसकी आदत पड़ गई और अपनी इस कामयाबी पर वह मन ही मन बहुत खुश भी हुआ । लेकिन बहुत सवेरे ही और लोगों के जागने से पहले वह उठ जाता और बिस्तर फिर चारपाई पर लगाकर कम्बल

गद्दे के नीचे छिपा देता । अगर कोई उसे यह तपस्या करते हुए देख लेता तो वह शर्म से मर जाता ।

वह स्कूल जाता रोज था पर पढाई में उसका मन नहीं लगता था । उसे जुलूसों में और गिरफ्तारियों की खबरों में और किसी न किसी नेता की गिरफ्तारी पर आए दिन होनेवाली हड़तालों में ज्यादा दिलचस्पी थी । चौराहों पर विलायती कपड़े की जो होली जलाई जाती थी वह उसके लिए एक नई दिलचस्पी का सामान था । सड़क के बीचोबीच विलायती कपड़ों की बहुत बड़ी-बड़ी होलिया जलाई जाती थी और बेहद कीमती सूट, शेरवानिया, औरतो की जार्जेट की साडिया और जूरी के ब्याह के जोड़े आग की इन लपटों में भोक दिए जाते थे । लड़कों के लिए यह भी एक खेल था और कुछ लड़के तो अपने घर से कपड़े चुराकर ले आते थे और इस होली में जला देते थे । अक्सर यह दृश्य देखने में आता था कि कोई लड़का आगे-आगे कोई रेशमी कोट या शेरवानी लिए भागा चला आ रहा है और उसके पीछे-पीछे गुस्से में लाल-पीला होता हुआ उसका बाप उसे कोसता और गालिया देता चला आ रहा है और इससे पहले कि बाप लड़के को रोक सके वह कपड़ा आग की नजर हो चुकता था और लड़का बड़ी ढिठाई से अपने बाप की तरफ इस तरह देखता था मानो कह रहा हो कि अब जो सजा आप चाहे दे ले । लेकिन देशभक्ति का इतना जोर था कि बाप को सबके सामने अपने बेटे को डाटने की भी हिम्मत नहीं पड़ती थी, उसे डर रहता था कि कहीं लोग उसे गद्दार न ठहरा दे ।

अनवर ने भी फूफी-अम्मा के डर के मारे कुछ विलायती कपड़े अलग छिपाकर रख छोड़े थे और उन्हें वह एक-एक करके लाकर इस आग में भोक देता था । जाहिर है कि फूफी-अम्मा इस बात के बिल्कुल खिलाफ थी कि अच्छे-अच्छे नये कपड़े इस तरह जला दिए जाए । अनवर ने एक चमकदार रेशमी शेरवानी, जो पिछली ईद पर उसके लिए बनवाई गई थी, बचाकर रख छोड़ी थी । लेकिन जब आंदोलन ने जोर पकड़ा और ज्यादा से ज्यादा तादाद में नेता पकड़कर जेल में बंद किए जाने लगे और ढेरो विलायती कपड़ा रोज जलाया जाने लगा तो अनवर भी ज्यादा समय तक अपने को वश में न रख सका । वह जानता था कि उस शेरवानी को जलते देखकर उसे बड़ा दुःख होगा, लेकिन देशभक्ति के लिए तो अपनी प्यारी से प्यारी चीज की भी कुरबानी दे देनी

पड़ती है। अगर वह अपना जी कड़ा करके अपनी शेरवानी भी नहीं जला सकता तो फिर वह जेल कैसे जाएगा ?

एक दिन सुबह नाश्ता करने के बाद वह अपने कमरे में गया और शेरवानी निकालकर उसने बड़ी हसरत-भरी निगाह से उसे अखिरी बार देखा और फिर उसे एक कागज में लपेट लिया। अपनी स्कूल की किताबों के नीचे एक बडल छिपाए वह चुपके से घर से खिसक रहा था कि इतने में उसने गली में एक तागा आकर रुकने की आवाज सुनी और बाहर निकलते ही वह अपने ताया-अब्बा अमजदअली से टकराते-टकराते बचा। वे अभी-अभी तागे से उतरे थे और उनका चपरासी उनका सडूक लिए हुए उनके पीछे-पीछे आ रहा था।

“सलाम, ताया-अब्बा।” अनवर बस इतना कहकर जल्दी से आगे बढ़ा।

“जीते रहो बेटा,” ताया-अब्बा ने अपनी आदत के मुताबिक नाक के सुर में बड़ी बेपरवाही और रुखाई से कहा। “इतनी जल्दी कहा चल दिए ?”

“स्कूल जा रहा हूँ, ताया-अब्बा !” अनवर किसी सूरत से अपनी जान छुड़ाकर वहाँ से भाग निकलना चाहता था।

अमजदअली कचहरी में बरसों तक मुजरिमों को देखते-देखते हर चीज को शुबहे की नजर से देखने के आदी हो चुके थे; उन्होंने फौरन भाग लिया कि दाल में कुछ काला जरूर है। अनवर किसी चीज को अपनी किताबों के नीचे छिपाने की कोशिश कर रहा था।

“यह क्या है ?” उन्होंने पूछा।

अनवर जानता था कि उसके ताया-अब्बा उसे कभी भी यह शेरवानी विलायती कपड़ों की होली में जलाने नहीं देंगे। फूफी-अम्मा ने उसे पहले ही बता रखा था कि वह अपने छोटे भाई से इसलिए खफा थे कि वह ‘इन बागी कांग्रेसियों के साथ अपनी औकात खराब कर रहा है और जेल जाकर उसने खानदान के नाम पर बट्टा लगा दिया है।’ अनवर जानता था कि अगर उन्होंने देख लिया कि उस बडल में क्या है तो उसका सारा बना-बनाया खेल बिगड़ जाएगा।

“कुछ नहीं ताया-अब्बा, कुछ भी तो नहीं,” उसने घबराहट में अटक-अटक-कर जवाब दिया और वहाँ से भाग खड़ा हुआ। उसके ताया-अब्बा चिल्ला-चिल्लाकर उसे रोक रहे थे पर उसने इसकी ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया।

उस दिन जब अनवर रात को घर लौटा तो ताया-अब्बा उसका इंतज़ार कर रहे थे। हर तरफ एक अजीब तनाव और खामोशी थी। फूफी-अम्मा और आपा अजुम के चेहरों पर उसने गहरी चिन्ता के चिह्न देखे।

“अनवर !” अमजदअली की आवाज़ में वह कड़क थी जिसके आगे पुराने से पुराने मुजरिम भी उनकी कचहरी में पेश किए जाने पर थरथर कापने लगते थे।

“जी ताया-अब्बा,” अनवर ने दबी ज़बान में उत्तर दिया।

“सारे दिन कहा रहे ? बोलो ! बताओ !” और जब बेहद गुस्से में पूछे गए इस सवाल के जवाब में अनवर चुपचाप खड़ा रहा, जैसे वह गूगा हो गया हो, तो अमजदअली ने खुद अपने सवाल का जवाब दिया। “अगर तुमने न बोलने की कसम खा रखी है तो मैं बताता हूँ कि तुम कहाँ थे। तुम कांग्रेस और खिलाफत के इन बदमाशों के साथ दिन-भर वाही-तवाही घूमते रहते हो, गैर-कानूनी जुनूसों में हिस्सा लेते हो और विलायती कपड़ा जलाते हो। सुबह तुमने मुझसे कहा था कि तुम स्कूल जा रहे हो लेकिन तुम वहाँ गए ही नहीं। मैं तुम्हारे हैडमास्टर साहब से मिला था। वे तुम्हारी हरकतों से बहुत नाराज़ हैं।”

सारे देश में हर तरफ जो शानदार, जोश दिलानेवाली और दिल में एक लहर पैदा कर देनेवाली घटनाएँ हो रही थीं वे एक क्षण में خاک में मिला दी गईं, उनमें गौरव या देशभक्ति का गुण बाकी ही नहीं रह गया। तहसीलदार साहब की सरकारी नज़रों में ये सारी घटनाएँ उन गुंडों और शोहदों की शर्मनाक हरकतें थीं जो गोली से उड़ा दिए जाने के लायक थे। अनवर बौखला गया। उसने सोचा, शायद ताया-अब्बा ठीक ही कहते हों। लेकिन...

“लेकिन ताया-अब्बा, फिर अब्बा क्यों इस चक्कर में पड़े ? अगर जेल जाना अच्छा काम न होता तो वे कभी ऐसा न करते।”

“या खुदा !” अमजदअली का क्रोध यह सुनते ही भड़क उठा। “तूने भी मुझे कैसा भाई दिया है—और कैसा भतीजा। सरकार ने तो इन गैरकानूनी हरकतों को कुचलने में मेरी खिदमतों से खुश होकर मुझे एक्स्ट्रा-असिस्टेंट कमिशनर बना दिया है और हमारे खानदानवाले सरकार का शुक्रिया किस तरह अदा कर रहे हैं ! इन सुअर के बच्चों का—गांधी और मुहम्मदअली



और शौकतअली का—साथ देकर ।”

वे इसी तरह बमकते रहे और आखिर में फैसला करते हुए बोले, “उस अहमक अकबर ने तो जो कुछ किया है उसे मैं मिटा नहीं सकता, लेकिन मैं इस बात को कतई बर्दाश्त नहीं कर सकता कि अब उसका लडका खानदान को सरकार की नजरो में और गिरा दे । अनवर, कल सुबह तुम्हें मेरे साथ गुडगाव चलना होगा । यहाँ तुम्हारी फूफी-अम्मा तुम्हारी देखभाल नहीं कर सकती । तुम्हारे अब्बा जब तक जेल से लौटकर नहीं आ जाते तब तक मैं तुम्हें अपनी निगरानी में रखूँगा ।”

उस रात अनवर ने न खाना खाया न उसे नींद आई । उसके ताया-अब्बा ने आज जिस तरह उससे बात की थी वैसे आज तक कोई उससे नहीं बोला था, और उसके अब्बा के इस तरह बोलने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता था । उनकी यह बेइसाफी उसके दिल को खुरचती रही । उसे सबसे बुरी तो वह बात लगी थी जो उन्होंने उसके अब्बा के बारे में कही थी । हालांकि जिस वक्त उन्होंने उसके अब्बा के बारे में वे बातें कही थीं तो गुस्से के मारे उसकी ज़बान बन्द रह गई थी, लेकिन बाद में उसका जी चाह रहा था कि वह जाकर अमजदअली से कह दे कि वे तहसीलदार हो या एक्स्ट्रा-असिस्टेंट कमिश्नर पर वे उसके अब्बा के जूतों की खाक के बराबर भी हैसियत नहीं रखते हैं । उसका जी चाहता था कि वह जाकर उनसे कह दे कि उनके जैसे लोगों को आम लोग गद्दार, टोड़ी और खुशामदी टट्टू समझते हैं । लेकिन उसके अन्दर कोई चीज़ ऐसी थी जो उसे ऐसा करने से रोकती थी । शायद इसकी वजह यह रही हो कि उसे बचपन से बड़ों की इज्जत करना सिखाया गया था । शायद इसकी वजह यह थी कि उसे भगड़े-फसाद से स्वभावतः नफरत थी । या शायद इस वजह से कि उसका शरीर बहुत कमज़ोर था ।

रात के सन्नाटे में वह अपने बिस्तर पर पड़ा जाग रहा था, उसका तकिया गर्म आसुओं से भीगा हुआ था । बार-बार वह अपने मन में कह रहा था, “मुझे अपने ताया-अब्बा से नफरत है । मुझे अपने ताया-अब्बा से नफरत है । मैं उनके साथ हरगिज़ नहीं जाऊँगा । मैं उनके साथ हरगिज़ नहीं जाऊँगा ।”

पड़ोस की मस्जिद में मौलवी साहब लोगों को सुबह की नमाज़ के वास्ते बुलाने के लिए अजान दे रहे थे । इसी वक्त अनवर उठा और अपनी गर्म शेरवानी

पहनकर उसने गले में एक मफलर लपेट लिया ताकि उसके कानों में सर्दों न लगे और दबे पाव कमरे से बाहर निकल गया। बाहर आंगन में अभी अंधेरा था। उसका पैर सोती हुई बिल्ली पर पड़ते-पड़ते बचा और बिल्ली म्याऊँ-म्याऊँ करती हुई एक तरफ को भाग गई। एक क्षण के लिए वह निस्तब्ध खड़ा रहा। अगर कोई जाग जाए तो। जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता हुआ वह फाटक पर पहुँचा लेकिन उसकी कुड़ी इतनी ऊँची थी कि वहाँ तक उसका हाथ नहीं पहुँचता था। इसलिए वह एक स्टूल ले आया और घबराहट के मारे कापता हुआ स्टूल पर चढ़ गया। कुड़ी तो खुल गई पर उस डगमगाते हुए स्टूल पर वह अपना सतुलन कायम न रख सका और एक धमाके के साथ स्टूल समेत ज़मीन पर आ लगा और उसका सिर पत्थर की चौखट से टकरा गया। उस वक्त उसे चोट का होश नहीं था, उसे तो बस यह चिन्ता थी कि शोर सुनकर कहीं सब लोग जाग न जाए और जागकर वहाँ न आ जाए। बिना सोच-विचार किए उसने दरवाज़ा खोला और बाहर निकलकर सर पर पाव रखकर सुनसान गली में भाग खड़ा हुआ और बड़ी सड़क पर पहुँचकर ही दम लिया। पौ फट रही थी और दरिया के उस पार पूरब की ओर क्षितिज धीरे-धीरे गुलाबी और सुनहरा होता जा रहा था। लेकिन ऊपर आकाश पर अभी तक कुछ तारे चमक रहे थे।

अनवर पहले कभी इतने सवेरे नहीं उठा था। वह एक विचित्र रोमांच अनुभव करने लगा। हवा तीर की तरह चुभ रही थी और जब वह मफलर अपने मुँह पर लपेटने लगा तो उसे बाईं आँख के ऊपर माथे पर कोई चीज़ चिपचिपी-सी लगी। खून! यही पर उसे पत्थर की चौखट से चोट लगी थी। उसे विजय का एक विचित्र-सा आभास हुआ। लोग हमेशा उसके छोटे कद और उसके दुबले-पतले शरीर का मज़ाक उड़ाते थे। उसकी फूफी-अम्मा उसे हमेशा इस तरह हिफाजत से रखती थी जैसे वह कोई टूटनेवाला खिलौना हो। लेकिन उसने पत्थर पर अपना सिर फोड़ लिया था और सचमुच उसके खून निकल रहा था, फिर भी उसने कोई पीड़ा अनुभव नहीं की थी। और जब उसे चोट का पता लगा तब भी वह घबराया नहीं था। वह रोया भी नहीं था। उसने मर्दों की तरह उस चोट को बर्दाश्त कर लिया था। उसके अब्बा उससे इसी बात की उम्मीद रखते थे।

उसके अब्बा ! जल्द ही कुछ ही घंटों में वह उनके पास पहुँच जाएगा—

जेल में । अनवर ने तै कर लिया था कि वह कहा जा रहा है ।

अनवर ने सोचा था कि जेल जाना बहुत आसान बात है । बस एक बार इरादा करने की जरूरत है, फिर कोई भी कानून तोड़ दो और पुलिस पकड़कर कटहरेदार काली लारी में बिठाकर ले जाएगी । अनवर ने राजनीतिक कैदियों को पहले भी ऐसी ही लारियों में बैठकर जेल जाते देखा था ।

लेकिन सरकार दूसरे ढंग से सोच रही थी । उसने जेलों में आम मुजरिमों के लिए—चोर-उचक्को, जेबकतरो और कातिलों के लिए बनवाई थी । लेकिन अब उनके सामने एक अजीब परिस्थिति आ गई थी—ऐसी परिस्थिति जिसका सामना दुनिया की किसी भी सरकार ने इससे पहले कभी इतने बड़े पैमाने पर नहीं किया था । हजारों ऐसे शरीफ लोगों को, जो अब तक कानून के पाबंद थे और खुदा से डरते थे, अचानक न जाने क्यों जेल जाने का शौक पैदा हो गया था । दस हजार ! बीस हजार ! तीस हजार ! फिर भी यह सिलसिला अभी खत्म नहीं हुआ था । जेलखाने ठसाठस भर गए थे । जेल के अफसरों, पुलिसवालों और मजिस्ट्रेटों पर काम का बोझ बहुत बढ़ गया था । वे जेल जानेवाले तीर्थयात्रियों के इस आश्चर्यजनक जुलूस से तग आ गए थे । सविनय अवज्ञा के बोझ के नीचे सरकार की पूरी मशीन चरमराने लगी थी ।

इसलिए हुआ यह कि जिस वक्त अनवर ने जेल जाने का फैसला किया, उसी वक्त सरकार ने जेलों में बहुत ज्यादा लोग न ठूसने का फैसला किया । कुछ बड़े-बड़े विद्रोहियों के लिए तो किसी तरह जेल में जगह निकल भी सकती थी, पर छोटे-मोटे लोगों से निबटने के लिए कोई दूसरा रास्ता अपनाना जरूरी था ।

घर से निकलते वक्त अनवर ने कोई खास योजना नहीं बनाई थी इसलिए वह निरुद्देश्य इधर-उधर भटकता रहा । थोड़ी देर बाद उसे अपने स्कूल के दोस्तों की एक टोली दिखाई दी जो कांग्रेस का बड़ा-सा झंडा लिए हुए जा रही थी । ये लोग किसी जुलूस में शामिल होने जा रहे थे और उनमें से एक लड़के ने बड़े रोब के साथ अनवर को बताया, “आज बहुत-सी गिरफ्तारियां होनेवाली हैं ।” गिरफ्तारियां ! इसीकी तो अनवर को तलाश थी ।

जुलूस बहुत लम्बा था । उसका एक सिरा फतेहपुरी पर था और दूसरा



पत्थरवाले कुए पर । अनवर और उसके सभी दोस्तों के मन में सघर्ष में कूद पड़ने की धुन समाई हुई थी, वे लोग अपनी इसी धुन में जुलूस के आगे पहुँच गए । एक दाढ़ीवाले मौलवी साहब और गेरुए वस्त्र पहने हुए एक स्वामीजी जुलूस के आगे-आगे चल रहे थे । गीत गाए जा रहे थे, नारे लग रहे थे—वही नारे जो उसने अमृतसर में सुने थे । अनवर ने भी अपनी पतली आवाज भीड़ की गूँजती हुई आवाज में मिला दी । अल्लाहो-अकबर ! वदेमातरम् ! और पहली बार अनवर ने उन जादू-भरे शब्दों के उच्चारण का रोमांच अनुभव किया जिनसे भीड़ के हर आदमी के अग-अग में एक लहर-सी पैदा हो जाती थी । भीड़ में अनवर मानवता के समुद्र में एक बूद के समान खो गया था ; उसका व्यक्तित्व जनसमूह के व्यक्तित्व में विलीन हो गया था । समूह की भावनाओं से प्रेरित होकर अनवर में एक विचित्र परिवर्तन आ गया । अब वह शर्मीला अनवर नहीं रह गया था, अब वह कमजोर नहीं था । अब उसमें एक नई शक्ति आ गई थी, नया उत्साह और नया साहस पैदा हो गया था । उस समय वह मौत का भी सामना कर सकता था ।

सड़क पर रास्ता रोककर खड़ी हुई पुलिस के रूप में मौत से उसका साक्षात् हुआ । सिपाही अपने कंधों पर बंदूकें साधे खड़े थे, बंदूकों का मुह सीधे भीड़ की तरफ था । जुलूस ठहर गया । पुलिस की नाकेबंदी की खबर देखते-देखते जुलूस के पीछे तक पहुँच गई और पूरे जुलूस में ऐसी गूँज पैदा हुई मानो लाखों मधु-मक्खियों का झुंड गुंजन कर रहा हो । एक क्षण पहले जो जोश दिखाई पड़ रहा था वह गायब हो गया । वातावरण में एक अजीब तनाव-सा पैदा हो गया । अनवर का स्कूल का एक साथी किशन जो औरों से छोटा था, अचानक रोने लगा । इस गंभीर परिस्थिति में यह एक हास्यास्पद घटना थी और इससे जनसमूह की भावनाओं की एकरूपता भग्न हो गई । वे सब अब एकाकार जनसमूह न रहकर अलग-अलग लोग बन गए थे, जिनकी अपनी-अपनी छोटी-छोटी कमजोरियाँ और चिंताएँ थी—उस छोटे-से बच्चे की तरह जो फूट-फूटकर रो रहा था ।

पुलिस के एक अफसर ने आगे बढ़कर दोनों नेताओं को गिरफ्तारी का वारंट दिखाया और वे इस तरह मुस्करा दिए मानो वे अपनी गिरफ्तारी की राह ही देख रहे थे । “तो सुसराल का न्यूँता आ गया । चलिए, मैं तैयार हूँ,” दाढ़ीवाले मौलवी साहब ने दारोगा के साथ चलते हुए कहा । गेरुए वस्त्रों-



वाले स्वामीजी ने मुडकर भीड़ को संबोधित करके भाषण देना शुरू किया, “भाइयो ! हमें गिरफ्तार कर लिया गया है और हम जा रहे हैं। आप लोग शांत रहिएगा और याद रखिएगा कि हमने अहिंसा की शपथ ली है। हम खुद मर जाएंगे पर अपने शत्रु को नहीं मारेगे। सत्य ही हमारा एकमात्र हथियार है।” अनवर ने पुलिसवालों की राइफलों को देखा जो सूनी नज़रो से भीड़ को ताक रही थी और उसके मन में एक अस्पष्ट-सी शका पैदा हुई कि क्या सत्य से सचमुच इन राइफलों को हराया जा सकता है। अमृतसर की याद उसके दिमाग में बिजली की तरह कौंध गई। वह देख चुका था कि इस तरह की राइफले क्या कर सकती है।

दोनों नेताओं को वहां पर खड़ी हुई पुलिस की बहुत-सी लारियों की तरफ ले जाया गया और जब वे उन्हींमें से किसी एक में गायब हो गए तो अनवर को सहसा याद आया कि वह क्या करने निकला था—उसे जो करना है वह जल्दी करना चाहिए नहीं तो मौका हाथ से निकल जाएगा। वह पुलिस की लारियों की तरफ भागा। बाकी लड़के भी यह सोचकर कि कहीं वे अनवर से पीछे न रह जाए उसके साथ हो लिए।

“किधर जा रहे हो ?” एक पुलिसवाले ने उनका रास्ता रोककर कहा।

“मुझे भी गिरफ्तार करो,” अनवर ने उत्तर दिया, “मैं भी सरकार के खिलाफ हूँ।” उसे यकीन था कि इस दलील के आगे पुलिसवाले लाचार हो जाएंगे।

“हां, हां,” बाकी लड़को ने भी एक स्वर में चिल्लाकर कहा, “हम भी सरकार के खिलाफ हैं। हम सबको भी गिरफ्तार करके जेल ले चलो।”

यह सुनकर डरावनी सूरतवाले दारोगा के चेहरे पर एक मुस्कराहट दौड़ गई। “अच्छा, चलो बेटा,” उसने कहा और अपने किसी मातहत को आख मारकर इशारा किया, “सब लड़को को गाड़ी में चढा लो।”

सब लड़के पुलिस की लारी की तरफ इस तरह भागे जैसे कहीं पिकनिक पर जा रहे हो। कोई बीस लड़के रहे होंगे और सब बेहद जोश में थे—बस एक किशन को छोड़कर जिसके चेहरे पर बिल्कुल मुर्दनी छाई हुई थी।

जब लारी चलने को हुई तो उसने अनवर से पूछा, “अच्छा, एक बात तो बताओ। जेल में हमें मार तो नहीं पड़ेगी ?”

“नहीं, नहीं,” अनवर ने उसे तसल्ली देते हुए कहा। यह कहते समय वह अपने-आपको बहुत बड़ा समझ रहा था और उससे इस तरह बात कर रहा था जैसे कोई बाप अपने बेटे से बात करता है, “नहीं, जेल में मार नहीं पड़ेगी। बस कोठरियों में बंद कर दिया जाएगा।”

“तुम्हें कैसे मालूम?” एक दूसरे लड़के ने पूछा। यह अनवर के लिए विजय का क्षण था। उसने फौरन उत्तर दिया, “मैं इसलिए जानता हूँ कि मेरे अम्बा वहाँ हैं।”

“लेकिन हम लोग जा कहा रहे हैं?” जब लारी पुराने किलेवाली सड़क पर बाएं हाथ की मुड़ी तो एक लड़के ने चिल्लाकर कहा, “यह तो जेल का रास्ता नहीं है।”

रात बहुत काफी बीत चुकी थी। चारों ओर सन्नाटा था—अधेरा और सर्दी। सड़क के दोनों ओर पेड़ों के नीचे कुछ अजीब-अजीब शक्लें चलती-फिरती दिखाई पड़ रही थी। कहीं दूर से उल्लू के बोलने की आवाज़ आ रही थी और चमगादड़ अपने पख फड़फड़ाते हुए रात्रि के गहन अधिकार में उड़ रहे थे।

अनवर को डर लग रहा था। पर बेचारे किशन की हालत तो उससे भी बुरी थी, वह तो बिल्कुल दयनीय दशा में अनवर की बाह जोर से पकड़े हुए था। सर्दी के मारे उसके दांत कटकटा रहे थे और थकन के मारे उसके पांव नहीं उठ रहे थे। अपने दोस्त को इतनी बुरी हालत में देखकर अनवर को अपने डर पर काबू पाने में कुछ सहायता मिली। वह अपने को उम्र में बहुत बड़ा और बेहद ताकतवर समझने लगा और किशन के प्रति उसके हृदय में अथाह स्नेह उमड़ने लगा। उस छोटे-से रोते हुए बच्चे को देखकर उसके हृदय में उसकी रक्षा करने की भावना जागरित हुई और वह यह अनुभव करने लगा कि इस सकटमय परिस्थिति में अपने साथी की रक्षा करना उसका कर्तव्य है। वह किशन को ढाढस बधाने के लिए उससे कहने लगा कि अब दिल्ली बस थोड़ी ही दूर है, हालांकि वह अच्छी तरह जानता था कि उसे अभी पूरे दस मील चलना है। वह किशन को विश्वास दिला रहा था कि देहात के इस भाग में कोई जंगली जानवर नहीं है। वह अपना दिल पक्का रखने के लिए मज़ाक

कर रहा था, हस रहा था और देशभक्ति के गीत गा रहा था। और उसकी यह तरकीब कामयाब भी हो रही थी—सिर्फ उसीके लिए नहीं बल्कि किशन के लिए भी। अब उन्हें चलने में इतनी थकन नहीं महसूस हो रही थी और कुछ देर बाद जब आसमान पर पतला-सा चाद निकल आया तब तो अंधेरे के भूत भी भाग गए और किशन की भी इतनी हिम्मत बंध गई कि उसने अनवर की बाह ढँकी छोड़ दी।

पुलिसवालों ने योजना यह बनाई थी कि लारी को बहुत दूर देहात की तरफ ले जाया जाए और दो-दो तीन-तीन करके बच्चों को थोड़ी-थोड़ी दूर पर रास्ते में उतार दिया जाए और उन्हें उस सर्द अंधेरी रात में पैदल घिसटते हुए घर जाने के लिए छोड़ दिया जाए। पुलिसवालों को पूरा यकीन था कि बिगड़े हुए कमउम्र लड़कों के लिए यह कैद के मुकाबले में कहीं ज्यादा कारगर सजा होगी। इसके अलावा इस तरह जेल में भीड़ बढ़ने का कोई खतरा नहीं रहेगा, क्योंकि जेलों में भी ठसाठस भर चुकी थी।

दोनों लड़के रात के अंधेरे में लगातार चलते चले जा रहे थे लेकिन कुछ मील चलने के बाद किशन इतना थक गया कि उसे थोड़ी देर सुस्ता लेने का मौका देने के लिए उन्हें हर थोड़ी दूर पर रुक जाना पड़ता था। हालांकि अनवर अपने नन्हे साथी के सामने इस बात को कभी स्वीकार नहीं करता लेकिन मीलों तक इस तरह चलते रहने के बाद वह खुद भी थक गया था। सुबह का वह जोश, वे जुलूस, वे गीत और नारे, जेल में अपने अब्बा के पास पहुँच जाने की वह तीव्र इच्छा—ये सब चीजें सुखद अतीत की घटनाएँ मालूम होने लगी थी। दिन-भर के जोशो-खरोश के बाद अब उसका उत्साह शिथिल होने लगा था। अनवर किशन की हिम्मत बढ़ाने के लिए जो गीत गा रहा था वे धीरे-धीरे बंद हो गए। अब तो बात करना भी मुश्किल हो रहा था। चुपचाप गंभीर मुद्रा बनाए वे सड़क पर चले जा रहे थे और उनके पीछे गर्द का एक हलका-सा बादल उड़ रहा था।

सहसा अनवर को खयाल आया कि उसे भूख लगी है। उसने न सुबह नाश्ता किया था, न दोपहर को खाना खाया था, न रात को। उसे याद आया कि वह थका हुआ था और उसे नींद आ रही थी। भावनाओं में एक तूफान मचा होने के कारण पिछली रात वह सोया भी नहीं था। उसे उस चोट की

याद आई जो सुबह उसको लगी थी और हालांकि खून बहना जल्द ही बंद हो गया था पर अब फिर उसके माथे में पीड़ा हो रही थी। उसे ख्याल आया कि उसे सर्दी लग रही थी और बर्फ जैसी ठंडी हवा के तीर उसकी गर्म शेरवानी को बेधकर उसकी हड्डियों तक चुभ रहे थे। वह अपने गर्म और गुदगुदे बिस्तर के लिए तड़प उठा। वह उस गर्म-गर्म सालन और उन ताजी चपातियों के लिए बेचैन हो उठा जो गुलाबो ने उसके लिए बनाई होगी।

थोड़ी दूर आगे उन्हें एक बैलगाड़ी के पहिये की चू-चू सुनाई दी और दोनों लड़कों को बहुत ढाढस बधा। सिर्फ इसलिए नहीं कि कुछ दूर के लिए उन्हें गाड़ी में बैठकर जाने का मौका मिलेगा बल्कि उससे भी बढ़कर इसलिए कि उन्हें किसी आदमी का साथ मिलेगा। उन्होंने जल्दी-जल्दी अपने कदम बढ़ाए और जल्द ही बदगोभी और फूलगोभी, गाजर और मूलियों से लदी हुई उस बैलगाड़ी के पास पहुंच गए।

गाड़ीवान को यह देखकर बड़ा अचरज हुआ कि दो लड़के, जो अपने पहनावे से शहर के किसी खाते-पीते घराने के लड़के मालूम हो रहे थे, इतनी रात गए उस सड़क पर कहा जा रहे हैं। लेकिन जब अनवर ने सारा किस्सा बताया तो वह झट से बोला, “बेटा, आ जाओ, यहा गाड़ी पर मेरे पास आ जाओ। बहुत थक गए होगे तुम तो। रात में छोटे-छोटे बच्चों को बीस-बीस मील अकेले चलाना।—ये पुलिसवाले भी बहुत हरामी होते हैं।” हरामी! फिर वही गाली का लफ्ज। लेकिन उस किसान ने इसके साथ ही कुछ और ऐसी चुनी-चुनी गालियां भी दी जो अनवर ने पहले कभी सुनी भी नहीं थी और जिनका मतलब तो उसकी समझ से बिल्कुल बाहर था।

इतनी दूर पैदल चलने के बाद वह बैलगाड़ी सबसे आरामदेह सवारी मालूम हो रही थी। लेकिन गाड़ी के झटकों से उनका खाली पेट और भी खाली मालूम होने लगा था और ताजी सब्जियों की खुशबू उनकी नाक में घुस रही थी। अनवर भूखा ज़रूर था लेकिन एक शरीफ घर में पला होने की वजह से वह किसी अजनबी से खाने को कैसे माग सकता था।

“क्या गाजरे ले जा रहे हो?” उसने किसान से पूछा।

“हा बेटा, गाजरे हैं, मूलियां हैं और गोभी के फूल भी हैं। सब्जीमंडी ले जा रहा हूँ।”



“मुझे गाजरे बहुत अच्छी लगती है,” किशन ने बिना पूछे ही कहा, “कितनी मीठी होती है।”

“हां, अच्छी तो मुझे भी लगती है,” अनवर ने कहा। “जाड़े में हम लोग बहुत गाजरे खाते हैं और फूफी-अम्मा उनका बहुत अच्छा हलवा बनाती हैं। क्या तुम्हारी गाजरे अच्छी और मीठी है?”

“खाकर देखो,” यह कहकर उसने दोनों को कुछ गाजरे उठाकर दे दी।

घन्यवाद दिए बिना ही दोनों लड़के भूखे भेड़ियों की तरह उनपर दूट पड़े और गाजरे चबाने लगे। उन्हें इस तरह गाजरे खाते देख किसान ने सोचा, ‘मैं भी कितना बेवकूफ हू। मुझे पहले ही सोचना चाहिए था कि ये भूखे होंगे।’

पेट भरते ही किशन तो अनवर के कंधे पर सिर रखकर फौरन सो गया। पौ फट रही थी और सामने बहुत दूर दिल्ली से भी आगे अनवर को आकाश धीरे-धीरे गुलाबी होता दिखाई दे रहा था। उनके चारों ओर सन्नाटा था, हर चीज सो रही थी—खेत सो रहे थे, अपनी भोपड़ियों में किसान सो रहे थे और छप्परो के नीचे मवेशी सो रहे थे। गाड़ी चू-चू करती हुई अपनी मस्तानी चाल से चली जा रही थी और बैलों के गले में बधी हुई घटिया मधुर ध्वनि से बज रही थी। गाड़ीवाला भी ऊध-ऊधकर कुछ गुनगुना रहा था।

अनवर को भी नींद आ रही थी। लेकिन चारों ओर के आश्चर्यजनक वातावरण ने उसकी चेतनाओं को जागरित कर दिया था—प्रभात का सुहाना दृश्य, देहात का शांत वातावरण, मिट्टी और पेड़ों की मादक सुगंध, चरचराती हुई गाड़ी का मधुर संगीत, किसान का गीत और बैलों की घटिया। उसके हृदय में किशन के लिए अथाह स्नेह उमड़ पड़ा जो उसके कंधे पर सिर रखे सो रहा था, उसका हृदय किसान के प्रति कृतज्ञता से भर उठा जिसने उन्हें गाड़ी पर बिठा लिया था और गाजरे खाने को दी थी ‘दुनिया कितनी सुन्दर और अच्छी और अनोखी है।’ उसने सब्जियों के ढेर पर सिर टिकाते हुए सोचा और धीरे-धीरे वह भी सो गया।

डरते-डरते अनवर ने घर में कदम रखा। यह सोचकर अनवर का दिल बैठने लगा कि उसे अपने ताया-अब्बा के सामने इस बात का जवाब देना होगा

कि वह लगभग तीस घंटे तक कहा गायब रहा। या शायद ताया अमजदअली को पहले ही यह पता चल गया हो कि कलवाले जुलूस में उसने क्या हिस्सा लिया था और बाद में पुलिस ने क्या किया था। अगर ऐसा हुआ तो बहुत कुहराम मचेगा। लेकिन अनवर कल के अनुभव से इतना खुश था कि उसे अपने ताया-अब्बा की डांट की कोई फिक्र नहीं थी। वह सिर्फ यह सोच रहा था कि जो कुछ होना हो वह जल्दी ही हो जाए।

घर में उसे जो पहला आदमी दिखाई दिया वह अब्बा थे। पहले तो उसने सोचा कि शायद वह स्वप्न देख रहा है, लेकिन नहीं वे अकबरअली ही थे। तकियों का सहारा लगाए बैठे थे और उनके पास हकीम बेदिल बैठे उनकी नब्ज देख रहे थे। सहसा अनवर की समझ में आया कि उसके अब्बा बीमार थे और इस विचार के आगे वह और सब बातें भूल गया। वह भागकर उनके पास गया और बोला, “अब्बा, अब्बा, आप वापस आ गए।”

“हा अनवर, लेकिन तुम अब तक कहां थे? मैंने सुना है कि तुम कल सुबह से घर नहीं आए।” उनकी आवाज में कमजोरी थी; यह अकबरअली की पुरानी कड़कदार आवाज नहीं थी।

अनवर ने थोड़े-से शब्दों में सब कुछ सच-सच बता दिया और यह देखकर उसे सात्वना हुई कि उसकी बात सुनकर उसके अब्बा बड़े प्यार से मुस्करा दिए। इतने में अमजदअली चीनी के प्याले में कोई खोलती हुई चीज लेकर वहां आए, लेकिन अब अनवर को उनसे कोई डर नहीं था। जब वह अपने अब्बा के पास होता था तो उसे किसीसे डर नहीं लगता था।

“अनवर, यह भी अच्छा मजाक रहता कि इधर मैं छूटकर आता और उधर तुम जेल में बंद कर दिए गए होते, रहता न?”

इसपर हकीम बेदिल बोले, “मैं तो कहता हू कि आपको रिहा करने में उन्होंने कोई जल्दी नहीं की है। अगर आपको महीने-भर भी जेल में और रखा जाता तो आपकी सेहत बिल्कुल तबाह हो जाती। यह सारी गड़बड़ जेल के खाने की वजह से पैदा हुई है।”

“लेकिन मुझे यह बिल्कुल अच्छा नहीं लगा—मैं अपनी रिहाई से बिल्कुल खुश नहीं हूँ,” अकबरअली बोले। “मैं यहा घायल सिपाही की तरह पड़ा हूँ और दूसरे लोग लड़ रहे हैं। जैसे ही मेरी तबियत कुछ ठीक होगी मैं अफसरो को

इत्तिला दे दूगा कि वे मुझे फिर गिरफ्तार कर सकते हैं।”

इतने में रामेश्वर काका हाथ में अखबार लिए आए। अनवर की पीठ थपककर और हमेशा की तरह शांत भाव से एक तरफ बैठकर उन्होंने अपनी जाघ पर हाथ मारते हुए कहा, “अरे अकबर, तुम फिकर क्यों कर रहे हो? क्या तुम्हें नहीं मालूम कि गांधीजी ने आन्दोलन वापस ले लिया है?”

“क्या मतलब तुम्हारा?” अकबरअली की आवाज में फिर वही पहले-वाला जोश पैदा हो गया था।

“हा, हा, मैं ठीक ही कह रहा हूँ। यह देखो अखबार में लिखा है।”

“लेकिन क्यों? आखिर किस वजह से?”

“यू० पी० की चोरीचौरा नाम की किसी जगह पर कुछ पुलिसवाले मार डाले गए थे, इसलिए गांधीजी कहते हैं कि लोगों के दिलों में अभी तक हिंसा है और इसलिए सिविल नाफरमानी की तहरीक वापस ली जाती है।”

“यह सही है कि कुछ पुलिसवाले मार डाले गए। लेकिन इससे क्या हुआ? हर आदमी तो महात्मा या सत् नहीं बन सकता। क्या उन लोगों ने हमारे बहुत-से आदमियों को नहीं मारा है?” अकबरअली के स्वर में एक ऐसी कटुता थी जो अनवर ने पहले कभी नहीं देखी थी। कुछ देर रुककर वे फिर धीमे स्वर में अपने-आप कहने लगे, “यह क्या किया? आखिर यह क्या किया? जब हम मजिल के इतना करीब पहुंच गए थे तब हमें रोक दिया।”

लेकिन अनवर को राजनीति की चिंता नहीं थी। वह सिर्फ यह दुआ माग रहा था, “या खुदा किसी तरह मेरे अब्बा को सेहतयाब कर दे।”

## झंडे उतर गए

हकीम अबुलरशीद बेदिल के इलाज और फूफी-अम्मा की तीमारदारी की बदौलत अकबरअली जल्द ही चगे हो गए। पर मौत का साया उनके सिर पर मडला रहा था और उनमें एक परिवर्तन साफ दिखाई देने लगा था। वे अपना कारोबार अब भी देखते थे और बैठक में अब भी अपने दोस्तों के साथ बैठकर बातें करते थे; वे अब भी अखबार पढ़ते थे और राजनीतिक घटनाओं पर बहस करते थे। लेकिन उनमें वह पहलेवाला जोश बाकी नहीं रह गया था। उनकी दाढ़ी सफेद होने लगी थी और बीमारी की वजह से उनके चेहरे का रंग भी कुछ फीका पड़ गया था और उनकी आवाज में फिर कभी वह पहलेवाली गूँज पैदा न हो सकी। वे काफी कमजोर हो गए थे और बूढ़े लगने लगे थे। अक्सर वे बड़ी देर तक बिल्कुल खामोश बैठे बहुत उदाम होकर कुछ सोचते रहते थे और जब कोई उनसे कुछ कहता था तो एकाएक चौक पड़ते थे।

अनवर भी बड़े गौर से अपने अब्बा को देखता रहा। उसने देखा कि अब वे नमाज़ में ज्यादा वक़्त लगाते थे। पहले भी वे दिन में पाँच बार पाबंदी से नमाज़ पढ़ते थे लेकिन वे इसकी सारी क्रियाएँ इतनी फुर्ती से पूरी कर लेते थे कि ऐसा लगता था जैसे कोई मजा हुआ भिपाही फौजी कवायद कर रहा हो। लेकिन अब वे घटो जानमाज पर बैठे कुछ सोचते रहते थे या तसबीह फेरते रहते थे। अक्सर नमाज़ पढ़ते वक़्त उनकी आँखों से आसूँ ढलककर उनकी दाढ़ी में खो जाते थे और वे कापती हुई आवाज़ में दुआ मागते थे, “खुदा, तू बड़ा रहीम है, तू बड़ा करीम है। मेरे बच्चों पर रहम कर। हमें ईमान के रास्ते पर ले चल और बंदी से हमें बचा।” और जब अनवर यह सुनता तो उसके दिल में उस खुदा का खौफ पैदा होता जिसके सामने उसके अब्बा भी इतने लाचार थे।

कुछ और तब्दीलियाँ भी हुई थीं। अब अकबरअली अपना ज्यादा वक़्त चौधरी मुहम्मदउमर के साथ बिताते थे और अक्सर सदर बाज़ार में उनकी



चीनी के बरतनो की दूकान पर भी जाते थे। वे पंजाबी व्यापारी हमेशा से इस बात के खिलाफ थे कि अकबरअली राजनीति में अपना वक्त खराब करें। वे अक्सर उनसे कहते थे, “अकबर साहब, आप सियासत के भगड़े इन नेताओं पर क्यों नहीं छोड़ देते और अपने कारोबार को ज्यादा वक्त क्यों नहीं देते?” न जाने क्यों अनवर को चौधरी मुहम्मदउमर अच्छे नहीं लगते थे। उसे उनसे कोई खास शिकायत नहीं थी, लेकिन उनका अक्खड़पन, उनकी सख्त आवाज़ और उनका बड़ी बेतकल्लुफी से उसकी पीठ पर धप मारना अनवर जैसे शाइस्ता लडके को बिलकुल पसंद नहीं था।

एक दिन जब अनवर बैठक में गया तो उसने देखा कि उसके अब्बा चौधरी मुहम्मदउमर के साथ बैठे हुए हैं। उनके सामने कुछ कागज़ रखे हुए थे और वे कुछ राज की बातें कर रहे थे। यह सोचकर कि उनकी बातों में खलल न पड़े अनवर पीछे लौटा ही था कि मुहम्मदउमर साहब ने उसे पुकारा, “आओ अनवर, तुमसे क्या चोरी है।” और जब वह बैठ गया तो उसके अब्बा ने कहा, “देखो अनवर, मैंने अभी चौधरी साहब के साथ साभे के एक दस्तावेज़ पर दस्तखत किए हैं। सो अब इनकी चीनी के बरतनो की दूकान में मैं साभेदार हो गया,” और फिर अपनी हमेशा जैसी मुस्कराहट के साथ बोले, “अब अगर तुम्हें कभी प्लेटो या गिलासो की ज़रूरत हो तो तुम हमेशा हमारी दूकान से मुफ्त ला सकते हो।”

‘हमारी दूकान !’ अनवर को न जाने क्यों यह बात कुछ अच्छी नहीं लगी। “लेकिन अब्बा, आपका रामेश्वरदयाल काका के साथ भी तो साभे है !”

“सो तो है अनवर, लेकिन क्या मैं दो दूकानों में साभेदार नहीं हो सकता ? और फिर तुम जानते हो कि जब से लड़ाई खत्म हुई है तब से कम्बलो का कारोबार बराबर मंदा पड़ता जा रहा है। तुम्हें इन सब बातों का पता होना चाहिए, क्योंकि मेरे मरने के बाद तुम्हें ही सारा कारोबार देखना होगा।”

“हा बेटा,” मुहम्मदउमर साहब ने अनवर की पीठ पर एक धप मारते हुए अपनी पाटदार आवाज़ में कहा, “मैं चाहता हूँ कि तुम और शफी भी आपस में वैसे ही पक्के दोस्त बनो जैसे हम और तुम्हारे अब्बा हैं।”

अनवर ने मुहम्मदउमर साहब के बेटे को देखा था। बहुत बड़े डीलडौल का उजड़्ड किस्म का लड़का था। जब भी वह अपने अब्बा के साथ सदर बाज़ार

वाली दूकान पर जाता था तो शफी उसपर हमेशा कारोबार के बारे में अपनी बेहतर जानकारी का रोब झाड़ता था। उसने प्राइमरी तक अपनी पढाई पूरी करके स्कूल छोड़ दिया था क्योंकि उसके अम्बा को कारोबार में हाथ बटाने के लिए किसीकी जरूरत थी। शफी का दोस्त और साभेदार बनने की बात अनवर को बिल्कुल पसंद नहीं आई। लेकिन अपने अम्बा का लिहाज करके उसने कुछ कहा नहीं और चौधरी साहब की इस बेतकल्लुफी को चुपचाप टाल गया।

अनवर ने बैठक में बड़े लोगों की बातें सुनकर बहुत कुछ सीखा था। स्कूल से आकर वह चुपचाप बैठक में एक कोने में बैठ जाता था और अपने अम्बा और उनके दोस्तों की बातें सुनता रहता था।

रोज किसी न किसी नई बात पर बहस होती थी और रोज अनवर कुछ नये शब्द सीखता था। गांधीजी ने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया था फिर भी सरकार ने उन्हें पकड़कर जेल में बंद कर दिया था। हकीम बेदिल अखबार से उनके मुकदमे का हाल पढ़कर सुना रहे थे। अनवर ने सुना कि जिस वक्त कैदी को अदालत में लाया गया तो सब लोग उसके सम्मान में उठ खड़े हुए—यहां तक कि खुद जज साहब भी खड़े हो गए थे। अनवर को अब से कई बरस पहले का वह दिन याद आ गया जब उसने डाक्टर असारी के बगले के लॉन पर पतली-पतली टांगोवाले एक दुबले-पतले आदमी को चर्खा चलाते देखा था। उसे बड़े-बड़े गोल शीशोवाली ऐनक और उस बूढ़े की मित्रतापूर्ण मुस्कराहट याद आ गई। और अब उसीको जेल में बंद कर दिया गया था। क्यों? क्योंकि वह अपने दुश्मनों को मारना नहीं चाहता था, वह एक चूहे तक को मारना नहीं चाहता था? यह दुनिया अब तक अनवर के लिए एक बहुत बड़ी पहेली बनी हुई थी।

लेकिन एक बात वह जानता था कि उसके अम्बा ने अभी तक गांधीजी को आंदोलन वापस लेने के लिए माफ नहीं किया था और अक्सर उनके बारे में बहुत व्यंग से बातें करते थे। और जब रामेश्वरदयाल वहां पर मौजूद न होते थे तो चौधरी मुहम्मदउमर साहब कहा करते थे, “बनिया बहरहाल बनिया होता है—आटा-दाल बेचनेवाला।”

एक दिन अचानक पहले से कोई सूचना दिए बिना रतन अनवर के घर आया। शुरू में तो उसे पहचानना ही मुश्किल था, क्योंकि उसकी उम्र को देखते हुए वह सिख लड़का काफी लम्बा-तगड़ा हो गया था। वह सिर पर काली पगड़ी बांधने लगा था और जब अनवर ने उससे पूछा कि उसने पीली पगड़ी बांधना क्यों छोड़ दिया था, तो रतन ने उत्तर दिया था, “तुम नहीं जानते मैं अकाली बन गया हूँ ?”

“अकाली ! अकाली क्या होता है ?” अनवर को अपने दोस्त के सामने अपनी जहालत का सबूत देकर बहुत शर्म आई।

“तुम नहीं जानते ?” नौजवानी के जोश के साथ अपने हाथ हिलाते हुए रतन ने उसे समझाया कि अकाली आंदोलन किस तरह शुरू हुआ था, किस तरह यह आंदोलन सिखों के गुरुद्वारों को सरकार और उसके गुर्गों के हाथों से वापस ले लेगा और यह भी बताया कि पुलिस ने सिखों को कैसी-कैसी तकलीफें दी थी, किस तरह उन्हें पीटा था और कुछ सिखों को तो जान से भी मार दिया था। उसने बताया कि अकाली एक बढ़ती हुई इन्कलाबी ताकत है। रतन अपने शब्दों के प्रवाह में ऐसा खो गया था कि उसे इस बात की चिंता भी नहीं थी कि उसने जो कुछ कहा था वह सब उसके दोस्त की समझ में आया भी था कि नहीं। “तुम देख लेना,” उसने अपनी बात खत्म करते हुए कहा, “तुम देख लेना एक दिन यही अकाली हिन्दुस्तान को आजाद कराएंगे।”

“लेकिन रतन यह तो बताओ दिल्ली कैसे आना हुआ ?”

“तुम नहीं जानते ?” और उसका यह सवाल सुनकर अनवर को एक बार फिर अपनी जहालत का एहसास हुआ। रतन ने उसे बताया, “यहां कांग्रेस का इजलास होनेवाला है। इसलिए अकाली वालंटियर्स का एक जत्था लाहौर से यहां इसलिए भेजा गया है कि अपने आंदोलन के बारे में कांग्रेसवालों को बताएं। यह तो तुम जानते ही होगे कि हम कांग्रेस के साथ हैं।”

“क्या मैं भी कांग्रेस के इजलास में आ सकता हूँ ?” अनवर ने पूछा और रतन ने अपने-आपको अपने दोस्त से बहुत बड़ा महसूस करते हुए उससे कहा कि वह उसके लिए भी एक टिकट का इंतजाम कर रखेगा।

“अच्छा, अब मैं चलता हूँ,” रतन ने उठते हुए कहा।

“इस तरह बिना कुछ खाए-पीए कैसे जा सकते हो ! ज़रा ठहरो। मैं जाकर

फूफी-अम्मा से हम लोगो के लिए कुछ तैयार कर देने को कहता हूं। फिर हम साथ खाएंगे—बस हम दोनो।”

फूफी-अम्मा ने अनवर से कहा कि वे उसके दोस्त को अन्दर नहीं आने दे सकती, “तुम्हारी समझ में इतना भी नहीं आता कि अब तुम्हारी बहिन बड़ी हो गई है, उसे परदा करना चाहिए। तुम एक गैर आदमी को घर के अन्दर नहीं ला सकते।” लेकिन उन्होंने दोनो के लिए खाना बाहर भिजवा दिया और चूकि अकबरअली घर पर नहीं थे इसलिए दोनो बैठक में फर्श पर बैठकर खाना खाने लगे—फकीरा सालन और चावल और जायरेदार सन्जिया ला-लाकर देता जा रहा था।

रतन अनवर से अगले दिन कांग्रेस के पडाल पर मिलने का वादा करके चला गया। “तुम बड़े गेट पर आ जाना। मैं वहीं मिलूंगा।”

जब अनवर अन्दर गया तो उसने फूफी-अम्मा को गुलाबो से कहते सुना, “उस सिख लडके ने जिन बर्तनो में खाना खाया है उन्हें अलग रखना और राख से माजकर तीन बार पाक कर लेना।”

अनवर ने महसूस किया कि यह उसके दोस्त का अपमान है और वह कुछ कहना चाहता था लेकिन उसे इसी तरह की एक घटना याद आई जब उसने काका रामेश्वरदयाल के घर पर खाना खाया था और उनकी बीवी ने भी वह थाली और पीतल की कटोरिया अलग रखवा दी थी जिनमें उसे खाना दिया गया था। उस समय अनवर की समझ में इस बात का महत्त्व नहीं आया था, पर अब वह समझ गया। जिस तरह वह काका की बीवी की नजरो में अपवित्र था उसी तरह रतन फूफी-अम्मा की नजरो में नृपाक था। लेकिन क्यों? आखिर क्यों? किस वजह से?

सितम्बर, १९२३ में दिल्ली में कांग्रेस का जो विशेष अधिवेशन हुआ उसमें अनवर जा नहीं सका और रतन पडाल के बड़े फाटक पर बड़ी देर तक खड़ा उसकी राह देखता रहा।

अनवर ने रतन से मिलने का जो वांदा किया था उसे भी पूरा नहीं कर सका और उस अधिवेशन के अध्यक्ष मौलाना अबुलकलाम आज़ाद का भाषण भी



नहीं सुन सका। यह एक ऐतिहासिक अधिवेशन था, क्योंकि इसमें कांग्रेस के नेताओं ने फैसला किया था कि आंदोलन को सरकार के साथ पूर्ण असहयोग की दिशा से विधानपरिषदों में साविधानिक विरोध की दिशा में मोड़ दिया जाए।

इसी अरसे में अकबरअली ने अपनी बेटी अजुम का ब्याह अपने भतीजे रऊफ के साथ कर देने का फैसला कर लिया था। और एक तेरह बरस के लड़के के लिए बड़ी से बड़ी राजनीतिक उथल-पुथल के मुकाबले में ब्याह की चहल-पहल में दिलचस्पी लेना स्वाभाविक ही था। उस दिन सुबह जब अनवर सोकर उठा और रतन से मिलने के लिए कांग्रेस के पडाल जाने की तैयारी करने लगा तो उसे यह देखकर कुछ ताज्जुब हुआ कि बैठक में उसके अब्बा ताया अमजद-अली से कुछ बातें कर रहे हैं। ताया-अब्बा रात को ही आए थे और दोनों भाई बहुत घुल-घुलकर बातें कर रहे थे। बैठक से गुजरते वक्त अनवर ने ताया अमजद-अली को कहते सुना, “तो अकबर, यह तै रहा। अगले चाद की बारहवीं का दिन बहुत मुबारक दिन है। मैंने मौलवी साहब से पूछ लिया है।” और उस-पर छोटे भाई ने जवाब दिया, “मैं बिलकुल राजी हूँ, भाई साहब। इस बीमारी ने मुझे बिलकुल कमजोर कर दिया है। कौन जाने अल्लाह ने मुझे कितनी उम्र दी है। आख बन्द होने से पहले मैं चाहता हूँ कि अजुम का ब्याह कर जाऊँ।” इसपर अमजदअली ने जवाब दिया, “माशा अल्लाह, रऊफ अब बालिग हुआ। बेहतर यही है कि इस वक्त उसकी शादी कर दी जाए। देर से शादी करने में जवान लड़कों में दुनिया-भर के ऐब पैदा हो जाते हैं।”

तो बाजी अजुम का रऊफ भैया के साथ ब्याह होनेवाला है। एक क्षण के लिए अनवर के दिल में यह खयाल उठा कि रऊफ की जगह कोई दूसरा होता तो अच्छा था क्योंकि रऊफ उसे अच्छा नहीं लगता था। वह ज़रूरत से ज्यादा रईसाना मिजाज का और जिद्दी था। लेकिन ब्याह की खबर सुनते ही वह इतना खुश हो उठा था कि उसमें किसी अच्छाई या बुराई पर गौर करने का कोई मौका ही नहीं था। अनवर अपने खानदान में ही कई शादियाँ देख चुका था और उनकी चहल-पहल में उसे बहुत मजा आता था—रंग-बिरंगे कपड़े, गहने और दावते। लेकिन जब अपने ही घर में शादी हो ! उसमें तो बेहद मजा रहेगा।

“अनवर, ज़रा इधर आना,” उसके अब्बा ने आवाज़ दी और अनवर ने जाकर ताया-अब्बा को सलाम किया। फिर अकबरअली उससे बोले, “अगले

महीने तुम्हारी बहिन की शादी तुम्हारे रऊफ भैया से होनेवाली है। दरीबा जाकर जरा बनारसीलाल जौहरी को तो बुला लाओ।”

और जब वह भागकर दरीबा की तरफ गया जहा जौहरियो और सुनारो की दूकानें थी तो वह रतन और काग्रेस के बारे मे सब कुछ भूल गया, हालाकि अभी कल ही वह वहा जाने को इतना उत्सुक था।

“बाजी अजुम, बाजी अंजुम, इस घर मे किसीकी शादी होनेवाली है। भला बताओ तो किसकी ?”

“चल यहा से, शरीर कही का ! तेरी ही शादी होनेवाली होगी किसी कानी चुडैल से।”

अपनी बहिन को एक कोने मे बैठकर रेशमी कुर्ते पर गोटा टाकते देखकर अनवर को उसे छेड़ने का बहुत अच्छा मौका मिल गया। उसने बताया कि कौन-कौन-से जेवर बनवाए गए थे और बाहर बैठक मे रेशम, जामेवार और मशरू के कैसे-कैसे थान रखे हुए थे। उसने बाजी अजुम से पूछा कि वे अपने ताया अमजद-अली से अचानक पर्दा क्यों करने लगी थी। और बातचीत के दौरान मे कोई न कोई मौका निकालकर वह रऊफ का भी जिक्र कर देता था जिसे सुनते ही अंजुम के गोरे-गोरे गालो पर लाली दौड़ जाती थी। आखिरकार फूफी-अम्मा ने आकर उस बेचारी लडकी की जान छुड़ाई और अनवर को डाटा कि वह अपनी बहिन को तग करने के बजाय बाहर जाकर व्यापारियो और फेरीवालो से निबटने मे अपने अब्बा की मदद क्यों नहीं करता। ब्याह की भनक पाकर जौहरियो और सुनारो के साथ ही बहुत-से दूसरे व्यापारी और फेरीवाले भी उस घर के चक्कर लगाने लगे थे। अनवर ने बाहर जाकर देखा तो बैठक मे हर रंग के कपड़ो, चादी, पीतल और चीनी के बरतनो, मेज-कुर्सियो, कालीनो, जूतो और यहां तक कि लिहाफ-गद्दो और तकियो के ढेर लगे थे।

सारी खरीदारी की जिम्मेदारी चौधरी मुहम्मदउमर साहब पर थी और वे हर व्यापारी से बड़े रोब के साथ बात करते थे, जैसे कोई बड़ा व्यापारी छोटे व्यापारी से करता है। बीच-बीच मे किसी चीज को पसंद करके वे कह देते थे, “अच्छा, इसे भी रख लें,” और अकबरअली को तसल्ली देने के लिए जिन्हे

इन सब चीजों के पैसे देने थे, यह भी कहते जाते थे, “अकबरअली, मैं यकीन दिलाता हूँ कि बरसों में किसीने अपनी बेटी का ऐसा दहेज नहीं दिया होगा।”

अनवर को ऐसा महसूस होता था कि ब्याह की इन सारी तैयारियों में किसी चीज की कमी है, लेकिन वह यह नहीं बता सकता था कि वह क्या चीज थी। मुहम्मदउमर साहब की बातें सुनते-सुनते एक दिन अचानक उसकी समझ में आ गया कि किस चीज की कमी थी। कमी थी काका रामेश्वरदयाल की। वे कई दिन से बैठक में दिखाई नहीं दिए थे।

“अब्बा, अब्बा,” उसने हिम्मत करके पूछा, “इतने दिन से काका क्यों नहीं आए हमारे यहाँ?”

“अपनी दूकान के काम में फंसे होंगे,” अकबरअली ने छोटा-सा उत्तर दिया और अनवर को ऐसा लगा कि किसी वजह से उसके अब्बा उसके इस सवाल से खुश नहीं हुए थे। और ‘अपनी दूकान’ से उनका क्या मतलब था, क्योंकि पहले तो वे हमेशा ‘हमारी दूकान’ कहते थे। इस बीच में क्या हो गया था?

इस बीच में जो कुछ हुआ था वह सिर्फ इतना ही नहीं था कि अकबरअली और रामेश्वरदयाल की पुरानी साझेदारी खत्म हो गई थी, बल्कि हिन्दुओं और मुसलमानों की साझेदारी भी, खिलाफत और स्वराज के संयुक्त आंदोलन के दौरान में मजबूत होनेवाली उनकी एकता भी खतरे में पड़ गई थी।

एकता और देशभक्ति की लहर उतरने लगी थी। असहयोग आन्दोलन के वापस ले लिए जाने की वजह से देश के राजनीतिक जीवन में एक खाली जगह पैदा हो गई थी जिसे भरने के लिए दो परस्पर-विरोधी आन्दोलन चल पड़े थे। एक धार्मिक हिंदू कांग्रेसी नेता को सजा की मियाद पूरी होने से पहले ही रिहा कर दिया गया था। सुना जाता था उन्हें इसलिए रिहा कर दिया गया था कि उन्होंने यह इच्छा प्रकट की थी कि वे राजनीतिक कामों में हिस्सा न लेकर धार्मिक कामों में ही अपना सारा समय लगाएंगे। यहाँ तक कहा जाता था कि कुछ बड़े-बड़े सरकारी अफसरों ने उन्हें यह कदम उठाने के लिए ‘उकसाया’ था। कुछ भी रहा हो, पर उन्होंने जेल से बाहर आकर ‘शुद्धि’ का आंदोलन शुरू किया, जिसका उद्देश्य यह था कि उन सभी लोगों को जो हिंदू नहीं थे फिर

हिंदू बना लिया जाए। इसीके साथ एक और आंदोलन भी शुरू किया गया जिसका उद्देश्य था 'संगठन' यानी हिंदू होने की हैसियत से हिंदुओं का एक लड़ाकू संगठन बनाया जाए। और उसकी काट के लिए फौरन 'तबलीग' यानी अल्लाह का पैगाम फैलाने की तहरीक शुरू की गई और मुसलमान होने की हैसियत से मुसलमानों का संगठन बनाने की तहरीक यानी 'तनजीम' शुरू की गई। हिंदू-आंदोलन की तरह ही तबलीग और तनजीम करनेवाले जत्थों की रहनुमाई भी एक पुराने कांग्रेसी नेता के हाथ में थी जो किसी ज़माने में एकता के गुण गाते थे।

अपने अब्बा की बातचीत के दौरान में अनवर 'शुद्धि' और 'तबलीग' जैसे शब्द सुनता था पर वह इनका पूरा महत्त्व नहीं समझता था। लेकिन उसने कभी सोचा भी नहीं था कि इन सब बातों का कोई ताल्लुक काका रामेश्वरदयाल के साथ उसके अब्बा के सबध से भी हो सकता है। क्योंकि अनवर को यही सिखाया गया था कि वह अपने अब्बा के पुराने साभेदार को 'काका' कहा करे और चाचा की तरह उनकी इज्जत किया करे। अनवर ने हमेशा से उन्हें अपने ही घर का एक आदमी समझा था और हमेशा समझता रहेगा। वह अपने सगे ताया अमजदअली से भी ज्यादा उनकी इज्जत करता था।

उसने अपने अब्बा की इस दलील को मान लिया था कि कम्बलो के व्यापार में साभेदारी इसलिए खत्म कर दी गई थी कि उन्हें सदर बाजार में चीनी के बरतनों की दुकान में लगाने के लिए पैसों की ज़रूरत थी और रामेश्वरदयाल खुद कोई दूसरा कारोबार करने की सोच रहे थे। उसने अपने अब्बा की बात पर यकीन तो कर लिया था फिर भी न जाने क्यों यह बात उसके गले के नीचे नहीं उतरती थी। और जब चौधरी मुहम्मदउमर ने उसे नसीहत करते हुए कहा था कि "और फिर, बेटा, तुम्हें यह भी समझना चाहिए कि मुसलमानों को अपना इत्तहाद बनाना सीखना चाहिए और इन काफ़िरो का साथ छोड़ देना चाहिए," तो उसे उनकी तिरस्कार-भरी मुस्कराहट बिल्कुल अच्छी नहीं लगी थी।

जैसे-जैसे शादी का दिन करीब आता गया अनवर का ज्यादातर वक्त उसी-में खर्च होने लगा और उसकी उत्सुकता भी बढ़ती गई। शादी की तैयारी में



बहुत-सा काम करने को था—पूरे घर पर सफेदी और रंग-रोगन होना था, बैठक को फिर से सजाना था, शादी में आनेवाले सभी लोगों के लिए कई तरह की मनो मिठाई तैयार करवानी थी। बहुत ही चुनी हुई जबान में सैकड़ों दावत-नामों खूबसूरत कार्डों पर छपवाकर अकबरअली के रिश्तेदारों, दोस्तों और उन लोगों को भेजे गए थे जिनके साथ व्यापार के सिलसिले में उनका ब्यौहार था। अनवर ने भी जिद करके अपने स्कूल के बहुत-से साथियों और दोस्तों के पास ये निमन्त्रण-पत्र भिजवाए थे, वह एक निमन्त्रण-पत्र अमृतसर में अपने दोस्त रतन के पास भेजना भी नहीं भूला था। उसे उम्मीद थी कि शायद इस निमन्त्रण को वह उस दिन कांग्रेस के पडाल में न पहुँचने के लिए माफी का खत समझ लेगा।

अगले चाद की बारहवीं तारीख को ताया अमजदअली अपने बहुत-से रिश्तेदारों और दोस्तों के साथ दो लारियों पर गुडगाव से दिल्ली आ पहुँचे। लेकिन इस बार वे सब लोग एक दूसरे घर में ठहरे और सिर्फ ताया अमजदअली कुछ आखिरी इंतजामात के सिलसिले में अपने भाई से बातचीत करने वहाँ आए। अनवर रऊफ और बिलकीस से मिलने जाना चाहता था क्योंकि वह कई साल से उन दोनों से नहीं मिला था, लेकिन फूफी-अम्मा ने यह कहकर उसे नहीं जाने दिया कि निकाह की रस्म पूरी हो जाने से पहले दुल्हिन के भाई का बरातियों से मिलने जाना मुनासिब नहीं है।

शाम को सूरज डूबने के बाद मेहमान आकर सहन में बैठने लगे। सहन में दरी-कालीन बिछे हुए थे जिनपर तकिये रखे हुए थे; जगह-जगह हुक्के रखे हुए थे। जनानखाने में फूफी-अम्मा कुनबे की आधा दर्जन बड़ी-बूढ़ियों की मदद से भी उन औरतों के बैठने का इन्तजाम नहीं कर पा रही थी जो झुंड के झुंड बच्चे लेकर वहाँ आ गई थी और जिनकी जबान कैची की तरह चल रही थी। अनवर भी अपनी नई चमकदार रेशमी शेरवानी में बहुत जच रहा था। दुबला और छोटे कद का होने की वजह से कोई उसे तेरह बरस का नहीं कह सकता था और इसलिए उसे जनानखाने में 'फ्री एंट्री' मिली हुई थी और वह खुशी में मग्न होकर बार-बार अन्दर से बाहर और बाहर से अन्दर आ-जा रहा था। एक कोने में डोमनिया बैठी हुई ढोलक पर शादी के गीत गा रही थी, लेकिन मेहमानों के कहकहों और लगातार बोलने के शोर में उनकी बारीक खनकदार

आवाज मुश्किल से ही सुनाई देती थी। औरतो के, और खास तौर पर जवान लड़कियों के लिबास में रंगों की बहार थी—हर किस्म के चटकीले, लाल, नीले और हरे रंग। इस मौके के लिए खास तौर पर जो गैस के हूडे लगवाए गए थे उनकी रोशनी में उनके जेवर झिलमिल रहे थे। हवा में तरह-तरह के इत्रों की खुशबू बसी हुई थी। हर बार जब अनवर किसी काम से पान-सुपारी लेने या काका रामेश्वरदयाल की तरफ से दुल्हिन को दिए गए जोड़े और गहने पहुंचाने अन्दर जाता था तो उसे ऐसा लगता था कि वहां का सारा वातावरण उसे अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। कभी कोई बड़ी-बूढ़ी उसके सिर पर हाथ फेरकर या सीने से लगाकर जब यह कहती कि “अरे, मेरा बच्चा इतना बड़ा हो गया,” तो वह खिसिया जाता। जवान लड़कियां कनखियों से उसे देखती पर कुछ लजाकर उससे दूर ही रहती। बिलकीस भी, जो पिछले दो बरसों में कई इंच बढ़ गई थी और अपने नीले गरारे-कुर्ते और कामदानी के दुपट्टे में बिलकुल शाहजादी लगती थी, अनवर से कुछ शरमा-गरमाकर ही बात करती थी और अनवर को उसका यह अंदाज बहुत अच्छा लगता था।

बरात करीब नौ बजे आई और अनवर को अपने भाई रऊफ से ईर्ष्या होने लगी क्योंकि सबका ध्यान उसीकी तरफ लगा हुआ था। उसका कद उसकी उम्र के लिहाज से कुछ ज्यादा ही लम्बा था। जरी की शेरवानी और गुलाबी पगड़ी में वह बहुत ही शानदार लग रहा था। उसके मुंह पर फूलों का सेहरा पड़ा हुआ था जिसकी वजह से उसका चेहरा माफ नहीं दिखाई देता था। सजी हुई घोड़ी पर से उतरकर बहुत सभाल-सभालकर कदम रखते हुए वह अन्दर आया और उसे सहन के बीच में मखमली मसनद पर बिठाया गया। थोड़ी देर में दोनों तरफ के दो मौलवियों ने शादी की रस्में शुरू की। अरबी में कुरान की जो आयते पढ़ी गईं उन्हें छोड़कर बाकी सारी रस्में बहुत ही छोटी और सीधी-सादी साबित हुईं। अनवर के साथ एक मौलवी साहब अन्दर गए और काफी शोर-गुल के बाद दुल्हिन के कमरे की तरफ बढ़े। छ-सात बड़ी-बूढ़ियों के बीच घिरी हुई लाल कपड़ों की एक गठरी को सम्बोधित करके मौलवी साहब ने पूछा, “अजुम बेगम बिनते अकबरअली, क्या तुम्हें मुबलिग पाच हजार रुपये के मेहर के एवज अब्दुलरऊफ वल्द अमजदअली के साथ निकाह मजूर है?” लाल कपड़ों की गठरी चुपचाप बैठी रही, बल्कि वह तो हिली तक नहीं लेकिन किसी बड़ी-बूढ़ी

ने चिल्लाकर कहा, “वह कहती है ‘हा मजूर है’ । अब क्या वह बेहया बनकर चिल्लाकर कहेगी ?”

उस छोटी-सी कोठरी में अनवर का दम घुट रहा था और वह बिलकुल बौखला गया था । वह मौलवी साहब के साथ बाहर निकलने के लिए मुड़ा ही था कि दुल्हिन के जोड़े की परतो में से एक हाथ बाहर निकला और उसने अनवर को रोक लिया और अजुम ने बहुत धीमे से उसके कान में कहा, “जब यह सब काम हो जाए तो जरा आकर मुझसे मिल जाना ।” इस डर से कि कहीं वह बाकी रस्म देखने से रह न जाए, अनवर भागकर बाहर पहुंचा और सुना कि मौलवी साहब पूछ रहे थे, “अब्दुलरऊफ वल्द अमजदअली, क्या तुम्हें पांच हजार रुपये के मेहर पर अजुम वेगम विन्ते अकबरअली को अपनी बीवी बनाना मजूर है ?” और जब नौशा ने तीन बार कह दिया कि “हा, मुझे मजूर है,” तो फौरन छुहारे बाटे गए और दोनों समधियों को मुबारकबाद दी जाने लगी ।

दूल्हा और उसके कुछ चुने हुए दोस्तों ने रात को बैठक में अड़ा जमाया । दूसरे दिन वे लड़की को रखसत कराकर उसके साथ जानेवाले थे । हर तरफ मौज और खुशी का दौर-दौरा था और किसीको सोने का खयाल भी नहीं आ रहा था । नौजवान आपस में हसी-मजाक कर रहे थे और रऊफ की खुशी का तो कहना ही क्या था । वह अपने कुछ दोस्तों के साथ बैठा ताश खेल रहा था और बाकी लोग बड़ी दिलचस्पी से खड़े तमाशा देख रहे थे ।

घर के अन्दर कुछ औरतें तो जा चुकी थीं लेकिन करीब के रिश्तेदार रह गए थे और डोमनिया अब रात के सन्नाटे का फायदा उठाकर उन्हें जी भरकर गाना सुना रही थी । फूफी-अम्मा बावर्चीखाने में थीं और मेहतरों, भित्तियों, कहारों, नाइयों और दूसरे नौकरों को गुलाबों से खाना और मिठाईं दिलवा रही थी । अनवर के लिए अपनी बहिन के पास जाने का यह अच्छा मौका था ।

अजुम अपने पलंग पर गठरी बनी लेटी थी, ब्याह के जोड़े की अनगिनत परतों में वह खोकर रह गई थी । अनवर दबे पांव उसके पास गया और बोला, “बाजी, मैं हूँ अनवर ।”

“जरा दरवाजा बंद कर लो,” अंजुम ने दबी आवाज में कहा, “नहीं तो मैं तुमसे खुलकर बात नहीं कर पाऊंगी।”

जब अनवर चटखनी लगाकर मुड़ा तो उसने देखा कि अंजुम पलंग के किनारे पर बैठी हुई थी और मेज़ पर रखे हुए लैम्प की रोशनी में उसका चेहरा साफ दिखाई दे रहा था।

अंजुम का बदन छरहरा और रंग गोरा था, उम्र के लिहाज़ से उसका कद कुछ ज्यादा लम्बा था। उसकी बड़ी-बड़ी बादामी आखों में अभी तक बच्चों जैसी मासूमियत थी। उसके हाथ बहुत नाज़ुक थे और हथेलियों पर रची हुई मेहदी की वजह से और भी सफेद लगते थे। उसकी उंगलियों पर बहुत-सी नगदार अंगूठियाँ और पतली गरदन में सोने का एक भारी-सा हार था। उसके सिर पर लगा हुआ झूमर ऐसा लगता था जैसे कोई सुनहरी तितली आकर उसके बालों में फस गई हो।

अनवर हैरत से उसे देखता रह गया। क्या यह आसमान की परी उसकी वही बहिन थी जिसके साथ वह हमेशा से खेलता और लड़ता आया था?

अंजुम ने हाथ पकड़कर उसे अपने पास बिठा लिया। अब जाकर अनवर ने देखा कि उसकी आखों में आसू भरे हुए थे।

“लेकिन बाजी, तुम तो रो रही हो।” अनवर को बहुत ताज़्जुब हो रहा था। उसने पूछा, “क्या तुम इस शादी से खुश नहीं हो?”

अंजुम ने बड़े प्यार से अनवर को गले से लगा लिया और जवाब दिया, “तेरी समझ में यह नहीं आता कि कल मैं इस घर से चली जाऊंगी, अब्बा से, फूफी-अम्मा से और तुमसे अलग हो जाऊंगी? अनवर, मुझे तो बहुत डर लगता है।” और यह कहकर अंजुम की आखों से गर्म-गर्म आसू उसके गालों पर ढलकने लगे।

अनवर के लिए यह परिस्थिति बहुत कठिन थी क्योंकि वह अपनी बहिन को हमेशा से बुद्धिमत्ता और गम्भीरता की साकार मूर्ति समझता आया था और इसलिए उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि किस तरह उसे धीरज बधाए। उसे यह तो पता नहीं था कि वह किस बात से डर रही थी लेकिन शादी की सारी खुशी उसी क्षण नष्ट हो गई। उसके लिए अब यह खुशियाँ मनाने, अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने और दावत उड़ाने का मौका नहीं रह गया था। एक क्षण



में उसे इस परिस्थिति का असली मतलब समझ में आ गया, जिससे अब तक वह अपनी मासूमियत में बेखबर था। उसकी खुशी में अब एक दर्द भी शामिल हो गया था—अपनी प्यारी बहन से अलग हो जाने का दर्द। कल अजुम चली जाएगी और वह घर में अकेला रह जाएगा। वह किसके साथ खेलेगा? अब वह किसे छेड़ेगा? अब स्कूल से लौटने पर कौन प्यार-भरी मुस्कराहट से उसका स्वागत करेगा। यह सब सोचकर वह भी अजुम से लिपटकर रोने लगा। अजुम फिर बड़ी बहिन की तरह उसको दुलारने लगी।

भकान में सबसे ऊपरवाली मंजिल पर एक कोठरी थी जिसमें घर का सारा अंगड-खगड भरा रहता था। अनवर चुपचाप वहां चढ़ गया और एक दूटी हुई चारपाई पर लेट गया। वह एकान्त चाहता था।

खिड़की से उसे आसमान दिखाई दे रहा था जिसपर सितारे जगमगा रहे थे, लेकिन अनवर के हृदय को उनसे कोई शांति नहीं मिली। नीचे आगन में डोमनिया बहुत दर्द-भरी आवाज में बाबुल गा रही थी। अनवर ने यह गीत पहले भी कई ब्याहों में सुना था लेकिन आज इस गीत का असर खुद उसके दिल पर हो रहा था। उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसकी बहिन अपने अम्बा से रो-रोकर कह रही हो :

काहे को ब्याही बिदेस  
अरे लखि बाबुल मोरे।  
हम तो, रे बाबुल, बेले की कलिया  
घर-घर मांगी जाय !  
हम तो, रे बाबुल, खूटे की गैया  
हाको जिधर हंक जायं !  
हम तो, रे बाबुल, भापे को चिड़िया  
रैन बसे उड़ जायं !

आधी रात को डोमनियों का गाना बंद हुआ लेकिन अनवर के दिमाग में वह गीत गूंजता रहा और वह किशोरवय बालक इस समस्या के बारे में सोचता रहा कि खुशी और दर्द हमेशा एकसाथ मिले क्यों रहते हैं।

## और खुदा सोता रहा''''

दिल्ली की गर्मी । सारे शहर पर गर्मी एक भूत की तरह छाई हुई थी । तारकोल की सड़को से, दूकानों पर पड़ी हुई टीन की छतों से, पक्की दीवारों से, सड़क की बत्तियों के लोहे के खंभों से, गरज यह कि हर चीज से गर्मी निकल रही थी । सुनसान सड़को पर लू के गर्म झोंके चल रहे थे, और धूल और कूड़ा-करकट जमा करके बवडरो की शक्ल में उड़ा रहे थे । आसमान पिघले हुए ताबे जैसा लग रहा था और सूरज खुद अपनी तेज रोशनी में खो गया था । आसमान से अगारे बरस रहे थे और जमीन से आग की लपटें उठ रही थी और दोनों ने मिलकर सारे शहर को एक जहन्नूम बना दिया था, वही जहन्नूम जिसके बारे में अनवर ने मौलवी साहब से बहुत कुछ सुन रखा था । दोपहर के बाद तीन-चार घंटे तक सारा शहर सोता था । दूकानदार अपनी दूकानों के आगे मोटे-मोटे हरे पर्दे डालकर अंदर सो जाते थे । पैसेवाले लोग खस के खुशबूदार पर्दे लगाकर अपने घरों के सबसे अंदरवाले ठंडे अंधेरे कमरों में सो जाते थे और इन पर्दों को लगातार तर रखने के लिए बाहर एक आदमी तैनात कर देते थे । सड़क पर आवाजाही बिल्कुल बन्द हो जाती थी, कभी कोई बैलगाड़ी चर-चर करती हुई सड़क पर से गुजरती थी और प्यासे बैलों की सूखी जबानें बाहर निकली रहती थी ।

अकबरअली के मकान में एक ठंडा अंधेरा तहखाना था जिसमें हर वक्त सीलन की बू आती रहती थी । रोज ग्यारह बजे स्कूल से लौटकर खाना खाने के बाद अनवर इसी तहखाने में बंद हो जाता था । अकबरअली शायद ही कभी तहखाने में जाते थे । उन्हें अपनी बैठक ज्यादा पसंद थी , वे वही खस का पर्दा लगाकर लेटते थे । लेकिन फूफी-अम्मा को तो हर वक्त यह डर लगा रहता था कि उनका लाडला भतीजा कहीं धूप में कुम्हला न जाए, ठीक उसी तरह जैसे जाड़े-भर उन्हें इस बात की फिक्र रहती थी कि कहीं उसे जुकाम न हो जाए ।

इसलिए आगन में लगे हुए गुडहल का साया पूरी तरह सिमटकर उसकी जड़ में आ जाने से पहले ही वे हमेशा अनवर को तहखाने में भेज देती थी।

अनवर अपनी फूफी-अम्मा का कहना मानकर फौरन तहखाने में चला जाता था। तहखाने में कदम रखने से पहले वह थोड़ी देर आखे बद करके सीढ़ियों पर खड़ा रहता था ताकि उसे अंधेरे की आदत हो जाए। जब वह आखे खोलता था तो चारों ओर छाए हुए अंधेरे में से उसे चारपाइयों पर बिछे हुए विस्तरों की सफेद चादरे दिखाई देती थी। वह जाकर अपनी चारपाई पर लेट जाता था। ठंडे तकिये पर जब वह अपने गर्म गाल रखता था तो उसे बहुत मजा आता था।

अनवर चारपाई पर लेट गया और उसने अपनी आखे बद कर ली पर उसे नींद नहीं आई। उसके विचार इधर-उधर भटक रहे थे। अनवर को हमेशा इस बात पर ताज्जुब होता था और उसके स्कूल के मास्टर्स को भी उससे यही शिकायत थी कि वह तेज तो बहुत था पर किसी चीज में देर तक ध्यान नहीं लगा सकता था। इसकी क्या वजह थी। जब वह हिसाब का कोई सवाल करता था या ज्योमेट्री की किसी समस्या को हल करता था तो कभी-कभी उसका ध्यान भटककर बाहर तार के खंभे पर बैठी हुई चिड़िया की तरफ चला जाता था और वह उन बड़े-बड़े कबूतरों के बारे में सोचने लगता था जो उसने कई बार आसमान पर उड़ते देखे थे—अब वह इतना तो जान गया था कि इन बड़े-बड़े कबूतरों को हवाई जहाज कहते हैं। वह अपनी कल्पना में उन सूरूर देशों के बारे में सोचने लगता था जहां इन कबूतरों की पीठ पर बैठकर जाया जा सकता था। वह इंग्लैंड और अमरीका के बारे में सोचता रहता था और यह अंदाजा लगाने की कोशिश करता था कि वहां किस तरह के लोग रहते होंगे। उसने अपने स्कूल की किताबों में इंग्लैंड के बारे में बहुत कुछ पढ़ा था। वहां बादशाह रहता था और सब वाइसराय वही से भेजे जाते थे। वहां बहुत बड़े-बड़े शहर थे, दिल्ली से भी बड़े, और उनमें सबसे बड़ा शहर था लंदन। और अमरीका ! वह तो परियों का देश था। वहां से जादू की 'चलती-फिरती' तसवीरे आती थी जिन्हें उसने बायस्कोप के पर्दे पर देखा था—हा, ऐसी तसवीरें जो सचमुच चलती थी और अजीब-अजीब हरकतें करती थी। भागती हुई

मोटर, सरपट दौड़ते हुए घोड़े और खूबसूरत औरतों के पीछे भागते हुए लम्बी-लम्बी मूछोवाले जगली मर्द । सचमुच यह बायस्कोप बहुत ही अद्भुत चीज़ था और अनवर यह जानना चाहता था कि ये तसवीरे आखिर 'चलती' कैसे हैं । ये तसवीरे बिल्कुल सचमुच के आदमियों जैसी लगती थी । उसे एक बहुत ही मसखरा आदमी अच्छी तरह याद था जिसकी तसवीरे उसने देखी थी—वह बहुत ही मसखरा आदमी था, उसके बहुत छोटी-छोटी मूछें थी, वह औंधे प्याले जैसी हैट पहनता था, उसकी पतलून हमेशा थैले की तरह लटकती रहती थी और वह हमेशा हाथ में छड़ी लिए रहता था और वह मुह ऐसा बनाता था कि हसी रोकना मुश्किल हो जाता था । अनवर को अपने इन विचारों पर बरबस हसी आ गई ।

उसके विचारों को भग करता हुआ मास्टर साहब का कर्कश स्वर गूँज उठा, "अनवर ! हस किस बात पर रहे हो ? सवाल लगा लिया अपना ?"

अनवर उन्हें किस तरह समझाता कि खिडकी के बाहर नज़र जाते ही उसके दिमाग में कबूतरों और हवाई जहाजों और 'चलती-फिरती' तसवीरों के विचार घूमने लगे थे और अपना सवाल करने के बजाय वह उस मसखरे आदमी की हरकतों पर हस रहा था जिसे उसने बायस्कोप में देखा था । इस-लिए उसने चुपचाप मास्टर साहब की डाट सुन ली ।

हा, उसके विचार सचमुच बहुत ज्यादा भटकने लगे थे । तहखाने में लेटे-लेटे सबसे पहले तो उसे अपनी बहिन अजुम का खयाल आया । अजुम की शादी को छ महीने हो चुके थे पर अनवर अभी तक घर में उसके न होने का आदी नहीं हो पाया था । ऐसा लगता था कि उसकी जिंदगी का एक कोना खाली हो गया था जिसे अजुम के हर हफ्ते आनेवाले खत भी नहीं भर सकते थे । वह अपने भाई को बड़े प्यार-भरे खत लिखती थी लेकिन उनमें वह अपने नये घर में अपनी जिंदगी के बारे में कुछ नहीं लिखती थी । अब वे लोग गुडगाव में नहीं थे । अमजदअली दिल्ली से कोई सौ मील दूर सलामपुर नाम की एक रियासत में दीवान लग गए थे । यह बहुत बड़ा औहदा था और अब अमजदअली जब भी दिल्ली आते थे तो उनके साथ सुनहरी और लाल वर्दी पहने हुए दो चपरासी



होते थे और वे बहुत बढ़िया नई मोटर में घूमते थे जिसकी नंबर-प्लेट पर उस रियासत का नाम भी लिखा होता था। अनवर को यकीन था कि सलामपुर में अजुम बहुत खुश होगी क्योंकि वहां इतने बहुत-से नौकर-चाकर, बेशुमार पैसा और मोटर वगैरह थे। मैट्रिक पास करने के बाद रऊफ ने कालेज में नाम लिखाने का इरादा छोड़ दिया था और रियासत की पुलिस में एक नौकरी के लिए अर्जी दी थी। चूंकि पुलिस का महकमा उसके अब्बा के ही मातहत था इसलिए उसे यह नौकरी मिल जाने में कोई शक ही नहीं था।

रऊफ के खयाल से अनवर को कभी खुशी नहीं होती थी। वह न सिर्फ उसका चचेरा भाई था बल्कि अब तो बहनोई भी था, लेकिन फिर भी न जाने क्यों अनवर उसके बारे में प्यार और मुहब्बत के साथ नहीं सोच सकता था। इस जिद्दी और घमडी लड़के के बारे में सोचते ही अनवर के मन में न जाने क्यों विरोध की भावना पैदा होती थी। इसलिए वह रऊफ की तरफ से ध्यान हटाकर उसकी बहन बिलकीस के बारे में सोचने लगा। बिलकीस का खयाल आते ही अनवर के दिल में प्यार उमड़ पड़ता था। उसे अब तक गुडगाव के खेतों की वह सैर याद थी और यह भी याद था कि भागते वक्त बिलकीस की चोटी किस तरह फुदकती रहती थी। उस वक्त से वह बड़ी होकर एक अच्छी-खासी खूबसूरत औरत बन चुकी थी। लेकिन अजुम की शादी में बिलकीस उससे इतनी शरमाती क्यों रही और इतनी खिची-खिची क्यों रही? इन तीन बरसों में क्या बात हो गई थी जिसकी वजह से उनके आपस के संबंध में ऐसा परिवर्तन आ गया था कि वे अब खुलकर बेझिझक हस-बोल भी नहीं सकते थे। अनवर काफी देर तक इस समस्या के बारे में सोचता रहा और फिर उसके सामने खुद अपनी समस्या आ गई। तीन साल पहले उसे बिलकीस के साथ खेलने और भागने-दौड़ने में, उसकी चोटी खींचने में और उसे छेड़ने में बहुत मजा आता था। लेकिन इस बार जब उसने बिलकीस को देखा था तो उसका जी चाहा था कि वह देर तक उसे तकता रहे, और जब उसकी बड़ी-बड़ी आखों लाज से झुकी हुई पलकों के पीछे छिपी हुई न हो तब उन आखों में आखें डालकर देखता रहे। इस वक्त भी उसे वे सब पोशाकें याद थीं जो बिलकीस ने शादी के दिनों में पहनी थी।...

वह इन समस्याओं को किसी तरह हल नहीं कर पा रहा था कि इंसान के

आपस के रिश्ते क्यों बदलते रहते हैं। इसी उधेड़-बुन में उसे अपने दोस्त रतन का ख्याल आया जिसके बारे में उसे कई महीने से कोई खबर नहीं मिली थी, बस बीच में एक बार उसने अजुम की शादी के निमन्त्रण के जवाब में शुक्रिया का एक बहुत ही रस्मी-सा खत भेजा था। उसके इस खत से जाहिर था कि उसने अनवर को कांग्रेस के पडाल में वादे के मुताबिक न पहुँचने के लिए माफ नहीं किया था। अनवर कुछ झुझलाकर सोचने लगा कि 'यह रतन ज़रूरत से ज्यादा सियासी हो गया है। वह किसी दूसरी चीज़ के बारे में न बात कर सकता है न लिख सकता है।' फिर भी वह अपने दोस्त से मिलने के लिए कितना बेताब था।

जब सूरज ढल गया तो शहर में जैसे फिर से जान आ गई। नहा-धोकर लोग अपने-अपने घरों से निकल आए और एक बार फिर बाज़ार में चहल-पहल हो गई। जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर शरबत की दूकानों पर और कुलफीवालों के पास भीड़ जमा हो गई। जामा मस्जिद और लालकिले के बीच में जो मैदान पड़ा हुआ था, जहाँ गोरे सिपाही परेड करते थे, वहाँ एक अच्छा-खासा तमाशा जम गया। नट, बाजीगर, हरमज की दवा बेचनेवाले, कबाड़ी, 'हर माल मिलेगा दो पैसे' वाले, ऊंची आवाज़ में गा-गाकर किताबें बेचनेवाले, पीतल के कटोरे बजाते हुए मशक से बर्फ का ठण्डा पानी पिलानेवाले—ये सब-के-सब अचानक न जाने कहाँ से निकल पड़े थे। शाह सरमद के मज़ार के पास, जिनका सिर मुगल बादशाह के हुक्म से उड़वा दिया गया था, हमेशा की तरह फकीरो और मुरीदों की भीड़ लगी हुई थी और कब्बाली हो रही थी। वहाँ से कुछ ही दूर पर एक पादरी साहब उर्दू में मसीहो साहित्य की पुस्तकें बाँट रहे थे।

अनवर को अपना शाम का वक़्त इस हंगामे के बीच बिताना बहुत पसंद था। शाम के धुंधलके में यहाँ का दृश्य आधी हकीकत और आधा सपना मालूम होता था। यहाँ वह भीड़ के साथ घुल-मिल जाता था और इधर-उधर घूमता रहता था मानो समुद्र की लहरों पर सवार हो।

आज अनवर हमेशा से ज्यादा खुश था। उसके अब्बा ने उससे कहा था कि जब वह मैट्रिक पास कर लेगा तो उसका नाम अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में लिखा दिया जाएगा। अनवर ने इस यूनिवर्सिटी के सामुदायिक जीवन के बारे

मे बहुत कुछ सुन रखा था और यह सोच-सोचकर वह फूला नहीं समा रहा था कि पर की फांकी बेरग ज़िदगी के बजाय (जो अजुम की शादो के बाद और भी बेरग हो गई थी) अब उसे अपनी ही उम्र के सैकड़ो लड़कों के साथ ज़िदगी बिताने का मौका मिलेगा ।

बहुत खुश-खुश वह भीड़ में इधर-उधर टहल रहा था । थोड़ी देर बाद वह उस जगह से गुज़रा जहाँ 'दो सिर और पांच टांगोवाला बछड़ा' दिखाया जा रहा था ; फिर वह घूमता-घूमता एक दूसरी भीड़ में जा खड़ा हुआ । वहाँ एक बाजीगर ने एक आदमी को मेसमेरिज्म से बेहोश कर दिया था और उससे तरह-तरह के सवाल के जवाब दिलवा रहा था और वह बेहोश आदमी न जाने कैसे हर सवाल का जवाब बिलकुल सही-सही देता था । "सफ़ेद शेरवानी और लाल तुर्की टोपीवाले लड़के की जेब में कितने पैसे हैं ?" बाजीगर ने पूछा और ज़मीन पर बेहोश लेटे हुए आदमी ने चादर के नीचे से जवाब दिया "चौदह आने ।" अनवर ने अपनी जेब में हाथ डालकर पैसे बाहर निकाले— एक अठन्नी, एक चवन्नी, एक इकन्नी और चार पैसे । पूरे चौदह आने थे । हर आदमी अनवर को देखने लगा ; अनवर कुछ ऐसा खिसिया गया कि उसके पसीना छूटने लगा और वह इस बात पर हैरत करता हुआ वहाँ से चल दिया कि इसमें कितनी बाजीगरी है और किस हद तक सचमुच गुप्त बातों का पता लगा लेने की शक्ति । उसके अब्बा जादूगरो, नज़ूमियो, मेसमेरिज्म करनेवालो और दूसरे बाजीगरों का हमेशा मजाक उड़ाया करते थे । लेकिन अनवर के दिमाग में चौदह आनेवाली पहली ज्यो की त्यो बनी रही ।

वहाँ से आगे बढ़कर अनवर एक दूसरी भीड़ में जा पहुँचा जहाँ बहुत-से लोग एक आदमी के चारों ओर घेरा बांधे खड़े थे और वह आदमी गला फाड़-फाड़कर कुछ कह रहा था । यह एक दूसरी तरह का मेसमेरिज्म था और हर आदमी अपनी जगह पर मूर्ति की तरह खड़ा हुआ उस वक्ता के शब्दों के प्रवाह को मंत्रमुग्ध होकर सुन रहा था । अनवर ने सोचा कि यह कोई राजनीतिक प्रचारक होगा जो किसी बहुत इन्कलाबी बात का प्रचार कर रहा होगा, क्योंकि उस आदमी की आवाज़ में बेहद जोश था और वह बड़ी लगन और मेहनत से अपनी बात समझा रहा था, हालाँकि उसके मैले-कुचैले सूट और तेल में चुपड़े हुए बालों को देखने से वह किसी तरफ से नेता नहीं मालूम होता था । वह बड़े

प्रवाह के साथ लच्छेदार हिन्दुस्तानी में भाषण दे रहा था, “भाइयो, मैं आपसे पूछता हूँ कि किसी कौम की ताकत का क्या राज होता है ? अंग्रेज किस चीज की बदौलत आज सारी दुनिया के चौधरी बने बैठे हैं ? किस चीज ने आज अमरीका को दुनिया का सबसे धनवान देश बना दिया है ? किस चीज के बल पर जापान देखते-देखते दुनिया की एक बड़ी ताकत बन बैठा है ?” फिर वह बड़े नाटकीय ढंग से एक क्षण के लिए रुका और हर आदमी, अनवर भी, दम साधकर इन प्रश्नों के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। “भाइयो, मैं आपको बताता हूँ। इसका राज है अच्छी सेहत और ताकतवर जिस्म। हमारे बुजुर्ग कह गए हैं कि ‘सेहत लाख नियामत है।’ ‘जान है तो जहान है।’ लेकिन जब आप अपनी नौजवानी की गलतकारियों से अपने हाथों अपनी सेहत लुटा देते हैं, जब आप अपनी फूल जैसी जवानी को मसलकर خاک में मिला देते हैं तो आपकी सेहत अच्छी कैसे बन सकती है ? मेरे पास ये गोलियाँ हैं।...”

तो यह बात थी। धुआधार भाषण करनेवाले यह साहब ताकत की गोलियाँ बेचते थे। यह मालूम करके अनवर मुस्करा दिया और आगे बढ़ गया।

एक पानवाले की दुकान पर उसे गोपाल दिखाई दिया जो पिछले साल फँस हो गया था और इसलिए अब वह अनवर के साथ नहीं था। लेकिन उन दोनों की दोस्ती अब भी बनी हुई थी। उनकी दोस्ती एक जैसी चीजों को पसंद करने की वजह से नहीं बल्कि इस वजह से थी कि अगर एक पूरब था तो दूसरा पच्छिम। गोपाल मस्त बेफिकरा किस्म का लडका था, उसे अच्छे कपड़े पहनने का शौक था और हर वक्त उसकी जेब में ढेरो पैसे खनकते रहते थे। अनवर मन ही मन गोपाल से बहुत प्रभावित था, क्योंकि गोपाल में आत्मविश्वास था और वह दुनिया को समझता था और जिन्दगी को एक दिलचस्प खेल समझकर उमका आनंद लेता था। दूसरी तरफ गोपाल भी इस दुबले-पतले, शर्मीले और भेपू लडके की तरफ इसलिए खिंचता था कि उसे खेल-कूद के मुकाबले में कितना बड़े में ज्यादा दिलचस्पी थी।

अनवर को एक दोस्त से मिलने की बहुत खुशी थी और वह लपककर बड़े तपाक से गोपाल से मिला। ठेकेदार के बेटे ने फौरन उसे कुल्फी खाने की दावत दी।

“बस, शुक्रिया, मुझे तो कुल्फी खाना मना है। मेरा गला खराब हो जाता



है।” अनवर को अपनी कमजोर सेहत का जिक्र करते हुए बड़ी शर्म आती थी।

“तो कम से कम एक पान तो खाओ।”

“नहीं, रहने दो। मैं पान नहीं खाता। अब्बा पान खाने को मना करते हैं।”

“ओह, तुम भी कैसे फीके आदमी हो! अच्छा, हमारे साथ चलोगे तो? मुझे ज़रा साइकल का एक लैम्प खरीदना है।”

दोनों साथ-साथ कई दूकानों पर गए। कभी एक दूकान पर रुककर कोई चीज देखने लगते तो कभी दूसरी दूकान पर। साइकल के लैम्प का उन्हें ध्यान ही नहीं रहा। दूकानों पर बत्तिया जल गई थी पर अभी तक उनकी खरीदारी पूरी नहीं हुई थी। घूमते-घूमते वे मस्जिद के पश्चिम की तरफवाली दूकानों पर पहुँचे जहाँ मस्जिद की ऊँची दीवार के साये में तरह-तरह के कपड़ों, रंगीन रूमालों और तौलियों वगैरह की दूकानें थीं। गोपाल ने एक रेशमी रूमाल खरीदा और दूकानदार पाँच रुपये के नोट के बाकी पैसे अभी लौटा भी नहीं पाया था कि भागते हुए लोगों के कदमों की आवाज़ और ‘मारो! मारो!’ का शोर उनके कानों में पड़ा और उसके फौरन ही बाद ‘मार डाला! मार डाला!’ की चीखें सुनाई दीं। इससे पहले कि वे समझ पाते कि आखिर माजरा क्या है, दूकानदारों ने जल्दी-जल्दी अपनी दूकानें बंद कर दीं और लोग डरकर हर तरफ भागने लगे। जान का खतरा देखकर दोनों लड़के चावडी बाज़ार की तरफ भागे, जहाँ जल्दी-जल्दी लोग अपनी दूकानें बंद करके भाग रहे थे—यह कोई भी नहीं जानता था कि वह किस चीज से डरकर भाग रहा है। मस्जिद की मीनार पर से मुअज़्ज़िन ने अज़ान देकर मोमिनो को नमाज़ के लिए बुलाया और उसी वक्त पास के किसी मंदिर में घंटा बजने लगा। एक तागा सरपट भागता हुआ उनके पास से गुज़र गया। लोग तितर-बितर हो गए—कोई दाहिने भागा तो कोई बाएँ और चारों तरफ और ज्यादा गड़बड़ी फैल गई। कहीं कोई बच्चा रो उठा। कोई औरत चीख पड़ी। और किसीने अनवर और गोपाल को घसीटकर एक सकरे अघेरे जीने में पहुँचा दिया।

“बेटा, हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया है,” उस आदमी ने बड़ी हमदर्दी से कहा। सड़क के दूसरी तरफ से कोई दर्द-भरी आवाज़ में चिल्लाया ‘मार डाला!’ और उसके बाद ही एक अजीब-सी गड़गड़ाहट और कराह सुनाई दी—और फिर

खामोशी छा गई। अनवर ने सोचा कि 'कोई मारा गया' और यह सोचते ही उसे मतली होने लगी। 'लेकिन वह हिन्दू था कि मुसलमान ?' अंधेरे में से उसी आवाज ने फिर बड़े प्यार से कहा, "बेटा, अगर मैं तुम्हारी जगह होता तो इस वक्त सड़क पर न निकलता। तुम लोग थोड़ी देर यही ठहरना। मैं जाकर अपनी दुकान पर देखता हूँ कि वहाँ सब लोग खैरियत से हैं कि नहीं।" अंधेरे में से एक परछाई निकलकर सुनसान सड़क पर गायब हो गई। और एक बार फिर अनवर सोचने लगा : इस आदमी ने हमारी—एक हिन्दू और एक मुसलमान लड़के की—जान बचाई है और हमें यह भी नहीं मालूम कि वह खुद हिन्दू था या मुसलमान।

न जाने कितनी देर तक वे उन सकरी, अंधेरी सीढ़ियों में बैठे रहे। गोपाल यो तो बहुत तीसमारखा बनता था, लेकिन वह बहुत बुजदिल निकला। वह लगातार धिधियाकर यही कह रहा था, "अरे भगवान, अब क्या होगा ?" डर तो अनवर को भी लग रहा था लेकिन डर से ज्यादा उसे इस घटना की क्रूरता और मूर्खता पर गुस्सा आ रहा था। हिन्दू-मुस्लिम दंगा ! लेकिन आखिर क्यों ? उसने दूसरे शहरों में इस तरह के दंगों की खबर सुनी थी पर वे बहुत दूर की घटनाएँ मालूम होती थी जो दिल्ली में कभी नहीं हो सकती थी। अभी कुछ ही देर पहले तक क्या हिन्दू और मुसलमान आजादी से अपना-अपना काम नहीं कर रहे थे ? उनके दिलों में एक-दूसरे की तरफ से कोई मैल नहीं था, उन्हें इस बात का कोई डर नहीं था कि कोई उन्हें छुरा मार देगा। लेकिन एकदम से क्या हो गया था ? आखिर गोपाल भी तो हिन्दू था और वह खुद मुसलमान था। फिर भी उसके दिल में गोपाल को मार डालने का कोई ख्याल नहीं था और उसे यकीन था कि गोपाल भी उसकी जान नहीं लेना चाहता था। फिर दूसरे गोपाल और अनवर भी इसी तरह दोस्त क्यों नहीं रह सकते थे ? आखिर क्यों ?

उनके पीछे से कोई सीढ़िया उतर रहा था और अपनी इस हालत में दोनों लड़के दहशत के मारे चीख उठे। •

"कौन है ? तुम लोग यहाँ क्या कर रहे हो ?"

वह किसी औरत की आवाज थी। यह देखकर दोनों को ढाढस बधा।

“हम...हम...,” अनवर ने हकलाते हुए कहा “आप जानती है बाहर दगा हो रहा है। लोग मारे जा रहे हैं। इसलिए...इमलिए...किसीने हमसे कहा कि जब तक लडाई-दगा रक्त न हो जाए तब तक हम यहा बैठे रहे।”

अब तक गोपाल की भी जान में जान आ चुकी थी। उसने उस औरत से, जिसका चेहरा उन्हे अब भी नहीं दिखाई दे रहा था, कहा, “बाईजी, अगर आपको कोई एतराज न हो तो हम कुछ देर के लिए अदर आ जाए। इन सीढियो पर बैठे-बैठे तो हमारी टांगे अकड़ गई।”

“अच्छी बात है, आ जाओ। लेकिन तुम दोनों तो अभी लौडे हो।” और जिस ढग से उसने उन्हे ‘लौडे’ कहा उसमे तिरस्कार भी था और निराशा भी। अनवर ने इस बात को महसूस तो किया पर वह इसका मतलब उस वक्त तक नहीं समझ पाया जब तक कि गोपाल ने उसके कान में यह नहीं कहा कि “यार, हम लोग बडे किस्मतवाले हैं। यह तो रडी का घर है।”

रडी। उन ‘दूसरी औरतो’ में से एक जिन्हे अनवर ने एक बार इसी बाजार से गुजरते वक्त देखा था। लेकिन उसके अड्बा ने कह रखा था कि शरीफ आदमियो को उनकी तरफ देखना भी नहीं चाहिए, उनके घर में जाना तो दूर रहा। सीढियो के ऊपर पहुचकर उसके कदम अपने-आप रुक गए, लेकिन गोपाल उसे खींचकर एक कमरे में ले गया जो बिजली की रोशनी में चमक रहा था। वहा पहुचकर जब अनवर बेवकूफी की तरह पलके झपकाने लगा तो हर तरफ से एक जोर का ठहाका पडा।

कमरे की सजावट कुछ अजीब ही ढग की थी। फर्श पर एक सफेद चादनी बिछी हुई थी, जिसमें बहुत-से पैरो तले रौंदे जाने की वजह से बैशुमार सलवटे पड़ गई थी और कई जगह उसपर पान के धब्बे भी पड़े हुए थे। दीवारों पर बडे-बडे आईने और अलग-अलग हद तक नंगी औरतो की तसवीरे लगी हुई थी जिन्हे देखकर ही अनवर का मुह शर्म से लाल हो गया। कमरे के दूसरे सिरे पर एक दरवाजा था जिसपर परदा पड़ा हुआ था। यह दरवाजा एक दूसरे कमरे में जाता था और एक बार जब कोई नौकर अदर से निकलकर आया तो

अनवर ने देखा कि वहा एक मसहरी पडी हुई थी ।

कमरे मे बहुत लोग नही थे । वह औरत, जो उन दोनो को सीढियो पर मिली थी, लगभग पैतालीस बरस की भरे बदन की औरत थी । वह बीच मे बैठी हुई सामने एक बडा-सा पानदान रखे पान लगा रही थी । दो लडकिया, जिनमे स एक की उम्र लगभग बीस बरस की थी और दूसरी की इससे कुछ कम रही होगी, एक तरफ बैठी थी । वे शलवारे और कसे हुए कुरते पहने थी जिनकी वजह से उनके जिस्म की गोलाइया बहुत ज्यादा उभरकर सामने आ गई थी । वे दोनो सावली थी लेकिन उनके गालो पर ढेरो सुर्खी और पाउडर पुता हुआ था । वे दोनो दिखावे के लिए बहुत शरमाई हुई बैठी थी लेकिन जिस तरह वे उन दोनो लडको को कनखियो से देख रही थी उसमे शरारत साफ झलकती थी । न जाने क्यों उन्हे देखकर अनवर को उस फुर्तीले चीते की याद आ गई जिसे उसने एक बार सरकस मे देखा था । इन दोनो लडकियो के जिस्म भी उसी चीते की तरह थे और ऐसा लगता था कि वे किसी शिकार पर हमला करने के लिए पर तोल रही है । अनवर को उनकी तरफ देखते भी डर लगता था कि कही उनसे उसकी आखे चार न हो जाए, क्योंकि इससे उसे एक अजीब-सी उलझन होती थी और उसके मन मे ऐसी अजीब-अजीब उमंगे उठती थी जिनमे आकर्षण भी था पर जिनसे दूर भागने को भी जी चाहता था । थोडी दूर पर कुछ साजिदे बैठे धीमी आवाज मे दगो के वारे मे बाते कर रहे थे और यह मोच रहे थे कि वे घर कैसे वापस पहुंचेगे ।

अनवर ने देखा कि गोपाल को उसकी तरह घबराहट नही हो रही थी । बल्कि ऐसा लगता था कि ठेकेदार का बेटा इस वातावरण का आदी है । उसकी जवान, जिसमे हमेशा से मिठास और तेजरी थी, अब फिर कैची की तरह चलने लगी थी । अनवर को इस बात पर कुछ हसी भी आ रही थी कि गोपाल उस घर की मालकिन पर अपनी हैसियत और दौलत का रोब डालने की कोशिश कर रहा था और बीच-बीच मे उन दोनो लडकियो से नज़रे भी लडाता जाता था । दोनो लडकिया गोपाल की मोटरी, बंगलो, रेशमी साडियो और जेवरों की बाते सुनकर काफी रोब मे आ गई थी । जब पान लग गए तो बाईजी ने चादी की तश्तरी मे रखकर छोटीवल्ली लडकी को दे दिए । मटकती हुई वह पहले गोपाल के पास गई और बड़े अदब से झुककर उसने तश्तरी उसके आगे



बठा दी ।

गोपाल ने लडकी की आखों में आखें डालकर कहा, “अगर पान खिलाना चाहती हो तो अपने हाथ से खिलाना होगा ।”

लडकी खिखियाकर हसी और गिलौरी गोपाल के खुले हुए मुह में रख दी । और पान मुह में रखते ही गोपाल ने जोर की चटकारी लेकर उसकी उगलियों को चूम लिया । अनवर समझता था कि इसपर वह गोपाल के मुह पर थप्पड़ मार देगी, लेकिन सब लोग हस पड़े मानो यह भी कोई मजाक रहा हो । गोपाल ने उसे बाह पकड़कर रोका और जेब में से पांच रुपये का नोट निकालकर उसी मुट्ठी में रख दिया और ऐसा करते समय वह उसकी हथेली में गुदगुदी करना नहीं भूला ।

अब अनवर की बारी थी । लडकी को अपनी तरफ आता देखकर अनवर का तो दिल बैठने लगा । जब वह उसे पान देने के लिए झुकी तो अनवर की नाक में बहुत सस्ते इत्र की तेज खुशबू आई । इससे पहले कि अनवर यह कह पाता कि वह पान नहीं खाता उस लडकी ने उसके मुह की तरफ हाथ बढ़ा दिया । अनवर चौंखलाया हुआ मुह खोले बैठा था ।

“यार, तुम भी बड़े बेवकूफ हो,” गोपाल ने उसे छेड़ते हुए कहा, “ऐसा मौका भी कोई हाथ से जाने देता है ।” अनवर मना रहा था कि ज़मीन फट जाए और वह उसके अन्दर समा जाए ।

लेकिन उस लडकी ने तो अनवर के खुले हुए मुह में पान रख दिया था और तश्तरी लिए उसके सामने खड़ी इंतज़ार कर रही थी । अनाडियों की तरह पान चबाते हुए अनवर को यकायक खयाल आया कि उसे तश्तरी में कुछ पैसे रखने चाहिए । इसलिए उसने जेब में हाथ डालकर जो कुछ भी था बाहर निकाला—एक अठन्नी, एक चवन्नी, एक इकन्नी, और ताबे के चार पैसे । जब पैसे खनककर तश्तरी में गिरे तो कमरे में बैठे हुए सब लोग कहकहा मारकर हस दिए । मौके का फायदा उठाकर गोपाल ने लडकी को अपनी तरफ खींच लिया और बड़ी बेतकलुफी से उसके गाल मसलने लगा ।

अनवर ने अपनी ज़िन्दगी में पहले कभी पान नहीं खाया था । पान चबाते-चबाते उसके मुह में पीक भर गई और उसकी समझ में नहीं आया कि उसे निगल जाए या थूक दे । सुपारी से उसके हलक में फंदा लग गया था । और

उस औरत ने शायद पान में थोड़ी-सी तम्बाकू भी डाल दी थी जिसकी वजह से अनवर का सिर चकराने लगा। दीवार पर टंगी हुई नगी तस्वीरें, साजिन्दे, पानदान के पास बैठी हुई वह औरत, और चीते जैसी वे दोनों लड़कियाँ जो उसे ऐसे घूर रही थी मानो अभी उसे खा जाएँगी, और कहकहे लगाता हुआ गोपाल जिसके पान से लाल दात दिखाई दे रहे थे—अनवर को लग रहा था कि हर शख्स, हर चीज़ झूम रही है, नाच रही है।

किसी तरह अनवर अपने जूते ढूँढ़कर सीढ़ियों की तरफ लपका और एक सास में सीढ़ियाँ उतर गया जैसे उसके पीछे एकसाथ कई भूत लग गए हों। उसे यह मंजूर था कि वह दगे में किसी गुडे के हाथों मारा जाता, पर वह उस घर में एक क्षण के लिए भी नहीं रुक सकता था।

कुछ दिन बाद दंगा खत्म हो गया। पता यह चला कि शहर के दो गुडों में कोई ज़ाती भगडा हो गया था। उनमें से एक हिन्दू था और दूसरा मुसलमान और दोनों तरफ के कट्टर मजहबी लोगो ने इस मौके का फायदा उठाकर भूठी अफवाह फैलाई थी और दोनों सम्प्रदायों के बीच भगडा करा दिया था। अनवर ने चावडी बाजारवाली बात अपने अब्बा को नहीं बताई थी। वह जानता था कि उसे मजबूर होकर ही वहा जाना पड़ा था लेकिन उसे डर था कि उसके अब्बा कहीं इसका गलत मतलब न लगाएँ।

दंगा तो खत्म हो गया लेकिन उसकी वजह से दिलो में जो बैर पैदा हो गया था वह दूर नहीं हुआ। दोनों एक-दूसरे को दोष देते थे। अपने अब्बा की बैठक में अनवर ने तरह-तरह के भयानक किस्से सुने कि हिन्दू सारे हिन्दुस्तान में मुसलमानों पर कैसे-कैसे जुल्म ढाने की तैयारियाँ कर रहे थे। अकबरअली ने तो चौधरी मुहम्मदउमर की तरह गाली बकते थे और न ही कभी सख्ती से बोलते थे, लेकिन अनवर यह महसूस करने लगा था कि उसके अब्बा का दिल अब अपने हिन्दू दोस्तों की तरफ से हटने लगा था और इसीलिए जब कभी काका रामेश्वरदयाल आते थे—हालांकि इन दिनों उन्होंने आना बहुत कम कर दिया था—तो अकबरअली उनसे बहुत ही रस्मी तरीके से मिलते थे।

अनवर अजीब मुश्किल में फस गया था। जब भी वह अपने अब्बा और

चौधरी मुहम्मदउमर के मुह से सुनता कि फसाद के जमाने में हिन्दुओं ने मुसलमानों पर कैसे-कैसे जुल्म किए थे तो उसपर पहली प्रतिक्रिया यह होती थी कि वह सभी हिन्दुओं से नफरत करने लगे। लेकिन जब वह काका रामेश्वरदयाल या गोगाल से या अपने स्कूल के उन मास्टर साहब से मिलता था जो उसे भूगोल पढ़ाते थे तो वह किसी भी तरह उनसे नफरत नहीं कर सकता था। सच तो यह था कि जब वह इनमें से किसीसे भी मिलता था तो वह यह भूल जाता था कि जिससे वह बातें कर रहा है वह आदमी हिन्दू है। वह उनके साथ पहले की तरह ही अदब या मुहब्बत से पेश आता, लेकिन बाद में अपने-आपको दोष देता कि वह चौधरी साहब या उनके बेटे शफी की तरह पक्का मुसलमान नहीं था क्योंकि ये लोग तो खुले-आम हिन्दुओं से नफरत का ऐलान करते थे। पंजाबी व्यापारी चौधरी मुहम्मदउमर ने एक आंदोलन खड़ा किया था जिसका नाम था 'मुसलमान मुसलमान से ही खरोदे'। इस आंदोलन का उद्देश्य यह था कि मुसलमानों में तिजारत का शौक पैदा किया जाए जिसे वे अब तक बहुत घटिया काम समझते थे। इस आंदोलन के नतीजे के तौर पर अगर मुहम्मदउमर और अकबरअली की चीनी के बरतनों की दुकान पर ज्यादा ग्राहक आने लगे थे तो यह सिर्फ इस बात का सबूत था कि मुसलमानों में आपस में कितना भाईचारा था। यह सब उस अल्लाह की शान थी और इसके लिए अल्लाह का शुक्र अदा किया जाना चाहिए।

सितम्बर में स्कूल की छुट्टियां हुईं और हालांकि मार्च में अनवर को मैट्रिक का इम्तहान देना था लेकिन वह उसके लिए अभी तक कोई खास तैयारी नहीं कर रहा था। वह अब भी बैठक के उसी कोने में बैठा लोगों की बातें सुनता रहता था। इन दिनों आम तौर पर इसी साम्प्रदायिक समस्या पर बातचीत होती थी। उस सवेदनशील बालक के लिए दंगों के बारे में दिल दहलानेवाली बातें सुनना एक बहुत ही भयावह अनुभव था। ये आए दिन की घटनाएं हो गई थी फिर भी उनकी भयावहता उसे स्तम्भित कर देती थी। वह विभिन्न शहरों में होनेवाले खून-खराबे और तबाही की जितनी ही ज्यादा खबरें सुनता था उतनी ही ज्यादा उसकी दिलचस्पी इस बात में घटती जाती थी कि हिन्दुओं ने मुसलमानों को मारा या मुसलमानों ने हिन्दुओं को। उसे तो सिर्फ यह समझ में आता था कि जो कल तक आपस में भाई-भाई और दोस्त थे वे आज एक-दूसरे के खून के प्यासे हो

गए थे। क्या उसके देशवासियों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी? अनवर को यह सब बातें वैसी ही भयानक लगती थी जैसे वह जाकर काका रामेश्वरदयाल के छुरा भोक दे या गोपाल आकर उनके घर को आग लगा दे। इस किशोरवय बालक को ऐसा लगता था कि कोई आवाज लगातार उसके सिर के अंदर हथौड़े से चोट कर रही है, “इसे रोकने के लिए कुछ किया जाना चाहिए। जरूर किया जाना चाहिए। फौरन कुछ किया जाना चाहिए।” लेकिन वह क्या कर सकता था। जब इतने बड़े-बड़े नेता कुछ नहीं कर सके तो मुश्किल से पंद्रह बरस का एक लड़का क्या कर सकता था।

आखिरकार उसने फैसला कर ही लिया। चौधरी मुहम्मदउमर ने हमेशा की तरह अपने हिकारत-भरे लहजे में कहा कि गांधी दिल्ली आया है—वे उन्हें कभी भी महात्मा गांधी नहीं कहते थे। इसपर अकबरअली ने भी किंचित् निराशा से कहा, “एक जमाना था जब वे हालत को सभाल सकते थे।” अनवर के दिमाग में यह विचार बिजली की तरह कौंध गया, ‘मैं जाकर महात्मा गांधी से मिलूंगा। वे जरूर कुछ कर सकते हैं। उन्हें जरूर कुछ करना पड़ेगा। क्या उन्होंने ही मुझे खाव में उस राक्षस से नहीं बचाया था? क्या उन्होंने ही हिन्दुस्तानियों को यह नहीं सिखाया कि वे अंग्रेजों को न मारे? और लोगो ने उनका कहना माना। इसलिए अगर अब वे हिन्दू-मुसलमानों से यह कहेंगे कि वे एक-दूसरे को न मारे तो वे यकीनन उनका कहना मानेंगे।’ यह विचार उसके मन में इतनी तेजी से उठा और उसका दिल जोश के मारे इतने जोरो से धड़कने लगा कि वह चुपके से बैठक में से खिसक आया। वह डर रहा था कि कहीं उसके अब्बा को उसके इस इरादे का पता न चल जाए और वे उसे रोक न लें।

गांधीजी दरियागज के पास ही कूचा चेलान में मौलाना मुहम्मदअली के घर पर ठहरे हुए थे। पतली चक्करदार गलियों को पार करते समय अनवर सोच रहा था कि यह तो बहुत ही अच्छी बात है। वह जानता था कि मौलाना और गांधीजी बहुत गहरे दोस्त थे और जिल से छूटने के बाद मौलाना कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए थे। दो इतने बड़े-बड़े लोगो की दोस्ती का नतीजा, जिनमें



से एक हिन्दू था और दूसरा मुसलमान, अच्छा ही हो सकता था ।

मौलाना मुहम्मदअली के घर पर ही उनके दो अखबारों का दफ्तर भी था—एक उर्दू का 'हमदर्द' और दूसरा अंग्रेजी का 'कामरेड' । जिस वक्त अनवर ने डरने-डरते दरवाजा खटखटाया, मौलाना बैठे अपने प्रखबार का सम्पादकीय लेख लिख रहे थे । अपने ढीले-ढाले काले लबादे में उनका शरीर बहुत बड़ा लग रहा था ।

“कौन है ?” मौलाना ने नजर ऊपर उठाए बिना गरजकर पूछा ।

अनवर की समझ में नहीं आ रहा था कि अपना क्या परिचय दे । उसने हकला-हकलाकर कहा, “मैं हूँ...माफ कीजिएगा...मैं...मैं...”

मौलाना ने लिखना बंद कर दिया और अपना खूबसूरत दाढ़ीवाला रोबदार चेहरा ऊपर उठाकर देखा कि कौन आया है । जब उन्होंने देखा कि एक स्कूली लड़का दरवाजे पर बौखलाया हुआ खड़ा है तो उनके चेहरे पर एक मुस्कराहट दौड़ गई और वे बोले, “भिया साहबजाने, आ जाओ, अदर आ जाओ ।”

अनवर की हिम्मत बंधी और वह बोला, “मैंने एक बार आपको डाक्टर असारी साहब के यहाँ देखा था । मैं वहाँ अपने अब्बा के साथ गया हुआ था...” लेकिन उसकी बात बीच में ही काट दी गई ।

“अच्छा, तो तुम्हारे अब्बा असारी के दोस्त हैं । बैठो बेटा, बैठो । कहो, इस वक्त कैसे आना हुआ ।”

“मैं महात्मा गांधी से मिलना चाहता हूँ ।” अनवर ने बिना झिझके कह दिया और अपने आने का उद्देश्य बताकर उसे बड़ा सतोष हुआ ।

“अच्छा ! तो तुम इस काम से आए हो ? ऊपर चले जाओ बेटा । वैसे गांधीजी आज किसीसे मिलना नहीं चाहते थे लेकिन नौजवानों से मिलकर उन्हें हमेशा बड़ी खुशी होती है ।”

“शुक्रिया मौलाना साहब ! आदाब अर्ज !” अनवर ने कमरे से बाहर निकलते हुए कहा ।

“जीते रहो बेटा !” मौलाना ने जवाब दिया और अनवर कमरे से बाहर निकल भी नहीं पाया था कि मौलाना फिर सिर मुकाकर लिखने लगे ।

ऊपर पहुँचकर अनवर ने देखा कि गांधीजी फर्श पर पाल्थी मारे बैठे चर्खा कात रहे हैं । वे किसी गहरे विचार में डूबे हुए थे, इसलिए थोड़ी देर तक तो

उन्हे अनवर के आने का पता ही नहीं चला और अनवर को बहुत करीब से उस छोटे-से महान् व्यक्ति को गौर से देखने का मौका मिला । गोल गुम्बद की तरह घुटा हुआ सिर, लम्बी नुकीली नाक और बाहर को निकले हुए बड़े-बड़े कान । बड़े-बड़े गोल शीशेवाली ऐनक के पीछे से दोनो आखे चर्खे के तकुए पर जमी थी । उनका शरीर एक लडके से भी छोटा और दुबला-पतला था और जिंदगी में पहली बार अनवर को अपने छोटे कद और दुबले-पतले शरीर के बारे में कुछ तसल्ली हुई ।

चर्खे की चू-चू के अलावा कमरे में बिलकुल सन्नाटा था । अनवर डरते-डरते खासा और चर्खा चलना फौरन बंद हो गया । दो उदास आखे ऊपर उठी और अनवर को देखने लगी । एकाएक उस चेहरे पर से उदासी दूर हो गई और बूढ़े ने अनवर को मुस्कराकर देखा, बिलकुल उसी तरह जैसे डाक्टर अमारी के बगले के लॉन पर उसने अनवर की तरफ देखा था ।

“बैठो, बैठो !” गांधीजी ने अनवर से बैठने को कहा । अनवर के कान दिल्ली की मभी हुई जबान सुनने के आदी थे ; उसे गांधीजी की हिन्दुस्तानी में गुजराती की साफ भलक दिख ई दी । लेकिन उनकी आवाज़ में बेहद नरमी थी ; अनवर अब बिलकुल घबरा नहीं रहा था । वह जूते उतारकर फर्श पर बैठ गया । चर्खा फिर चलने लगा क्योंकि गांधीजी चर्खा चलाते-चलाते बातें करने के काफी आदी मालूम होते थे ।

अनवर का खद्दर का पाजामा और शेरवानी देखकर गांधीजी बहुत खुश हुए और उन्होंने यह बताना शुरू किया कि हाथ के कते हुए सूत से हाथ का बुना हुआ कपड़ा पहनने में कितने फायदे हैं—यह एक ऐसा विषय था जिसपर वे घंटों बातें कर सकते थे । लेकिन अनवर तो दगो के बारे में बात करने आया था । पर उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि किस तरह बात शुरू करे । खादी के महत्त्व के बारे में गांधीजी की बातें सुनते-सुनते उसके विचार भटकने लगे । वह उन तमाम भयानक बातों के बारे में सोच रहा था जो उसने दगो के बारे में सुनी थी—हिंदुओं और मुसलमानों का एक-दूसरे को कत्ल करना, एक-दूसरे के घरों में आग लगाना और मदिरो और मस्जिदों को गदा करना । और गांधीजी की धीमी आवाज़ और चर्खे की री-री को रौदती हुई उसे वे भयानक आवाज़ें फिर सुनाई देने लगी—‘मारो ! मारो !’ और ‘मार डाला ! मार डाला !’

वह अपने दिल का दर्द गांधीजी को कैसे बताए ? वह उन्हें किस तरह बताए कि उसके अब्बा मुसलमान हैं और उनकी वह बेहद इज्जत करता है और उसके एक हिंदू काका हैं जिन्हें चाचा की तरह प्यार करना और चाचा की तरह इज्जत करना उसे बचपन से सिखाया गया था—लेकिन अब वे दोनों वैसे गहरे दोस्त नहीं रह गए थे जैसे कि वे अब तक अपनी जिंदगी-भर रहे थे ? वह उन्हें किस तरह बताए कि गोपाल अपनी नभाम खराबियों के बावजूद उसका अच्छा दोस्त था और वह उसकी दोस्ती खोना नहीं चाहता था ? वह उन्हें रतन के बारे में बताने के लिए बेताब था । वह उन्हें बताना चाहता था कि रतन की दोस्ती ने उसकी जिंदगी की धारा किस तरह मोड़ दी थी । लेकिन अब इन सारी दोस्तियों में साम्प्रदायिक द्वेष का जहर घुल गया था । काश वह ये सारी बातें गांधीजी को समझा सकता ! काश वह ऐसा कर पाता ! .....लेकिन उसे शब्द नहीं मिल रहे थे, उसका गला रुंध गया था और वह बहुत लाचार और दुखी महसूस कर रहा था । उसके आसू बह निकले ।

चर्खा चलना बन्द हो गया और गांधीजी एक शब्द भी कहे बिना अनवर के पास आए और उसकी तुर्की टोपी उतारकर बड़े प्यार से उसके गिर पर हाथ फेरने लगे । उनके स्पर्श में इतना स्नेह था कि अनवर और भी लाचार महसूस करने लगा और फूट-फूटकर रोने लगा । “महात्माजी,” उसने अपनी सिसकियों के बीच कहना शुरू किया, “इन हिंदू-मुस्लिम दंगों के बारे में कुछ कीजिए । खुदा के लिए कुछ कीजिए । आप ही हम सब लोगों को बचा सकते हैं ।”

अपने आने का उद्देश्य इस तरह बताकर उसके दिल का बोझ हलका हुआ और आसू पोछकर जब उसने ऊपर नज़र उठाई तो महात्माजी के चेहरे पर एक नया ही भाव था । अब अनवर की समझ में आ गया कि लोग उन्हें महात्मा क्यों कहते थे । उनकी मुद्रा में इतनी व्यथा, इतनी करुणा और दया थी कि जैसे हर इंसान की पीड़ा वे स्वयं अनुभव कर रहे हों । परन्तु साथ ही उनकी मुद्रा में असीम शांति तथा गम्भीरता भी थी और जब अनवर ने उन कोमलता-भरी आँखों में आँखें डालकर देखा तो उसके मन को कुछ शांति हुई । उसे एक ऐसा आदमी मिल गया था जो बिना समझाए उसकी बात समझ सकता था । उसे एक ऐसा आदमी मिल गया था जो एक दुखी रोते हुए लड़के का मजाक उड़ाने की बजाय उसकी भावनाओं को समझकर मुस्कराकर उसे देख सकता था । अनवर

के गाल अभी तक आसुओं से तर थे पर उसके होठों पर बरबस मुस्कराहट की एक रेखा दौड़ गई।

“हा बेटा,” महात्माजी ने स्नेह-भरे स्वर में दूर क्षितिज की ओर देखते हुए कहा, “मेरे दिल को भी वैसी ही चोट लगी है जैसी तुम्हारे दिल को। अगर भगवान ने मुझे रास्ता दिखाया तो मैं जरूर कुछ करूंगा।”

दूसरे दिन सुबह हकीम बेदिल बैठक में जोर-जोर से अखबार पढ़कर सुना रहे थे। अनवर चुपके से आकर हमेशा की तरह एक कोने में बैठ गया। गांधीजी के बयान पर, जिसमें उन्होंने इक्कीस दिन तक अनशन करने की बात कही थी, हर आदमी बहुत उत्तेजित था। गांधीजी ने कहा था कि हिंदू और मुसलमान अब तक जिस एकता के साथ काम करते आए थे उसे वे आगे चलकर भी जारी रखें ताकि अंत में चलकर पूरा देश इस एकता का पूरा लाभ उठा सके।

‘गांधीजी ने आखिरकार हल निकाल ही लिया। उन्होंने रास्ता ढूँढ़ ही लिया।’ अनवर मन ही मन सोचने लगा। उन्होंने इतना बड़ा जो कदम उठाया है क्या उसमें अनवर की उनके साथ मुलाकात का भी कुछ हाथ है? क्या इतिहास की दिशा को मोड़ने में सचमुच उसका भी हाथ था?

क्या यह सच हो सकता है?

यह विचार मन में आते ही उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। वह रोज़ बड़ी उत्सुकता से अखबार पढ़ता था और यह देखकर उसका हौसला बहुत बढ़ता था कि गांधीजी के इस कदम पर सारे देश में उत्साह की एक लहर दौड़ गई थी। दंगे फौरन बन्द हो गए थे, एकता का आंदोलन फिर शुरू हो गया था, हर जगह गांधीजी के विरायु होने की कामना के प्रस्ताव पास किए जा रहे थे और सभएं हो रही थी। एक सप्ताह के अन्दर ही दिल्ली में विभिन्न सम्प्रदायों के नेताओं ने एकता सम्मेलन का आयोजन किया। अकबरअली को भी सम्मेलन में बुलाया गया और अनवर ने जिद करके उन्हें इस बात पर राजी कर लिया कि वे उसे भी साथ ले चलेगे। क्या यह उसका अपना सम्मेलन नहीं था?

नेतागण आ-आकर मंच पर बैठने लगे। अकबरअली ने एक-एक करके अनवर को बताना शुरू किया कि उनमें कौन-कौन है—शेरवानी और चूडीदार



पाजामा पहने हुए जो रोबदार सज्जन बीच में बैठे हुए थे वे मोतीलाल नेहरू थे, जो इस सम्मेलन के सभापति थे; काला चश्मा लगाए हुए बंगाल के महान नेता सी० आर० दास थे, उधर कवयित्री सरोजिनी नायडू बैठी थी जिन्हें लोग 'बुलबुले-हिंद' भी कहते थे, और वे फुर्तीला-से नौजवान आदमी जो इधर-उधर बहुत भाग रहे थे वे मोतीलाल नेहरू के बेटे जवाहरलाल थे। अनवर को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मंच पर सफेद बालोवाली एक अंग्रेज़ औरत भी बैठी थी। उसके अम्बा ने उसे बताया कि वे मिसेज बेसेट थी जो हिंदुस्तान की दोस्त थी और स्वराज की मांग को सही मानती थी।

भाषण आरम्भ होने का वक्त हो गया और अंग्रेज़ी के धुआधार भाषणों के प्रवाह में अनवर बहा चला जा रहा था। लेकिन मौलाना मुहम्मदअली उदू मे बोले और अपना भाषण समाप्त करते हुए उन्होंने जिन जोरदार शब्दों में एकता की अपील की उन्हें अनवर कभी नहीं भूल सकता था।

“मैं बहुत मजहबी आदमी हूँ। लेकिन मैं यह ऐलान करना चाहता हूँ कि इन फसादात का मजहब से कोई ताल्लुक नहीं है। हमारे दिलों में जो तल्खी और कुदूरत पैदा हो गई है वह सिर्फ़ रवादारी और अहिंसा से दूर हो सकती है। हमें कितना भी उकसाया जाए पर हमें पुर-अमन रहना चाहिए। एक-दूसरे से बदला लेने का जो यह खूनी तिलसिला चल रहा है उसे खत्म करने के लिए हमें कुछ करना होगा वरना हम अपनी आज़ादी की मजिल से दिन-ब-दिन दूर होते जाएंगे और हमारे दुश्मनों को हमारी इस बेवकूफी पर हसने का मौका मिलेगा कि हम ऐसे वक्त पर आपस में लड़ रहे हैं जबकि हमें आज़ादी की लड़ाई में अपना इत्तहाद कायम रखना चाहिए।”

जब लोगो ने मौलाना के भाषण पर तालिया बजाईं तो अनवर ने मुड़कर अपने अम्बा की तरफ देखा; उनकी आँखों से आसू बहकर उनकी दाढ़ी पर गिर रहे थे। न जाने क्यों यह दृश्य देखकर अनवर को खुश हुई। अब वह समझ गया था कि गांधीजी का ध्येय सफल हुआ। मुहब्बत और इस नियत के खुदा को फिर उसके तख्त पर बिठा दिया गया था और लोगो के दिलों में फिर उसके लिए जगह पैदा हो गई थी।

## दुःख के बंधन

मैट्रिक की परीक्षा समाप्त हो चुकी थी। दिमाग पर से एक बोझ उतर गया था।

इम्तहान तो खत्म हो गया था पर नतीजा निकलने में अभी कम से कम दो महीने की देर थी। इतने दिन तक इंतजार करने और वक्त काटने का कोई अच्छा तरीका ढूँढ लेने के अलावा काम ही क्या था। अनवर को तो दूसरो से भी ज्यादा वक्त काटना था, क्योंकि अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में तो अक्टूबर में नाम लिखे जाते थे। अनवर को तो पूरी गर्मियाँ काटने के लिए कोई रास्ता ढूँढना था।

अनवर के जीवन की तरह देश में भी एक सन्नाटा था। इस समय तो राजनीतिक क्षेत्र में भी कोई खास हलचल नहीं थी। बैठक में अब बातचीत भी ज्यादातर स्थानीय या निजी मामलों के बारे में होती थी। चीनी के बरतनों की दुकान जोरो पर चल रही थी। ज्यादातर माल जापान से आता था। जापान ने बेहद कम दामों पर चीनी और काच की चीजें तैयार करने का कोई तरीका मालूम कर लिया था। काका रामेश्वरदयाल ने कपड़े की बहुत बड़ी दुकान खोल ली थी और चूँकि विदेशी कपड़े के बायकाट का आंदोलन लगभग बिल्कुल ठप हो गया था और खद्दर के कपड़े से शौकीन पैसेवालों का काम नहीं चलता था इसलिए वे ज्यादातर विदेशी कपड़ा ही बेचते थे—साटन, मसूमल, रेशम, मलमल और वायल।

अनवर अपना ज्यादातर वक्त किताबें पढ़ने में बिताता था। वह हर तरह की किताबें पढ़ता था—अपने अम्बा की लाइब्रेरी से उर्दू की गद्य तथा पद्य की अमर रचनाएँ, जासूसी उपन्यास, अंग्रेजी में लड़कों के लिए बहादुरी के किस्से और शेक्सपियर की कहानियाँ। रोज़ शाम को वह जामा मस्जिद के पास पुरानी किताबों की दुकानों के चक्कर लगाता था और घंटे-भर तक पुरानी

किताबों के धूल से अंटे ढेर में ढूढ़ने के बाद अगर वह दो-तीन आने में कोई अच्छी-सी किताब पा जाता था तो उसे ऐसी खुशी होती थी जैसे कोई खजाना मिल गया हो।

लेकिन कोई खाली किताबों के सहारे कितना वक्त काट सकता है। इसलिए कभी-कभी गर्मियों के पहाड़ जैसे दिन काटना उसके लिए दूभर हो जाता था। अनवर के दोस्त बहुत थोड़े ही थे और उनके घर जाने में भी उसे झिझक होती थी। इसलिए एक दिन जब गोपाल उसके यहाँ आया और बहुत देर तक अपने खास ढंग से बातें करने के बाद जब उसने अनवर को चलकर रायसीना में, जिसे वहाँ के लोग नई दिल्ली कहने लगे थे, वाइसराय की कोठी और दूसरी इमारतें देखने का निमंत्रण दिया तो अनवर बहुत खुश हुआ। गोपाल अपने पिताजी के साथ वहाँ जा रहा था।

दूसरे दिन बहुत सवेरे ही ठेकेदार साहब की खचड़ा फोर्ड गाड़ आ पहुँची और हार्न की आवाज सुनते ही अनवर खुशी से उतावला होकर भागा-भागा बाहर पहुँचा। गोपाल के पिताजी लाला किशनलाल बहुत ही मोटे आदमी थे और उनकी आवाज भी उतनी ही मोटी थी। उनकी ठोड़ी के नीचे मुटापे की वजह से खाल लटक आई थी और जब वे बोलते थे तो सोने का एक दात चमक उठता था। उन्हें अपने मजाकिया होने पर बड़ा नाज़ था और रास्ते-भर वे अपने चुटकुलों और मजेदार कहानियों से दोनों लड़कों को हसाते रहे। अपनी बातचीत के दौरान में वे बार-बार 'साला' और 'सुसरा' और इससे भी मोटी-मोटी गालियाँ इस्तेमाल करते थे। अनवर को उनके मुँह से गालियाँ सुनकर आघात भी पहुँचता था और मज़ा भी आता था और वह मन ही मन रामेश्वर काका के साथ उनकी तुलना करता रहता था, जो बहुत शराफत और नरमी से बोलते थे।

पंद्रह मिनट भी न लगे होंगे कि मोटर लाल ईंटों की नई अघबनी पक्की इमारतों के सामने से गुज़र रही थी और किशनलाल ने बड़े गर्व के साथ उन अघबने बगलों की तरफ इशारा किया जो उनकी सम्पत्ति थे। बीच-बीच में मोटर किसी बनते हुए मकान के सामने रुकती थी और मोटे ठेकेदार साहब उतरकर अपने मिस्त्रियों को हिदायतें देते थे और इस तरह अपना रोब जताते थे। इसके बाद वे इससे भी ज्यादा रोबदार इमारतों के सामने से गुज़रे। अभी

कुछ साल पहले यहां दूर-दूर तक बजर रेगिस्तान था और अब वही पुराने भूले-बिसरे शहरो के खडहरो के बीच एक बिलकुल नई राजधानी बनकर तैयार हो रही थी। नई और पुरानी इमारतें, अधबनी और अधगिरी इमारतें एक-दूसरे के पास खड़ी थी और अक्सर तो यह बताना भी मुश्किल हो जाता था कि इनमें से किसका सबध अतीत के साथ है और किसका भविष्य के साथ।

एक बड़ी-सी गोल इमारत के सामने पहुंचकर मोटर रुक गई और लाला किशनलाल ने लडको को बताया कि वह असेम्बली चैम्बर की इमारती थी जहां आगे चलकर भारत के विधान-निर्माता बैठेंगे। लाला किशनलाल पी० डब्ल्यू० डी० को थोड़ा-बहुत इमारती सामान भी सप्लाई करते थे इसलिए वे हर इमारत में आजादी से आ-जा सकते थे। वे दोनों लडको को लेकर उस इमारत के अंदर गए। वहां गारे, चून और सीमेंट की गंध बसी हुई थी और विना छत के बड़े-बड़े कमरे अजीब भयानक लगते थे। बरामदो और छोटे-छोटे गलियारों की भूल-भुलैया में उनके पैरों की आहट बड़े डरावने ढंग से गूज रही थी। अनवर को न जाने क्यों ऐसा लगा कि वे किसी पुराने महल के खडहरो में घूम रहे हैं जिसकी छतें सैकड़ों बरस पुरानी होकर गिर गई थी और पत्थर की दीवारों पर से पलस्तर छूट गया था जिसकी वजह से वहां एक अजीब-सी सीलन की बासी-बासी बू पैदा हो गई थी। थोड़ी देर बाद जब वे फिर खुली जगह में निकल आए तो अनवर को ऐसा लगा कि वे अतीत के अधिकार से निकलकर फिर वर्तमान में आ गए हैं।

असेम्बली चैम्बर से वे लोग मोटर पर बैठकर किले जैसी दीवारों से घिरी हुई वाइसराय की कोठी देखने गए। लाला किशनलाल के एक इंजीनियर दोस्त ने उन लोगों के साथ जाकर उन्हें समझाया कि हर हाल और कमरा किस काम के लिए बनाया जा रहा था। अनवर के लिए उन सब कमरों की सूची याद रखना भी मुश्किल था—हिज ऐक्सेलेसी का सुबह के वक्त बैठने का कमरा, हर ऐक्सेलेसी का तीसरे पहर आराम करने का कमरा, हिज ऐक्सेलेसी का बेड-रूम, हर ऐक्सेलेसी का बेड-रूम, देअर ऐक्सेलेसीज का प्राइवेट डाइनिंग रूम, स्टेट डाइनिंग रूम, बैक्वेट हाल, ब्लू रूम, लिखने का कमरा, बड़े कमरों से लगे हुए छोटे कमरे, रिसेप्शन रूम, गेस्ट रूम और फिर सेक्रेटरियो, बाडी-गार्डों, घरेलू नौकरों, बावर्चियों, खानसामाओं और ड्राइवरो के रहने के कमरे, किचेन



जो खुद पूरे-पूरे बगलों के बराबर थे ; इसके अलावा मोटरखानों की एक कतार जिनमें मोटरे रखी जाएंगी और तहखाने जिनमें दुनिया की बेहतरीन शराबें रखी जाएंगी ।\*\*\*इजीनियर साहब बड़े गर्व से समझा रहे थे कि उस पूरे महल की सजावट किस ढंग की होगी । उन्होंने बताया कि दुनिया की बेहतरीन लकड़ी का बना हुआ फर्नीचर विलायत से मंगाया गया था, कमरों में और यहां तक कि बरामदों में ईरानी कालीन बिछाए जाएंगे, दीवारों पर बड़ी-बड़ी तस्वीरें होंगी, खाने के कमरों में चीनी और काच के बेहतरीन बर्तन होंगे और बैक्वेट हाल में बिल्लौरी फानूस होंगे ।\*\*\*

अनवर अपने इस बातूनी गाइड की आधी बातें ही सुन रहा था ; वह तो इस बात पर ताज्जुब कर रहा था कि इन तमाम चीजों का फायदा सिर्फ दो आदमी उठाएंगे—एक वाइसराय और दूसरी उनकी मेम साहब । आखिर ये किस किस्म के लोग हैं जिन्हें रहने के लिए सौ कमरे चाहिए ? वह मुगल ज़माने के महल देख चुका था । उस जमाने के बादशाह और शहशाह भी इसके मुकाबले में ज्यादा सादगी से रहते थे । क्या ये नये शासक जान-बूझकर पुराने ज़माने के बादशाहों से शान-शौकत में बढ़ जाना चाहते थे ? पर वह अपने इन विचारों को अपने मन में ही छिपाए रहा, क्योंकि वह जानता था कि इस रोबदार इमारत के अंदर उन विचारों को व्यक्त करना न सिर्फ बदतमीजी होगा बल्कि ऐसा करना खतरनाक भी हो सकता था ।

जिस वक्त वे बाहर निकलकर उस मैदान की तरफ चले जहां बहुत बड़ा बाग लगाया जा रहा था, उसी वक्त कहीं जोर से घटा बजा और झुंड के झुंड मजदूर बाहर निकलकर दोपहर का खाना खाने के लिए कोई सायादार जगह ढूंढने लगे । वे लोग कुछ मजदूरों के पास से होकर गुजरे और उन्होंने देखा कि वे खाली प्याज के साथ रूखी रोटी खा रहे थे । बाग की खुदी हुई ज़मीन के उस पार, जहां फूलों की भाड़िया निकलने लगी थी, टीन की नीची-नीची छतोंवाली भोपड़ियों की एक कतार थी जिनमें ये मजदूर रहते थे । परिस्थिति की यह विषमता बरबस अनवर को खटकने लगी और वह यह सोचने लगा कि इस महल को बनानेवाले ये मजदूर क्या सोचते होंगे ? और क्या उनमें सोचने की क्षमता है भी ?

इम्तहान का नतीजा निकला । अनवर फर्स्ट डिवीजन में पास हुआ था—  
अच्छा-खासा नतीजा था । लेकिन उसके अलावा कोई सौ लड़के और थे जिन्हें  
फर्स्ट डिवीजन मिला था और चालीस लड़कों का नतीजा तो उससे भी अच्छा  
रहा था । उन्होंने अस्सी फीसदी नम्बर पाकर डिस्टिक्शन हासिल किया था ।  
उसके अम्मा का यही कहना था, वे नहीं चाहते थे कि बहुत ज्यादा तारीफ  
करने से उनके बेटे का दिमाग सातवें आसमान पर पहुँच जाए । लेकिन उनका  
बेटा अच्छी तरह जानता था कि उसके अम्मा उससे बहुत खुश थे और यही  
उसके लिए सबसे बड़ी बात थी ।

राजनीतिक मोर्चे पर जो गतिरोध पैदा हो गया था वह एक दूसरे ढंग के  
आंदोलन से टूट गया । एक दिन चौधरी मुहम्मदउमर इस बात पर बहुत गरम  
होते हुए आए कि एन० डब्ल्यू० आर० की लाइनो पर आम हड़ताल हो गई थी  
और पंजाब की तरफ कोई गाड़िया नहीं जा रही थी इसलिए वे अपने घर  
लुधियाना नहीं जा सकते थे । रेलवे मजदूरों ने अपनी मजदूरी और काम करने  
की परिस्थितियों के बारे में असंतोष प्रकट करने के लिए हड़ताल कर दी थी  
और इस तरह रेलों की आवाजाही बिल्कुल ठप कर दी थी । चौधरी साहब को  
इस बात पर बड़ा गुस्सा था कि दो कौड़ी की औकातवाले लोग—सिगनलमैन,  
स्विचमैन और कुली लोग—इस तरह हड़ताल करके घर जाने के उनके सालाना  
प्रोग्राम में बाधा डाले । “चींटियों के पर निकलने लगे हैं,” उन्होंने बड़े तिरस्कार  
से थूकते हुए कहा, “ये मजदूर अपनी औकात को भूलते जा रहे हैं । यह सब  
उस गांधी की वजह से है—आटा-दाल बेचनेवाले उस बनिये की वजह से ।”

इसी बीच में रतन के पास से एक चिट्ठी आई जिसमें इस परिस्थिति का  
बिल्कुल ही दूसरा चित्र पेश किया गया था । वह उन राजनीतिक कार्यकर्ताओं  
के दल में शामिल हो गया था जो हड़ताल में रेलवे मजदूरों की मदद कर रहे  
थे । उसने हमेशा की तरह बहुत जोशीले शब्दों में अनवर को लिखा था, “काश  
तू यहाँ लाहौर में होता और देखता कि कल रात रेलवे मजदूरों ने कितना  
शानदार जुलूस निकाला था । दस हजार लोग इन्कलाबी नारे लगाते हुए जुलूस  
में चल रहे थे । और उनके हाथों में मजदूरों का इन्कलाबी लाल झंडा था  
जिसे उन्होंने अपने खून से रंगा था । उन्हें देखकर ऐसा लगता था कि देश में

एक नई ताकत पैदा हो रही है—मजदूरवर्ग की ताकत ! और एक बार जहाँ उनमें जोश पैदा हो गया कि वे गांधीजी की सतोवाली बातों से रूकनेवाले नहीं ; उनके कदम एक बार भी नहीं झिझकेगे, वे कोई आगा-पीछा नहीं सोचेंगे ।”

अनवर स्वभाव से ही बहुत दबबू था और जबसे उसके अब्बा राजनीति से अलग हो गए थे तबसे राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति उसका जोश भी ठंडा पड़ गया था । लेकिन उसे इस बात पर गर्व था कि उसका दोस्त रतन इस आंदोलन में जुझा हुआ था और अपने इस सिख दोस्त के खत पढ़कर वह भी विद्रोह का रोमांच अनुभव करता था ।

फूफी-अम्मा अब साठ के लगभग पहुँच चुकी थी, उन्हें समय और तारीख में कोई दिलचस्पी नहीं रह गई थी । लेकिन यकायक उन्हें न जाने क्यों कलेंडर में दिलचस्पी पैदा हो गई थी और वे अक्सर अपने भतीजे से पूछती रहती थी कि अंग्रेजी महीने की कौन-सी तारीख है । एक दिन अनवर से न रहा गया, उसने पूछा, “लेकिन फूफी-अम्मा, आपको पहले तो कभी तारीख और महीने की इतनी फिक्र नहीं रहती थी ।” उसकी बूढ़ी फूफी-अम्मा ने उत्तर दिया, “यह तो ठीक है, बेटा । लेकिन तुम्हें नहीं मालूम कि यह जून का महीना है । अगले महीने तू मामा बन जाएगा ।” अनवर को इस बात का मतलब समझने में कुछ देर लगी ।

अनवर और अजुम को फूफी-अम्मा ने ही पाला-पोसा था, वे चाहती थी कि बच्चा दिल्ली में उनकी देख-रेख में ही पैदा हो । हर महीने वे अनवर से अपने भाई के नाम खत लिखवाती थी कि बच्चा पैदा होने के वक्त अजुम को दिल्ली भेजना न भूले । जून के आखिर में अजुम कई नौकर-नौकरानियों के साथ दिल्ली आ पहुँची । अनवर को यह देखकर खुशी हुई कि रऊफ उसके साथ नहीं आया था । साल-भर बाद वह अपनी बहिन से मिलकर बेहद खुश हुआ लेकिन उसका पीला चेहरा और आँखों के चारों ओर स्याही के घेरें देखकर उसे कुछ चिंता हुई । वह पहले से बहुत दुबली हो गई थी और पेट के बोझ से उसके पैर लड़खड़ा जाते थे ।

“अरी, मैं तेरे सदेकें जाऊँ,” गुलाबो बुआ ने अजुम को गले से लगाने के लिए

लपकते हुए बड़े प्यार से कहा। “मेरी बिटिया कितनी दुबली हो गई है। बिटिया, सुसराल में क्या पेट-भर खाना नहीं मिलता था?”

अकबरअली ने अदर आकर बेटी को गले लगाया और उसका सिर सहलाते हुए पूछा कि रुकफ क्यों नहीं आया। अजुम ने शरमाते हुए सिर झुकाकर उत्तर दिया कि ‘उन्हे’ कोई सरकारी काम था इसलिए नहीं आए, लेकिन ‘वे’ कुछ दिन बाद आएंगे।

जब सब लोग चले गए तो अजुम ने अनवर को अकेले में अपने पास बुलाया और बड़े प्यार से उसे गले लगाकर फूट-फूटकर रोने लगी। अनवर ने महसूस किया कि वह उस तरह नहीं रो रही थी जैसे कोई बहिन बहुत दिन बाद अपने भाई से मिलने पर रोती है। वह तो सिसक-सिसककर रो रही थी और आसुओं के उमड़ते हुए तूफान की वजह से उसका सारा शरीर कांप रहा था। लाख कोशिश करने पर भी अनवर उसे शांत न कर सका। वह कसकर उससे चिपटी रही, उसने अपने नाखून मजबूती से उसकी बांहों में गड़ा रखे थे। लेकिन कुछ देर बाद वह शांत हो गई और उसने अपने भाई की बांह छोड़ दी। इससे पहले कि अनवर समझ पाता कि अजुम को क्या हुआ है वह बेहोश होकर उसकी गोद में गिर पड़ी।

“फूफी-अम्मा ! अब्बा ! गुलाबो !” अनवर धबराकर चिल्लाया, “देखिए तो बाजी अजुम को क्या हो गया है।”

इसके बाद कुछ दिन ऐसे बीते कि अनवर को ऐसा लगता था कि वह कोई भयानक स्वप्न देख रहा हो। अनवर की सारी चेतनाओं में एक भयानक तनाव बना रहा। वह न ठीक से खाता था, न उसे ठीक से नींद आती थी और न ही वह कुछ पढ़ पाता था। उससे न अपनी बहिन के पलंग के पास बैठा जाता था, और न वहां से दूर होने पर उसे चैन मिलता था। अगर अजुम जोर से कराहती तो वह डर से कांप उठता और अगर वह निढाल होकर चुपचाप पड़ी रहती तो वह बिलकुल ही धबरा जाता और सोचने लगता कि कहीं वह मर तो नहीं गई।

डाक्टर असारी और एक अंग्रेज डाक्टरनी को उसे देखने के लिए बुलाया गया था। दोनों लगभग घंटे-भर तक उसे देखते रहे। बाद में जब दोनों हाथ धो



रहे थे, तो अनवर ने उन्हें अंजुम की बीमारी के बारे में बातें करते सुना। सारी बातें तो उसकी समझ में नहीं आईं क्योंकि बीच-बीच में वे डाक्टरी के बहुत-से मोटे-मोटे लफ्ज बोल रहे थे और अग्रेज डाक्टरनी का बोलने का ढंग भी कुछ अजीब था। लेकिन जो थोड़ा-बहुत उसकी समझ आया वही काफी था।

“हैमरेज हो गया है...यही तो मुश्किल हो गई है...खून रुक जाए तो कमाल ही है।”

“बेचारी लड़की...कितनी कमसिन और प्यारी है।...मैं उसके बाप को जानता हूँ। बहुत ही अच्छे आदमी है।”

“बहुत कम उम्र में शादी कर दी गई।...इतनी छोटी उम्र में बच्चा होना ही नहीं चाहिए था।...यह तो जान-बूझकर मार डालना है।”

“जहालत है। बला की जहालत है। न जाने कितनी औरतों की जान इसमें जाती है।”

“बच्चा निकालना होगा। हमें—आपरेशन करना होगा नहीं तो—हो जाने का डर है।”

बाद में अनवर ने डाक्टर असारी को उसके अब्बा से यह कहते सुना कि अब इतनी देर हो चुकी है कि अस्पताल ले जाना नामुमकिन है। घर पर ही आपरेशन करना पड़ेगा।

दूसरे दिन डाक्टर असारी और वह अग्रेज डाक्टरनी अपने कम्पाउंडरों और एक सफेदपोश नर्स को लेकर आए। वे अपने साथ लोहे के कुछ चमकदार बक्स भी लाए थे, जिनमें चीर-फाड़ के औजार रखे हुए थे। अनवर उन औजारों की तरफ देख भी न सकता था और यह सोचकर ही उसके रोंगटे खड़े हो गए कि उसकी बहिन का पेट चीरा जाएगा। वह भागकर एक कोने में छिप गया।

अंजुम के पेट का आपरेशन करके उसमें से मरा हुआ बच्चा निकाला गया। अनवर ने गुलाब को, जिसकी आखें रोते-रोते लाल हो गई थीं, कपड़े की पोटली में गुड़िया जैसी कोई चीज़ लपेटकर ले जाते देखा। गुलाबो ने चुपचाप वह पोटली अकबरअली के हाथों में थमा दी। गम के बोझ से दबे हुए अकबरअली चुपचाप मरे हुए बच्चे को दफन करने के लिए पोटली लेकर बाहर चले गए। जब डाक्टर असारी और वह अग्रेज डाक्टरनी लम्बे-लम्बे रबर के दस्ताने उतारते हुए कमरे में से निकले तो दोनों बहुत थके हुए थे और उनके चेहरे का रंग पीला

पड गया था ।

अनवर ने धडकते हुए दिल से डाक्टर अंसारी से जाकर पूछा, “डाक्टर साहब, बाजी अच्छी तो हो जाएगी न ?” डाक्टर साहब ने मुस्कराने की कोशिश करते हुए अनवर की पीठ पर धीरे से हाथ रखकर उत्तर दिया, “हा बेटा, जरूर अच्छी हो जाएगी—इशाअल्लाह !”

इशाअल्लाह ! अगर अल्लाह ने चाहा ! तो इसका मतलब है कि आखिरी फैसला उसीकी अदालत में होगा । इसीलिए उसके अब्बा इतनी देर तक जानमाज पर बैठे अल्लाह से अपनी बेटी की जान के लिए दुआ मागते रहते थे । इसीलिए फूफी-अम्मा उस वक्त भी तसबीह पर अल्लाह के हजार नाम लेकर दुआ पढ़ रही थी । या कह् हार ! या जब्बार ! या गफ्फार ! अल्लाह, तू रहीम है, तू करीम है । तू अजुम जैसी मासूम लडकी की जान कभी नहीं लेगा । बहरहाल अनवर के लिए सबसे अच्छा रास्ता यही था कि वह भी अपने अब्बा और अपनी फूफी-अम्मा के साथ मिलकर दुआ मागे । उसे यही तो बताया गया था कि अल्लाह बच्चों की दुआ ज्यादा जल्दी कबूल कर लेता है क्योंकि बच्चे मासूम होते हैं । इसलिए उसने सोचा कि उसकी दुआ फौरन कबूल हो जाएगी ।

वह घर से निकलकर सीधा जामा मस्जिद की तरफ चल पड़ा । अगर उसे दुआ ही मागनी है तो वह खुदा के घर में जाकर दुआ मागेगा । जून की दोपहर में हापता-कापता वह दो-दो जीने फादकर जामा मस्जिद की सीढियों को पार कर गया । दरवाजे पर जूते उतारकर वह सीधा भागता हुआ मिम्बर पर जा पहुंचा जहां खड़े होकर उसने इमाम साहब को वाअज़ करते सुना था । कायदे के मुताबिक मगरिब की तरफ मुह करके उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाए और दबी ज़बान में बोला, “या खुदा, मुझे दुआ मागना नहीं आता है, लेकिन तू तो सबके दिल की बात जानता है । तू मेरी दुआ कबूल कर ले और मेरी बहिन की जान बचा ले । वह अभी कमउम्र है और अभी उसकी शादी हुई है और उसने कभी किसीको कोई नुकसान नहीं पहुंचाया है । रहम कर, उसे मौत से बचा ले ।” मस्जिद के खोखले गुम्बद से टकराकर उसकी आवाज़ लौट आई और अनवर को ऐसा लगा कि अल्लाह ने उसकी बात सुन ली है और उसकी मुराद पूरी करने का वादा कर रहा है । वह घर लौटा । उसके दिल का बोझ यकायक न जाने क्यों हलका हो गया था । उसने भांककर रोगी के कमरे में

देखा और उसे यह देखकर तसल्ली हुई कि नर्स अंजुम को दवा पिना रही थी। उस रात कई दिन बाद उसने ठीक से खाना खाया और इतमीनान के साथ सोया। उसके दिल में कोई खटका नहीं था।

अभी पौ भी नहीं फटी थी कि अनवर रोने की आवाज़ सुनकर जाग पड़ा। कुछ देर तक तो वह सोचता रहा कि शायद वह सपना देख रहा है। लेकिन जब उसने आँखें खोलकर गौर से देखा तो उसे ऊपर तारो-भरा आसमान और उसकी पृष्ठभूमि पर पास ही आगन में लगे हुए नीम के पेड़ की रूपरेखा दिखाई दी। फिर उसे फूफी-अम्मा के रोने की आवाज़ सुनाई दी और उनके भयानक शब्द सुनकर उसकी नींद बिलकुल गायब हो गई। फूफी-अम्मा रो-रोकर कह रही थी, “अरी अजुम, तू मुझे छोड़कर कहा चली गई? तेरी जगह मैं क्यों न मर गई?” अनवर भागा हुआ दालान में पहुँचा जहाँ अजुम का पलंग पड़ा हुआ था। पास ही मेज़ पर एक लैंप रखा हुआ था जिसकी रोशनी का घेरा उस सफेद चादर पर पड़ रहा था जिससे अजुम का शरीर ढका हुआ था। “अजुम सो रही होगी।” अनवर ने दिल ही दिल में अपने-आपको तसल्ली देने की कोशिश की। “फूफी-अम्मा को शायद दौरा पड़ गया है।” लेकिन उस बूढ़ी नर्स के चेहरे पर ऐसा भाव था जिसे देखकर आशा की आखिरी किरण भी बुझ गई। “बेटा,” उसने बड़ी धीमी आवाज़ में कहा, “अपनी बहिन को आखिरी बार देख ले।” और फिर अनवर के दिल की धड़कन यकायक रुक गई, चादर का कोना धीरे-धीरे हटा, तो उसकी प्यारी बहिन का चेहरा उसके सामने आ गया। कितनी शांति थी उसके चेहरे पर, बिलकुल ऐसा लगता था जैसे सो रही हो! अनवर और करीब से देखने के लिए आगे बढ़ा लेकिन यकायक ठिठककर खड़ा हो गया। दहशत के मारे उसे जैसे काठ मार गया हो। नहीं! नहीं! यह उसकी बहिन नहीं थी। यह उसकी बहिन नहीं हो सकती। यह कोई और चीज़ थी, कोई ऐसी चीज़ जो अंजुम जैसी लगती थी, लेकिन वह जानता था कि यह अंजुम नहीं है। यह कोई बहुत भयानक चीज़ थी, कोई ऐसी चीज़ जो न हिलती-डुलती थी, न सास लेती थी, जो ज़िंदा नहीं थी। यह एक झूठ था, एक फरेब था, ज़िंदगी का छलावा था। यही मौत थी!

अनवर चाहता था कि वह फूट-फूटकर रोए लेकिन मौत की आखो में आखें डालकर भी वह न रो सका। उदास होकर वह चुपचाप पीछे मुड़ा और पहली बार उसने वहा मुह लटकाए बैठे हुए लोगो को देखा। उसके अन्वा इस मुसीबत के वक्त भी बड़ी गभीर मुद्रा में बैठे दुआ पढ रहे थे। उनके पास ही फूफी-अम्मा बैठी थी जो रोते-रोते निढाल हो गई थी। फिर ताया अमजद-अली बंठे थे जो शायद रात की गाडी से आए होंगे। और उनकी बगल में सिर झुकाए रऊफ बैठा था। रऊफ ! रऊफ ! डाक्टर की बातचीत के कुछ टुकड़े अनवर के दिमाग में बिजली की तरह कौंध गए और उसपर एक अजीब जुनून छा गया।

“तुम ! तुम !” उसने रऊफ को सम्बोधित करके चिल्लाकर कहा, “तुमने मेरी बहिन को मार डाला !” और इतना कहकर वह घर से इस तरह भागा जैसे किसी भूत से या किसी नापाक चीज से दूर भाग रहा हो।

सड़क पर बिलकुल सन्नाटा था। बीच-बीच में कहीं कोई दूधवाला दूध की बाल्टी लिए हुए जाता दिखाई पड़ जाता था। अनवर दाहिने-बाएँ देखे बिना सीधा आगे बढ़ता जा रहा था। नगे सिर और नगे पाव। अपने तन-बदन की सुघ भुलाकर वह कहा जा रहा था और क्यों जा रहा था, यह तो खुद उसे भी नहीं मालूम था। उसके दिल में बेहद तल्खी थी, लेकिन वह यह नहीं जानता कि यह तल्खी किसके खिलाफ थी। वह एक बहुत बड़ी ताकत का मुकाबला करने जा रहा था—दुनिया की सबसे बड़ी ताकत का—लेकिन वह यह नहीं जानता था कि वह ताकत क्या है।

जामा मस्जिद का फाटक सुबह की नमाज़ के लिए अभी-अभी खुला था। अनवर अन्दर चला गया। जल्दी-जल्दी इतनी ऊँची सीढियाँ चढ़ने की वजह से वह हाप रहा था। पानी के हौज़ के पास पहुँचकर वह रुक गया। मस्जिद के पाकीजा सफ़ेद गुम्बदों और ऊँची-ऊँची मीनारों की परछाईं हौज़ के गहरे पानी में पड़ रही थी और सुबह की ठंडी हवा के झोंको से बार-बार काप जाती थी। ऐसा लगता था कि वह सारी इमारत भूकम्प की वजह से काप रही थी। मस्जिद की परछाईं की तरह ही अनवर का दिमाग भी गहरे अंधकारमय विचारों में डूबा हुआ था और उसमें भवर उठ रहे थे।

मीनार पर से मुअज्जिन ने अज्ञान दी और उसकी तेज़ आवाज़ सन्नाटे को



चीरती हुई गूज उठी। अनवर के विचारों का क्रम भग हो गया। दुआ मागू। दुआ मागू!! वह झुझलाकर सोचने लगा। लेकिन किससे दुआ मागू? और किसलिए दुआ मागू? और क्यों दुआ मागू? उसने दुआ मागी थी लेकिन फिर भी उसकी बहिन मर गई। खुदा ने भी उसे नहीं बचाया। उसके मन में इन कटु विचारों का तूफान उठते ही उसके अन्दर जैसे कोई चीज टूट गई। यही ईमान था।

आखिरकार वह रो पड़ा और उसके दिल में जितना गम जमा हो गया था वह आसुओं के साथ वह निकला। वह मस्जिद के लम्बे-चौड़े वीरान सहन में ऊँची-ऊँची मीनारों के साये तले एक बौने की तरह खड़ा था। वह अकेला और लाचार महसूस कर रहा था और उसे उस बड़ी ताकत से डर लग रहा था जिसे उसने अभी बुरा-भला कहा था और जिसके खिलाफ उसने बगावत की थी। अपने आसू पोछकर वह थके-थके बेजान कदमों से लड़खड़ाता हुआ बाहर निकल आया। क्या आस्था या ईमान के बिना कोई जिंदा रह सकता है?

पूरब की तरफ वाले फाटक से बाहर निकलकर सीढ़ियाँ उतरने से पहले कुछ देर तक वह ऊपर खड़ा रहा। उसके सामने क्षितिज पर उषा की लाली का सुनहरा और गुलाबी रंग झलक रहा था। नीचे लोगों की आवाजाही शुरू हो गई थी। सफेद साड़ियाँ पहने औरतों के झुंड नदी की तरफ जा रहे थे। बड़ी सड़क पर एक ट्राम खड़खड़ाती हुई गुजर गई। अचानक उसे एक धक्का-सा लगा और उसने महसूस किया कि उसकी बहिन की मौत के साथ जिंदगी खत्म नहीं हो गई है और यह महसूस करके उसे बड़ी तसल्ली हुई। जिन्दगी अब भी बदस्तूर चल रही थी। अब भी सुबह को सूरज निकलता था और लोग अपने-अपने काम पर जाते थे। जिन्दगी के बीच मौत थी और मौत के बीच जिंदगी।

अब उसे गालिब के उस शेर का मतलब समझ में आया जिसे वह अब तक लाख कोशिश करने पर भी न समझ सका था।

कैदे-हयातो-बदे-गम अस्ल में दोनों एक हैं,

मौत से पहले आदमी गर्म से नजात पाए क्यों?

चट्टान से टकराकर लौटती हुई आवाज़ की तरह उसके विचार फिर उसके पास वापस आ गए। इंसान पैदा होता है और इंसान मर जाता है और इस जिंदगी और मौत के बीच वह तकलीफें उठाता है। वह अपनी आँखों के सामने जिंदगी के

खिलते हुए फूल देख रहा था, चलते-फिरते मर्द और औरते, स्कूल जाते हुए बच्चे, मुसाफिरो से भरी खडखडाती हुई ट्राम, सुबह की खबरे चिल्ला-चिल्लाकर अखबार बेचनेवाला ।...

अनजाने ही उस क्षण अनवर मे एक आस्था पैदा हुई । अनजाने ही उस क्षण अनवर जवान हो गया ।...



बादल और बिजली





## हिलाल और ताज

जिन साहसी और दूरदर्शी वयोवृद्ध सज्जन ने अपनी बिरादरी के दकियानूस लोगो के घोर विरोध की परवाह न करते हुए मोहम्मडन एग्लो-ऐरेबिक कालेज की स्थापना की थी उन्होंने उसके लिए प्रतीक-चिह्न भी बहुत सोच-समझकर चुना था। इस चिह्न के बीच में एक खजूर का पेड़ था जिसके द्वारा विद्यार्थियों को यह याद दिलाया जाता था कि उनके धर्म की उत्पत्ति अरब में हुई थी। इस पेड़ के एक तरफ एक हिलाल बना हुआ था और दूसरी तरफ ताज—बाईं ओर बना हुआ हिलाल इस्लाम का परंपरागत प्रतीक-चिह्न था और दाहिनी ओर बना हुआ ताज ब्रिटिश राज के प्रति वफादारी का सूचक था। इस प्रकार देश के नये शासक अपने साथ जो पश्चिमी विज्ञान लाए थे उसके साथ तेरह सौ वर्ष पुरानी एक संस्कृति को समन्वित करने की योजना बनाई गई थी। इस प्रकार भारत के मुसलमानों में, जो अपना साम्राज्य समाप्त हो जाने के बाद गहरी निराशा में डूबकर सबसे अलग होते जा रहे थे, दुबारा जागृति पैदा करने की योजना बनाई गई थी ताकि वे देश के शासन में अपना हिस्सा मांग सकें।

यह कालेज, जो अब बढकर एक विश्वविद्यालय बन गया था, शुरू-शुरू में आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज के नमूने पर बनाया गया था। एक सूखे रेतीले मैदान में बड़े-बड़े हाल, चौक, पढाई के कमरे और प्रयोगशालाएँ बनवाई गई थी। उस बजर ज़मीन पर बड़ी मेहनत से घास उगाई गई थी ताकि दाढ़ीवाले बुजुर्ग शेखों, सैयदों और मिर्जाओं के बेटे क्रिकेट, हाकी, टेनिस और फुटबाल खेल सकें। क्रिकेट का मैदान ऊँचे गुम्बदवाली मस्जिद के ठीक नीचे था और अक्सर शाम को लार्ड के मैदान के क्रिकेट के खिलाड़ियों के अंदाज में “हाउ’ज दैट अम्पायर ?” चिल्लाने का अभ्यास करते हुए नौजवान लड़कों के स्वर को कुचलती हुई मस्जिद में अजान देनेवाले मौलवी साहब की तेज आवाज़ गूँज उठती थी। हिलाल और ताज को अपना आदर्श माननेवाले विद्यार्थियों के इस केन्द्र

की अनेक विडम्बनाओं में से यह भी एक थी ।

अनवर को अलीगढ़ आए हुए यह तीसरा साल था फिर भी वह अभी तक कुछ उखड़ा-उखड़ा रहता था । यहाँ पहुँचने पर उसकी जो दुर्गत बनाई गई थी उसे याद करके अब भी उसके रोगटे खड़े हो जाते थे । उसे सताया गया था, उसे गालियाँ दी गई थी और दर्जनो दूसरे तरीकों से बेवकूफ बनाया गया था । यहाँ के पुराने लड़को ने उसे बताया था कि अलीगढ़ में नये आनेवाले लड़को का इसी तरह स्वागत किया जाता था । पर अनवर इतना संवेदनशील था और उसका पालन-पोषण शिष्टता के ऐसे वातावरण में हुआ था कि वह ऐसे फूहड़ और भोड़े मजाकों को पसंद नहीं कर सकता था । उसने इन मजाक करनेवालों के आगे हथियार तो डाल दिए थे पर वह इससे खुश नहीं था, वह हर समय रूठा रहता था और कभी-कभी जब वह अपने कमरे में अकेला होता था तो अपनी लाचारी पर आसू भी बहाता था । उसे वहाँ के वातावरण का आदी होने में दूसरों से ज्यादा समय लग गया, क्योंकि वह जितना ही ज्यादा चिड़चिड़ाता था पुराने लड़को को उसका मजाक बनाने में उतना ही ज्यादा मजा आता था । तीसरे साल में भी लोग उसे अक्सर 'रोना अनवर' या 'लाडला अनवर' कहते थे । इस तरह की बातें जितनी ही ज्यादा उसके खिलाफ की जाती थी उतना ही ज्यादा वह दूसरों से अलग-थलग रहता था ।

दो बरस में अनवर सिर्फ एक लड़के को अपना दोस्त बना पाया था । उस्मान फजलभाई उसके साथ ही पढ़ता था पर उम्र में उससे एक साल बड़ा था । उसने भी अनवर की तरह ही अर्थशास्त्र और राजनीति ले रखी थी । उसके बाप बम्बई में इत्र का व्यापार करते थे । उसमें और अनवर में एक मामले में समानता थी । दोनों ही कोई खेल नहीं खेलते थे । लेकिन उस्मान का पालन-पोषण एक बहुत बड़े शहर में होने की वजह से उसमें अनवर से ज्यादा आत्मविश्वास भी था और अपने रहन-सहन के मामले में वह शौकीन भी ज्यादा था । खेल-कूद की तरफ उसका रवैया तिरस्कार का था और उसके प्रति वह इस तरह उदासीन रहता था जैसे वह कोई बहुत घटिया चीज हो । उसे केवल साहित्य और राजनीति में दिलचस्पी थी । बाकी हर चीज को वह समय की बरबादी समझता

था। पैसेवाला होने की वजह से वह नई से नई किताबें खरीद सकता था और खुशी-खुशी अनवर को भी किताबें पढ़ने को देता था। वह डाक से अपनी पसंद का अखबार 'बाम्बे क्रानिकल' मंगाता था और इसी अखबार से दोनों लड़के तेजी से बदलती हुई राजनीतिक स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त करते थे।

अनवर को हमेशा से राष्ट्रवादी होने पर गर्व था। परन्तु उस्मान के साथ उसकी दोस्ती ने ही उसके राजनीतिक विचारों को एक निश्चित रूप प्रदान किया। शाम को जब दूसरे लड़के क्रिकेट या टेनिस खेलते होते उस समय ये दोनों रेल की पटरी के उस पार मटर और अरहर के खेतों में सैर करते रहते। क्लास में उन्हें जो कुछ पढ़ाया जाता था उसे वे हिन्दुस्तान की राजनीतिक स्थिति के तथ्यों पर लागू करने की कोशिश करते और अकसर वे इसी नतीजे पर पहुंचते कि किताबों में लिखे हुए सिद्धांतों और जिंदगी की हकीकतों में बहुत फर्क होता है। उस्मान हमेशा बड़े यूनान के साथ अपनी बात कहता था और वह अपने विचारों का बहुत पक्का था। कभी-कभी वह अनवर के पैदाइशी दबूपन पर, उसकी डावाडोल रहने की प्रवृत्ति पर और हर सवाल के दोनों पहलुओं पर विचार करने की आदत पर झुंझला उठता था। अनवर अपने दोस्त की स्पष्टवादिता और उसके दृढ़ विचारों की तो प्रशंसा करता था, पर वह स्वयं वैयक्तिक सम्बन्धों के बंधनों में इतनी मजबूती से बंधा हुआ था कि जिन लोगों की वह इज्जत करता था या जिनसे वह प्यार करता था उनके बारे में वह फौरन कोई आखिरी फैसला नहीं कर पाता था। उस्मान की राय में गोपाल के पिताजी जैसे लोग टोड़ी और खुशामदी थे, काका रामेश्वरदयाल देशद्रोही महाजन थे जो विलायती कपड़ा बेचते थे और इस तरह 'दुश्मन' की मदद करते थे। हालांकि वह अनवर का दिल न दुखाने के ख्याल से कभी ऐसा कहता नहीं था पर उसके रवैये से यह स्पष्ट था कि वह अकबरअनी जैसे लोगों को घोर प्रतिक्रियावादी समझता था। अनवर जानता था कि तर्क की दृष्टि से उस्मान का विचार ठीक था, पर अनवर तो किसी ऐसी चीज के शिकजे में जकड़ा हुआ था जो तर्क से भी ज्यादा ताकतवर थी।

लेकिन वे हमेशा राजनीति पर ही बातें नहीं करने थे। उस्मान अक्सर बंबई और वहां की चहलपहल की भी बातें करता था और अलीगढ़ की 'मुर्दा' जिंदगी से उसकी तुलना करता था। उसकी बातों से स्पष्ट था कि अगर उसके

अब्बा की यह जिद न होती कि वह एक 'मुस्लिम' सस्था में पढ़े तो वह बबई में ही पढ़ना ज्यादा पसंद करता। वह अक्सर बहुत कुढ़कर शिकायत करता था, "लानत है। यहां न कोई जिंदगी है, न कोई चहलपहल है, न कोई सोसाइटी है। कहीं किसी लड़की की सूरत भी दिखाई नहीं देती।"

इस यूनिवर्सिटी में वैसे तो किसी चीज की कमी नहीं थी पर 'लड़की' यहां के लिए एक नायाब चीज थी। लड़को और लड़कियों के साथ पढ़ने को बुरा समझा जाता था। यूनिवर्सिटी के साथ एक मुस्लिम गर्ल्स कालेज था लेकिन वहां बहुत सख्त परदा करवाया जाता था और कालेज की लड़कियों को—'शरीफ' मुस्लिम घरानों की बेटियों को—मर्दों की नजरों से बचाने से लिए कालेज के चारों तरफ बीस-बीस फुट ऊंची दीवारें थी। यूनिवर्सिटी का इलाका शहर से कुछ दूर था और हास्टेल के वार्डन से पर्वीं लिए बिना कोई शहर नहीं जा सकता था। इसलिए स्टेशन ही एक ऐसी जगह थी जहां किसी औरत की सूरत देखने की उम्मीद की जा सकती थी। स्टेशन पर आने-जानेवाली गाड़ियों को ताकना यूनिवर्सिटी के लड़को की एक खास तफरीह थी जिसमें किसी तरह की रोक-टोक नहीं थी।

अनवर और उस्मान जैसे लड़को के लिए, जो शाम को बिल्कुल खाली रहते थे, कई वजहों से स्टेशन एक अड्डा बन गया था। वही एक ऐसी जगह थी जहां रेस्तरां में कुछ ढंग की चाय मिल सकती थी, और बुकस्टाल पर नई किताबें, पत्रिकाएं और अखबार मिल सकते थे और फिर यह लालच तो रहता ही था कि प्लेटफार्म का चक्कर लगाते समय गुजरती हुई ट्रेन में कोई अच्छी सूरत दिखाई दे जाए।

छुट्टियों के बाद अक्टूबर में यूनिवर्सिटी फिर खुली और अनवर जब घर से लौटा तो उसे पता चला कि उस्मान एक-दो हफ्ते बाद आएगा। इसी बीच में उसे रहने के लिए सर सैयद कोर्ट में जगह दी गई। उसके साथ दो नये लड़के भी उसी कमरे में रखे गए थे जिसकी वजह से उसे काफी निराशा हुई, क्योंकि वह तो यह उम्मीद लगाए बैठा था कि उस्मान से उसका दो साल पुराना साथ इस साल भी जारी रहेगा। जिन दो लड़को के साथ उसे रहना था उनसे



मिलकर भी उसे कोई खास तसल्ली नहीं हुई ।

उनमे से एक लडका लखनऊ का था । काली रगत, दुबला-पतला जिस्म और आखो पर चश्मा । नाम था मुस्ताकअहमद लेकिन शायर होने की वजह से 'राज' तखल्लुस करते थे । चाल-ढाल मे जनानापन । हर वक्त लम्बी-लम्बी जुल्फो से घटिया खुशबूदार तेल की महक आती रहती थी, जिसकी वजह से उनके तकिये के गिलाफ पर हमेशा तेल का चिकना धब्बा पडा रहता था । दूसरा था असगरहुसेन जो 'राज' की बिलकुल उलट था । हट्टाकट्टा कसरती जिस्म, शायरो, पढने-लिखनेवालो और इसी किस्म के दूसरे घटिया इसानो से अपनी सख्त नफरत को वह छिपाता नहीं था । अनवर से वह उम्र मे काफी बडा था और कई बार फेल होने के बाद इसी साल उसने बी० ए० पास किया था । पर उसे इतनी बार फेल होने की कोई चिंता नहीं थी । अब भी उसे इम्तिहान पास करने मे मुकाबले मे खेल-कूद का चैम्पियन बन जाने की ज्यादा फिक्र थी ।

इन तीनों की जोडी भी अजीबोगरीब थी । असगर रात को दस ही बजे सो जाता था और सुबह छ बजे से उठकर डम्बल घुमाने लगता था और तीन मील लम्बी दौड लगाने निकल जाता था । 'राज' साहब कभी दो बजे से पहले सोते नहीं थे । रातो को जागकर वे शायरी करते रहते थे और गालिब के अदाज मे गज़ले कहने की कोशिश करते थे । सुबह दस बजे से पहले अगर जगा दिया जाए तो उन्हे सख्त नागवार गुजरता था । असगर खाने के मामले मे शेर था । सुबह नाश्ते पर ही सेर-भर दूध, आधा दर्जन मक्खन लगे हुए टोस्ट और तले हुए तीन अडे साफ कर जाता था । 'राज' एक-एक करके कितने ही प्याले चाय के पी जाता था और बीच-बीच मे बैठा बिस्कुट कुतरता रहता था । पहलवान बोलता नहीं गरजता था, शायर बोलता नहीं मिमियाता था । एक का खयाल था कि दुनिया मे सैंडो से बडा कोई आदमी नहीं हुआ, दूसरे का यह पक्का यकीन था कि जिसने लखनऊ के अनीस और आतिश और मोमिन जैसे शायरो को नहीं पढा उसने अपनी जिन्दगी मे कुछ नहीं किया । इन दोनों के बीच अनवर की जान मुसीबत मे रहती थी । वह पूरी तरह दोनों मे से किसीसे भी सहमत नहीं था । फिर भी उसे अक्सर दोनों के झगडे मे बीच-बचाव करना पडता था ।

असगर और 'राज' में से वह मन ही मन असगर को ज्यादा पसन्द करता था क्योंकि असगर में हर वह चीज थी जो अनवर में नहीं थी—अच्छी तन्दुरुस्ती, हर वक्त की मस्ती और फिर वह एक अच्छा खिलाडी भी तो था जो तैरना जानता था, घुड़सवारी जानता था और उसे क्रिकेट खेलने या हॉर्डिल फांदने में एक जैसी निपुणता प्राप्त थी। असगर को भी यह दुबला-पतला भेपू लडका बहुत पसन्द था। उसकी रक्षा करना वह अपना कर्तव्य समझता था और उसने हास्टेल के तीसमारखाओं को यह बात अच्छी तरह समझा दी थी कि अगर कोई अनवर को सताएगा या छेड़ेगा तो उसकी खैर नहीं है। जहाँ तक शायर साहब का सवाल था, अनवर को उन्हें देखकर न जाने क्यों साप का खयाल आता था। उसे उनकी जनानी चाल-ढाल से, उनके तेल से चुपड़े हुए बालों से और घटो बैठकर छत को ताकते रहने या विचारों में डूबे हुए शून्य में देखते रहने की आदत से सख्त चिढ़ थी।

आखिरकार उस्मान बबई से वापस लौटा। वह अपने साथ बहुत-सी राजनीतिक खबरे लाया था। हालांकि उसे रहने के लिए दूसरा कमरा दिया गया था फिर भी वह पहला मौका मिलते ही अपने दोस्त से बातें करने पहुँच गया। उसे अनवर को बहुत-सी बातें बतानी थी इसलिए दोनों खेतों की सैर को निकल पड़े और उन्होंने फैसला किया कि वापसी में वे चाय पीने स्टेशन जाएंगे। अक्टूबर खत्म हो रहा था और हवा में थोड़ी-थोड़ी खुनकी आ चली थी। मटर के खेत बैजनी और लाल रंग के फूलों से लदे हुए थे और डूबते हुए सूरज की किरनों ने हर चीज पर सोना बिखेर दिया था।

उस्मान ने अपनी छुट्टियाँ दूसरे विद्यार्थियों की तरह किताबें पढ़ने या वाही-तबाही वक्त बरबाद करने में नहीं बिताई थी। वह बहुत महत्त्वपूर्ण राजनीतिक आंदोलनों के सम्पर्क में रहा था। सबसे पहले तो उसने अनवर को बादलों की किसान-सत्याग्रह के बारे में बताया, जिसने पूरे गुजरात के देहातों में विद्रोह की ज्वाला भड़का दी थी। उस्मान का घर उसी जिले में था। उस्मान ने बड़े जोश के साथ बताया कि वहाँ के किसान अपने अधिकारों के लिए किस बहादुरी के साथ सरकार और ज़मींदारों की ताकत के खिलाफ लड़े थे। उन्हें गिरफ्तार

करके जेलो मे बन्द कर दिया गया, उन्हे पीटा गया, उनकी जायदादे जब्त कर ली गई लेकिन उन्होने हार नहीं मानी । आखिर मे जीत उन्हीकी हुई, सारे कैदी रिहा कर दिए गए और सरकार को किसानो की शिकायतो के बारे मे जाच बिठानी पडी । जिस समय उस्मान किसानो के इस सघर्ष का सजीव वर्णन कर रहा था, उस समय अनवर भी अपनी कल्पना मे इस रोमाचकारी दृश्य का चित्रण कर रहा था कि धरती के हजारो कर्मठ बेटे अपने अधिकारो के लिए कमर कसकर मैदान मे उतर आए थे और उत्पीडन की दुष्ट शक्तियो के सामने सिर झुकाने से इकार कर रहे थे । अनवर और उस्मान एक छोटे-से गाव से होकर गुजर रहे थे । दर्जनो चूल्हो से उठता हुआ नीला धुआ बल खाता हुआ नीले आसमान की तरफ बढ रहा था । किसान कधो पर हल रखे बैलो की जोडी साथ मे लिए हुए चले आ रहे थे—सीधे-सादे, दुबले-पतले लोग जिनके तन पर एक मैली-कुचैली लगोटी के अतिरिक्त और कुछ न था । जब वे इन दोनो नौजवानो के पास से गुजरते तो उन्हे सलाम करते । जब वे गाव की गदी बदबूदार गली पार करके बाहर निकले और रेल की पटरी की तरफ मुडे तो अनवर सोचने लगा कि बादोली मे जो आग भड़क उठी है वह सयुक्त प्रात के इन गावो तक कब पहुचेगी ।

इतने मे उस्मान ने एक दूसरे राजनीतिक सघर्ष का वर्णन शुरू कर दिया था जो उसने बबई मे अपनी आखो से देखा था । कपडा मिलो के हजारो मजदूरो ने हडताल कर दी थी और यह कहा था कि जब तक उनकी मागे नहीं मानी जाएगी तब तक वे एक भी कारखाना नहीं चलने देगे । उन्होने भी अपनी मागे मनवा ली थी । उस्मान का दावा था कि किसानो और मजदूरो के ये सघर्ष लगान घटवाने या मजदूरी बढवाने के छुटपुट सघर्ष नहीं थे बल्कि उनसे भारतीय राजनीति मे एक नई महान शक्ति के जन्म का पता चलता था । उसका कहना था कि अब कांग्रेस 'अग्रेजी साम्राज्य के अदर डोमिनियन स्टेट्स' की माग करते हुए केवल प्रस्ताव पास करवानेवाले दबू वकीलो की सस्था नहीं रह जाएगी । उसने बताया कि जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व मे 'इंडिपेडेस आफ इंडिया लीग' बन गई थी जो कांग्रेस के पुराने नेताओ को पूर्ण स्वराज्य के क्रांतिकारी लक्ष्य की ओर ले जाने के लिए देश के नौजवानो को संगठित कर रही थी । अनवर इधर कई बरसो से रतन से नहीं मिला था

और उसके खत भी कभी-कभी ही आते थे और सो भी बहुत छोटे । लेकिन उस्मान की बातें सुनकर उसके मन में फौरन यह विचार उठा कि 'यह उस्मान रतन से कितना मिलता है । काश मैं इन दोनों की मुलाकात करवा सकता ।'

जब वे स्टेशन पहुँचे तो थककर बिल्कुल चूर हो चुके थे पर वे बहुत खुश थे और उनका जोश उमड़ा पड़ रहा था । सूरज डूब चुका था और पंजाब में उसी वक्त प्लेटफार्म पर आई थी । यह ट्रेन, जो बहुत दूर से हुगली के किनारे बसे हुए कलकत्ता शहर से आती थी और दिल्ली से होती हुई पंजाब के मैदानों को पार करके बहुत दूर आगे तक चली जाती थी, न जाने क्यों इतनी रोमांटिक लगती थी ; उसे देखते ही दिल में न जाने क्यों एक हलचल-सी मच जाती थी । अनवर के लिए यह ट्रेन उन तमाम अनोखी जगहों का प्रतीक थी जिनकी वह सैर करना चाहता था, वह उन तमाम रोमांचकारी कामों का प्रतीक थी जो वह करना चाहता था । वह लम्बी-सी हरी गाड़ी हापती-कापती धीरे-धीरे प्लेटफार्म के किनारे आकर रुक गई । प्लेटफार्म पर एक अच्छी-खासी भीड़ थी । अनवर और उस्मान भी उस भीड़ में खड़े मुसाफिरो को ताक रहे थे । उनकी नज़रें किसी अच्छी सूरत की तलाश में थी । इतने में अनवर ने एक ऐसा सुंदर चेहरा देखा जैसा उसने इससे पहले कभी नहीं देखा था । उसका दिल धक से रह गया । वह खिड़की से बाहर सिर निकाले भाक रही थी । सफ़ेद कपड़े पहने हुए कोई पंद्रह या सोलह साल की लड़की रही होगी, जिसके खूबसूरत लम्बोतरे चेहरे के चारों ओर घुघराले बालों का एक घेरा था । अनवर सिर्फ़ इतना समझ पाया कि उसकी बड़ी-बड़ी मासूम काली आँखें किसी आदमी को या किसी चीज़ को ढूँढ़ रही थी, लेकिन इसके फौरन ही बाद वह डिब्बा आगे निकल गया था और इधर-उधर भागते हुए सैकड़ों मुसाफिरो के शोर-गुल और धीगामुश्ती में वह मुखड़ा उसकी नज़रों से ओझल हो गया था । अचानक उनकी मुठभेड़ राजनीति विभाग के प्रोफेसर सलीम से हो गई—लम्बा-चौड़ा डीलडौल, लाल चेहरा, कपड़ों के मामले में नख से शिख तक दुरुस्त । ऐसा लगता था कि वे किसीको ढूँढ़ रहे थे ।

उस तमाम गड़बड़ और भागदौड़ में उन्होंने किसीकी मदद चाहते हुए



बहुत घबराहट में पूछा, “लडकी, तुमने मेरी बेटी को तो नहीं देखा है ?”

देखना तो दूर रहा अनवर और उस्मान को यह भी नहीं मालूम था कि प्रोफेसर सलीम के कोई बेटी भी है। लेकिन अनवर को सहसा उन बड़ी-बड़ी मासूम काली आखों की याद आई जिन्हें उसने कुछ ही देर पहले किसीको खोजते देखा था। उसने तुक्का मारा, “जी हा, देखा है। आगेवाले डिब्बे में है।” और जब लडकी के बाप घबराए हुए उस डिब्बे की तरफ बढ़े तो अनवर भी भीड़ को चीरता हुआ उनके साथ हो लिया। खुशकिस्मती से उसका तुक्का ठीक निशाने पर बैठा था क्योंकि उसने देखा कि वह लडकी अपने अब्बा के गले में बाहे डालकर उनसे लिपट गई। कुली ने सामान उठा लिया और वे सब स्टेशन से बाहर निकलने के लिए फाटक की तरफ चले। चलते-चलते वह लडकी बहुत हस-हसकर कानपुर से यहा तक के लम्बे सफर के बारे में अपने अब्बा को बता रही थी। अनवर को बीच में टाग अडाने की कोई जरूरत तो नहीं थी पर वह लपककर प्रोफेसर साहब के पास पहुँचा और चारों ओर के शोर-गुल से ज्यादा ऊँची आवाज में बोला, “मेरे लायक कोई और खिदमत ? तागा ले आऊ ?” प्रोफेसर साहब ने उत्तर दिया, “नहीं, नहीं, ठीक है अनवर। तुम तकलीफ न करो। मैं अपनी मोटर में आया हूँ।” और इतना कहकर वे भीड़ को चीरते हुए अपनी बेटी के साथ आगे बढ़ गए। देखते-देखते वे आख से ओझल हो गए। उस लडकी ने तो शायद अनवर की तरफ आख उठाकर देखा भी नहीं।

“चलो यार, एक प्याली चाय पिएगे,” उस्मान ने कहा। गार्ड ने सीटी दे दी थी और गाड़ी चलनेवाली थी। मुसाफिरो की भीड़ छट गई थी—कुछ गाड़ी के डिब्बों में ठुस गए थे और कुछ स्टेशन से बाहर निकल रहे थे। बस काली शेरवानिया पहने हुए कुछ लडके प्लेटफार्म का चक्कर लगा रहे थे और जनाने डिब्बे के सामने पहुँचकर उनके कदम अपने-आप रुक जाते थे। रेफ्रेशमेंट-रूम की तरफ बढ़ते हुए उस्मान कह रहा था, “बबई में मैं जितने भी बड़े-बड़े कांग्रेसियो से मिला उन सभीने यही कहा कि लडाई तो होगी—ऐसी लडाई जिसमें जीत और हार का फैसला हो जाएगा। और उन्होंने यह भी कहा कि तुम्हारे और मेरे जैसे लोगो को तैयार रहना चाहिए।...” लेकिन यह पहला मौका था कि अनवर अपने दोस्त की राजनीतिक बातों में कोई दिलचस्पी नहीं ले रहा था। वह उसकी बातें सुन तक नहीं रहा था।

उस रात अनवर सो न सका । इसलिए जब असगर खर्राटे लेने लगा और 'राज' साहब शेरो-शायरी में सिर खपाने के लिए पीछेवाले कमरे में चले गए तो वह चुपके से कमरे के बाहर निकल आया । वह किसी ऐसी खुली जगह में जाना चाहता था जहां कोई न हो । उसे ऐसा पहले कभी महसूस नहीं हुआ था जैसा कि अब हो रहा था ।

बाहर सन्नाटा छाया हुआ था । सिर्फ एक-दो कमरों में बत्तिया जल रही थी । चौथाई चाद की मद्धिम रोशनी में मस्जिद के सफेद गुम्बद और मीनारें तारो-भरे आकाश को चूम रही थी । और अनवर को ऐसा लगा कि उसने पहले कभी इन सब चीजों के पूरे सौंदर्य को नहीं सराहा था—चाद, सितारे, वह सुडौल मीनारे, शानदार गुम्बद और अंधेरे में घटाघर की धुधली-धुधली शक्ल ।

रात में न जाने कितने फूलों की सुगंध बसी हुई थी—गुलाब की भीनी-भीनी सुगंध, चमेली के फूलों की मस्त महक, और शब-दुल्हन की नशीली तेज खुशबू । वह घास पर लेट गया । घास अभी हाल ही में काटी गई थी और उसमें से एक अजीब सोधी-सोधी खुशबू निकल रही थी । ओस से भीगी हुई ज़मीन से भी सोधेपन की खुशबू आ रही थी ।

चारों ओर शान्ति थी, शान्ति और खामोशी और एक अजीब खुशी जिसे बयान करना मुश्किल था । लेकिन न जाने क्यों उसके दिल में दर्द भी था, न जाने क्यों उसे ऐसा लग रहा था कि वह अकेला है । सारी दुनिया उसे शान्तिमय लग रही थी फिर भी उसके मन में एक अजीब बेचैनी थी । उसे ऐसा लग रहा था कि वह अपने दिल में जो गहरी तमन्ना छिपाए हुए था वह किसी दिन ज़रूर पूरी होगी ।

अनवर इसी तरह घास पर लेटा रहा—एक घंटे, दो घंटे, न जाने कितनी देर । वह जाग रहा था फिर भी उसका दिमाग सो रहा था । ऊपर घटाघर की घड़ी ने जब कुछ बजाए तो वह यह भी न गिन सका कि कितने बजे हैं । वह सोच नहीं सकता था, वह सिर्फ महसूस कर सकता था । वह रात का हुस्न, उसकी खामोशी और उसका दर्द पी जाना चाहता था, उसी तरह जैसे प्यासी घरती वर्षा के पहले छींटे का सारा पानी सोख लेती है ।

वह घास में मुह देकर लेट गया । वह अपने चिकने गालों पर घरती की

कोमलता को अनुभव कर रहा था, घास की नोके उसे गुदगुदा रही थी। सहसा उसका जी चाहा कि वह कोई बहुत बड़ा बहादुरी का काम कर डाले। उसने अपनी मिट्टी में कुछ घास पकड़कर उसे जड़ से उखाड़ लिया। घास उखड़ने से जो कर्कश स्वर पैदा हुआ, जैसे कोई शरीर से शरीर का कोई अंग नोच ले, उससे अनवर को न जाने क्यों बहुत सतोष मिला। उसने अपने नाखून नर्म गीली मिट्टी में धसा दिए। सहसा उसका जी चाहा कि वह मिट्टी को खोद दे, उसकी शक्ल बिगाड़ दे, अपना सारा बदला उससे चुका ले। उसने पास ही एक भांडी से गुलाब का एक फूल तोड़ा और एक-एक करके उसकी सारी पखडियां नोचकर जमीन पर बिखेर दी।

फूल तोड़ते हुए उसकी उगली में काटा लग गया और जब उसने उगली को मुह में डालकर चूसा तो खून—उसका अपना खून—उसे कड़वा लगा, कड़वा लेकिन अच्छा।

जब वह अपने कमरे में वापस लौटा तो बिल्कुल थक चुका था फिर भी उसे एक अजीब-सा सतोष था, लेकिन कोई सोते में भी उसका पीछा कर रहा था। यह वही 'दूसरी औरत' थी जिसे उसने बचपन में देखा था और वह अब भी चिल्लाकर कह रही थी, 'मैं औरत हूँ, औरत की बेटी हूँ। तुम मुझसे बचकर कहा जाओगे।' लेकिन जब वह पास आई तो अनवर ने देखा कि उसका चेहरा लम्बोतरा था और उसके चेहरे के चारों ओर घुघराले काले बालों का घेरा था और उसके बड़ी-बड़ी मासूम काली आँखें थी।

दूसरे दिन सुबह जब अनवर ने बाल काँढने के लिए आईना देखा तो उसे अपने गालों पर और ठोड़ी पर उगे हुए बाल यकायक बहुत बड़े मालूम हुए। बाल थे तो बहुत काफी समय से पर उनकी ओर उसने अब तक कोई ध्यान नहीं दिया था। उसके चिक्ने-सुथरे चेहरे पर वे कितने मुलायम और रेशमी मालूम होते थे। वह जानता था कि एक बार जहाँ उसने दाढ़ी बनाना शुरू कर दी तो फिर उसकी खाल भी असगर और 'राज' की तरह सख्त और खुरदुरी हो जाएगी, क्योंकि वे दोनों रोज दाढ़ी बनाते थे।

परंतु आज उसे अपनी दाढ़ी के बालों से न जाने क्यों उलझन हो रही

थी; वह उनकी वजह से न जाने क्यों शर्मिन्दा था। उनकी वजह से वह बिलकुल लौंडा लगता था और वह चाहता था कि वह मर्द लगे। और इसलिए एक खाली घंटे में वह अपने कमरे में वापस आया और कमरा अंदर से बंद करके असगर का दाढ़ी बनाने का सामान निकाल लाया और गाल पर साबुन रगड़ने लगा। पहली बार जब उसने अपनी दाढ़ी पर रेजर चलाया और साबुन के भाग के साथ काई की तरह कुछ बाल उतर आए तो उसे बहुत रोमांच हुआ। जब अपने नौसिखिएपन की वजह से उसकी ठोड़ी एक जगह से कट गई तब भी उसे कोई चिंता नहीं हुई। ठोड़ी पर खून की एक पतली-सी लकीर छलक आई लेकिन उसे ज़रा भी फिक्र नहीं हुई क्योंकि उसने बड़ी होशियारी से पुराने दाढ़ी बनानेवालों की तरह उसपर फिटकरी मल ली। फिटकरी लगाते ही कटे हुए घाव में एक हल्की-सी चुभन हुई जिसमें अनवर को बहुत मजा आया और खून बहना एकदम बन्द हो गया। लेकिन घाव का निशान बाकी रह गया। यह उसकी जवानी के पहले घाव का निशान था !

उस दिन से अनवर अपने कपड़ों की ओर भी ज्यादा ध्यान देने लगा, वह अपने चेहरे को गौर से देखने के लिए, जो पीला ज़रूर था लेकिन देखने में इतना बुरा नहीं था, आईने के सामने कुछ देर खड़ा रहता। अब उस्मान के साथ टहलने जाना भी पहले से कम हो गया और अक्सर वह कोई न कोई बहाना बनाकर अकेले सैर को निकल जाता था। और जब वह उस्मान के साथ जाता भी था तो मौका पाते ही बातचीत का रख राजनीति की ओर से निजी बातों की ओर मोड़ देने की कोशिश करता।

“उस्मान, अच्छा एक बात बताओ,” उसने एक दिन अचानक पूछा, “मुहब्बत के बारे में तुम्हारा क्या खयाल है ?”

बम्बई के स्वतन्त्र वातावरण में पले हुए उस्मान ने उत्तर दिया, “मैं मुहब्बत को बिलकुल बकवास समझता हूँ। मैं तो सियासी काम करूँगा। मैं किसी बेवकूफ लड़की के गले से बधना नहीं चाहता।”

“लेकिन यह क्या ज़रूरी है कि लड़की बेवकूफ ही हो ?” उर्दू के पुराने शायरों की गज़लों से मुहब्बत का सबक सीखनेवाले अनवर ने फौरन विरोध किया। “वह तुम्हारे काम में तुम्हें ‘इन्सपिरेशन’ भी दे सकती है।”

“लड़कियाँ सभी बेवकूफ होती हैं,” उस्मान ने अपना आखिरी फैसला देते



हुए कहा और फिर यकायक चुप हो गया, हालांकि चुप हो जाना उस्मान के लिए एक अजीब बात थी—शायद वह अपनी इस राय के बारे में सबूत ढूँढने के लिए अपने तजुर्बे की गहराइयों में गोते लगा रहा था।

दूसरे दिन अनवर उस्मान के आने से पहले ही हास्टेल से खिसक गया। क्रिकेट के खिलाड़ी सफेद पतलून पहने हुए मस्जिद के पीछेवाले मैदान में क्रिकेट खेल रहे थे। स्टाफ क्लब में मोटी-मोटी तोड़ोवाले दुबले-पतले गजे प्रोफेसर टेनिस खेल रहे थे। अनवर ने उनके बीच प्रोफेसर सलीम को भी देखा जो अपने ज़माने में कैम्ब्रिज में टेनिस के एक माने हुए खिलाड़ी रह चुके थे। अघेड़ उम्र में शरीर कुछ भारी हो जाने के बावजूद वे अब भी काफी जोर से बल्ला चला लेते थे। फिर वह सिविल सर्विस क्लब के सामनेवाली सड़क से होता हुआ सीधा स्टेशन की तरफ चल दिया। लेकिन लाल डिग्गी के पास पहुँचकर वह मैरिस रोड की तरफ मुड़ गया। उसने सोचा, 'मील-भर का चक्कर तो पड़ जाएगा लेकिन इतनी दूर ज्यादा चल लेना मेरे लिए फायदेमन्द होगा।' गर्ल्स कालेज की ऊंची-ऊंची दीवारें, जिनमें कहीं एक खिड़की भी नहीं थी, सतरियों की तरह उसका रास्ता रोके खड़ी थी। उसके मन में यह विचार क्यों उठा कि प्रोफेसर सलीम की बेटी सलमा दिन में यहीं पढ़ने आती होगी? और कुछ ही देर बाद एक बगले के सामने से गुज़रते समय, जिसके फाटक पर पीतल की एक तस्ती लगी थी, अपने-आप ही उसकी चाल धीमी और दिल की धड़कन तेज क्यों हो गई थी? जाहिर है मखमली लान की हरी-हरी घास और मेहदी की बाड़ के उस पार फूलों की खूबसूरत क्या रियों को देखने के लिए ही उसकी नज़रें उधर उठ गई थी। अगर लगे हाथों उसे सफेद गरारा, आसमानी कुरता और उसी रंग का दुपट्टा पहने कोई इकहरे बदन की लड़की बरामदे में आरामकुर्सी पर बैठी किताब पढ़ती दिखाई दे गई थी तो इसमें उसकी कोई बदतमीज़ी या बेहूदगी तो नहीं थी। और अगर स्टेशन तक जाने के बजाय अनवर कुछ देर बाद वापस लौट गया था तो इसकी वजह सिर्फ यही थी कि स्टेशन पहुँचते-पहुँचते उसे बहुत देर हो जाती और वापसी में शायद उसे ज़ुकाम हो जाता।

उस हफ्ते अनवर ने मैरिस रोड के कई फेरे लगाए। वह बहुत ही सुहावनी और शान्त सड़क थी, शायद ही कभी कोई मोटर या इक्का-तागा उधर से धूल उड़ाता हुआ गुज़रता था। लेकिन ऐसा लगता था कि अनवर की ही तरह और

भी बहुत-से लडके ऐसा ही स्वस्थ दृष्टिकोण लेकर वहा 'टहलने' आते थे और लगे हाथो अगर उन्हें यहा-वहा जवान शानो पर लापरवाही से पडा हुआ धनक के रग का कोई दुपट्टा, साडी मे लिपटा हुआ कोई सुडौल जिस्म, कोई काली-काली आखे या काली-काली घटाओ जैसे बालो की चोटी गुधती हुई दिखाई दे जाती तो उन्हें इसमे एतराज ही क्या हो सकता था । यह भी अलीगढ का एक बहुत लोकप्रिय मनोरजन था जिसका बहुतो को शौक था और इसीलिए जाहिर है कि उन्होंने अनवर को भी अपना ही जैसा समझ लिया ।

“हैलो अनवर, कोई पछी दिखाई दिया ?” एक दिन शाम को प्रोफेसर सलीम के बगले के सामने टहलते समय एक दूसरे लडके ने उसके पास आकर पूछा ।

“पछी ? कैसा पछी ?” अनवर इस सवाल पर सचमुच चकरा गया ।

“ ‘पछी’ नहीं जानते क्या होता है—पछी यानी ‘फिशिया’—यही मैरिस रोड की जलपरिया....”

अनवर उसका मतलब समझ गया लेकिन उसे यह मजाक पसंद नहीं आया और यह बात उसने उस दूसरे लडके से साफ-साफ कह भी दी ।

“यार, अब इतने पाकबाज्र न बनो,” उस लडके ने उत्तर दिया “हम सब एक ही नाव मे है ? क्या तुम भी यहा अपनी नजरे सेकने नहीं आते ? लेकिन अगर मुझसे पूछो तो प्रोफेसर साहब की बेटी सलमा की एक झलक के आगे बाकी सब लडकिया मिलकर भी हलकी पडती है । है न पटाखा ?....” और यह कहकर उसने अपने मोटे-मोटे होठो से बहुत ही बेहूदा ढग से चुम्बन की आवाज पैदा की ।

अनवर का चेहरा तमतमा उठा । उसका जी चाहा कि वह उस लफंगे की नाक पर एक घूसा जड दे जो इतनी बेहूदा बाते कर रहा था । लेकिन अपने पैदाइशी दब्बूपन के कारण वह ऐसा न कर सका । वह अचानक मुडा और दाए-बाए देखे बिना सीधा हास्टेल की तरफ चल दिया । उसकी इस हरकत पर उस दूसरे मजनुं को बहुत हैरत हुई और वह वही पत्थर की तरह गडकर रह गया ।

इस छोटी-सी घटना का अनवर के दिल पर बहुत गहरा असर पडा, उसके दिल पर गहरी चोट लगी । क्या लोग लडकियो के बारे मे इसी तरह की बाते करते हैं ? जो चीज उसके लिए सौंदर्य का रस लेने का साधन थी—क्या सुन्दर चीजे

इसलिए नहीं होती कि उन्हें देखकर उनकी प्रशंसा की जाए ? —वही एक क्षण में वासनापूर्ण अश्लीलता में बदल गई थी । उसने, अनवरअली ने, अकबरअली के बेटे ने जो एक शरीफ घर का बेटा था, ऐसी गैर-शरीफाना हरकत की थी । उसकी नीयत बद न भी रही हो तो इससे क्या होता है । सबकी नज़रों में तो वह भी उन्हीं लफंगों में से था जो बुरी नज़र से लड़कियों को ताकते हैं—हा, बिल्कुल उन्हीं आवारा लोगों और शराबियों की तरह जो रात के वक्त चावडी बाजार से उन 'दूसरी औरतों' को परखते हुए और उनके बारे में गदी-गदी बातें बकते हुए गुज़रते हैं । आत्मग्लानि के इस क्षण में अनवर अपने इस 'पाप' की तुलना बुरी से बुरी चीजों से करने लगा । वह मन ही मन बार-बार कहता रहा, 'अब मैं कभी मैरिस रोड पर टहलने नहीं आऊंगा, कभी नहीं ।' वह नहीं जानता था कि जान-बूझकर अपने-आपको इस सुख से वंचित रखने का उसने जो निर्णय किया था उसमें इस बात की स्वीकृति भी छिपी हुई थी अब तक वह मैरिस रोड पर सिर्फ मेहदी की साफ-सुथरी कटी हुई भाड़ियों और रंग-बिरंगे फूलों की क्याड़ियों को ही देखने नहीं जाता था, बल्कि उनसे परे भी कोई चीज़ थी जिसे देखने वह जाता था ।

नवम्बर में अलीगढ़ का मौसम बहुत अच्छा रहता है—थोड़ी-थोड़ी ठंड पड़ने लगती है लेकिन बहुत सर्दी नहीं पड़ती । पढाई पूरे ज़ोरों पर जारी रहती है लेकिन इम्तहान काफी दूर होते हैं । यह ज़माना उन कामों के लिए सबसे ज्यादा मुनासिब होता है जिन्हें आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज के नमूने पर बनाई गई यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियों का विशेषाधिकार समझा जाता है । सारे मंत्र और टर्नमेन्ट इसी ज़माने में होते हैं, वाद-विवाद होते हैं, बाहर से बड़े बड़े लोग आकर भाषण देते हैं, नाटक खेले जाते हैं और पिकनिक होती है । और दूर-दूर की जगहों से जरा हटकर उसे कुछ हद तक हिंदुस्तानी रंग देने के लिए एक नाट्य भी होता है जिसमें दूर-दूर से बड़े-बड़े शायर बुलवाए जाते हैं और लड़का भी शायरी का दम भरनेवालों को अपनी काव्य-प्रतिभा या उसके अभाव का परिचय देने का अवसर मिलता है ।

मुशायरे का दिन आया और शैरो-शायरी का शौक रखने की वृत्ति में

अनवर ने मुशायरा शुरू होने से घंटा-भर पहले आगे जाकर एक सीट घेर ली। मुकामी नौसिखिए शायरो की शायरी से वह काफी बोर हो चुका था; उनके बाद जो पुराने शायर आए उनकी फफूदी लगी शायरी से तो वह और भी बोर हुआ। लेकिन इसके बाद दो बातें ऐसी हुईं जिनकी वजह से उसकी दिलचस्पी बढ़ गई। एक तो यह कि प्रोफेसर सलीम अपनी बेटी सलमा के साथ वहां तशरीफ लाए और उन्हें ठीक अनवर के सामने डायस पर बैठने की जगह दी गई। और दूसरी बात यह हुई कि 'राज' ने अपनी नज्म पढ़ी।

अनवर को बेसास्ता गालिब का यह मिसरा याद आया—'यह जन्नते-निगाह वह फिरदौस-गोश है।' शुरू-शुरू में तो उसे सलमा की तरफ देखने में कुछ सकोच हो रहा था। मैरिस रोडवाली उस घटना के बाद से सलमा का खयाल आते ही वह न जाने क्यों भेष जाता था। 'अगर उसने मुझे अपने घर के सामने लफंगो की तरह टहलते देख लिया होगा तो क्या होगा?' लेकिन जैसे ही 'राज' ने खड़े होकर अपनी नज्म का पहला मिसरा पढ़ा, उसके ये विचार दूर हो गए। वहां पर बैठे हुए सब लोगों की निगाहे, सलमा की निगाहे भी 'राज' पर जम गईं। अब अनवर बिना किसी भिन्नक के सलमा को देख रहा था और उसके कान अपने साथी की कविता का रस पी रहे थे।

अनवर 'राज' को हमेशा से यूनिवर्सिटी का सबसे बदसूरत लड़का समझता था। लेकिन जब उसने अपनी नज्म 'महबूब से शायर का खिताब' पढ़ी तो उसमें एक अजीब तबदीली आ गई। अनवर के सामने अब बिल्कुल ही दूसरा 'राज' था। उसका व्यक्तित्व बहुत निखर उठा था। वह इस समय बहुत बड़ा सूरमा लग रहा था। उसकी आंखों में एक नई ज्योति चमक रही थी। वह अपने सूखे हुए पतले-पतले हाथों को कविता के भाव के अनुसार हिला रहा था। उसके स्वर के उतार-चढ़ाव से हर दिल में एक लहर-सी पैदा हो रही थी—कभी उसका स्वर इतना धीमा हो जाता कि ऐसा लगता मानो वह किसीसे अलग कोई बात कह रहा हो और कभी उसका स्वर भरपूर उल्लास के साथ गूंज उठता। यह मनुष्य की अंतरात्मा थी जो एक निर्मल ज्योति के रूप में प्रज्वलित हो उठी थी। यह शरीर की कुरूपता पर मनुष्य की प्रतिभा की विजय का चमत्कार था। उसकी नज्म के हर बंद पर तालिया बज रही थी। पहले तो शायर ने अपने गौरव का गीत गाया :



मैं कि इक जनता का शायर, ज़िंदगी है मेरा साज,  
चाद-तारो को सुनाता हूँ, मैं इस धरती के राज ।  
और फिर उसने अपनी प्रेमिका का गौरव-गान किया था :

तू सरापा नकहते - गुल, शोखिए - बादे - बहार,  
सर्व-कामत में निहा तेरे, हिमाला का विकार ।

अनवर ने हर तरह की कविता पढ़ी थी और उसका आनन्द लिया था, लेकिन यह और ही चीज़ थी, कोई ऐसी चीज़ थी जिसमें कल्पना की बेहद उड़ान थी फिर भी वह इस धरती से सम्बन्ध रखती थी, उसमें दैवी शक्तियों जैसा जोर था फिर भी वह नाजुक थी, यह ऐसी कविता थी जिससे रक्त का प्रवाह तेज हो जाता था और उसकी प्रतिध्वनि हर हृदय में सुनाई देती थी । यह कविता बेजान नहीं थी, उसमें जान थी, उसमें निराशा नहीं बल्कि आशा थी, वह शरबत की तरह न तो मीठी थी और न ही उसे सुनकर नींद आने लगती थी, बल्कि उसमें तो सघर्ष की ललकार थी ।

अनवर ने 'राज' की नज़्म सुनी और देखी भी । उसने उस नज़्म को सलमा के चेहरे में देखा । शायर के हर लफ्ज़, हर फिकरे, और हर जज़्बे के मुताबिक उसके चेहरे का रंग बदल रहा था । ऐसा लगता था कि एक बाजे का सगीत दूसरे बाजे में भी अपने ही सगीत की लय पंदा कर रहा हो । उसका चेहरा कितना प्रतिभाशाली, कितना संवेदनशील था, उसपर कोमल से कोमल चीज़ का कितनी जल्दी असर होता था । जब उस चेहरे पर मुस्कराहट खेलने लगती थी तब तो वह सुन्दर लगता ही था पर जब वह शांत होता था तब भी वह कुछ कम सुन्दर नहीं लगता था । अनवर को ऐसा लगा कि उन बड़ी-बड़ी काली मासूम आँखों में उदासी थी । और वह सोचने लगा कि शायद वह अकेली थी और किसी साथी की तलाश में थी । उसके हृदय में कोमल भावनाओं का एक तूफान उमड़ आया और वह सलमा के लिए हमदर्दी से बेचैन हो उठा । वह उसके लिए कुछ करना चाहता था, वह उसके लिए कुछ भी कर सकता था । बस उसके कहन भर की देर थी...

'राज' अपनी नज़्म के आखिरी शेर पढ़ रहा था :

तेरी खातिर चाद-तारो को भी ला सकता हूँ मैं,  
आसमा को तेरे कदमों पर भुका सकता हूँ मैं ।

राज की नज़्म खत्म होते ही सारा हाल तालियों से गूज उठा। अनवर ने देखा कि एक क्षण के लिए सलमा अपने विचारों में ऐसी डूबी रही कि उसे इस बात का पता भी नहीं चला कि नज़्म कब खत्म हो गई। शायर की नज़्म शायद अभी तक उसके कानों में गूज रही थी। यह महज उसका खयाल था या सचमुच सलमा ने उदाम होकर एक दबी हुई आह भरी थी और आह भरते ही उसकी आँखों में एक ख़्वाब-सा छा गया था। लेकिन दूसरे ही क्षण वह भी औरों की तरह जोर से तानिया बजा रही थी और उसका चेहरा खुशी से खिल उठा था। अनवर के हृदय में ईर्ष्या काटे की तरह चुभने लगी। काश यह नज़्म 'राज' ने नहीं बल्कि उसने पढ़ी होती।

'राज' ने मुशायरा लूट लिया था। लेकिन रात को जब अनवर अपने कमरे में वापस लौटा तो उसने देखा असगर गहरी नीद सो रहा है—वह मुशायरों, डिबेटों और लैक्चरों में अपना वक्त खराब करने का कायल नहीं था। 'राज' अपनी चारपाई पर वैसे ही कपड़े पहने लेटा छत को ताक रहा था और सिगरेट के धुएँ के छल्ले बना रहा था। अनवर 'राज' को बताना चाहता था कि उसे उसकी नज़्म बेहद पसन्द आई थी और उसे इस बात का बहुत अफसोस था कि उसने अब से पहले उसकी हकीकत को नहीं पहचाना था। वह उसके सामने अपनी यह दिनी उम्मीद जाहिर करना चाहता था कि आगे चलकर दोनों में गहरी दोस्ती बनी रहेगी। लेकिन उसे इस तरह की बातें कहने में सकोच हो रहा था। इस तरह की भावुकता का प्रदर्शन करने से उसे बेहद डर लगता था। इसलिए उसने बुदबुदाकर सिर्फ इतना कहा, "बहुत ही उम्दा नज़्म थी, 'राज'। हर शख्स तारीफ कर रहा था।" लेकिन इसके जवाब में 'राज' ने जो कहा उसे सुनकर अनवर चक्कर में पड़ गया। अपनी सिगरेट से दूसरी सिगरेट जलाते हुए शायर ने कहा, "सच। लेकिन लोगों की तारीफ से मुझे क्या गरज।"

उस रात अनवर को बड़ी देर तक नीद नहीं आई। वह यह समझने की कोशिश करता रहा कि 'राज' ने जो कहा था उसका क्या मतलब था। अगर लोगों की तारीफ से उसे कोई गरज नहीं है तो फिर किसकी तारीफ से उसे गरज है?

आक्सफोर्ड में एक यूनियन सोसाइटी थी इसलिए अलीगढ़ में भी एक थी।

मुस्लिम यूनिवर्सिटी यूनियन बहुत ज़बर्दस्त सस्था थी, जिसका हर साल इलेक्शन होता था ; साल-भर में यूनियन की तरफ से दस-बारह डिबेटे और लैक्चर होते थे ; यूनियन की एक गद्दी-सी लाइब्रेरी और एक रीडिंग रूम भी था और इसके अलावा वह सिर्फ अपनी शानदार परम्पराओं पर पलती थी । लेकिन यूनियन में एक बात बहुत अच्छी थी । उनका इतजाम चलाने—या बिगाड़ने—का सारा काम लड़के खुद करते थे और उसकी हदों के अंदर उन्हें बोलने की पूरी आज़ादी थी । हिन्दुस्तान के मुसलमानों में कुछ बेहतरीन वक्ता और बड़े-बड़े राजनीतिक नेताओं को पहली ट्रेनिंग इसी छोटी-सी पार्लियामेंट में मिली थी । यूनियन हाल में चारों तरफ़ लगी हुई तख्तियों पर काले पड़ते हुए सुनहरे अक्षरों में उनके नाम आज भी अंकित हैं ।

अलीगढ़ आने के बाद पिछले दो बरनों में अनवर ने अक्सर इन नामों को बड़ी ईर्ष्या से देखा था, लेकिन उसके दिल में यह इच्छा कभी नहीं हुई थी कि वह भी उनमें से एक हो । लेकिन अब वह इस बात को अच्छी तरह जानता था कि अगर कभी उसे शोहरत मिली तो इसी हाल में एक वक्ता के रूप में मिलेगी । डिबेटे आम तौर पर राजनीतिक सवाल पर होती थी । शुरू-शुरू में अपने अब्बा की बैठक में बहुत काफी वक्त गुज़ारकर और इधर हाल ही में हर बात की जानकारी रखनेवाले उस्मान के साथ रहकर उसने बहुत कुछ सीख लिया था और अब वह राजनीति के किसी भी सवाल पर बाने कर सकता था । लेकिन क्या वह मंच पर खड़े होकर बोल सकेगा ? यूनियन इस बात के लिए बदनाम थी कि वहां नये और नौसिखिया बोलनेवालों को चुटकियों में उड़ा दिया जाता था । कुछ लड़के तो यूनियन की डिबेटों में सिर्फ बिल्ली की बोली बोलने और वक्ता का मज़ाक उड़ाने में अपना कमाल दिखाने के लिए ही आते थे । लोगों को इस बात में कमाल हासिल था कि बड़े मौके से कहकहा लगाकर या गलत मौके पर तालिया बजाकर वे बोलनेवाले को बौखला देते थे । इन सुननेवालों का खयाल आते ही बड़े-बड़े सूरमाओं का दिन काप जाता था । अनवर इन लोगों के ज़बर्दस्त हमलों का मुकाबला किस तरह कर पाएगा ?

“अब मिस्टर अनवरअली इस तजवीज़ के खिलाफ तक्रीर फरमाएँ ।”

यूनियन के प्रेसीडेंट की आवाज़ कहीं बहुत दूर से, किसी दूमरी दुनिया से आती हुई मालूम दी । अनवर को ऐसा लगा कि जैसे वह ख़ाब में किसीकी

आवाज सुन रहा हो। “उठो, अब तुम्हारे बोलने की बारी है,” किसीने उसे ठेलकर कहा और वह उठ खड़ा हुआ। उसके गाल और कान की लवें घबराहट के भारे सुखं हुई जा रही थी, उसके पैर कांप रहे थे और जबान सूख गई थी। इस आलम में वह प्रेसीडेंट के दाहिनी तरफ मंच के उस भाग की ओर चला जहां से खड़े होकर उसे भाषण देना था। वह बार-बार अपने मन को समझा रहा था कि डरने की कोई बात नहीं है। उसने सारी दलीले खूब अच्छी तरह तैयार कर रखी थी और उस्मान की दी हुई किताबों की मदद से उसने उनके समर्थन में बेशुमार राजनीतिक तथ्य भी जमा कर लिए थे, वह कोई एक दर्जन बार अपना भाषण पढ़ चुका था, उसे बिलकुल रट लिया था और अनेक बार वह इसका भी अभ्यास कर चुका था कि वह किस प्रकार भाषण देगा। फिर उसे बोलने में डर किस बात का?

“मिस्टर प्रेसीडेंट सर,” उसने पार्लियामेंट में भाषण देने के खास अंदाज में कहना शुरू किया, ‘आज हमारे सामने बहस का मौजू यह है कि हिन्दुओं और मुसलमानों का सियासी मुस्तकबिल बिलकुल मुख्तलिफ है और इसलिए उनकी सियासी जमाते भी मुख्तलिफ होनी चाहिए। मैं इस तजवीज़ की शदीद मुखालफत करता हूँ, क्योंकि...’

और इतना कहकर उसने अपने सामने बंठे हुए लोगों को देखा — कोई एक हजार सफेद पाजामे, उतनी ही काली शेरवानिया और लाल तुर्बो टोपिया, एक हजार दुश्मन, एक हजार बेरहम जगली हूश जो अपने तानों के तीर किसी भी वक़्त उसपर चलाने के लिए निशाना साधे बैठे थे। अनवर ने उन्हें देखा तो उसे ऐसा लगा कि वे अलग-अलग लोग नहीं हैं बल्कि एक बिफरा हुआ समन्दर है जो किसी भी वक़्त उसे अपनी तूफानी लहरों की लपेट में ले लेगा। उसकी जबान सूख गई, उसका गला घुटने लगा और कनपटियों में धमक होने लगी।...

“मिस्टर प्रेसीडेंट सर।...” वह बार-बार यही कहता रहा लेकिन इसके आगे कुछ भी न कह सका। पूरा भाषण उसकी याद से उतर गया था। उसे उसका एक भी फिकरा, एक भी लफज़ नहीं याद आ रहा था। हाल में एक बेरहम कहकहा गूँज उठा और थोड़ी ही देर में ऐसा महसूस हुआ कि हजार राक्षस एकसाथ मिलकर कहकहा लगा रहे हैं। जब उसे कोई रास्ता न सूझा तो बिलकुल लाचार होकर उसने मदद के लिए प्रेसीडेंट की तरफ देखा। और



उसी वकन उसने महसूस किया कि दो बड़ी-बड़ी काली मासूम आंखें उसे देख रही हैं। उन आंखों में मुस्कराहट थी पर मजाक उड़ानेवाली मुस्कराहट नहीं। उस मुस्कराहट में हमदर्दी थी, वह मुस्कराहट उसे उत्साह दिला रही थी। ऐसा लग रहा था कि वे मुस्कराती हुई आंखें उससे कह रही हैं, 'बोलो, हिम्मत करो! डरते क्यों हो? इतने बड़े होकर बच्चों की तरह भेड़िये से डरते हो?' उन आंखों में इतनी दोस्ती थी, इतना भरोसा था, इसानी भाईचारे की इतनी सादगी थी कि अनवर भी बरबस मुस्करा दिया। वह भेड़िये का मुकाबला करने के लिए मुड़ा। अब उसके सामने भेड़िया न था। उसके सामने एक हजार लड़के बैठे हुए थे जिनमें से एक दर्जन भी मुश्किल ने ऐसे न रहे होंगे जो उठकर इतने लोगों के सामने बोलते की हिम्मत रखते हों। इन लोगों ने उसकी हसी उड़ाने की हिम्मत की! अच्छी बात है। वह उन्हें दिखा देगा। यह सच है कि उसने जो कुछ बोलने के लिए याद किया था उसे वह भूल चुका है पर उसकी जुबान तो उससे नहीं छिन गई है।

जब कहकहा लगानेवाले पिशाच दम लेने के लिए एक क्षण को रुके तो अनवर ने फिर बोलना शुरू किया, "मिस्टर प्रेसीडेंट सर, मैं आप लोगों को एक राज की बात बताता हूँ।" वह एक क्षण के लिए रुका और मुननेवाले भी इस सोच में पड़ गए कि आखिर वह ऐसी क्या बात बतानेवाला है। अनवर ने कहना शुरू किया, "बात यह है कि मैंने अपनी तकरीर लिख ली थी और उसे तोते की तरह रट लिया था। लेकिन जब मैं यहाँ बोलने के लिए खड़ा हुआ तो मैंने देखा कि मुझे उसका एक लफ्ज भी याद नहीं रह गया है।"

लोग हस पड़े—लेकिन इस बार उनकी हसी में वह पहलेवाला जहर नहीं था। उन्हें वक्ता की लाचारी देखकर सचमुच मजा आ रहा था, बल्कि वे उनकी हिम्मत की दाद भी दे रहे थे कि उसने सबके सामने इस बात को मान लिया था।

"तकरीर रटना मेरी गलती थी। अब मैं यह गलती कभी नहीं करूँगा। मैं अपनी तकरीर के अलफाज अलबत्ता भूल गया हूँ लेकिन मैं यह तो नहीं भूला हूँ कि मैं क्या कहना चाहता था और वह सब मैं सीधे-सादे अलफाज में आपके सामने पेश कर दूँगा। मैं उन भारी-भरकम अलफाज का इस्तेमाल नहीं कर सकूँगा जो मैंने आप लोगों पर रोब डालने के लिए रटे थे। मैं आप लोगों को

यकीन दिलाता हू कि आप लोग बहुत-सी बकवास से बच गए ।” सुननेवाले में एक बार फिर हसी की लहर दौड़ गई और अनवर की इस बात में उन्हें बहुत मजा आया ।

“लडका है बड़ा जिगरे का—और सूझ-बूझवाला भी है,” सुननेवाले ने अपने मन में कहा ।

इसके बाद तो सुननेवाले अनवर की मुट्ठी में थे और वह उन्हें अपने इशारों पर नचा सकता था । लेकिन उसने उनके सामने कोई राजनीतिक तर्क नहीं पेश किए, राजनीति और दर्शनशास्त्र के बड़े-बड़े पंडितों के रोबीले उद्धरण नहीं प्रस्तुत किए, कोई लम्बे-चौड़े आकड़े उनके सामने नहीं रखे । उसने उनके सामने लैक्चर भाड़ने की कोशिश नहीं की । वह तो उनसे जिन्दगी की सीधी-सादी हकीकतों के बारे में बातें कर रहा था, वह उनके सामने अपने तजुर्बों की बातें कह रहा था । वह इस बात को भूल गया कि वह डिबेट में हिस्सा ले रहा है ; उसने लच्छेदार जबान नहीं इस्तेमाल की, विरोधियों के तर्कों को काटने की कोशिश नहीं की ; उसने तो बस यह किया कि हकीकत को जिस शकल में उसने देखा था वैसा ही उनके सामने पेश कर दिया । उसने उन्हें काका रामेश्वरदयाल के साथ अपने अम्बा की दोस्ती के बारे में और गोपाल और रतन के साथ खुद अपनी दोस्ती के बारे में बताया । उसने उन्हें दिल्ली के साम्प्रदायिक दंगे के बारे में बताया—हालांकि वह उन्हें यह नहीं बता सका कि उस रात उसे और गोपाल को कहा शरण मिली थी । उसने उन्हें महात्मा गांधी के साथ अपनी मुलाकात के बारे में बताया और यह भी बताया कि उस छोटे-से महान आदमी ने साम्प्रदायिक दंगे को रोकने के लिए किस तरह अपनी जान की बाजी लगा दी थी । आखिर में उसने उन्हें बताया कि उसने जलियावाला बाग में खुद अपनी आंखों से क्या देखा था और सुननेवाले के सामने उस भयानक घटना की एक जीती-जागती तस्वीर खींच दी—मस्त बेफिकरे लोगों की भीड़ में घूमते हुए दो लडके, देशभक्ति के नारे और भाषण, ‘वो आ गए, वो आ गए’ की आवाजें, अपनी पिस्तौल दिखाता हुआ वह ललमुहा जरनैल, आंग उगलती हुई बंदूकें, दर्द से कराहता हुआ नदू और सीना तानकर जरनैल की तरफ बढ़ता हुआ अजीतसिंह, जो गोलियों की आवाज से भी ऊंची आवाज में चिल्लाकर गोली चलाना बन्द करने को कह रहा था, और जिसके दिल में उस तमगे को चीरती हुई एक गोली लगी

थी, जो उसे एक अंग्रेज अफसर की जान बचाने के लिए इनाम में दिया गया था। इसके बाद अनवर ने बहुत ही धीमे स्वर में कहा, “और फिर, मिस्टर प्रेसीडेंट, पूरे बाग पर मौत का सन्नाटा छा गया। सिर्फ घायल और मरते हुए लोगों की कराहे सुनाई दे रही थी। मुझे वे आवाजे आज तक सुनाई देती हैं। हम सब लोगों को उन दर्दनाक वाक्यों के नौ बरस बाद आज वे कराहें सुनाई दे सकती हैं।” इसके बाद उसकी आवाज यकायक ऊंची हो गई। “जिन लोगों ने जलियावाला बाग में अपना खून बहाया था उनका खून बेकार नहीं जाएगा। उन्होंने अपनी जान इसलिए दी कि एक दिन हम आजाद इंसानों की तरह ज़िन्दगी बसर कर सकें। उस दिन हिंदुओं और मुसलमानों और सिखों का खून एकसाथ बहा था और जो लोग यह कहते हैं कि हमारा मुस्तकबिल अलग है उन्हें पहले मुस्तकबिल की एक धारा में से सबको अलग-अलग करना होगा।”

जब वह अपना भाषण खत्म करके बैठा तो सबने जोर से तालियाँ बजाईं। अनवर को अपने भाषण के उत्साह के कारण चक्कर आ रहा था और उसने मानो धुंधलके के एक परदे के पीछे देखा कि आसुओं से डबडबाई हुई दो आखें बड़ी तारीफ के अंदाज में उसे देख रही हैं। वह जानता था कि उसका भाषण बहुत कामयाब रहा और यह कि उस क्षण से दुनिया में उसकी भी पूछ होगी, दुनिया में उसकी भी एक हस्ती होगी और यह कि अब उसे किसी भी भीड़ के सामने खड़े होकर अपने जैस इंसानों से सीधे-सादे शब्दों में बात करने में कभी कोई झिझक नहीं होगी।

कई दिन तक अनवर के दोस्त और उसके क्लास के लड़के इस शानदार तकरीर पर उसे बधाइया देते रहे। कुछ लोग दिल ही दिल में उससे जलने भी लगे थे और इन्हीं लोगों ने अनवर को बदनाम करने के लिए झूठी-सच्ची बातें उड़ाकर उसकी ख्याति को नष्ट कर देने का बीड़ा उठा लिया। अनवर ने महसूस किया कि उसके बारे में हर तरफ कुछ कानाफूसी चल रही है। लोग उससे आकर बड़ी मासूमियत से पूछते थे कि अपने भाषण के लिए प्रेरणा क्या उसे मैरिस रोड के चक्कर लगाते वक्त मिली थी। दूसरे लोग इस बात का जिक्र करते कि सलमा सलीम ने उसके भाषण के बाद बहुत जोर से तालियाँ बजाई थी और



अनवर को बघाई देते समय अनवर के प्रश्नको मे ऐमी खूबसूरत लड़की भी थी। अनवर को इन बातों पर गुस्सा जरूर आता था पर वह अपना गुस्सा पी जाता था। लेकिन एक दिन जब वह पोलिटिकल फिनासफी के लैक्चर के लिए क्लासरूम में घुसा तो उसने देखा कि ब्लैकबोर्ड पर एक कार्टून बना हुआ है जो यकीनन उसके और सलमा के बारे में था। कार्टून में दिखाया गया था कि सलमा कह रही है, 'मेरे रोमियो, तुमने कितना अच्छा भाषण दिया,' और जवाब में यह लिखा था, 'यह सब तुम्हारी ही प्रेरणा से हुआ, मेरी जूलियट।' अनवर ने एक नजर कार्टून को देखा और जब वह पीछे मुड़ा तो सारी क्लास उसपर हस रही थी। वह क्रोध से पागल हो उठा। वह चाहता था कि किसी-को मार बैठे, किसीकी जान ले ले।

“किसने बनाया है यह कार्टून ?” उसने गरजकर कहा। “अगर हिम्मत है उसमें तो सामने आए।”

“काटेगा !” किसीने पीछे से कुत्ते की बोली की नकल करते हुए कहा और अनवर उसकी तरफ बढ़ा ही था कि इतने में प्रोफेसर सलीम आ गए और वह लपककर अपनी सीट पर जा बैठा।

हर शख्स यह सोच रहा था कि अब कोई विस्फोट होनेवाला है पर कुछ भी न हुआ। प्रोफेसर सलीम ब्लैकबोर्ड को इस्तेमाल करने से पहले किसी लड़के से उसे साफ करवा लेते थे। आज भी उन्होंने ऐसा ही किया। प्रोफेसर सलीम बहुत अच्छा पढ़ाते थे और बोलते बहुत ही उम्दा थे। इसीलिए लड़के उनका लैक्चर बड़े ध्यान से सुनते थे। उस दिन वे यह पढ़ा रहे थे कि फ्रांस में क्रांति के वक्त किन राजनीतिक सिद्धांतों का प्रचलन था। पूरे लैक्चर के दौरान में किसी तरह की कोई गड़बड़ी नहीं हुई, लेकिन अनवर लैक्चर में ध्यान न लगा सका। उसके दिमाग पर अब भी उसी गंदे कार्टून का विचार छाया हुआ था।

घंटा बजा और पीरियड खत्म हो गया। प्रोफेसर सलीम ने खट से किताब बन्द कर दी। दरवाजे की तरफ जाते हुए उन्होंने पीछे मुड़कर अनवर को बुलाया और कहा, “अनवर, तुम ज़रा मेरे कमरे में आकर मुझसे मिल लो।”

तो इस 'स्कैंडल' की खबर प्रोफेसर साहब के कानों तक पहुंच चुकी है। अनवर बरामदे में उनके पीछे-पीछे चल दिया। वह जानता था कि क्लास में लड़के क्या कह रहे होंगे। वे खुश होकर यह सोच रहे होंगे कि अब उसकी ऐसी



खबर ली जाएगी कि उम्र-भर याद रखेगा। लेकिन वह इस मामले में कर ही क्या सकता था। इसलिए वह सेमिनार के कमरे में कुछ उसी तरह घुसा जैसे कुरबानी का बकरा हलाल होने के लिए आता है।

“बैठो अनवर।” वह कुर्मी के किनारे पर बैठ गया।

“उस दिन तुमने बहुत अच्छी तकरीर की। तुम आगे चलकर बहुत अच्छे ‘ओरेटर’ बन सकते हो।”

“थैंक यू, प्रोफेसर।” उसने कहा, लेकिन मन ही मन वह कह रहा था, “इन सब बातों से क्या फायदा। यह तो वैसी ही बात है जैसे वक्रे को हलाल करने से पहले उसे खिला-पिलाकर मोटा किया जाता है। क्यों नहीं आप छुरी निकालकर इस किस्से को खत्म ही कर देते? यह दुविधा तो मुझे योही मार डालेगी।”

“तुम दिल्ली के अकबरअली साहब के बेटे हो न?”

“जी हाँ।”

“बहुत मशहूर खानदान है।”

और अनवर सोच रहा था कि यह सब तो भूमिका है, इसके बाद उसे इतने बड़े खानदान के बेटे की जिम्मेदारियों के बारे में लैक्चर दिया जाएगा। लेकिन प्रोफेसर साहब का दूसरा सवाल सुनकर वह सन्न रह गया।

“अच्छा अनवर, तुमने मेरी बेटी सलमा को तो देखा है न?”

“नो सर... मेरा मतलब है यम सर... मतलब यह है कि मैंने उसे स्टेशन पर देखा था, सर...”

“वह उस दिन डिबेट में भी थी,” सलीम साहब ने उसे याद दिलाया।

“जी हाँ, जी हाँ, यम सर।” और यह सोचकर कि अब इसके बाद प्रोफेसर साहब क्या कहनेवाले हैं उनका दिल बैठने लगा। लेकिन प्रोफेसर साहब ने तो बिल्कुल ही दूसरी बात कही, “कल उसकी सालगिरह है और उसकी ख्वाहिश है कि कल तीसरे पहर चार बजे तुम हमारे यहाँ चाय पियो।” अनवर को अपने कानों पर यकीन नहीं हुआ। “क्या तुम्हारे लिए आना मुमकिन होगा?”

यह भी कोई सवाल था। क्या स्वर्ग में जाना उसके लिए मुमकिन होगा? क्या इन्द्रधनुष पर नाचना उसके लिए मुमकिन होगा? क्या उसके लिए यह मुमकिन होगा कि वह एक ही वक्त में रूसी, शेक्सपियर और गालिब

बन जाए ?

“या कही और जाना है तुम्हे ?”

अनवर का स्तम्भित मौन भग हुआ और उससे अपनी उत्सुकता को छिपाए बिना कहा, “जी नहीं, कही नहीं जाना है मुझे । मुझे बेहद खुशी होगी आकर । मेरी तरफ से अपनी बेटी का शुक्रिया अदा कीजिएगा । मैं वहा चार बजे पहुच जाऊंगा ।”

“लेकिन मेरा घर भी मालूम है तुम्हे ?”

“जी हा,” अनवर ने सच-सच कह दिया, “मैने उधर से गुजरते हुए आपके नाम की तख्ती लगी हुई देखी है ।”



## दर्दे-लादवा

प्रोफेसर मुहम्मद सलीम बी० ए० आनर्स (आकषन) ने तीन साल तक इंग्लैंड में रहकर पश्चिमी सभ्यता से जो कुछ भी अपनाया था उससे उन्हें बेहद प्यार था और इसीलिए उन्हें अपनी इस विलायती डिग्री से भी बहुत प्यार था। हालांकि वे अवेड उम्र के विधुर थे पर उन्हें अब भी अपना ट्रिनिटीवाला टेनिस बनेजर पहनना बहुत पसंद था, जिसकी ऊपरवली जेब पर कालेज का निशान कढ़ा हुआ था। लगातार घुलते रहने की वजह से कोट का कपड़ा बिल्कुल धिस गया था और जेब पर कढ़े हुए निशान का मुनहरा काम काला पड़ने लगा था। और हालांकि कोट कई बार ढीला किया जा चुका था लेकिन अब वह प्रोफेसर साहब की लगातार बढ़ती हुई तोड़ पर किसी तरह आता ही नहीं था। हालांकि प्रोफेसर साहब के पास और भी बहुत-से कोट थे लेकिन फिर भी यह उनका सबसे प्रिय वस्त्र था और रोज शाम को स्टाफ क्लब में टेनिस खेलने जाते वक्त वे पाबदी से यही कोट पहनते थे। क्योंकि एक तो यह कोट उनकी जवानी के दिनों की यादगार था और दूसरे वह उस पाश्चात्य सभ्यता का प्रतीक था जिसे वे अपने आक्सफोर्ड के दिनों से पूजने लगे थे।

अलीगढ़ में प्रोफेसर सलीम अपनी पक्की साहबियत के लिए बदनाम थे। दूसरे प्रोफेसरो की तरह वे न सिर्फ पश्चिमी ढंग के कपड़े पहनते थे बल्कि उन्होंने सोलहो आने पश्चिमी रहन-सहन अपना लिया था। ईद-बकरीद जैसे त्योहारों पर भी वे शेरवानी पहनना पसंद नहीं करते थे। वे मस्जिद में कभी नमाज पढ़ने नहीं जाते थे और उन्होंने कभी रोजा नहीं रखा था। वे अपने आपको 'रैशनलिस्ट' कहते थे और खुले-आम मुसलमानों में प्रचलित परदे और बहुविवाह की प्रथाओं की निंदा करते थे। उनके बारे में यह भी सुना जाता था कि जब कभी वे अंग्रेज अफसरों की या अंग्रेजी ढंग से रहनेवाले अपने दूसरे दोस्तों की दावत करते थे तो उन्हें एकाध पेंग शराब पी लेने में भी कोई एतराज

नहीं होता था ।

जो लोग प्रोफेसर सलीम के शुरू-शुरू के दिनों में अलीगढ़ में रह चुके थे उनका कहना था कि प्रोफेसर साहब को अपनी जिन्दगी में एक बात का बेहद अफसोस था—वे किसी भी तरह अपनी कट्टर मजहबी बीवी को परदा छोड़ने और पश्चिमी ढंग का रहन-सहन अपनाने पर राजी नहीं कर सकते थे । कई बरस तक उन्हें इस बात का बहुत दुःख रहा और अक्सर ऐसा होता था कि अपने साथियों से औरतो से परदा कराने के बारे में बहस करते वक़्त जब कोई उनकी बीवी की मिसाल उनके सामने रख देता था तो उनसे कोई जवाब देते न बन पड़ता था । जाहिर है इसमें उनका कोई कसूर नहीं था । बहुत कम उम्र में जब वे कालेज में पढ़ते थे तभी उनकी शादी हो गई थी और तीन साल विलायत में रहने की वजह से उनके और उनकी बीवी के विचारों के बीच एक बहुत बड़ी दूरी पैदा हो गई थी जिसे वे लाख कोशिश करने पर भी नहीं मिटा सके थे । लेकिन छ. बरस पहले जब इनफ्लुएंजा की बीमारी फैली थी तब उसमें उनकी बीवी अपनी इकलौती बेटी सलमा को छोड़कर अल्लाह को प्यारी हो गई थी । सलमा उस दुःखी विवाहित जीवन का एकमात्र सुखद परिणाम थी । सलीम साहब उन लोगों में से नहीं थे जो अपनी बेचारी जाहिल बीवी के मर जाने के बाद उससे नफरत करते—जब तक वह जिन्दा रही तब भी उन्हें उस पर तरस ही आता था । लेकिन उसके मरते ही उन्होंने मन ही मन यह दृढ़ संकल्प किया था कि वे अपनी बेटी पर उसकी माँ की ज़रा-सी भी छाप न पड़ने देंगे । उन्होंने फैसला किया था कि उनकी देखरेख में सलमा एक नई स्वतन्त्र नारी बनेगी ।

सलमा का बचपन अकेले में गुज़रा था और वह काफी दुःखी भी रहती थी । उसके स्मृतिपट की पृष्ठभूमि पर उसके मा-बाप के हरदम के झगड़ों का चित्र अंकित था, क्योंकि दोनों ही अपनी बेटी को अपने साचे में ढालने की कोशिश करते रहते थे । अगर माँ चाहती कि बेटी कुरान शरीफ पढ़े तो बाप की कोशिश यह रहती थी कि वह उनके दोस्तों की महफ़िल में 'ट्विक्ल ट्विक्ल लिट्ल स्टार' सुनाए, और इस प्रकार अपनी होनहार और बेहद तेज़ बेटी के कमाल दिखाकर वे अपनी बीवी की अनुपस्थिति की कमी पूरी करने की कोशिश करते थे । बाप चाहते थे कि उनकी बेटी अंग्रेज़ बच्चों की तरह सीधी-



सादी फाके पहना करे और मा उसे चमकदार जूरी और रेशम के कपड़ों से लाद देती और ऊपर से भद्दे और भारी-भारी जेवर पहना देती जिन्हे प्रोफेसर साहब बर्दाश्त भी न कर सकते थे। उन दोनों के बीच सलमा अपने-आपको बिल्कुल लाचार और बेबस महसूस करती थी। एक ऐसे घर में पलने की वजह से जहाँ हर वक़्त लड़ाई-भगडा रहता था, जहाँ किसी भी चीज़ के बारे में राय एक नहीं थी, सलमा बचपन से ही बहुत पक्की-पक्की बातें करने लगी थी और उसने ऐसी बहुत-सी बातें सीख ली थी जो उसकी उम्र के बच्चे के लिए न तो स्वाभाविक थी न हितकर ही। इकलौती बेटा होने की वजह से उसे अपनी उम्र के लड़के-लड़कियों के साथ रहने का मौका नहीं मिला था और इसलिए अपने इस अकेलेपन से बचने के लिए उसने अपने-आपमें ही घुट-घुटकर रहना सीख लिया था। दूसरों की दोस्ती नसीब न होने के कारण उसने अपनी कल्पनाओं और सुखद दिवास्वप्नों में ही मग्न रहना सीख लिया था। उसके अब्बा उसे पढ़ने के लिए जो किताबें लाकर देते थे उनमें उसने खूबसूरत सिद्धेलाओं और जावाज़ शाहजादों के कितने ही किस्से पढ़े थे और इन्हें पढ़ पढ़कर वह अपने मन में न जाने कितनी रोमांचकारी घटनाओं की कल्पना करती रहती थी जिनमें, जाहिर है, सबकी मुख्य पात्र वह स्वयं होती थी।

मा के मर जाने पर सलमा बिल्कुल अपने अब्बा के हाथों में आ गई। उन्होंने फौरन उसे नैनीताल के एक कानवेंट में भरती करा दिया जहाँ अंग्रेज़, एंग्लो-इंडियन और अंग्रेज़ी ढंग से रहनेवाले अमीर हिन्दुस्तानी घरों की लड़कियों के साथ उसने भी अपनी मिशनरी टीचरों से 'अंग्रेज़ों की तरह अंग्रेज़ी बोलना' सीख लिया। लेकिन सात सौ लड़कियों के बीच रहकर भी सलमा अकेली थी। वह उनमें घुल-मिल न सकी। शुरू-शुरू में तो उनके भोड़े और भद्दे आचरण से, उनके जोरदार कहकहों से, उनके बोलने के एंग्लो-इंडियन तरीके से और चोरो की तरह सेक्स की समस्याओं में उनकी दिलचस्पी से उसे कुछ घृणा-सी होती थी। मा की वजह से उसके आचरण की जड़े बहुत मज़बूती से उसी भारतीयता में जमी हुई थी जिसे उसके अब्बा उसे कानवेंट में भेजकर नष्ट कर देना चाहते थे। इसका नतीजा यह हुआ कि छः साल तक नैनीताल में रहने की

वजह से वह लगभग बिलकुल अंग्रेजों की तरह अंग्रेजी तो बोलने लगी और अंग्रेजी साहित्य में उसे रुचि पैदा हो गई पर वह एंग्लो-इंडियन ढंग का रहन-सहन कभी न अपना सकी। जिन्दगी की तरफ—और मुहब्बत की तरफ—उनका जो भोडा और नीरस रवैया था वह सलमा के मूलतः रोमांटिक स्वभाव के बिलकुल प्रतिकूल था और उसे उन एंग्लो-इंडियन लड़कों के बीच, जिन्हें वार्षिक सामाजिक समारोहों और ऐसे ही दूसरे उत्सवों के मौकों पर लड़कियों से मिलने दिया जाता था, अपनी कल्पनाओं का शाहजादा कहीं दिखाई न देता था।

सलमा ने बहुत कम उम्र में सीनियर कैम्ब्रिज पास कर लिया। उस समय वह सोलह साल की थी। इसके बाद वह अलीगढ़ के गर्ल्स कालेज में भरती हो गई क्योंकि उसके अब्बा चाहते थे कि वह उनके पास रहकर घर की देखभाल करे और अपने सुखी भविष्य के लिए—‘सफल’ विवाह के लिए—तैयारी करे। प्रोफेसर साहब बहुत दूरदर्शी आदमी थे और बेटी के भविष्य के मामले में वे किसी तरह का जुआ नहीं खेलना चाहते थे। वे उसके लिए उचित वर ढूँढने का काम न तो इस रोमांटिक नौजवान लड़की की हर क्षण बदलनेवाली पसन्द पर छोड़ सकते थे और न ही पुराने ढंग से वे उसके लिए वर ढुँढवाने को तैयार थे। वे खुद कोई मुनाबिब आदमी ढूँढना चाहते थे। उनकी योजना यह थी कि वे किसी अच्छे नौजवान को ढूँढकर उसे पढ़ने-लिखने में मदद देकर कोई ऐसी अच्छी नौकरी दिला देंगे जो सलमा जैसी खूबसूरत और होशियार लड़की के शौहर के योग्य हो। उनकी नजर में अनवर बहुत अच्छा ‘कच्चा माल’ था—उसमें ताजगी थी, बोलचाल में बहुत तमीज़दार था, समझदार था और पढाई में अच्छा था। वह नये खयालात का आदमी था इसलिए सलीम साहब को यकीन था कि वह अपनी बीवी को परदे में नहीं रखेगा। थोड़ी-सी मदद से वह आई० सी० एस० का इम्तहान आसानी से पास कर सकता था। और कुछ दिन बाद सलमा एक कलेक्टर की बीवी बन सकती थी—एक लड़की को इससे ज्यादा और क्या चाहिए।

लेकिन प्रोफेसर साहब काफी चालाक थे, इसलिए वे अपनी बेटी को अपनी योजना का पता नहीं लगने देना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि उसकी सुखद कल्पनाएं भंग हो। वे चाहते थे कि वह यही समझे कि वह अपना वर स्वयं

पसंद कर रही है। 'जबर्दस्ती की शादी' का विचार प्रोफेसर साहब के लिए असह्य था क्योंकि उन्हें 'रेशनलिस्ट' होने पर बड़ा गर्व था, लेकिन अगर सावधानी से काम लिया जाए तो मुहब्बत की शादी भी 'तै कराई' जा सकती है। प्रोफेसर साहब इतने बेवकूफ भी नहीं थे कि शुरू से ही अनवर का दिमाग खराब कर देते। इसलिए सलमा की सालगिरह की दावत में कुछ चुने हुए लड़कों को और भी निमन्त्रण दिया गया था, जिनमें 'राज' भी था। इसलिए नहीं कि प्रोफेसर साहब यह समझते थे कि उस चिकने-चुपड़े शायर को कभी भी सलमा के साथ शादी करने के ख्वाब देखने की इजाजत दी जा सकती थी बल्कि इसलिए कि शायरों को हमेशा से रुपये-पैसेवाली फैशनेबल औरतों का मनोरंजन करने के लिए इस्तेमाल किया जाता रहा था। वह दो-चार नज़्में पढ़कर सुनाएगा तो महफिल में रंग आ जाएगा।

अनवर दावत में गया तो, लेकिन तमाम वक्त वह बहुत दुःखी रहा। उसे यकीन था कि प्रोफेसर साहब और सलमा दोनों ही पर उसका 'इम्प्रेसन' अच्छा नहीं पड़ रहा है, हालांकि वह जान लडाकर इस बात की कोशिश में था कि वह इस सुनहरी मौके का फायदा उठाकर सलमा से दोस्ती पैदा कर ले। उस्मान को भी बुलाया गया था। वह बड़ी बेतकल्लुफी से बातें कर रहा था। अनवर को यह देखकर बड़ा आघात पहुंचा कि उस्मान बीच-बीच में सलमा पर फिकरे भी कसता जाता था। सलमा अपने सफेद लिबास में किसी देवी की तरह खूबसूरत और गंभीर लग रही थी। 'राज' एक कोने में बैठा हुआ था और चूँकि प्रोफेसर साहब ने खुद अपनी तरफ से लड़कों को सिगरेट पीने की इजाजत दे दी थी इसलिए वह बड़े इतमीनान से सिगरेट के कश ले रहा था और धुएँ के छल्ले बनाकर छत की तरफ फेंक रहा था। दूसरे लड़के बड़ी बेहयाई से सलमा की चापलूसी कर रहे थे, उसके हर लफ्ज को बड़े ध्यान से सुन रहे थे और अगर वह कोई ज़रा-सी भी हंसी की बात कह देती थी तो वे ठहाका मारकर हस देते थे। प्रोफेसर साहब अपना अजीब शक्ल का पाइप, जो वे पिछली बार स्विट्ज़रलैंड से लाए थे, मुँह में लगाए हुए बड़ी उदारता से मुस्कराकर यह सब कुछ देख रहे थे। उनका खयाल था कि जब कोई लड़की पहली बार



अपने आधे दर्जन चाहनेवालों से मिले तो उसके सम्य और सुमंस्कृत बाप को यही मुद्रा धारण करनी चाहिए ।

अनवर को कुछ अटपटा-सा लग रहा था । उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे । वह सलमा को देख रहा था—उसका जी चाहता था कि वह इसी तरह उसे देखता रहे—लेकिन कुछ देर बाद उसने सोचा कि इस तरह उसे घूरना बहुत बेवकूफी है और इसलिए वह दीवार पर लगी हुई एक तस्वीर को देखने लगा । उसने भी बातचीत में हिस्सा लेने की कोशिश की लेकिन अपनी घबराहट की वजह से वह इतने जोर से बोला कि सबने भवें चढ़ाकर उसे देखा और वह शरमाकर चुप हो गया । सलमा उसपर बहुत मेहरबान थी और बीच-बीच में उससे पूछ लेती थी, “मिस्टर अनवरअली, आप कुछ खा नहीं रहे हैं,” और यह कहकर वह समोसो या केक की प्लेट उसकी तरफ बढ़ा देती थी । अनवर इस डर से डकार नहीं कर पाता था कि कहीं इसे उसकी बदतमीजी में समझ लिया जाए और इसलिए वह हर चीज को ‘थैंक यू सो मच’ कहकर स्वीकार कर लेता था । इसका नतीजा यह हुआ कि उसकी प्लेट ऊपर तक भर गई थी और वह अपनी घबराहट के कारण कुछ खा भी नहीं पा रहा था । तबपर सबसे बड़ा गजब तो उसने यह किया कि उसने एक तश्तरी तोड़ दी । हुआ यह कि सलमा ने उसे चाय बनाकर दी और उसकी बड़ी-बड़ी मासूम काली आँखों को देखने में वह कुछ ऐसा खोया कि उसने प्याली तो पकड़ ली और तश्तरी नीचे गिर गई । सलमा और प्रोफेसर सलीम दोनों ही ने उससे कहा कि कोई बात नहीं है लेकिन वह इतना शर्मिन्दा हुआ कि उसका जी चाह रहा था कि किसी बहाने से वहाँ से उठकर चला जाए । लेकिन इतने में किसी लड़के ने यह सुझाव रखा कि ‘राज’ अपनी कुछ नज़्में सुनाए और अनवर के वहाँ से उठकर चले जाने की नौबत नहीं आई । जब सलमा ने भी बहुत जोश के साथ इस सुझाव का समर्थन किया तो ‘राज’ के सामने भी नज़्में सुनाने के अलावा कोई चारा नहीं रह गया ।

‘राज’ ने शुरू-शुरू में जो गजले सुनाई उनमें तो अनवर को कोई खास मजा नहीं आया । आखिर गालिब, जौक और मोमिन जैसे पुराने उस्ताद इससे कहीं अच्छी गजलें कह गए थे और वह उन सबको पढ़ चुका था । गजल में सवाल इस चीज का नहीं होता कि क्या बात कही गई है बल्कि किस ढंग से



और कितने खूबसूरत लफ्जों में कही गई है और यह जाहिर था कि बरसों मेहनत करने के बाद ही राज की गजलों में वह उस्तादोवाला रचाव आ सकता था। लेकिन इतने में किसीने 'महबूबा से खिताब' की फरमाइश की। पहले तो 'राज' को कुछ भिन्नक हुई। "वह नज्म तो आप सब लोग मुशायरे में सुन चुके हैं।" "मुशायरे की बात अलग-थी, राज साहब," सलमा ने कहा, "छोटी-सी महफिल में सुनने में कुछ और ही लुत्फ आएगा।" और उस्मान जो हमेशा कोई न कोई फिकरा चुस्त करने की ताक में रहता था, बोला कि इस किस्म की नज्में तो सिर्फ एक आदमी को सुनाने के लिए होती हैं। सलमा शरमा गई। उसके गोरे-गोरे गालों पर लाली दौड़ गई। 'राज' ने उस्मान को धूरकर देखा लेकिन प्रोफेसर साहब समेत सब लोग इस मजाक पर खिलखिलाकर हस दिए।

'राज' ने नज्म पढ़ी लेकिन इस बार कुछ धीमी आवाज़ में और हालांकि शब्द वही थे लेकिन अनवर को उसमें एक नया ही लुत्फ आया। क्या इसकी वजह यह थी कि आवाज़ धीमी होने की वजह से उसमें यह अंदाज पैदा हो गया था जैसे कोई बहुत राजदारी की बात कह रहा हो। अब उस नज्म को सुनकर ऐसा नहीं लगता था कि शायर दुनिया को चुनौती दे रहा है बल्कि जाती तौर पर किसीसे फरियाद कर रहा है, अब उसमें लफ्जों का जोर नहीं था बल्कि सच्ची भावनाएं उभरकर सामने आ गई थीं। या इसकी वजह यह थी कि सलमा की मौजूदगी की वजह से—जो इतना करीब होते हुए भी इतनी दूर थी—उन लफ्जों में अनवर के लिए एक नये माने पैदा हो गए थे। उसने कही पढ़ा था कि गायरी काच के तिकोने टुकड़े की तरह होती है और एक ही नज्म में अलग-अलग वक्तों पर हम अपने 'मूड' और माहौल के मुताबिक नये हुस्न की झलक देख सकते हैं और उसमें नये अर्थ पैदा कर सकते हैं। अब उसकी समझ में आ गया कि यह बात कितनी सच है। क्योंकि कुछ ही दिन पहले जिन शब्दों को सुनकर उसका हृदय आदोलित हो उठा था उन्हींका असर इस वक्त उसपर बिल्कुल उलटा पड़ रहा था—उसे अकेलेपन का एहसास हो रहा था, उसके दिल में एक अजीब-सी मीठी-मीठी बेचैनी थी, वह किसी ऐसी चीज़ के लिए तड़प रहा था जो उसकी समझ के बाहर थी। जितनी देर 'राज' अपनी नज्म पढ़ता रहा उतनी देर अनवर ने सलमा की तरफ नहीं देखा कि कहीं वह इसे

उसकी गुम्ताखी न समझ बैठे ; वह तमाम वक्त शायर की तरफ ही देखता रहा। 'राज' भी नज़रे फेरे हुए लगातार छत के एक कोने की तरफ देख रहा था। लेकिन जब नज़म खत्म होने को आई तो उसकी नज़रे भी भटकने लगा और जिस वक्त उसने यह मिसरा पढ़ा, 'तेरी खातिर चाद-तारो को भी ला सकता हूँ मैं' तो अनवर ने देखा कि उसने जल्दी से एक नज़र सलमा की तरफ देखा जो दोनों हथेलियों पर ठोड़ी टिकाए बड़े ध्यान से नज़म सुन रही थी।

'राज' की नज़म खत्म होने के बाद कोई एक मिनट तक कमरे में सन्नाटा रहा। कोई भी नहीं बोला। ऐसा लगता था कि नज़मा अभी तक फजा में गूँज रहा है। इतने में प्रोफेसर सलीम ने अपनी घड़ी की तरफ देखा और किसी लड़के ने कहा कि अब चलना चाहिए। अचानक कमरा तरह-तरह की आवाज़ों से गूँज उठा। कोई कह रहा था, "प्रोफेसर साहब आपका बहुत-बहुत शुक्रिया।" और प्रोफेसर साहब सबसे बारी-बारी से कह रहे थे, "आपके आने का शुक्रिया।" और उस्मान अपने खास अंदाज़ में कह रहा था, "मैं तो चाहता हूँ कि मिस सलीम साल में कई बार अपनी सालगिरह मनाया करे और हमें ऐसी पार्टियों में आने का मौका मिला करे।" जिसके जवाब में सलमा ने फौरन कहा, "तब तो मैं बहुत जल्दी बूढ़ी हो जाऊँगी।" लेकिन अनवर को इस मौके पर कहने के लिए एक भी फिकरा नहीं सूझा और उसने रस्मी तौर पर शुक्रिया अदा करके ही सब्र कर लिया।

अनवर सबसे बाद में वहाँ से चला और जब उसने प्रोफेसर सलीम से हाथ मिलाया तो उन्होंने अनवर से कहा, "फिर आना अनवर।" और उसके बाद काफी जोर देकर यह भी कहा, "जब जी चाहे आ जाया करो। मुझे यकीन है कि तुम्हारे आने से सलमा भी खुश होगी। बात यह है कि यहाँ उसका कोई भी तो दोस्त नहीं है।" इसपर सलमा ने भी कहा, "जरूर, जरूर, जिस दिन भी शाम को आपको कोई खास काम न हो आप यहाँ आ जाया कीजिए।" इसके जवाब में अनवर बार बार सिर्फ बाप-बेटी का शुक्रिया ही अदा करता रहा। अनवर को यकीन नहीं था कि जवान लड़कियों से हाथ मिलाना चाहिए या नहीं इसलिए उसने हाथ उठाकर आदाब अर्ज़ किया और कमरे से बाहर चला आया।

अनवर ने इस खुले निमंत्रण का फायदा उठाया और दो दिन बाद फिर वहा जा पहुचा। प्रोफेसर साहब हमेशा की तरह बड़े मेहरबान थे और उन्होंने जिस तपाक से अपने इस नवयुवक विद्यार्थी का स्वागत किया उसे देखकर अनवर सचमुच पुलकित हो उठा। थोड़ी देर बाद सलमा कमरे में आई और उसके साथ ही सेंट की भीनी-भीनी खुशबू का एक भोका भी आया। उसके रवैये से भी यह स्पष्ट था कि वह अनवर का स्वागत कर रही है। चाय मगाई गई लेकिन प्रोफेसर साहब को क्लब में एक पार्टी में जाना था इसलिए वे मोटर लेकर चले गए और इन दोनों को वहा अकेला छोड़ गए।

अनवर की जिंदगी में यह पहला मौका था कि वह किसी जवान लडकी के साथ अकेला था। उसने सोचा यह तो बहुत ही अनहोनी बात है। उसका खयाल था कि जब कोई लडकी—वह नये ढंग की लडकी ही क्यों न हो—किसी अनजान मर्द में मिलती है तो उसका दाप या मा या कोई चचा-मामू या कम से कम कोई भरोसेवाला नौकर हमेशा आसपास मंडराता रहता है। लेकिन यहा तो वह सलमा के साथ एक ही सोफे पर बैठा चाय पी रहा था और बावर्ची-खाने में जो नौकर खाना पका रहे थे उनके अलावा घर में कोई भी नहीं था। बहुत ही खुशगवार सूरत थी लेकिन साथ ही अनवर को कुछ परेशानी भी हो रही थी। वह कुछ शरमा भी रहा था और कुछ उसे उलझन भी हो रही थी। वह सलमा के सवालो का जवाब 'हां' या 'ना' में देता और बीच-बीच में बड़ी देर तक चुप बैठा रहता। अनवर ने देखा कि बात करने के मामले में सलमा बहुत तेज थी। फरटिदार अंग्रेजी बोलते-बोलते वह एकदम साफ हिन्दुस्तानी बोलने लगती थी। वह दो सस्कृतियों के प्रभाव में पली थी और पूरब और पश्चिम की सस्कृतियों के मिले-जुले प्रभाव ने उसके व्यक्तित्व को निखार दिया था। उसमें अंग्रेजी स्कूल की पढी हुई लडकीवाली बेबाकी भी थी जिसकी वजह से वह बहुत-सी चीजों के बारे में खुलकर बातें कर सकती थी, लेकिन साथ ही चूंकि वह अपनी मा की भी बेटी थी इसलिए उसकी आंखों में एक कुदरती शर्म थी जिसकी वजह से उसका बेझिझक बात करने का ढंग कुछ और ही खूबसूरत हो गया था।

अनवर ने पहली बार सलमा को इतने करीब से इतनी अच्छी तरह देखा

था। कसे हुए रेशमी कुरते पर वह पीले रंग का एक कसा हुआ ऊनी स्वेटर पहने थी जिसकी वजह से उसके यौवनमय शरीर की विद्रोही गोलाइयाँ और उभर आई थी। उसका रंग गोरा था और अनवर को यह देखकर खुशी हुई कि उसके चेहरे पर जो गुलाबीपन था वह पाउडर और मुखौ की वजह से नहीं था बल्कि यह उसकी अच्छी सेहत की निशानी था। उसने अपने काले-काले घुघराले बालों की दो मोटी-मोटी चोटियाँ गूँथ रखी थी जो उसके चेहरे के दोनों तरफ उसके सीने पर पड़ी हुई थी और उसका सिर जरा-सा भी हिलने पर साप की तरह लहरा जाती थी। उसने बड़ी बेपरवाही से हलके आसमानी रंग का जार्जट का दुपट्टा अपने कंधों पर डाल रखा था। और अनवर, जो अभी शाम की ठंडी हवा के तीर की तरह चुभते हुए थपेड़े खाकर आया था, इस बात पर आश्चर्य कर रहा था कि आखिर वह इतनी सड़ों में ऊनी गाल क्यों नहीं ओढ़ती।

“मिस्टर अनवर, यूनियन में तो आप इतना अच्छा बोलते हैं लेकिन यहाँ तो आप मुह भी नहीं खोलते,” सलमा ने अचानक कहा और अनवर यह देखकर शरमा गया कि उसकी खिसियायी हुई खामोशी को इस तरह चुनौती दी जा रही है।

“अरे हाँ, माफ कीजिएगा,” उसने माफी मागते हुए हकलाकर कहा, “मैं तो आपकी बातें सुनने में बिल्कुल खो गया था। और फिर...” सच बात कहने से पहले वह एक क्षण के लिए रुका, “मुझे आपसे थोड़ा-सा डर भी लग रहा था।”

“मुझसे और डर?” सलमा ने सोचा कि अनवर मजाक कर रहा है।

“देखिए, बात यह है कि मैं आप जैसी लड़की से इससे पहले कभी नहीं मिला।”

इस भोलेपन से की गई तारीफ पर सलमा बहुत खुश हुई। अपनी तारीफ सुनकर कौन खुश नहीं होता, फिर सलमा ही क्यों न खुश होती। उसे यह लड़का अच्छा लगने लगा था, जिसका रंग पीला था, जो इतना सीधा-सादा और भोला था, लेकिन यूनियन में उसके भाषण से यह साबित हो गया था कि वह बेवकूफ नहीं था। सलमा ने पूछा कि वह तकरीर सचमुच भूल गया था या अपनी दलीलों में ज्यादा असर पैदा करने के लिए उसने जान-बूझकर ऐसा



किया था ? और जब अनवर ने यह स्वीकार किया कि वह सचमुच मुश्किल में फस गया था तो सलमा ने उसे बताया कि एक बार अपने स्कूल के स्थापना-दिवस के समारोह में वह भी ऐसी ही मुश्किल में फस गई थी । उसे 'मर्चेट आफ वेनिस' के अदालतवाले सीन में पोर्शिया का भाषण सुनाना था, जिसे उसने अच्छी तरह रट लिया था । लेकिन उसने वह रटा हुआ भाषण सुनाना गुरु ही किया था — 'द क्वालिटी आफ मर्सी इज नाट स्ट्रेड । इट ड्रापेथ फ्राम हैवेन अपान द प्लेस बिनीथ : इट इज ट्वाइस ब्लैमेड' कि इतने में उसे एक वेंटर दिखाई दिया जो स्ट्राबेरी आइसक्रीम की प्लेटे मेहमानों को दे रहा था । सलमा यह सोचकर कि उसके लिए आइसक्रीम नहीं बचेगी इतनी चिंतित हुई कि वह पोर्शिया का भाषण बिल्कुल भूल गई । उनकी आंखें अभी तक आइसक्रीम के छोटे-छोटे गुलाबी पहाड़ों पर जमी हुई थी और वह टूटे हुए रिकार्ड की तरह बार-बार यही दुहरा रही थी, 'इट ब्लैसेथ हिम दैट गिब्ज, ऐंड हिम दैट टेक्स ।' उसने यह घटना इतने दिलचस्प तरीके से बयान की कि अनवर को बेसास्ता हमी आ गई । सलमा भी हंस पड़ी । उसके चेहरे पर लाली दौड़ गई और वह पहले में भी ज्यादा खूबसूरत लगने लगी । जवानों की उमंगों से भरी इस हसी से अनवर की भिन्नक बिल्कुल दूर हो गई और अब उसे अपने करीब बैठी हुई इस खूबसूरत लड़की से बिल्कुल डर नहीं लग रहा था । अब वे दोनों दोस्त हो गए थे—जैसे वह और गोपाल या वह और रतन दोस्त थे या गायद उससे भी ज्यादा गहरे दोस्त ।

और वे इसी तरह हसते रहे, बातें करते रहे और एक-दूसरे को किस्से सुनाते रहे, यहां तक कि कमरे में अंधेरा हो गया और उन धुंधलके में सिर्फ सलमा की दो आंखें चमकती रही । किसी नौकर ने आकर बत्ती जला दी और उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतनी देर हो गई थी । प्रोफेसर सलीम ने क्लब से आकर उन दोनों को दोस्तों की तरह बातें करते देखा तो बहुत खुश हुए । अनवर उठा और जाने की इजाजत मागने लगा लेकिन वह सलमा का मेहमान था और सलमा उसकी एक भी बात सुनने को तैयार न थी । वह बोली, "नामुमकिन है, तुम्हें हम लोगों के साथ खाना खाकर जाना होगा ।"

अनवर अब रोज शाम को प्रोफेसर सलीम के घर पहुंच जाता और जब भी वह शाम की चाय पीने वहां जाता तो हमेशा रात का खाना खाकर ही

लौटता । उन्हे बातचीत करने के लिए रोज कोई न कोई बहाना मिल ही जाता । सलमा को शायरी का खास शौक था और अनवर इकबाल या 'जोश' की, या किसी नये शायर की कोई किताब ले आता और उसे अपनी पसन्द की कोई नज्म पढ़कर सुनाता और जब सलमा भी उसे पसन्द करती तो उसे उसमे एक नया ही मजा आता । कभी-कभी वह 'राज' की बिना छपी हुई नज्मे और गजले भी लाता, जो 'राज' उसे पढ़ने के लिए देता था । सलमा अक्सर कहा करती थी कि 'राज' की तरह के नौजवान शायरो की शायरी मे एक बलबला और जोश होता है जो पुराने उस्तादो की शायरी की बारीकियों मे नही मिलता । हफ्ते मे एक बार वे सिनेमा देखने जाते और सिनेमा के परदे पर दूमरो की खुशी देखकर खुश होते और अगर तस्वीर अच्छी न भी होती, टीन की छतवाले उस घुटे हुए हाल मे गायद ही कभी अच्छी तस्वीर आती थी, तब भी सलमा के पास रहने की वजह से अनवर को खुशी होती ।

अनवर इस तरह खुशी के गुलाबी धुधलके मे अपने दिन बिता रहा था ; उसे इस बात का होश भी नही था कि सलमा के साथ उसकी दोस्ती को लेकर लोग कैसी-कैसी बातें करते है और उन्हे बदनाम करने की कितनी कोशिशें करते है । उसने सलमा के प्रति अपनी भावनाओ का विश्लेषण करने की कभी कोशिश नही की थी और अगर कोई उसमे कहता कि उसे सलमा से इश्क होता जा रहा है तो वह इस बात को एक कुत्सापूर्ण लाछन कहकर टाल देता । इसी तरह हर नौजवान अपने-आपको फसाने के लिए खुद जाल बुनता है और जब वह उस जाल मे फस जाता है तो हैरत जाहिर करता है ।

यूनिवर्सिटी मे देखते-देखते हर तरफ 'अनवर-सलमा रोमास' का चर्चा होने लगा । अनवर के कमरे मे रहनेवाले उसके साथियो पर इस रोमास की प्रतिक्रिया बिल्कुल ही अलग-अलग हुई । असगर ने उसे प्रोफेसर सलीम के घर पाबदी से जाने के बारे मे एकाध बार छेड़ा ज़रूर लेकिन इससे ज्यादा कुछ न किया । 'राज' अपनी अलग ही एक दुनिया मे खोया रहता था । वह न कभी किसीके भेद जानने की कोशिश करता था न किसीको अपने भेद बताता था । लेकिन हर चीज़ का मजाक उड़ानेवाला उस्मान ज्यादा सफाई से बात कहता था । जब

भी उसे मौका मिलता वह अनवर को एक लडकी की वजह से अपनी पढाई और अपने दोस्तों की तरफ से लापरवाही बरतने के लिए लताडता । वह बड़ी गभीरता से कहता, “माई डियर अनवर, मेरी बात मानो, कोई भी लडकी इस लायक नहीं होती ।” अगर किसी और ने यह बात कही होती तो अनवर उसे मुहनोड जात्र देता और बड़ी सख्ती से उससे कह देता कि उसे उसके मामलात में दखल देने का कोई हक नहीं है । लेकिन बम्बईवाला यह लडका इन मामलात के बारे में अपनी राय इतने दावे के साथ देता था और इतने यकीन के साथ अपना फैसला देता था कि उसके आगे अनवर से कोई जवाब देते न बन पडता था । इसके अलावा वह जानता था कि उस्मान एक सच्चा दोस्त है और अगर वह कोई बात सख्ती से कहता भी था तो दिल दुखाने के लिए नहीं कहता था ।

लेकिन पूरी यूनिवर्सिटी में सैकड़ों लोग जो बातें कर रहे थे और उसे और सलमा को बदनाम कर रहे थे उनके बारे में अनवर का खयाल यही नहीं हो सकता था । जब वह लडको के किसी गिरोह के पास से गुजरता और उसे आता देखकर वे यकायक चुप हो जाते तो वह फौरन समझ जाता कि उसीके बारे में बातें हो रही थी । एक दिन उसने अपने कानों से सुना कि वे लोग उसके बारे में किस तरह की बातें करते हैं । उस दिन शाम को वह प्रोफेसर सलीम के घर नहीं गया था । वह खेतों की तरफ टहलने चला गया था और वहां से सूरज डूबे लौटा था और फिर चाय पीने स्विमिंग बाथ रेस्तरा में चला गया था । वह जाकर चुपचाप एक कोने में छोटी-सी मेज पर बैठ गया । उसने देखा कि बीचवाली बड़ी-सी मेज के चारों ओर बैठे हुए कोई आठे दर्जन लडके बातें करने में इतने मस्त थे कि उन्हें उसके आने का पता भी नहीं चला । उसने चाय का आर्डर दिया ही था कि इतने में उसने उन लडकों की बातचीत के दौरान में बार-बार अपना नाम सुना । पहले तो उसने सोचा कि चुपचाप वहां से उठकर चला जाए । उसे किसीके बारे में झूठी-सच्ची बातें उड़ाने से सख्त नफरत थी और वह जानता था कि उसके बारे में—और सलमा के बारे में—जिम तरह की बातें की जाएंगी उन्हें वह बर्दाश्त नहीं कर सकेगा । वह इस चीज को कतई बर्दाश्त ही नहीं कर सकता था कि उसकी वजह से किसी बेकसूर लडकी के नाम पर कीचड़ उछाला जाए । अनवर वहां से चुपके से खिसक जाने की बात सोच ही रहा था कि इतने में वेटर चाय ले आया और अनवर को उनकी बातें



सुनते रहने पर मजबूर होना पड़ा। उसने अपने ओवरकोट का कालर खड़ा कर लिया ताकि कोई उसे पहचान न सके। इतने में अनवर को किमीको यह कहते सुनकर बड़ा ताज्जुब हुआ कि “देखो, तुम लोग अनवर और सलमा सलीम के बारे में जो कुछ कह रहे हो वह सरासर बकवास है।” इन शब्दों को कहनेवाला कोने में अपनी मेज पर से उठा और बीचवाली मेज के पास पहुंच गया। “और मैं तुम लोगों को यहां इस किस्म की बातें नहीं करने दूंगा। समझ गए ?” वह बहुत लम्बा-चौड़ा छ-फुटा आदमी था। वह एक ढीला-ढाला भूल जैसा ओवरकोट पहने था और उसपर एक काली फेल्ट की हैट लगाए था। रेस्तोरा की धुधली रोशनी में उसकी सूरत बहुत भयानक लग रही थी। उसकी आवाज में रोब था और चुनौती भी, जिसकी वजह से कोई उसकी बात टालने की हिम्मत न कर सकता था। अनवर और सलमा के बारे में बेहूदा बातें करनेवाले लड़के चुप हो गए। सिर्फ एक लड़के ने दबी ज़बान में धिधियाकर कहा, “हम तो मज़ाक कर रहे थे।” अपना बिल देकर वे कुछ ही मिनट बाद उठकर वहां से चले गए।

अनवर ने काला ओवरकोट पहने हुए उस आदमी को पहचान लिया। वह एम० ए० में पढ़ता था। उसका नाम सुभान था। वह उस छोटे-से दल से संबंध रखता था जिसका नाम लड़कों ने ‘रूसी’ रख छोड़ा था, क्योंकि ये लोग हमेशा बड़े जोश के साथ यही बातें किया करते थे कि सोवियत यूनियन में कैसी कमाल की तरक्की हो रही है। यह एक अजीब दल था जिसमें आसानी से किसीको घुसने नहीं दिया जाता था, इस दल के लोग ऊंची-ऊंची बातें करते थे और आम तौर पर बाहर के लोगों से बहुत कम मिलते-जुलते थे। उनकी अलग-थलग रहने की इस प्रवृत्ति पर झुंझलाकर दूसरे लड़कों ने न सिर्फ उन सबको मिलाकर पूरे दल का एक नाम रख दिया था, बल्कि अलग-अलग भी सबके नाम बिगाड़कर रूसी ढंग के नाम कर दिए थे। सुभान को लोग ‘सुभानोव्सकी’ कहते थे, मूसा का नाम था ‘मूसाकोव’ और जहीर को बदलकर ‘जहीरोफ’ कर दिया गया था। अनवर इन लोगों से पहले कभी नहीं मिला था लेकिन इस समय वह कृतज्ञता-वश सुभानोव्सकी की मेज पर गया, इस बात का शुक्रिया अदा करने के लिए कि उसने बड़ी हिम्मत का परिचय देकर उसे इन स्कैंडल फैलानेवालों के हमले से बचाया था।



“अस्सलामलैकुम ! मेरा नाम अनवर है !”

“मैं जानता हूँ। बैठो।” न ‘वालेकुमअस्सलाम !’ न ‘तशरीफ रविए !’ उसने सीधे-सीधे कहा, “मेरा नाम सुभान है—लोग मुझे ‘सुभानोव्स्को’ कहते हैं।”

“आपने उन लोगों से जो कुछ कहा वह मैंने सुना ! मैं आपका शुक्रिया...”

“ठीक है।” सुभान ने उसे अपना वाक्य पूरा करने का भी मौका नहीं दिया। “मुझे स्कैंडलबाजी से सख्त चिढ़ है। यह मिटिल क्लास की ‘डिकेडेट मोरैलिटी’ (पतनोन्मुख नैतिकता) की निशानी है।”

“आपने बहुत अच्छा किया” मेरा मतलब है... यह बहुत ही शर्म की बात है कि दो आदमियों के पाक और बेदाग ताल्लुकात के बारे में इस तरह की गलत बातें कही जाएं। ”

“मर्द और औरत के बीच ‘पाक और बेदाग’ ताल्लुकात जैसी कोई चीज़ होती ही नहीं। उनके ताल्लुकात बिल्कुल वैसे होते हैं जैसे बकरे और बकरा के। सारा सवाल यह होता है कि एक खास उम्र में पहुँचकर आदमी के कुछ खास ग्लैंड्स काम करना शुरू कर देते हैं और उसमें ‘सैक्स इम्पल्स’ पैदा होते हैं और इन ‘सैक्स इम्पल्सों’ के मुताबिक ‘हार्मोन’ बनने लगते हैं। मुझे तो एतराज इस बात पर है कि कोई किसी दूसरे की ‘लिबिडो’ पर बहस क्यों करे।”

बकरे ! बकरियाँ ! सैक्स इम्पल्स ? अनवर दग रह गया। अब से पहले किसीने भी उससे इस तरह बातें नहीं की थीं। ये बातें इस तरह खुले-आम रेस्तरा में बैठकर करने की थोड़े ही होती हैं। उसके दिल को धक्का भी लगा और वह हैरान भी हुआ। और सब तो ठीक था, लेकिन यह ‘लिबिडो’ क्या बला होती है ?

“लिबिडो ?” उसने आश्चर्य से यह शब्द दुहराया।

“जिसे मुहब्बत कहते हैं, लेकिन तुम्हारे जैसे रोमांटिक लोगों ने इस लपट को इतना रगड़ा है कि इसका कोई मतलब ही नहीं रह गया है। तुम लोग जिस्म की एक कुदरती भूख को बिला वजह रूहानियत का रंग देने की कोशिश करते हो।”

“आपको कैसे मालूम कि मैं रोमांटिक आदमी हूँ ?” ज्यादातर रोमांटिक लोगों की तरह अनवर भी अपने यथार्थवादी होने पर गर्व करता था।

“मैंने तुम्हारी तकरीर सुनी थी। तुमने उसमे दुनिया-भर की रोमांटिक बकवास की थी—‘मुस्तकबिल के धारे’ और हिन्दुओ और मुसलमानो का खून एकसाथ बहना, वगैरह, वगैरह। तुम लोग तो समझते हो कि जिन्दगी शायरी है—और साम्राजियो की तोपे सगीत की लय पर चलती है।”

इसके बाद पंद्रह मिनट तक अनवर को जिन्दगी के बारे मे—और मुहब्बत के बारे मे—मार्क्स और फ्रायड के सिद्धान्तो के आधार पर एक ऐसा धुआधार लैक्चर सुनना पडा कि उसका सिर चकरा गया। फिर भी उसे यह अक्खड किस्म का देव का देव आदमी बहुत अच्छा लगा, क्योकि उसमे अपनी बात खुलकर कहने की हिम्मत थी। उसने अनवर के विचारो और उसकी आस्थाओ के कमजोर पहलुओ पर भी जो हमले किए उनका असर भी अनवर पर अच्छा ही पडा। वे दोस्तो की तरह एक-दूसरे से बिदा हुए और चलते हुए सुभान ने बड़ी बेतकल्लुफी से उसकी पीठ पर एक जोर की धप लगाते हुए कहा, “तुम्हारा दिमाग कुछ उलझा हुआ जरूर है, जैसाकि सभी मिडिल क्लास इन्टेलेक्चुअलो का होता है, लेकिन अगर थोडा-बहुत पढ लोगे तो तुम्हारी यह तबकाती घुटन दूर हो जाएगी। अब भी अच्छे-खामे मार्क्सिस्ट बन सकते हो।”

अनवर अपने नये दोस्त से बिदा होकर सीधा हास्टेल की तरफ चल दिया। उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसके दिमाग मे अभी कोई बवडर उठ चुका हो। सुभानोवस्की ने जो विचार व्यक्त किए थे वे सचमुच क्रांतिकारी थे। कोई भी मान्यता ऐसी नहीं थी जिसपर उसने हमला न किया हो—धर्म, राष्ट्रवादिता, नैतिकता और प्रेम। लेनिन के मत के आधार पर उसने कहा था कि धर्म एक तरह की अफीम होती है जिसकी सहायता से शासकवर्ग जनता को गाफिल कर देते है। राष्ट्रवाद सत्ता अपने हाथो मे ले लेने के लिए पूजीपतियो का एक हथियार है। नैतिकता कोरी बकवास है और प्रेम—प्रेम वैसी ही मामूली चीज है जैसे कोई एक गिलास पानी पी ले। उसने बहुत मोटे-मोटे डरावने शब्द इस्तेमाल किए थे, जैसे ‘डायलेक्टिक्स’, ‘बूर्जुआजी’, ‘प्रोलेतारियत’, ‘ओडीपस कम्प्लेक्स’, ‘फिक्सेशन’, ‘इनहिबिशन’, वगैरह। इन शब्दो से ज्यादा डरावना उसका रवैया था—डरावना भी और आकर्षक भी। सुभान ने अपने रवैये को

‘आबजेक्टिविटी’ (यथार्थनिष्ठता) कहा था और अनवर पर ‘सब्जेक्टिव’ (आत्मनिष्ठ) होने का आरोप लगाया था। अनवर की समझ में यह तो आता था कि राजनीतिक और आर्थिक मामलात में आदमी को यथार्थनिष्ठ होना चाहिए लेकिन वहां भी आदमी की जात का दखल होता है। लेकिन क्या रसानुभूति और भावनाओं की प्रतिक्रिया के मामले में कोई यथार्थनिष्ठ हो सकता है ? मिसाल के तौर पर प्रेम के मामले में क्या कोई यथार्थनिष्ठ हो सकता है ? क्या गुलाब की सुन्दरता का विश्लेषण करने के लिए उसे किसी प्रयोगशाला में जाचना आवश्यक है, या बुलबुल के गीत में विद्युत्-स्पंदन का पता लगाने के लिए किसी प्रयोग की जरूरत है ?

इन्हीं विचारों में उलझा हुआ जब अनवर अपने कमरे में पहुंचा तो उसने देखा कि खाना मेज़ पर लगा हुआ है। असगर क्रिकेट कप्तान की पार्टी में गया हुआ था लेकिन ‘राज’ हमेशा की तरह अदर के कमरे में लेटा लगातार सिगरेटे फूक रहा था। अनवर खाना खाने बैठा तो उसे एक दर्द-भरा राग सुनाई दिया। ‘राज’ लेटा हुआ गुनगुना रहा था—लेकिन यह उसकी अपनी गजल नहीं थी। अनवर ने पहचान लिया कि वह गालिब की एक बहुत मशहूर गजल थी और उसे यह देखकर ताज्जुब हुआ कि राज बार-बार एक ही शेर दुहरा रहा था :

इश्क से तबीअत ने जीस्त का मज़ा पाया

दर्द की दवा पायी, दर्द-लादवा पाया।

यह प्रेम की एक नई ही परिभाषा थी जो सुभान की ‘पानी के गिलास’ वाली ध्योरी से कितनी भिन्न थी। गालिब की राय में—और इश्क के बारे में गालिब से बढ़कर कौन जानता था—इश्क एक ‘दर्द लादवा’ है, फिर भी उसमें आदमी को ज़िदगी का सच्चा मज़ा मिलता है। पहेली के अदर पहेली लगती थी पर इसी पहेली में कहीं सत्य छिपा हुआ था।

‘राज’ को यह पता नहीं चला था कि दूसरे कमरे में अनवर बैठा हुआ है इसलिए वही बड़े ही दर्द-भरे लहजे में बार-बार इसी शेर को दुहराता रहा। न जाने क्यों अनवर को ऐसा लगा कि उसने सलमा के सामने अपनी नज़्म ‘महबूबा से खिताब’ भी इसी अंदाज़ में पढ़ी थी। और बार-बार इस शेर को सुनने के बाद अनवर को धीरे-धीरे इस बात का आभास हुआ कि ‘राज’ भी सलमा से इश्क करता है। ‘राज’ भी ? क्या मतलब इसका ? इस प्रकार के

विचार मन में लाने पर वह अपने-आपपर झुझलाने लगा। जिस लड़की को वह अभी कुछ ही हफ्तों से जानता है, वह उसे कितनी ही अच्छी क्यों न लगती हो पर वह यह कैसे कह सकता है कि वह उससे इश्क करता है। वह उन भावुक मूर्खों में से नहीं है जो किसी लड़की को देखते ही उसपर आशिक हो जाए। वह और सलमा तो बस दोस्त हैं। क्या वह खुद सैकड़ों बार दूसरों से यह नहीं कह चुका था कि वह सलमा से इश्क नहीं करता। लेकिन उसकी बात पर यकीन कौन करता था।

क्या वह खुद अपनी बात पर यकीन करता था ?

आत्मत्याग की भावना के वश अनवर ने यह फैसला किया कि वह सलमा से कहेगा कि 'राज' उससे मुहब्बत करता है, वह 'राज' की तरफ से वकालत करेगा और उनकी शादी करा देगा। अपनी कल्पना में वह अपने-आपको एक दृढमकल्प शात त्यागमूर्ति के रूप में देखने लगा जिम्ने एक दोस्त की खातिर अपने प्रेम को भी बलि चढ़ा दिया। सलमा और 'राज' खुश रहे। उनकी खुशी उसके दिल में रोशनी पैदा करने के लिए काफी होगी। एक खूबसूरत लड़की और एक प्रतिभाशाली कवि की जोड़ी बहुत ही अच्छी रहेगी। इसलिए उसके जैसे टटपूजिया आदमी को उनके रास्ते से अलग हट जाना चाहिए।

लेकिन उसे इस त्याग का परिचय देने की जरूरत ही नहीं थी। बड़े दिन की छुट्टिया करीब आ गई थी और अकबरअली ने अपने बेटे को लिखा था कि वह इस बार अपनी छुट्टिया सलामपुर में बिताए क्योंकि वह कई बरस से अपने ताया-अब्बा और भाई-बहिनो से नहीं मिला था। अनवर तो अलीगढ़ में ही रहना चाहता था पर वह अपने अब्बा की बात नहीं टाल सकता था। उसने जब सलमा को यह बात बताई तो उसने कहा, "लेकिन तुम तो हमारे साथ आगरा चल रहे हो न ?"

"आगरा ?"

"हां, और क्या। अब्बा ने तुमसे कुछ नहीं कहा ? अब्बा भी बिल्कुल खब्तुलहवास प्रोफेसर हैं, हैं न ? तीन दिन बाद पूरे चांद की रात होगी और हम ताजमहल को उसके भरपूर हुस्न में देख सकेंगे।"



अनवर ने ताजमहल नहीं देखा था। चादनी रात में और वह भी सलमा के साथ ताजमहल देखना—सचमुच जन्नत का लुत्फ आएगा। लेकिन वह 'राज' को कैसे भूल सकता था।

“क्या हम सब लोग चलेगे?” खुद चलने का वादा करने के बाद अनवर ने सलमा से पूछा।

“हां, सब लोग चलेगे—यानी मैं और अब्बा और तुम।”

“लेकिन क्या 'राज' हमारे साथ नहीं चलेगा?”

“मैंने उससे तो कहा नहीं है,” सलमा की आवाज में एक खीझ थी।

अनवर ने आग्रह किया, “लेकिन उसे भी साथ ले चलना चाहिए। ताज के खूबसूरत बाग में उसकी नज़्म सुनने में बेहद मज़ा आएगा।”

और अनवर के इतना कहते ही मानो बाध टूट गया। सलमा के मुह से शब्दों की एक प्रबल धारा फूट निकली। 'राज' ने उसे बहुत-से प्रेम-पत्र लिखे थे और उनके साथ अपनी नज़्में भी भेजी थीं जो सब उसीके बारे में मालूम होती थीं। उसने सलमा को एक अजीब मुसीबत में फसा दिया था। उसके लिए इन खतों को अपने अब्बा से छिपाना नामुमकिन हो गया था और जब उन्हें इस बात का पता लगा तो वे बहुत नाराज़ हुए। उसने रुआसे स्वर में कहा, “कितनी बुरी वान है।” और फिर कुछ शांत होकर बोली “उसका सारा रवैया बहुत शर्मनाक रहा है। मुझे तो किसीसे कहते हुए भी शर्म आती है। लेकिन तुमसे मैं यह सब इसलिए कह रही हूँ कि तुम मेरे दोस्त हो और मैं तुमपर भरोसा कर सकती हूँ।”

उस क्षण अनवर 'राज' की पैरवी करने का अपना इरादा बिल्कुल भूल गया। रूप और प्रतिभा की जोड़ी मिलाने का विचार उसने छोड़ दिया। वह तो बस इतना जानता था कि सलमा ने उसे अपना दोस्त कहा था जिसपर वह भरोसा कर सकती थी।

उसे बल्कि खुशी ही हुई कि 'राज' उनके साथ आगरा नहीं जा रहा था।

प्रोफेसर साहब की कार आगरा रोड पर एक के बाद एक मील के पत्थर पार करती हुई भागी चली जा रही थी। प्रोफेसर साहब मोटर चलाने में बहुत

होशियार थे और हालांकि ड्राइवर उनके साथ रहता था फिर भी वे गाड़ी हमेशा खुद ही चलाते थे। अमरीका से यह माडल अभी नया ही आया था और उसके स्प्रिंग बहुत अच्छे थे लेकिन उस पुरानी सड़क में बेशुमार गढ़े थे और थोड़ी-थोड़ी देर बाद कार आलुओं की बोरी की तरह उछल पड़ती थी। पीछे की सीट पर बैठे हुए अनवर और सलमा हर अमुविधा में एक नया रोमांच अनुभव करते और जब गाड़ी किसी बड़े गढ़े में फंकर जोर से उछलती और उनके सिर ऊपर लोहे की छत से जा टकराते तो दोनों खिलखिनाकर हस पड़ते। लेकिन कभी-कभी जब प्रोफेसर साहब अपना कमाल दिखाने के लिए पूरी रफ्तार पर गाड़ी मोड़ते या किसी बेलगाड़ी से बचना के लिए तेजी से मोटर काटते तो पिछली सीट पर बैठे हुए अनवर और सलमा एक-दूसरे से टकरा जाते। जब भी ऐसा होता सलमा शरमाकर हस पड़ती और अनवर के शरीर में एक फुरैरी-सी दौड़ जाती। उसे धीरे-धीरे पता चलता जा रहा था कि खूबसूरत लड़की के साथ रहने में जो सुख मिलता है वह सिर्फ आत्मा का ही सुख नहीं होता।

क्या मार्क्स और फ्रायड के सिद्धांतों को माननेवाला सुभानोव्सकी ठीक कहता था ?

रास्ते में कार पचर हो गई। आगरा रोड पर यह कोई नई बात नहीं है। प्रोफेसर साहब ने सुझाव रखा कि जितनी देर में ड्राइवर गाड़ी का पहिया बदलता है उतनी देर में वे लोग पास के गांव में चलकर देखें शायद खाने के लिए टमाटर या कुछ दूसरी सब्जियां मिल जाएं। हसते और आपस में मजाक करते वे जुते हुए खेतों को पार करके दूर पर दिखाई देती हुई भोपड़ियों के झुरमुट की तरफ बढ़े।

बचपन में जब अनवर अपने ताया-अब्बा के यहां जाता था तो उसने गुडगांव के पास कुछ गांव देखे थे। उसने अंगीठ के आस-पास भी कच्ची भोपड़ियां देखी थी और उनकी दरिद्रता देखकर उसका हृदय रो उठा था। लेकिन इस वक्त उन्होंने जो गांव देखा उसकी हालत तो बयान ही नहीं की जा सकती थी। अगर गली में दो-चार काले, दुबले-पतले और लगभग बिलकुल नंगे लड़के न खेल रहे होते तो ऐसा लगता कि वह गांव नहीं किसी वीरान गांव के खंडहर हैं।

ऐसा लगता था कि कगाली और उदासी ने हमेशा के लिए गांव में अपना घर कर लिया है। एक भी भोपड़ी ऐसी नहीं थी जो टूटी-फूटी न हो, एक भी

मर्द या औरत ऐसी नहीं थी जो चीथड़े न पहने हो, एक भी बच्चा ऐसा नहीं था जो तन्दुरुस्त हो ! उन्होंने कई जगह पूछा पर उन्हें कहीं अपने मतलब की मज्जिया नहीं मिली । प्रोफेसर साहब सोचने लगे कि ये लोग क्या अकाल या किसी बीमारी का शिकार रह चुके हैं और उनकी सामाजिक उत्सुकता जागरित हो उठी । उन्होंने एक किसान से पूछा, जिसकी पसलिया उनकी तनी हुई काली खाल में से झाँक रही थी । उसने जवाब दिया कि फसल तो हमेशा जैसी ही हुई थी और बरसात में हमेशा की तरह हैजे से और सर्दियों में निमोनिया से कुछ लोगों के मर जाने के अलावा गाँव में कोई बीमारी भी नहीं फैली थी । गाँव में उन्होंने जो भयानक गरीबी, तबाही और मौत जैसी उदासी देखी वह वहाँ की स्थायी दशा थी, बिल्कुल उसी तरह जैसे उनके सिर पर सुरमई रंग का आकाश था या उनके पैरों के तले गहरे रंग की सूखी मिट्टी । जब वे वापस लौटे तो देखा कि उनकी मोटर को भूखे बच्चों के एक झुंड ने घेर रखा था जो भीख माँग रहे थे ।

अनवर की सारी खुशी खत्म हो गई और जब वे नहर के किनारे दोपहर का खाना खाने के लिए रुके तो अनवर को उन शामी कबाबों और पराठों और भुनी हुई मुर्गियों में कोई स्वाद नहीं आया जो सलमा अपने साथ बेत की एक टोकरी में लाई थी । जब मोटर सफर की आखिरी मजिल तै कर रही थी उस वक्त सलमा ने अपने साथी के चेहरे पर एक अजीब उदासी देखी, लेकिन वह समझदार थी इसलिए उसने बेकार के सवाल पूछकर उसे परेशान करना मुनासिब नहीं समझा । उसे बातूनी लड़कों से सख्त चिट थी जो तमाम वक्त अपना रोब जमाने में इतने व्यस्त रहते थे कि उन्हें अपने स्वाभाविक व्यवहार का परिचय देने का समय ही नहीं मिलता था । और उसे उदास मुद्रा में भी अपने पास बैठा हुआ यह लड़का बहुत अच्छा लग रहा था । वह जानती थी कि वह अपनी एक मुस्कराहट से उसकी सारी उदासी दूर कर सकती है ।

मेहराबदार बड़े-से फाटक में से ताजमहल को पहली बार देखते ही अनवर तो खुशी के मारे हक्का-बक्का रह गया । उसके लिए यह यकीन करना मुश्किल था कि कोई चीज इतनी खूबसूरत और हसीन भी हो सकती है । अनवर की



आत्मा उससे बातें कर रही थी। एक आवाज ने कहा, 'यह तो महज पत्थर है। सलमा को देखो—जीता-जागता ताजमहल है।' एक दूसरी आवाज ने कहा, 'दो मुर्दा लोगो के लिए इतनी बड़ी और शानदार इमारत, जबकि लाखों-करोड़ों किसान उन भोपड़ियों में रहते हैं जो तुम अभी आगरा रोड पर देख आए हो।'।

रात को वे चादनी में ताजमहल देखने फिर आए। अब अनवर की उदासी और निराशा दूर हो चुकी थी और उसकी आत्मा ने इस दृश्य की जादू-भरी सुन्दरता के आगे हथियार डाल दिए। उसकी आँखों के सामने अमर प्रेम का स्मारक ताजमहल चाद की किरनों में नहाया खड़ा था। ऐसा लगता था कि शून्य की धूमिल पृष्ठभूमि पर किसीने कोमल दूधिया रेखाओं में उसकी आकृति अंकित कर दी है। यह सच है कि एक बादशाह ने अपनी बेगम की स्मृति को अमर करने के लिए ही इसका निर्माण कराया था परंतु जिस भावना से प्रेरित होकर उसने इसका निर्माण कराया था वह भावना सार्वत्रिक थी, वह राजनीति और अर्थशास्त्र की सीमाओं से परे थी, वह समय की सीमाओं से भी परे थी, और अमर थी। कई शताब्दियों तक हर देश और जाति के प्रेमी, गरीब और अमीर, रईसों की बेटीयाँ और किसान बालाएँ यहाँ आकर मानव-कला के इस चमत्कार को देखेंगी और सराहेगी। उन्हें यह स्मारक हमेशा ऐसा लगेगा जैसे उनके सुखद स्वप्नों को पत्थर में साकार कर दिया गया हो, उनकी भावनाओं को निर्मल और स्वच्छ सगमरमर की एक मूर्ति के रूप में ढाल दिया गया हो, उनकी आँहों और उनके आसुओं को एक जगमगाते हुए निष्कल रुहीरे का रूप दे दिया गया हो। यहाँ से वापस लौटने पर उनके दिल पर से एक बोझ उतर चुका होगा और उनकी आस्था पहले से अधिक दृढ़ होगी, क्योंकि वे प्रेम की अविराम धारा का रस पी चुके होंगे और स्वयं अपने आसू उस धारा में मिला चुके होंगे।

अपनी चेतना के किसी सुदूर स्थान से उसे प्रोफेसर सलीम की आवाज आती सुनाई दी, "अनवर, तुम बी० ए० पास करने के बाद क्या करोगे?"

"अभी कुछ तै नहीं किया है, प्रोफेसर साहब," अनवर ने एक झटके के साथ अपनी कल्पनाओं के तार को भग करते हुए उत्तर दिया, "अब्बा तो चाहते हैं कि मैं तिजारत करूँ। लेकिन मुझे इतनी ज्यादा दिलचस्पी नहीं है उसमें।"



“तुमने सिविल सर्विस के कम्पेटीशन में बैठने के बारे में कभी गौर किया है ?”

अनवर ने सरकारी अफसर बनने की बात कभी सोची भी नहीं थी। सच तो यह है कि उसने कभी सजीदगी से इस सवाल पर गौर ही नहीं किया था कि वह आगे चलकर क्या करना चाहता है। उसे मोटे-मोटे तौर पर यह खयाल ज़रूर था कि वह सरकारी अफसरशाही की मशीन में आसानी से फिट नहीं हो सकेगा, फिर भी उसने प्रोफेसर साहब के इस सवाल के जवाब में साफ ‘नहीं’ कह देना भी मुनासिब नहीं समझा क्योंकि उन्होंने यह सवाल एक हितैषी और शुभचिंतक की तरह पूछा था। वह कोई गोलमोल जवाब देने ही जा रहा था कि इतने में उसे सलमा की आवाज़ सुनाई दी, “लेकिन अब्बा, बैठना तो चाहिए ही। और इनके कामयाब हो जाने में तो कोई शक ही नहीं है।”

“हा, मेरा भी यही खयाल था। तो अगर तुम चाहो तो मैं उसके कायदे-कानून मगवा दूँ और जो सब्जेक्ट तुम लो उनमें मैं स्पेशल कोचिंग का इंतजाम करवा दूँ। अगर दो साल बाद भी बैठने का इरादा हो तब भी तैयारी अभी से शुरू कर देनी चाहिए।”

अनवर इसके अलावा कर ही क्या सकता था कि प्रोफेसर साहब का शुक्रिया अदा करता और उनसे यह वादा कर लेता कि वह इस मसले पर सजीदगी से गौर करेगा, हालांकि उसे बिल्कुल यकीन नहीं था कि वह इतने सख्त कम्पेटीशन में कामयाब हो सकेगा।

“नानसेस,” प्रोफेसर साहब ने उसकी पीठ थपकते हुए कहा, “अगर दूसरे लोग कामयाब हो सकते हैं तो तुम भी कामयाब हो सकते हो—बल्कि दूसरों से ज्यादा आसानी से कामयाब हो सकते हो।”

और फिर मोटर में से कम्बल निकालने के बहाने सलीम साहब अनवर और सलमा को वहाँ अकेला छोड़कर वहाँ से खिसक गए। दोनों सगमरमर की बेंच पर बैठे चौकोर तालाब के हरे-हरे पानी की गहराई में एक दूसरे ताजमहल की झिलमिलाती हुई आकृति देख रहे थे। दोनों तरफ सनोवर के पेड़ों के स्याह साये सर्दियों की रात में खामोश खड़े काप रहे थे। वे दोनों अकेले थे फिर भी अनवर की सलमा को देखने की हिम्मत नहीं हो रही थी। वह सिटपिटाया हुआ बैठा था। उसकी ज़बान पर जैसे किसीने ताला लगा दिया था और वह

सोच रहा था कि किसी तरह प्रोफेसर साहब लौट आए। इतने में बादल का एक टुकड़ा चाद पर से गुजरा और ताज ने मोती की तरह चमकती हुई धुधले रंग की चादर ओढ़ ली जिसमें उसका रूप और निखर आया। इस धुधली रोशनी में अनवर ने हिम्मत करके अपना सिर उठाया और सलमा की आखों में आखें डालकर देखा। सलमा की आखें तो जैसे उसका इतज़ार ही कर रही थी। बस एक नज़र ! लेकिन उस एक ही नज़र ने क्या कुछ नहीं कह दिया। उस एक क्षण में अनवर की सारी शकाएँ, सारे डर, सारी गलतफहमियाँ दूर हो गईं। चादनी में ताज का सौंदर्य अब उसके लिए कोई बाहरी चीज़ नहीं रह गया था। यही सुन्दरता उसके मन में भी अपनी चादनी बिखेर रही थी। उसने जो बहुत बड़ी खोज इस क्षण की थी उसके लिए यही उचित पृष्ठभूमि थी। उसे पता चल गया कि वह सलमा से मुहब्बत करता है। वह यह भी जान गया कि वह भी उससे प्यार करती है। और उसे यह भी मालूम हो गया कि मुहब्बत क्या होती है, दर्द की दवा भी और दर्द-बेदवा भी।

“सलमा !” उसने दबी ज़बान में कहा।

“अनवर !” उसने भी उसी तरह दबी ज़बान में जवाब दिया।

जब प्रोफेसर साहब कम्बल लेकर लौटे उस वक्त तक उन दोनों ने इसके अलावा एक शब्द भी न कहा था, फिर भी सारी दुनिया बदल गई थी।

उनकी मोटर अलीगढ़ की तरफ सरपट भागी जा रही थी। मोटर की बत्ती की रोशनी दो समानांतर पट्टियों में दूर तक जाकर आगे अधकार में खो जाती थी। अनवर को दूसरे दिन घर जाना था और प्रोफेसर साहब को अकेडेमिक कौंसिल की मीटिंग में जाना था। इसलिए उन लोगों ने सख्त सर्दी की परवाह न करते हुए उसी रात लौट जाने का फैसला किया था।

सर्द हवा तीर की तरह चुभ रही थी और उन्हें ओवरकोट और मफलर कसकर लपेट लेने पड़े। प्रोफेसर साहब फेल्ट हैट अपनी आखों पर भुकाएँ, ओवरकोट का कालर खड़ा किए और हाथों में फर के अस्तरवाले दस्ताने पहने मोटर चला रहे थे। उनके मुह में लगी हुई सिगरेट से मोटर के अन्दर धीमा-धीमा प्रकाश हो रहा था।

पीछे की सीट पर सलमा और अनवर घुटनों पर कम्बल डाले एक-दूसरे से सटे बैठे थे । अनवर के हाथो ने सलमा के कोमल ठंडे हाथो को खोज लिया और कोमलता की लहरो की एक सुखद धारा उन दोनों हाथो के बीच प्रवाहित होने लगी । थोड़ी देर बाद अनवर के गालो को सलमा की रेशमी लटो ने छू लिया और एक भीनी-भीनी मादक सुगंध उसके नथुनो मे बस गई । सलमा ने ऊधकर उसके कंधे का सहारा ले लिया था ।

बाहर अंधेरा और सर्दी थी । पेड की फुनगियो के बीच हहराती हुई ठंडी हवा बह रही थी । बाहर दूर तक जुते हुए खेत फैले थे ; बाहर किसानो के गाव थे जिनमे वे गरीबी और कगाभी और गदगी के बीच अपनी ज़िंदगी बसर करते थे, त्रिलकुल वैसे ही गाव जैसा अनवर ने उसी दिन देखा था । बाहर क्रूरता थी और दमन था और करोडो मूक प्राणी स्वतन्त्र होने की प्रतीक्षा कर रहे थे । बाहर जगली जानवरो का खतरा था और तूफान चुनौती दे रहा था । अन्दर का वातावरण गर्म और आरामदेह था —बद मांटर मे एक गद्देदार सीट और कंधो से सटा हुआ कोई कोमल सुवासमय शरीर और धीरे-धीरे सुला देनेवाली एक मादक सुगंध ।”





## सोने का सांप

अनवर के अब्बा ने इतना जोर दिया कि अनवर को मजबूर होकर अपने ताया-अब्बा के यहा सलामपुर मे जाकर रहना पडा । अमजदअली के यहा जाकर रहने का मतलब था कि जैसे किसी राजा के यहा मेहमान गए हो । रहने को आलीशान मकान और हर वक्त खिदमत करने के लिए नौकरो की एक पूरी फौज ।...सचमुच शाही ठाट-बाट था । लेकिन अनवर का दिल इन सब बातो को पसद नही करता था । वह पूरी तरह इससे नफरत भी नही करता था ।

लेकिन इस बार वहा रहकर उसने बहुत मजे लूटे । वह रऊफ के साथ शिकार खेलने गया और उसे बेहद मजा आया ।

और फिर बिलकीस का भी तो आकर्षण था । अब वह शरारत की छोटी-सी पोटली नही रह गई थी, जिसके गालो पर सेब जैसी लाली हुआ करती थी, और न वह कसकर गुधी हुई चोटी रह गई थी जो बचपन मे खेतो मे भागते समय ऊपर-नीचे फुदका करती थी । अनवर ने देखा कि अब वह एक बेहद खूबसूरत नौजवान लडकी हो गई है और यह महसूस करके वह न जाने क्यों उसके सामने कुछ सिटपिटाया-सा रहता था । अनवर मन ही मन हमेशा अपने-आपको धिक्का-रता रहता था कि वह अपनी इस नौजवान चचेरी बहन की जवानी को देखकर आखिर खिसिया क्यों जाता था । हर बार उसकी आखे उसके सुडौल चेहरे पर या उसकी ठोड़ी के गढे पर जाकर टिक जाती थी...और वह न जाने क्यों उसके होनेवाले शौहर से मन ही मन जलने लगता था ।

उस दिन अनवर जब अमजदअली की कोठी पर लौटा तो वह थककर बिलकुल चूर हो चुका था । पहुंचते ही उसे पता चला कि उसके दो खत आए हुए हैं । उसने पहले वह जाना-महचाना नीला लिफाफा लेकर बड़ी मुहब्बत से खोला । सलमा का बेहद प्यारा लम्बा-सा खत था । उसने लिखा था कि उसके दिन कितने नीरस गुज़र रहे हैं और जाड़े की भयानक लम्बी शामे काटना उसके



लिए किनना मुश्किल हो गया है। उसने लिखा था कि उसे अनवर की बेहद याद आती थी और उसने पूछा था कि वह अलीगढ़ कब तक लौटकर आएगा। “मुझे पहले कभी यह खयाल भी नहीं आया था कि तुम्हारा साथ मेरे लिए इतना जरूरी हो गया है। तुम्हारे बिना जिंदगी बहुत सूनी है, अनवर।” और यह पढ़कर उसका दिल सलमा के लिए तड़प उठा और प्यार, कोमलता और कृतज्ञता के आसू उसकी आखों में छलक आए।

उसने सलमा का खत फिर लिफाफे में रखकर अपने पलग पर गद्दे के नीचे रख दिया कि सोने से पहले वह उसे एक बार फिर फुरसत से पढ़ेगा। फिर उसने दूसरा लिफाफा उठाया। वह खत अलीगढ़ से होता हुआ यहा पहुंचा था और उसपर पता टाइप किया हुआ था इसलिए वह अदाजा नहीं लगा सका कि वह किसका खत हो सकता था। खत खोना तो उसे यह देखकर बहुत ताज्जुब हुआ कि उसपर किसीका नाम भी नहीं लिखा था। लेकिन खत पढ़ना शुरू करते ही उसे कोई शक नहीं रह गया कि वह खत किसने लिखा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर रतन ने उसे इतने गोलमोल तरीके से खत क्यों लिखा था।

लिखनेवाले ने इस बात का ध्यान रखते हुए कि कागज पर अनवर का नाम भी न लिखा जाए, खत इस तरह शुरू किया था—“मेरे प्यारे दोस्त, तुम्हारे लिए मुझे पहचानना मुश्किल नहीं होगा।—मैं सुनहरे गुम्बदवाले शहर का तुम्हारा दोस्त हूँ।” जाहिर था कि यह अमृतसर का जिक्र था। “मैं तुम्हारा वही साथी हूँ जिसके साथ बचपन में एक दिन शाम को तुम उस बाग में गए थे जहाँ खून के रंग के लाल गुलाब खिले थे।” यह तो जलियावाला बाग का ही जिक्र हो सकता था। लेकिन इसके बाद का मजमून और गोलमोल होता गया।—“जैसाकि तुमने अखबारों में पढ़ा होगा हमने इस बाग को फिर से सजाना शुरू किया है। खून के रंग के ये गुलाब एक-एक करके उखाड़कर फेंक दिए जाएंगे और एक दिन वह आएगा जब इसमें सिर्फ शांति के सफेद गुलाब खिलेंगे। यह आसान काम नहीं है, ज़मीन पथरीली और काटेदार झाड़ियों से भरी हुई है। लेकिन हमने पहला फावड़ा मार दिया है और हमारे रास्ते में कितनी ही कठिनाइयाँ क्यों न हों पर हमें इसी तरह ज़मीन तैयार करते रहना पड़ेगा। इस सिलसिले में मुझे किसी भी दिन तुम्हारी जरूरत पड़ सकती है और मैं उम्मीद

करता हूँ कि तुम मेरी मदद करने से इन्कार नहीं करोगे। तुम कई बार मुझे दावत दे चुके हो कि मैं आकर तुम्हारे साथ ठहरू। मैं तुम्हारी उम्मीद से बहुत पहले ही तुम्हारी इस दावत का फायदा उठानेवाला हूँ, लेकिन पहले मैं यह मालूम कर लेना चाहता हूँ कि क्या अब भी तुम मुझे अपने यहाँ बुलाकर ठहराने को तैयार हो। इसलिए मुझे इस पते पर जवाब जरूर भेज देना : हरसुखराय, मारफ़्त पोस्ट मास्टर, जनरल पोस्ट आफिस, लाहौर। खत पर अपना नाम न लिखना। सिर्फ यह लिख देना 'तुम्हें बहुत याद करनेवाला दोस्त।'

लाख कोशिश करने पर भी अनवर इस रहस्यमय पत्र का पूरा मतलब नहीं समझ सका। इतना तो साफ था कि रतन यह जानना चाहता था कि क्या वह आकर उसके साथ ठहर सकता है। लेकिन फिर यह जासूसी उपन्यास जैसा रहस्य क्यों पैदा किया था उसने ? क्या वह किसी मुसीबत में फस गया है ? लेकिन कैसी मुसीबत ? क्या पुलिस से कुछ गड़बड़ है ? यकायक उसके दिमाग में एक चिंगारी-सी जल उठी। वह भागकर अपने ताया-अब्बा के कमरे में गया और वहाँ से अखबारों का एक बडल उठा लाया। अखबार वहाँ रोज़ डाक से आते थे पर घर में उन्हें कोई भी नहीं पढ़ता था। अनवर जब से यहाँ आया था तब से उसने भी कोई अखबार नहीं देखा था। उसने जल्दी-जल्दी खबरों की सुखिया पढ़ी। अचानक एक अखबार पर नज़र पड़ते ही उसका माथा ठनक गया। पहले ही सफे पर अखबार के आरपार मोट-मोटे अक्षरों में कई सुखिया लगी थी :

लाहौर में आतंकवादियों ने अंग्रेज़ इंस्पेक्टर का खून कर दिया

दिन-दहाड़े पुलिस थाने के सामने गोली चलाई

सी० आई० डी० विद्यार्थी क्रांतिकारियों की तलाश में

सारे पंजाब में तलाशियाँ और गिरफ्तारियाँ

इस खबर का सम्बन्ध रतन के साथ इस वजह से नहीं था कि उसने अपने खत में ऐसी कोई बात लिखी थी, बल्कि अनवर के दिमाग पर बचपन की एक घटना हमेशा के लिए अंकित हो गई थी और इस समय वही तस्वीर उभरकर उसके सामने आ गई थी। जलियावाला की भयानक घटनाओं का चित्र और उसके ऊपर अंकित रतन का बचपन का चेहरा जिसपर अपने पिता की निर्मम हत्या पर न कोई विषाद का चिह्न था न दुःख का, बल्कि उसकी नज़रें खोई-

खोई थी, उसकी आखों में प्रतिशोध की शान्त ज्वाला धधक रही थी ।

तो रतन, उसका बचपन का दोस्त, जिसके मुलायम बालों की लटें उसकी पीली पगड़ी के बाहर निकली रहती थी, वह आज आतंकवादी हो गया है, वह आज बम और रिवाल्वर के रास्ते पर चल रहा है । अनवर के लिए उस मस्त शरारती लड़के की कल्पना एक हत्यारे के रूप में करना कठिन था, फिर भी जलियावाला बाग की उस दिनवाली घटना के बाद से अनवर को उम्मीद थी, उसे डर था, कि इसी तरह की कोई बात होनेवाली है । अब जबकि उसे इस बात का पता चल गया था, वह यह नहीं कह सकता था कि उसे इस बात का अफसोस था या खुशी । अनवर का संवेदनशील और बुनियादी तौर पर अहिंसात्मक स्वभाव राजनीतिक हत्याओं के बिल्कुल खिलाफ था । सांडर्स का खून करके—सांडर्स उस नौजवान अंग्रेज का नाम था जो लाहौर में मारा गया था—रतन के बाप की मौत का बदला कैसे लिया जा सकता था ? लेकिन इस तरह के हिंसात्मक कामों से उसे नैतिक आधार पर जितनी घृणा थी उससे कहीं ज्यादा उसे अपने दोस्त को बचाने की चिंता थी । अगर रतन इन आतंकवादी कामों में बहुत आगे बढ़कर हिस्सा लेने लगा है तो समझना चाहिए कि वह किसी भी दिन अपने प्राणों से हाथ धो सकता है । अनवर ने अपनी कल्पना में देखा कि उसके हाथों में हथकड़ियां पड़ी हैं, वह जेलखाने में सीखचों के पीछे खड़ा है, वह फासी के तख्ते पर चढ़ रहा है, वह फासी के फंदे में झूल रहा है । अनवर भय से कांप उठा । वह जानता था कि वह रतन के विचारों से कितना ही असहमत क्यों न हो पर अगर किसी दिन वह उसके यहां शरण लेने आया तो वह उसे रखने से इन्कार नहीं कर सकेगा ।

उस रात अनवर दुबारा फुरसत से पढ़ने के लिए तकिये के नीचे से सलमा का खत निकालना भी भूल गया । इसके बजाय उसने रतन का गुप्त पत्र दुबारा पढ़ा और तथाकथित 'मिस्टर हरसुखराय' को पत्र लिखकर यह विश्वास दिलाया कि वे किसी भी समय आ सकते हैं और यह भी लिख दिया कि वह बड़ी बेचैनी से उनका इंतजार करेगा ।



सलामपुर की राजधानी में और पूरी रियासत में नये साल के मेले की तैयारियाँ बड़ी धूमधाम से हो रही थी। हर साल जाड़े में इस मेले की बहार रहती थी। यही एक ऐसा मौसम था जो नवाब साहब अपनी रियासत में बिताते थे, वरना गर्मियाँ या तो पेरिस की रंगीन जगहों में या फिर मसूरी के पहाड़ों पर बीतती थी। इस साल मेले के साथ ही छोटे नवाब साहब के बालिग होने का भी जश्न मनाया जा रहा था और इसलिए हर चीज का इतजाम हमेशा से ज्यादा बड़े पैमाने पर किया गया था।

पिछले पंद्रह दिन से रियासत का पूरा अमला, ऊपर से लेकर नीचे तक, इस मेले का इतजाम करने में जुटा हुआ था। सारे वजीर, जिनमें अनवर के ताया-अब्बा अमजदअली भी थे, तम्बू और खेमे लगवाने में व्यस्त थे, जिनमें बहुत बड़ा कार्निवाल लगनेवाला था। जाहिर है छोटे नवाब साहब के लिए, जो अपने बालिग होने पर फूले नहीं समा रहे थे, यह बेहद खुशी का मौका था और चूँकि उन्हें अलीगढ़ से आया हुआ यह पढाकू लडका बहुत पसंद आ गया था इसलिए वे हर जगह उसे अपने साथ ले जाते थे—दरबार में; फौजी परेड में जहाँ कुछ सौ सिपाहियों ने, जिनकी ढीली-ढाली वर्दिया किसी नीलाम से खरीदी गई मालूम होती थी, बहुत ही भोड़े तरीके से उन्हें सलामी दी थी; सिनेमा और सरकस में जो नवाब साहब और उनके मेहमानों का दिल बहलाने के लिए खास तौर पर कलकत्ता से मगवाए गए थे। अनवर को शुरू-शुरू में तो कुछ मज़ा आया लेकिन वह हर चीज़ को बड़े ताज्जुब से देखता था, क्योंकि यह फिज़ूलखर्ची और तडक-भड़क उसके लिए एक नया अनुभव था। पर कुछ ही दिन बाद वह छोटे-मोटे अंग्रेज़ अफसरों, नवाब साहब के मुसाहिबों, छोटे नवाब साहब के खुशामदियों और उनकी हर वक्त की चापलूसी की बातों से उकता गया।

“अनवर, मैं तुम्हें निशाना लगाना सिखाऊँगा,” नौजवान नवाबज़ादा कहता और साथ ही बिना किसी भिन्नक या शर्म के यह भी कहता कि “जानते हो इस पूरी रियासत में मुझसे अच्छा निशाना कोई नहीं लगा सकता।”

“छोटे सरकार, इसमें क्या शक है,” कोई मुसाहिब उनकी हा में हा मिलाकर कहता।

इतने में दूसरा बोल उठता, ‘एक दिन मैंने खुद छोटे सरकार को एक मील



से ज्यादा के फासले से एक फास्ता पर निशाना मारते देखा था ।”

और यह सुनकर तीसरा मुसाहिब, जो सबसे ज्यादा जीटिया था, सिर हिला-हिलाकर कहता, “मुझे भी अच्छी तरह याद है, क्या निशाना था । हाथ चूम लेने को जी चाहता था ।” और यह कहकर वह अपनी उगलियों के सिरे होठों पर रखकर जोर की एक चटकारी लेता और यह बताता कि वह निशाना कितना अच्छा था । “सुभान-अल्लाह ! क्या निशाना था ! बिजली की रफ्तार से फास्ता इस तरह जा रही थी” — उसने हाथ से लहरिया बनाकर बताया — “और गोली भी उसका पीछा करती हुई बिल्कुल उसी तरह गई ।” और फिर उसने हाथ से बताया कि गोली किस तरह गई थी ।

या फिर लडकियों की बातें होती — वैसी हसी-मजाक की बातें नहीं जैसी-कि यूनिवर्सिटी के लडके करते हैं, बल्कि उस किस्म की गदी और बेहूदा बातें जंसा कि ऐयाश और आवारा लोग करते हैं । छोटे सरकार की उम्र को देखते हुए उन्हें ‘सैक्स’ की हर किस्म की जिंदगी का — उसके आम पहलू का भी और गैरमामूली पहलू का भी — बहुत काफी तजुर्बा मालूम होता था और अनवर जैसे अनाड़ी आदमी के सामने अपने ज्यादा गैरमामूली तजुर्बों की तस्वीर खींचने में उन्हें बेहद मजा आता था । महल में बेशुमार खूबसूरत और जवान नौकरानिया थी और छोटे सरकार की एक तफरीह यह भी थी कि वे किसी छोकरी को बुलाकर अपने साथ लिफ्ट में ले जाते थे और लिफ्ट बीच में रोककर मज्जा लूटकर कुछ ही मिनट बाद लौट आते थे । उनके गालों पर लाली होती थी और चिया जैसी आखों में कामुकता की चमक । आकर वे अपने मुसाहिबों को सारा किस्सा सुनाते थे और सब सुननेवाले बाह-बाह करते थे । यह वाली ज़रा शर्मांली थी । वह काफी खाई-खेली थी । किसी तीसरी को अपने जिस्म की कीमत में मोतियों का हार चाहिए था । चौथी किसी दिन छोटे सरकार के हरम में ले लिए जाने के ख्वाब देख रही थी । और इसी तरह के न जाने कितने चर्चे होते थे — यहां तक कि अनवर, जो बहुत ही शराफत के माहौल में पला था, यह महसूस करने लगता कि उसका दम घुट जाएगा ।

अनवर को भी इस रगीन दुनिया का लुत्फ उठाने का मौका देने की कोशिश की गई । एक बार तो यहां तक किया गया कि उसे एक चटपटी छोकरी के साथ किसी तरकीब से लिफ्ट में बंद भी कर दिया गया । उस छोकरी को भी इस

हसमुख लड़के के साथ कुछ करने में कोई एतराज नहीं था। वह तो खैरियत हुई कि ऐन वक्त पर बेगम साहिबा आ गई तो अनवर की जान छूटी। बाद में एक दिन जब उसके इस नवाब दोस्त ने उससे चलकर उन पचास के करीब तवायफों का—उन 'दूसरी औरतों' का—मुआयना करने को कहा, जो इस मेले के मौके पर मेहमानों का दिल बहलाने के लिए सारे मुल्क से बुलवाई गई थी, तो अनवर के होश उड़ गए।

लूसी ला दूश एक कैबरे नर्तकी थी जिसने फ्रांसीसियों जैसा नाम रख छोड़ा था और वह बोलती भी कुछ फ्रांसीसियों की तरह थी। लेकिन यह बात हर आदमी को मालूम थी कि वह कभी बम्बई से आगे नहीं गई थी। नवाब साहब ने उसे मसूरी के किसी नाइट क्लब में देखा था और देखते ही उसपर लट्ठ हो गए। वे उसपर बहुत पैसा लुटाते थे, उसे बहुत कीमती तोहफे देते थे—जेवर और कपड़े, इत्र और फूल हर चीज, यहां तक कि उन्होंने अपनी एक बहुत उम्दा मोटर भी उसे दे दी थी, वह हल्के आसमानी रंग की एक डैमलर रोडस्टर मोटर थी और यह रंग लूमी को बेहद पसंद था। अनवर ने उसे बस एक बार मेले में देखा था। वह एक जौहरी की दूकान पर खड़ी मोती के कुछ जेवर पसंद कर रही थी जिनका पैसा जाहिर है नवाब साहब को देना था। पाउडर और सुर्खी से पुता हुआ चेहरा, सफाचट भवे और होठों पर लिपस्टिक की लाल लकीर—ये सब चीजें दोपहर की बेरहम रोशनी में बिलकुल फीकी और बिपचिपी लग रही थी। अनवर उसे देखकर यह ताज्जुब करता रहा कि आखिर उसमें ऐसी क्या बात थी कि बूढ़े नवाब साहब जैसा औरतों का पुराना शौकीन आदमी भी उसके फदे में आ गया था ?

लेकिन उस रात जब अनवर ने उसे दरबार हाल में कुछ चुने हुए मेहमानों के सामने नाचते देखा तो वह समझ गया कि लूसी क्योंकर लोगों को अपने फदे में फास लेती है। जब वह अच्छी तरह सज-बनकर, कपड़े पहनकर, रूप की निखार देनेवाली रोशनी में आती थी उस वक्त वह किसी भी दूसरी औरत से ज्यादा दिलकश मालूम होती थी। उसमें यह खूबी थी कि उसके सामने जितने भी मर्द मौजूद होते थे सब अपने को ज्यादा मर्द समझने लगते थे। यही वजह

थी कि मर्द उसपर लट्ठ हो जाते थे और औरतें उससे नफरत करती थीं ।

कसा हुआ चमकदार लिबास पहनकर और सिर पर साप के फन जंसी टोपी लगाकर उसने सुनहरे साप का नाच किया—यह उसका सबसे मशहूर नाच था । उसका लम्बा नाजुक शरीर संपेरे की बीन की मस्त कर देनेवाली धुन पर नाचते वक्त बिल्कुल साप की तरह लहरा उठता था । उसका लोचदार शरीर, उभरा हुआ सीना, पतली कमर, और भरे हुए गोल कूल्हे बिल्कुल पानी की लहरो की तरह हिलने लगते थे—जैसे उसके बदन में हड्डियां ही नहीं, जैसे वह सचमुच एक नागिन हो, जहरीली नागिन जो किसीको डसकर उसे हमेशा के वास्ते सुना देने के लिए फन फैलाए बैठी हो ।

लेकिन लूसी नागिन का रूप इसलिए नहीं भरती थी कि उसे यह पसन्द था, बल्कि इसलिए कि वह इसके जरिये कुछ और हासिल करना चाहती थी । उसे कला से कोई लगाव नहीं था, वह तो नाचकर सिर्फ दूसरो का दिल अपने वश में करना चाहती थी । नाच में वह बिल्कुल वैसी ही नागिन थी जिसने हज़रत आदम को सेब खाने का लालच दिया था ।

बीन की धुन पर वह लहरा-लहराकर, इठला-इठलाकर मस्त होकर नाच रही थी, हाव-भाव दिखा रही थी । देखनेवालो पर जादू-सा छा गया था । वह नर्तकी नहीं थी, वह नागिन नहीं थी, वह तो एक छलावा थी, एक मोहिनी शक्ति थी । अनवर भी महसूस कर रहा था कि उसपर भी उसका जादू असर करता जा रहा है और वह बीन की धुन में बिल्कुल मस्त हो गया था कि इतने में किसीने जोर से उसके कुहनी मारी और उसका ध्यान भंग हो गया । यह छोटे सरकार की हरकत थी ।

“ऐ,” उसने अपने बाप की तरफ इशारा करते हुए अनवर के कान में कहा, “ज़रा बड़े मिया को देखो । ऐसा लगता है कि दौरा पडनेवाला है । लेकिन यह बात नहीं है । वे तो बस सोने के अपने प्राइवेट कमरे में इस तमाशे के दूसरे हिस्से के लिए गरमा रहे हैं ।”

बूढ़े नवाब साहब गगाजमनी काम की एक बहुत बड़ी कुर्सी पर बैठे झूम रहे थे और नाच की धुन के साथ ताल देने की कोशिश कर रहे थे । उनकी छोटी-छोटी आंखों में कामवासना की आग धधक रही थी और ऐसा लगता था कि उनकी आंखें अभी बाहर निकल पड़ेंगी । लूसी जानती थी कि उसके



जादू का कितना असर पड़ रहा है, इसलिए वह बार-बार नवाब साहब के और करीब जाकर नाच रही थी। और उनकी तरफ देखकर जादू-भरी मुस्कराहट बिखेर रही थी।

अचानक नवाब साहब उठ खड़े हुए और इससे पहले कि कोई उनका अदब करने के लिए खड़ा हो पाता, वे कमरे से बाहर चले गए। नाच एकदम रुक गया, हालांकि कोने में बैठे हुए बीनवाले की समझ में कुछ न आया कि माजरा क्या है इसलिए वह बीन बजाता रहा। उस बड़े-से हाल में गूजती हुई उसकी बीन की आवाज बहुत भयानक लग रही थी, क्योंकि अचानक वहां बिल्कुल खामोशी छा चुकी थी। नवाब साहब के खास मुसाहिब ने घबराकर जल्दी से लूसी के पास जाकर उसके कान में कुछ कहा और उसे लेकर बाहर चला गया।

अनवर डर रहा था कि कोई गड़बड़ हो गई है और यह कि अब नवाब साहब का गुस्सा किसी न किसी पर उतरेगा। लेकिन छोटे सरकार ने उसे यकीन दिलाया, “कोई बात नहीं है। इसका मतलब सिर्फ यह है कि अब बड़े मिया ज्यादा देर अपने ऊपर काबू नहीं रख सकते।...”

“तुम्हारा मतलब है...”

“हा, हा, बिल्कुल यही!” छोटे सरकार ने आख मारकर हामी भरी। “दरअसल मामला इससे भी नाजुक है। बात यह है कि बड़े मिया अब खुद तो कुछ कर नहीं पाते—बस दूसरों को देखकर ही मजा लेते हैं।”

उस दिन रात को जश्न के आखिर में जो दावत होनेवाली थी वह आठ बजे के बजाय दस बजे शुरू हुई। अनवर सोचने लगा कि उसने इतना बहुत-सा खाना अपनी उम्र में पहले कभी नहीं देखा था। यह गिनने से कुछ हासिल नहीं था कि कितनी तरह के खाने और पकवान वहां मौजूद थे क्योंकि खाने-पीने के शौकीनों के लिए तो जन्नत का सामान था। अंग्रेजी ढंग का खाना भी था—रेजीडेंट साहब और दूसरे अंग्रेज अफसरों के लिए—और हिंदुस्तानी खाना भी था। आसपास के कुछ रजवाड़ों के लिए, जो गोश्त नहीं खाते थे, शाकाहारी भोजन भी था। कोई आधे दर्जन किस्म का सूप था, कोई एक दर्जन किस्म का



मुर्ग बनाया गया था, कम से कम छः किस्म के पुलाव थे और पुडिंग और मिठाइयो की तो कोई गिनती ही नहीं थी। नवाब साहब हर चीज़ चखते थे और एक-दो कौर खाने के बाद अपनी प्लेट में बचा हुआ खाना मेज़ पर बैठे हुए किसी दूसरे आदमी के आगे बढ़ा देते थे और जिसकी तरफ भी वे अपनी जूठी प्लेट बढ़ाते वह इसे अपने लिए बड़ी इज़्ज़त की बात समझता। लेकिन इस पेढ़ ऐयाश की प्लेट में से जूठन खाने के ख्याल से ही अनवर को मतली हो रही थी। जहाँ तक शराब का सवाल था, अनवर को यह भी नहीं मालूम था कि शराब इतने किस्म की होती है। वि्हस्की और ब्राडी और शैम्पेन और जिन के अलावा, जिनके नाम उसने सुन रखे थे, वहाँ हर रंग की और भी बेशुमार शराबें थी—पोर्ट और शेरी और वर्मूथ और वोदका और बर्गडी और विल रूज और विन ब्लाक, फ्रासीसी शराबें, स्पेनी शराबें और पुर्तगाली शराबें और कई दूसरी शराबें जिनके नाम भी लेना आसान नहीं था। और फिर काकटेल तैयार करने के चांदी के बरतनों में इन शराबों को तरह-तरह से मिलाकर काकटेल तैयार की जा रही थी और लगातार जाम भर-भरकर लोगों को दिए जा रहे थे।

चूँकि दावत बहुत बाकायदा हो रही थी इसलिए लूसी एक नया डिनर गाउन पहनकर आई थी जिसका गला इतना गहरा कटा हुआ था कि उसका गोरा-गोरा सीना आधे से ज्यादा दिखाई देता था। मौका ऐसा नहीं था कि वह नवाब साहब की बगल में बैठती हालाँकि नवाब साहब तो यही चाहते थे। उसे छोटे सरकार और अनवर के बीच में बिठाया गया और जैसे ही उसे मालूम हुआ कि उसकी बगल में बैठा हुआ नौसिखिया लडका शराब नहीं पी रहा है तो उसने उसे सोमरस का आनंद लेना सिखाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली।

“कम आन, लूसी,” छोटे सरकार ने बड़ी खुशामद से कहा, “अनवर को भी पिलाओ न। सारा मज़ा इसकी वजह से किरकिरा हो रहा है।”

“दोचू वरी, प्रीस,” उसने अपने नकली फ्रासीसी लहजे में कहा, “पियेगा क्यों नहीं, लेकिन सिर्फ अपनी प्यारी लूसी के हाथ से पियेगा। वोचू, माई स्वीत लीतिल ब्वाय?”

अनवर को यह अच्छा नहीं लगा कि उसे इस तरह सबके सामने ‘स्वीत लीतिल ब्वाय’ कहा जाए। शर्म के मारे उसका मुँह लाल हो गया और उसने हकलाते हुए कहा, “न...न...नो, थैंक यू। मैं...मैं...आप जानती है...मैं पीता नहीं।”

“कम, कम, स्वीती, तुम्हे मेरे हाथ से तो पीना ही पड़ेगा,” और यह कहकर उसने अनवर की जाघ पर अपना हाथ रखकर जो धीरे से दबाया तो अनवर के जिस्म में एक गुदगुदी-सी दौड़ गई ।

अनवर ने देखा कि उस लम्बी-सी मेज पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक बैठे हुए सारे लोग उसीको देख रहे हैं और वह बुरी तरह खिसिया गया । लूसी ने किसीसे ‘नहीं’ सुनना तो सांखा ही नहीं था और इसीलिए उसने काकटेल का गिलास उठाकर उसके होठों से लगा दिया और उसे फुसला-फुसलाकर, उसकी खुशामद करके और उसे धौंस देकर शराब पिलाने लगी । अनवर या तो शराब पी लेता या फिर बदतमीजी पर उतर आता और गिलास लेकर तोड़ देता, जिसका मतलब था कि एक हंगामा खड़ा हो जाता और वह इस चीज को बर्दाश्त नहीं कर सकता था । इसलिए अनवर ने लूसी के हाथ से गिलास ले लिया और एक घूट में सारा गिलास खाली कर दिया । इसपर वहां मौजूद सारे मेहमानों को बहुत मजा आया और कुछ लोगों ने तो उसकी तारीफ करने के लिए तालिया भी बजाई ।

अनवर को ऐसा लगा जैसे दुहरी धारवाला तेज उस्तरा उसके गले के नीचे धीरे-धीरे उतर गया हो । उसे ऐसा लग रहा था कि या तो उसका दम घुट जाएगा या फिर वह खून की कैं कर देगा । पर इन दोनों में से कोई भी बात नहीं हुई । उसका हलक बहुत जल्दी ही अच्छा हो गया और जब यह दुहरी धारवाला उस्तरा पेट में उतर गया तो उसके बदन के अन्दर एक आग जैसी लग गई । वह सोच रहा था कि अभी थोड़ी देर में उसकी सास के साथ अगर लपटे नहीं तो धुआं तो जरूर निकलेगा, लेकिन सो भी न हुआ । यही तो दिलचस्प बात थी । दिलचस्प ! बेहद दिलचस्प !!

अनवर हंस रहा था, लेकिन किसीकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्यों या किस बात पर हंस रहा है । वह खुद भी नहीं जानता था । वह सिर्फ इतना जानता था कि हर चीज बहुत दिलचस्प थी—उसके सिर के ऊपर फानूस बहुत खतरनाक तरीके से लटक रहा था और ऐसा लगता था कि रोशनियों से जगमगाता हुआ कोई पेड़ उलटा लटका है । सोड़े के साइफन की शक्ल भी अजीब

लग रही थी जिसमे से सोडा इस तरह निकलता था जैसा घोंडा दबाने पर पिस्तौल मे से गोली निकलती है, काकटेल बनाने के बरतनो की शक्ल भी कुछ अजीब थी और सफेद वर्दिया पहने हुए खानसामा भी अजीब लग रहे थे जो एक खास धुन के साथ, सगीत पैदा करते हुए, मस्त होकर काकटेल बना रहे थे, जैसे यह भी कोई अजीब रस्म हो ।

दिलचस्प ! बेहद दिलचस्प !! अनवर के चेहरे पर बेवकूफी जैसी हंसी खेलने लगी । वह खीसे निकाले सबको देख रहा था और उसकी इस मुद्रा ने हर आदमी और चीज को अपनी लपेट मे ले लिया था । हर आदमी कितना हास्यास्पद लग रहा था । नवाब साहब की चमकती हुई गजी चाद के दोनों तरफ दो सींग निकले हुए थे और रेजीडेंट का लाल-लाल चेहरा बिलकुल बदर का पिछवाडा लगता था । लूमी भी जिसकी गुलाबी और सफेद छातिया खुले गलेवाले गाउन से लुका-छिपी खेल रही थी—लेकिन वे उस गाउन के अन्दर छिपी बस इतनी ही थी कि अधा चोर भी पकड़ ले । अनवर अपने इस मजाक पर खुद जोर का ठहाका मारकर हस पडा । लेकिन जाहिर है वह किसी-के सामने इसे दुहरा नहीं सकता था ।

वह तो दूसरो को यह भी नहीं बताएगा कि वह कैसी-कैसी दिलचस्प चीजे देख रहा था । नवाब साहब का सींगदार चेहरा बकरी का सिर बन गया था और रेजीडेंट साहब एक पेड की फुनगी पर बैठे बुलडाग की तरह भूक रहे थे, हालांकि उनकी सूरत अब भी बिलकुल बदर जैसी लग रही थी । मोटे राजा साहब की पगडी मे एक मनहूस-सूरत जिंदा गिद्ध अटका हुआ था पर उन्हें इसकी खबर नहीं थी । और जाहिर है, अनवर उन्हें क्यों बताने लगा ।

“छोटे नवाब, यह अपने दोस्त की तरफ बढा दो । अब लूमी ने उसे शराब क्या पिला दी है कि वह किसी दूसरे की तरफ देखता ही नहीं ।” जब नवाब साहब की भुने मुर्ग की जूठी प्लेट अनवर की तरफ बढाई गई तो सब लोग कहकहा लगाकर हस पडे । लेकिन अनवर खाना ही कब खाना चाहता था । “लो, जल्दी से खा लो,” छोटे नवाब ने उसके कान मे चुपके से कहा, “नहीं तो बडे मिया नाराज हो जाएंगे ।” अनवर को बडे मिया के नाराज हो जाने की कोई परवाह नहीं थी लेकिन उस वक्त वह बहुत उदार हो उठा था, उसका दिल बडा हो गया था इसलिए उसने एक बोटी उठाकर अपने मुह मे रख ली ।



अनवर को बिलकुल याद नहीं था कि वह कब और कैसे डाइनिंग हाल से उठकर चला आया। उसे यह भी पता नहीं चला कि वह कब लडखडाता हुआ महल के उस बरामदे में जा पहुँचा जहाँ बहुत कम रोशनी हो रही थी। और उसे यह भी पता न चला कि लूसी ने उसे वहाँ कैसे ढूँढ निकाला। लेकिन उसे सिर्फ यह महसूस हुआ कि दो पतली-पतली लेकिन ताकतवर बाहों ने उसे बड़ी कामुकता से अपने शिकजे में जकड़ लिया था और एक चेहरा उसके चेहरे पर झुका हुआ था। उस चेहरे के चारों ओर नकली तौर पर सुनहरे किए गए बालों का बड़ा-सा गुच्छा था। उसकी गर्म-गर्म सास में शैम्पेन और वासना की बूँदें बसी हुई थी, उसने अपने लाल-लाल गीले होठ उसके होठों पर रख दिए। लिपस्टिक का स्वाद, भूखे, वासनामय और तजुर्बेकार होठों का स्वाद। और फिर एक पतली-सी साप जैसी जीभ उसके मुँह पर फिरने लगी। बस इसीकी वजह से सब कुछ हुआ। अनवर को मतली होने लगी। उसने अपने-आपको लूसी के चंगुल से छुड़ा लिया और भागकर सीधा लान पर पहुँचा। वहाँ वह अपना दुखता हुआ सिर दोनों हाथों से पकड़कर बैठ गया और कै कराने लगा।

कै करते हुए उसे ऐसा महसूस हुआ कि कोई उसका पेट ऐंठकर निचोड़े दे रहा है, लेकिन हर उलटी के बाद उसकी तबियत कुछ हलकी और बेहतर हो जाती थी। उसके दिमाग के धुँधलेपन में न जाने कहाँ से यह अनोखा विचार आया कि कै के साथ वह न सिर्फ खाना और शराब, नवाब साहब की जूठी प्लेट का वह मुर्गा और कड़वी काकटेल और लूसी की लिपस्टिक का वह बासी मीठा स्वाद बाहर उगल रहा है बल्कि सलामपुर आने के बाद से उसने जो कुछ देखा और सुना था वह सब कुछ बाहर निकाले दे रहा है। वह एक पूरी व्यवस्था को, एक पूरी जीवन-पद्धति को, एक पूरे युग को, जो सड़ चुका था और ज़हरीला हो चुका था, बाहर निकाले दे रहा है।



## मुहब्बत का जाल

अलीगढ़ वापस पहुँचकर अनवर बहुत खुश हुआ। दोस्तों के साथ बरामदों के चक्कर था फूलों की क्यारियों के बीच धूप में नहाए हुए लान पर टहलना और दुनिया-भर की बातों का चर्चा करना। कुछ ऐसा लगता था कि सभीपर राजनीति का भूत सवार था और हर तरफ साइमन कमीशन का चर्चा हो रहा था, जो इस बात का पता लगाने के लिए देश का दौरा कर रहा था कि हिन्दु-स्तानी किस हद तक अपना शासन खुद चलाने के लायक हैं और साथ ही देश में फैली हुई आतंकवाद की लहर की भी जाँच कर रहा था। बीच-बीच में इस तरह की बातों का भी चर्चा रहता था कि एक नया एंग्लो-इंडियन स्टेशन मास्टर आया है जिसके दो बहुत कातिल जवान लौडिया हैं जिनके दर्शन करने के लिए स्टेशन जाना जरूरी है या यह कि अपना अहमक ज्वाइट मजिस्ट्रेट छुट्टियों में घर गया था और वहाँ से बड़ी पटाखा बीवी लाया है इसलिए यूनियन की अगली डिवेट में उसे बुलाना जरूरी हो गया है। लेकिन इतने में कोई अखबार हाथ में लिए भागा-भागा आता और हापते हुए कहता, 'एक और बम फटा, इस बार मनमाड के पास' और लौडियों का चर्चा छोड़कर नौजवान इन्कलाबी अहिंसा, आतंकवाद और मजदूरों की हड़तालों की बातें करने लगते। ..

अनवर को यह देखकर ताज्जुब हुआ कि उसका दोस्त 'राज' भी, जिसे यो दुनिया की किसी बात में दिलचस्पी नहीं थी, इस बीमारी का शिकार हो गया था। वह छुट्टियों में लखनऊ गया था और उसने अपनी आँखों से देखा था कि रायल कमीशन के खिलाफ शांतिपूर्वक प्रदर्शन करते हुए और 'साइमन, वापस जाओ' का नारा लगाते हुए कांग्रेसी वालंटियर्स पर किस बेरहमी से घोड़े दौड़ा दिए थे। उसने बताया कि पुलिस के अंग्रेज अफसरों ने वालंटियर्स पर घोड़े दौड़ा दिए थे और जो लोग घोड़ों की टापो के नीचे आने से बच गए थे और अपनी जगह पर डटे रहे थे उनकी खोपड़ियाँ लाठियों से खोल दी गई थी। इस घटना

का वर्णन करते समय शायर का चेहरा गुस्से से सफेद पड़ जाता था और उसका गला रुध जाता था और वह मुश्किल से ही बोल पाता था। “ये—ये—ये हरामी—इन्होंने जवाहरलाल तक को नहीं छोड़ा। मैंने अपनी आख से एक पुलिस अफसर को उनपर घोड़ा दौड़ाते हुए देखा। और कुछ ऐसा भी नहीं था कि वे भीड़ में थे कि वह उन्हें पहचान न पाया हो। वे सड़क के बीच में अकेले खड़े थे और चारों तरफ पुलिसवाले वालटियरो पर लाठिया बरसा रहे थे। वे चाहते तो एक तरफ को हट जाते और अपने-आपको बचा लेते पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे शेर की तरह बहादुरी के साथ वहीं डटे रहे, एक घुड़सवार पुलिसवाला अपनी लाठी घुमाता हुआ उनकी तरफ बढ़ा और बड़ी बेरहमी से दो लाठिया उनकी पीठ पर जड़ दी पर वे टस से मस न हुए। यह है अपना जवाहर ! मैं सच कहता हू कि अगर एक वालटियर ने आगे बढ़कर तीसरा वार, जो जवाहरलाल के सिर को निशाना बनाकर किया गया था, अपने ऊपर न रोक लिया होता तो उन जालिमों ने उन्हें मार ही डाला होता।”

हमारा जवाहर ! अलीगढ़ की तरह ही सारे देश के नौजवान जवाहरलाल को बड़े प्यार से अपना जवाहर कहते थे। वे उनके अपने थे, और वे सब भी उनके थे। अनवर को याद था कि उसने उन्हें डाक्टर असाही के बगले पर देखा था। उस वक्त वे अपने बाप के साथ थे। मोतीलाल के चेहरे पर तेज था और उनके सफेद बाल चांदी की तरह चमकते थे। उनके रोबदार व्यक्तित्व के सामने उस समय अनवर को इस खूबसूरत और शांत नवयुवक का व्यक्तित्व भी कुछ माद लगा था। फिर भी अनवर को एक क्षण के लिए ऐसा लगा था कि इस खूबसूरत चेहरे और खिलाड़ियों जैसे दुबले-पतले फुर्तीने शरीर में बहुत ताकत छिपी हुई है। अनवर को अफसोस हो रहा था कि उस वक्त उसने उनसे जान-पहचान क्यों न पैदा कर ली क्योंकि उसके बाद ही वे बूढ़ों और नौजवानों के हृदय-सम्राट हो गए थे। सारे देश में लाखों नौजवान उन्हें ‘हमारा जवाहर’ कहने लगे थे। ‘राज’ की बातें सुनते समय अनवर को इस बात पर आश्चर्य होता था कि इतने बहुत-से नेताओं में जवाहरलाल की तरफ ही नवयुवक क्यों आकर्षित होते थे। क्या इसका कारण यह था कि वे सब नेताओं में सबसे कम उम्र के थे ? या इसका कारण यह था कि खादी के कपड़े पहनकर भी वे इतने खूबसूरत और स्मार्ट लगते थे ? अनवर ने उन्हें कभी भाषण देते नहीं सुना था पर जिन लोगों

ने सुना था वे उन्हें बहुत अच्छा वक्ता नहीं समझते थे। असल में नौजवान पीढ़ी के लोग उनके बोलने के ढंग की वजह से नहीं बल्कि जो बातें वे कहते थे उनकी वजह से उन्हें अपना समझते थे। पुराने नेता बहुत सोच-सोचकर और रुक-रुक-कर अपनी बात कहते थे और उन्होंने बरसों की कोशिश के बाद यह तरीका अपनाया था। लेकिन इनके मुकाबले में जवाहरलाल ने नौजवानों जैसी बेचैनी थी, बल्कि उनमें अघेपन की हद तक एक आदर्शवाद था। उनके हाल ही के एक भाषण के एक टुकड़े का अनवर पर बहुत गहरा असर पड़ा था। उसने उस टुकड़े को अखबार से निकल करके रट लिया था। बंगाल छात्र-संघ के अधिवेशन में अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए जवाहरलाल ने कहा था—“नौजवानों का आंदोलन एक बहुत बड़ा इन्कलाब पैदा करेगा और हर चीज को बदल देगा, हर चीज को सुधार देगा। यह बगावत का जोश है, हर उस चीज के खिलाफ बगावत जो बुरी है। यह ऐसी लहर है जो इतजार नहीं करती, किसीका इतजार नहीं करती।”

‘राज’ कह रहा था, “अपना जवाहर ही एक ऐसा नेता है जिसकी बात पूरी तरह हमारी समझ में आती है और जिसके पीछे हम चल सकते हैं।” ‘राज’ में सचमुच कमाल का परिवर्तन हुआ था। पहले वह जाड़ों में भी मलमल के बेलदार कुरते पहना करता था लेकिन अब उसने मोटे से मोटा खद्दर पहनना शुरू कर दिया था। कई महीने से उसने एक भी गजल नहीं लिखी थी। अब वह सिर्फ क्रांतिकारी और राजनीतिक नज़्मे लिखता था। अनवर ने देखा कि ‘राज’ अब अपने बाएँ हाथ से कोई चीज नहीं उठा सकता था, उस हाथ से वह चायदान भी नहीं उठा सकता था। लाठी-चार्ज में उसकी कलाई की हड्डी टूट गई थी। और हालाँकि ‘राज’ कभी इस बात को मानता नहीं था लेकिन अनवर को शक था कि लाठी का वह तीसरा वार उसीने रोका था।

सचमुच यूनिवर्सिटी वापस आकर दोस्तों के साथ गरमागरम राजनीतिक बहसे करने में अनवर को बहुत मजा आता था, उन दोस्तों के साथ जिनकी रंगों के खून में भी वही बेचैनी की धड़कन थी। लेकिन इससे भी ज्यादा खुशी की बात तो उसके लिए यह थी कि वह एक बार फिर सलमा के पास आ गया था



‘जिसके बिना जिंदगी की हर चीज बेकार थी ।’ अनवर ने उर्दू और अंग्रेजी की कविताएँ बहुत पढ़ी थी, लेकिन जैसाकि एक बार ‘राज’ से बहस करते हुए उसने बड़ी हिंकारत से कहा था कि उसे इन ‘आशिकमिजाज लोगो की बकवास’ से सख्त नफरत है । लेकिन सलमा ने कविता का सारा रहस्य उसे समझा दिया था । वह साकार कविता थी । लेकिन जल्द ही अनवर यह भी महसूस करने लगा कि उनकी बढ़ती हुई घनिष्ठता में समय का अभाव बहुत विघ्न डालता है ।

सिनेमाघर के जाने-पहचाने अधिकार में सलमा के पास बैठने में कितना आनंद था । सर्दियों का मौसम आधा बीत चुका था । सलमा ने अपने शरीर पर एक ऊनी शाल कसकर लपेट रखा था । बत्तिया बुझ गईं और पर्दे पर विज्ञापन दिखाए जाने लगे । अनवर का हाथ चुपके से सलमा के छोटे-से कोमल हाथ तक पहुँच गया और उस सर्दी में एक-दूसरे के शरीर में सुखद गर्मी की एक लहर-सी दौड़ने लगी जिसने उन दोनों के दिलों को वासना के सूत्र में बांध दिया ।

विज्ञापनों के बाद न्यूजरील दिखाई गई जिसमें सलमा को बहुत ही थोड़ी दिलचस्पी थी । अनवर सोच रहा था कि शायद उसमें राष्ट्रीय महत्त्व की भी कुछ घटनाएँ दिखाई जाएँ । और न्यूजरील में इस तरह की एक घटना थी भी : कलकत्ता में कांग्रेस का चौतीसवा अधिवेशन । यह दो महीने पहले की घटना थी, लेकिन सचमुच यह एक ऐतिहासिक घटना थी । अनवर के लिए और सिनेमाघर में बैठे हुए हजारों दर्शकों के लिए वह किसी भी प्रकार पुरानी गैरदिलचस्प घटना नहीं थी । लोग परदे पर चलती हुई तस्वीरों के नीचे छपे हुए शब्दों को बुदबुदाकर पढ़ रहे थे । जब परदे पर जनता के प्रिय नेताओं की सूरत दिखाई देती तो सारा हाल तालियों से गूँज उठता—ये थे पंडित मोतीलाल और ये महात्मा गांधी, सुभाष बोस जैसे ओजस्वी और जोशीले इटैलेक्चुअल नेता के शरीर पर कांग्रेस के वालंटियरों के कमांडर-इन-चीफ की वर्दी कुछ बेतुकी लग रही थी; उसके बाद अनवर को डाक्टर असारी की जानी-पहचानी सूरत दिखाई दी, और अंत में जवाहरलाल नेहरू आए ।... अपने हीरो की सूरत देखते ही दर्शक पागलों की तरह तालिया बजाने लगे और जय-जयकार करने लगे । अनवर भी पूरे जोश के साथ तालिया बजाने लगा ।



अपना बाया हाथ सलमा के कोमल गुदगुदे हाथ में से निकालते ही अनवर को ऐसा लगा कि सलमा पर एक अजीब प्रतिक्रिया हुई जिसका कारण उसकी समझ में नहीं आया। सहसा उसे ऐसा लगा कि सलमा उससे दूर हो गई है और हालांकि वह उसके पास से तिल-भर भी नहीं हटी थी फिर भी अनवर को ऐसा लगा कि अभी एक क्षण पहले वे भावनाओं के जिस बंधन में बंधे हुए थे वह टूट गया। बगल में बैठी हुई सलमा मीलों दूर मालूम होने लगी।

न्यूजरील में दिखाए गए ऐतिहासिक दृश्यों का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया और जब न्यूजरील खत्म हुई और परदे पर असली फिल्म के अभिनेताओं और निर्देशक आदि के नाम आने लगे तो उसने सतोष की सांस ली। उस फिल्म में सुलोचना और बिलिमोरिया काम कर रहे थे। सलमा इस फिल्मी जोड़ी की दीवानी थी और अनवर समझता था कि सलमा की उस विचित्र प्रतिक्रिया का जो भी कारण रहा हो पर अब सब कुछ ठीक हो जाएगा।

लेकिन परदे पर पहली बार सुलोचना का पूरा चेहरा दिखाई देते ही सलमा ने उसकी तरफ मुड़कर कहा, “आओ चले।” इससे पहले कि अनवर कुछ कह पाता सलमा उठकर चल दी। वह लोगों के पैरों में उलझती उनकी झुंझलाई हुई बातों की परवाह किए बिना बाहर चली जा रही थी।

“मैं समझता था कि तुम सुलोचना की फिल्म देखने के लिए बहुत बेकरार थी, है न?” अनवर ने तागे पर चढ़ते हुए पूछा। वह अभी तक बौखलाया हुआ था।

“हां, थी तो, लेकिन अब जी नहीं चाहता,” सलमा ने कहा, “और फिर यह भी बात है कि पापा आज बाहर खाना खा रहे हैं। चलो, घर चलकर खाना खाएंगे फिर मुझे तुमसे कुछ बातें करनी हैं।”

बैठक के आतिशदान में आग जल रही थी। अनवर और सलमा ने सोफा उसकी सुखद आंच के सामने खींच लिया और बत्ती जलाए बिना ही वहां बैठ गए। खाना खाते हुए तमाम वक्त सलमा का रवैया दोस्ती का तो रहा था पर वह कुछ दूर-दूर-सी रही थी और इस वक्त भी, जबकि वह उसकी बगल में बैठी हुई थी और उसके चेहरे पर नाचती हुई लपटों की ज्योति की दमक थी, अनवर को उसके रवैये में एक निश्चित रूखापन दिखाई दिया।

“तुम्हें सिनेमा में क्या हो गया था?” अनवर ने निस्तब्धता भरा करते

हुए कहा। “मैं तो बिल्कुल डर ही गया था।”

अनवर के सवाल के जवाब में सलमा ने खुद एक सवाल पूछा, “तुमने अपना हाथ मेरे हाथ से क्यों खींच लिया था?” और अपनी काली-काली निर्मल आखों से उसे इस तरह देखा मानो उसपर आरोप लगा रही हो। उसके स्वर से ऐसा लगता था कि उसके अभिमान को ठेस पहुंची है।

“जाहिर है, न्यूजरील में जवाहरलाल को देखकर तालिया बजाने के लिए। तुम क्या समझी?”

“तो तुम्हारे लिए जवाहरलाल की अहमियत मुझसे ज्यादा है।” सलमा ने बड़ी गंभीरता से कहा। उसे इस बात का आभास भी न था कि वह कितनी हास्यास्पद और बेतुकी तुलना कर रही है।

अनवर कहकहा लगाकर हस पड़ा। “तो तुम्हें जवाहरलाल से जलन हो रही है।”

सलमा का रुठा हुआ मूड कुछ ठीक हुआ और उसने हसी करते हुआ कहा, “क्यों नहीं।” और फिर उसने अनवर का हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा, “मुझे हर उस आदमी से और हर उस चीज से जलन होती है जो तुम्हें एक पल के लिए भी मुझसे दूर हटाती है।”

एक क्षण के लिए तो अनवर उसकी आखों में आधिपत्य की वह भावना देखकर सहम गया। वह उसकी इस ईर्ष्या को निराधार साबित करने के लिए जितनी भी दलीले देना चाहता था वे सब उसकी जुल्फों की भीनी-भीनी महक को अनुभव करते ही गायब हो गईं।

सलमा का सिर अनवर की बांह पर टिका हुआ था और आग की हलकी-हलकी रोशनी में वह पहले से भी ज्यादा खूबसूरत, ज्यादा आकर्षक लग रही थी। अनवर ने उसकी आखों में आखें डालकर देखा और उनमें अपने प्रति प्यार का सागर उमड़ता देखकर वह बिल्कुल उसके वश में हो गया। सलमा के होठ, जिनपर लिपस्टिक की एक बहुत ही हलकी-सी तह थी, आगे खुले हुए थे और जब अनवर ने उसके सगमरमर जैसे चिकने माथे पर से उसके रेशमी काले बालों की लट पीछे हटाई तो सलमा की गर्म सास का एक भोका उसके गाल को गुदगुदा गया। सलमा के होठों को चूमने का उसने कोई इरादा नहीं किया था। लेकिन न जाने कैसे उसके होठ सलमा के होठों से चिपक गए।

उसने पहले कभी किसीके होठ नहीं चूमे थे । उसने कभी किसी लडकी के होठ नहीं चूमे थे । शराब के नशे में लूसी ने जो कुछ उसके साथ किया था वह तो बहुत ही घिनावना अनुभव था जिसे उसने कै के साथ उगल दिया था । उसे सिर्फ एक धुधला-धुधला अदाजा था कि 'होठ से होठ लगाने' का क्या मतलब होता है । अब उसे मालूम हो गया था लेकिन फिर भी वह अपनी खुशी को बयान नहीं कर सकता था । सलमा ने भी मस्त होकर उसे भरपूर योग दिया और उसकी इस प्रतिक्रिया से प्रोत्साहित होकर अनवर ने कई बार उसके होठों को चूमा और उसे ऐसा लगा कि उसके जीवन के सबसे कोमल और सबसे प्रिय अनुभव इस एक क्षण में सिमट आए हैं—जितने सूर्यास्त उसने अपने जीवन में देखे थे उन सबकी लाली, जितने फूल उसने सूँघे थे उन सबकी सुगंध, गीली मिट्टी का मादक सोधापन, ग्रीष्मऋतु में प्रातःकाल बहती हुई ठंडी हवा के झोंकों का कोमल स्पर्श, कहीं दूर बजती हुई बासुरी की जादू-भरी धुन, नर्तकी के पैरों में बंधे हुए घुघरुओं की रुनभुन और मजीरों की आवाज़ ।\*\* उसी एक क्षण में उसकी सारी साहसपूर्ण कल्पनाएँ भी सिमट आई थी, उड़नेवाले घोड़े और मन को रिझानेवाली हूरे, सितारों-जड़े आसमान तक पहुँचते हुए हाथ और कामदानी के आसमानी रुमाल की तरह उसे सहज ही धरती पर उतार लाते हुए हाथ । उस एक क्षण में यह सब तो था ही, इसके अलावा भी बहुत कुछ था । क्योंकि परम सुख की इस घड़ी में एक वेदना भी मिली हुई थी और एक कामना की पूर्ति ने दूसरी कामना को जन्म दिया था जो रह-रहकर काटे की तरह चुभती थी और जो पहली कामना से अधिक प्रबल और अधिक डरावनी थी ।

आतिशदान में आग बुझ चली थी । सलमा ने अपने-आपको अनवर के आलिंगन से छुड़ाया तो वह कुछ सिहर उठी और बड़े प्यार से अनवर के बालों को सहलाते हुए बोली, "अब तुम जाओ, नहीं तो हम लोग अपने होश-हवास खो बैठेंगे । और पापा भी अब आते ही होंगे ।"

इस एक क्षण में वह कितनी समझदार हो गई थी, कितनी बड़ी हो गई थी । सलमा की बात का आशय समझकर अनवर शरमा गया । यह विचार आते ही कि वह अपनी काम-भावना के आवेश में सलमा को नुकसान पहुँचा सकता था, उसे एक क्षण के लिए ऐसा लगा कि किसीने उसके सीने में छुरा उत्तार दिया है । सलमा ने जब उसे रास्ता दिखाने के लिए बरामदे की बत्ती



जलाई तो अनवर को ऐसा लग रहा था कि सारी दुनिया उसीको देख रही है और सलमा से बिदा होते समय वह सोच रहा था कि अगर वह अपनी भावनाओं के आवेश में और आगे बढ़ गया होता तो वह उम्र-भर अपने-आपको माफ नहीं कर सकता था ।

“तुम्हें देखकर तो ऐसा लगता है जैसे तुम्हें पछतावा हो रहा है,” सलमा ने उसे छेड़ते हुए कहा । पछतावा ? वह सलमा को बताना चाहता था कि उसने उसे कितना अपार सुख दिया है, वह बताना चाहता था कि वह सलमा का कितना एहसानमंद है । लेकिन उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि इस बात को कैसे कहे । इसलिए वह सलमा की तरफ देखता रहा, उसे मालूम था कि वह बेवकूफों की तरह उसे ताक रहा है फिर भी वह अपलक उसे निहारता रहा । लेकिन सलमा समझ गई और मुस्कुरा दी और अनवर भी मुस्कुरा दिया ।

जिस वक्त वह अहाते से बाहर निकल रहा था उसे सलमा की आवाज सुनाई दी, “भूलना नहीं, कल इतवार है । जरा जल्दी आ जाना ।”

जिस वक्त अनवर हास्टेल वापस लौटा उस वक्त उसके होठों पर चुबन का स्वाद बाकी था । आधी रात का वक्त था और अनवर ने सोचा था कि ‘राज’ और असगर सो गए होंगे । चूँकि अनवर ‘राज’ के दिल की हालत जानता था इसलिए जब भी वह सलमा के घर से वापस लौटता था उसे ऐसा लगता था कि उसने ‘राज’ के प्रति कोई अपराध किया है और अब तो वह लगभग रोज़ ही सलमा के यहाँ जाने लगा था । जहाँ तक असगर का सवाल था उसे भावुकता छू तक नहीं गई थी और वह हर बात का मजाक उड़ाता था । इसीलिए वह अनवर को भी छेड़ता रहता था और उससे पूछता रहता था कि उसका ‘रोमांस’ किस मञ्जिल में है । लेकिन वह कुछ इस तरह घुमा-फिराकर पूछता था कि उसमें एक अश्लीलता का पुट आ जाता था । जब उसने देखा कि उसके कमरे में बत्ती अभी तक जल रही है तो वह इस बात के लिए तैयार हो गया कि अब कम से कम आधे घंटे तक उसे असगर के बेहूदा सवाल और ‘राज’ की बेतुकी खामोशी का सामना करना पड़ेगा ।

लेकिन जब उसने दरवाज़ा खटखटाया तो एक बिल्कुल ही अजनबी आदमी



ने दरवाजा खोला। वह एक दुबला-पतला लडका था, जिसके चेहरे का रंग बिलकुल पीला था; वह एक ढीला-ढाला ओवरकोट पहने था और उसके बाल उलझे हुए थे। एक कोने में बिस्तरबंद और एक छोटा-सा सूटकेस रखा था, जिससे पता चलता था कि वह अभी शाम को ही वहां पहुंचा था और रात को उनके कमरे में ठहरने का इरादा रखता था। 'असगर या 'राज' का कोई दोस्त होगा,' अनवर ने सोचा लेकिन यह अजनबी उसे देखकर इस तरह मुस्करा क्यों रहा था? शायद असगर ने अपनी आदत के मुताबिक इसे भी अनवर के 'रोमांस' के बारे में बता दिया होगा और इसीलिए उसके चेहरे पर ऐसा भाव था मानो वह अनवर का मजाक उड़ा रहा हो। सूरत कुछ देखी हुई लग रही थी फिर भी अनवर उसे पहचान नहीं पा रहा था। उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसने यह सूरत कभी ख्वाब में देखी हो।

“हैलो अनवर!” आवाज भी पहचानी हुई थी, “पहचाना नहीं?”

“कौन, रतन?” वह चिल्लाकर अपने दोस्त के गले से लिपट गया। “लेकिन तुम्हारे बाल...” रतन ने अपने होठों पर उगली रखकर उसे चुप कर दिया और खरट्टे लेते हुए असगर और पीछे के कमरे में लेटे हुए 'राज' की तरफ इशारा किया।

“बाद में सब कुछ बताऊंगा,” रतन ने बैठते हुए कहा, “पहले यह बताओ क्या मैं कुछ दिन तक यहां तुम्हारे मेहमान की तरह रह सकता हूँ? मुझे तुम्हारा खत मिला था और तुमने जो यकीन दिलाया था उसीके भरोसे मैं चला आया। लेकिन शायद तुमने अपना खयाल बदल दिया हो।”

“कैसी बात करते हो?” अनवर ने झिड़ककर कहा, “इसमें पूछने की क्या बात है? तुम बिलकुल ठहर सकते हो और ठहरोगे। मैं तुम्हारे लिए चारपाई का इंतजाम करता हूँ।”

“और हा, देखो मैं तुम्हारे दोस्तों को अपना नाम-पता बता चुका हूँ। यह रहा मेरा कार्ड,” और यह कहकर रतन ने एक लम्बोतरा कार्ड अनवर के आगे बढ़ा दिया जिसपर छपा हुआ था “रामलाल चोपड़ा, इश्योरेस एजेंट।”

तो अब रतन इस नाम से इधर-उधर घूम रहा था।

“समझ गए न?”

अनवर ने कार्ड वापस करते हुए सिर हिला दिया। उसने देखा कि दाढ़ी

मुडवा देने के बाद रतन पहले से ज्यादा दुबला और पीला लगने लगा था लेकिन अब उसके बात करने के ढंग में एक नया आत्मविश्वास था और वह बहुत नपे-तुले शब्दों में अपनी बात कहता था। लडकपन का जोशीलापन अब बिलकुल भी बाकी नहीं रह गया था। यह एक मर्द की आवाज़ थी जो यह जानता था कि वह क्या चाहता है और जो कुछ वह चाहता है उसे कैसे पा सकता है, यह एक ऐसे मर्द की आवाज़ थी जिसके मन में कोई शका नहीं थी केवल आस्था थी।

अपने दोस्त को इस नये रूप में देखकर अनवर उसकी तरफ आकर्षित भी हुआ और साथ ही उसे उससे कुछ डर भी लगा।

अगले दिन इतवार था इसलिए अनवर दोपहर का खाना खाने के बाद अपने दोस्त को लेकर मराठों के किले की तरफ टहलने चला गया। यह किला यूनिवर्सिटी से दो मील उत्तर की तरफ था। इस सुनसान जगह में शायद ही कभी कोई आता था इसलिए वे बड़ी देर तक बिना किसी विघ्न-बाधा के दिल खोलकर बातें कर सकते थे।

रेल का फाटक पार करने के बाद जब अनवर को पक्का यकीन हो गया कि कोई उनकी बात नहीं सुन सकता तो उसने वह सवाल पूछा जो कल रात से उसे परेशान कर रहा था। उसने कहा, “रतन, मैं इस बात की माफी चाहता हूँ कि कल रात मैं तुम्हें देखते ही पहचान नहीं सका। बात यह है कि मैंने कभी ख़ाब में भी नहीं सोचा था कि तुम्हारी दाढ़ी-मूँछ इस तरह बिलकुल सफ़ाचट होगी। यह तो बताओ कि तुमने आखिर अपनी दाढ़ी और केश कटवा कैसे दिए। तुम्हारे मज़हब में तो यह मना है ना?”

रतन कुछ देर तक चुपचाप चलता रहा, फिर बोला, “एक बहुत बड़े आदमी से जब यही सवाल किया गया था तो उसने इसका जवाब यह दिया था कि जब कोई कौम की खातिर सिर कटाने पर तैयार हो तो वह बाल कटाने से क्या डरेगा। दाढ़ी-मूँछें सफ़ाचट करवा देने से और केश कटवा देने से हमारा भेस बड़ी आसानी से बदल जाता है और हम पुलिस के पंजे से बचे रहते हैं।”

अनवर अभी तक उस दिलेर आदमी की बात सोच रहा था जिसका हवाला

अभी रतन ने दिया था। उसने पूछा, “किसने कही थी यह बात ? बहुत ही कमाल का आदमी रहा होगा कोई।”

“वह है ही कमाल का आदमी—हमारा नेता भगतसिंह।” और यह नाम लेते वक्त रतन की आवाज में श्रद्धा भी थी और प्यार भी।

भगतसिंह ! अनवर ने अपने साथ के कुछ पजाबी लड़कों से उसका नाम सुना था। उसने नौजवान भारत सभा के नाम से नौजवानों का एक क्रांतिकारी संगठन बनाया था और कहा जाता था कि पंजाब में आतंकवादी आंदोलन का सर्वेसर्वा वही था। काफी अरसे से वह कई सूबों की पुलिस को तिकनिया का नाच नचा रहा था और अभी तक पुलिस के पजे में नहीं आया था।

“साडर्स को भगतसिंह ने ही गोली मारी थी न ?” अनवर ने पूछा। आम तौर पर लोगों का यही खयाल था और उसने इसी खयाल को दुहरा दिया था।

“यह बताने की मुझे इजाजत नहीं है,” रतन ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया और फिर अनवर पर अपनी इस बात की प्रतिक्रिया देखकर उसने कहा, “तुम्हें भी नहीं, हालांकि मैं तुम्हारे ऊपर भी उतना ही एतबार करता हूँ जितना खुद अपने ऊपर। मैं पार्टी का डिसिप्लिन नहीं तोड़ सकता। इसके अलावा यह बात भी है कि इन्कलाबी काम मैं इस बात का महत्त्व नहीं होता कि कोई काम किसने किया है। जिस उगली से पिस्तौल का घोड़ा दबाया गया था वह किसीकी भी उगली हो सकती थी, लेकिन साडर्स को किसी एक आदमी ने नहीं मारा। वह एक पूरी कौम के गुस्से का शिकार हुआ और इस तरह कौम ने साडर्स में उसके उस वार का बदला ले लिया जिसने लाला लाजपतराय की जान ली थी।”

रतन की वह रहस्य-भरी चिट्ठी मिलने के बाद से एक सवाल अनवर को लगातार परेशान कर रहा था और अब उसे वह सवाल पूछना ही पड़ा। “रतन, मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम मुझे अपनी पार्टी का कोई भेद बताओ, लेकिन एक बात मैं तुमसे जरूर जानना चाहता हूँ। उस बात की मेरे लिए बहुत अहमियत है। क्या तुमने...खुद अपने हाथों से...अभी तक किसीका...”

“...खून किया है ?” रतन ने ये भयानक शब्द कहकर बात पूरी कर दी जिन्हें कहने में अनवर को इतनी कठिनाई हो रही थी। “सच पूछो तो मैंने नहीं किया है। अभी तक मुझसे यह करने को कहा ही नहीं गया है। लेकिन यह



कोई खास बात नहीं है। बस अभी तक कोई मौका नहीं निकला। जब वक्त आएगा तो मैं पीछे नहीं हटूंगा।”

रतन ने जिस ढंग से यह बात कही उसमें एक नई कठोरता थी जिसे देखकर अनवर बहुत चिन्तित हुआ। उसकी यह कठोरता उसकी पुरानी कटुता से भिन्न थी, और अनवर जानता था कि रतन ने जिन परिस्थितियों में अंग्रेजों के हाथों अपने पिता की हत्या होते देखी थी उन्हींके कारण उसकी भावनाओं में कटुता आ गई थी। फिर भी उसे यह जानकर सतोष हुआ कि उसका दोस्त अभी तक हत्यारा नहीं बना है। “अच्छा अनवर, अब तुम मुझे एक बात बताओ। मान लो अगर मैंने किसी अंग्रेज की या किसी पुलिस अफसर की हत्या की होती तो क्या तुम मुझसे नफरत करने लगते—क्या तुम मुझे पुलिस के हवाले कर देते?”

“हर्गिज नहीं। मुझे यकीन है कि मैं ऐसा कभी न करता,” अनवर ने उसे यकीन दिलाते हुए कहा। “मैं तुम्हारे दहशतपसन्दी के उसूलों के खिलाफ जरूर हूँ लेकिन मैं तुम्हारे मकसद की इज्जत करता हूँ।”

और इस तरह वे दोनों हिंसा और अहिंसा के नैतिक पहलू पर बहस करने लगे। उन्हींकी तरह हजारों दूसरे नौजवान सारे देश में इसी सवाल पर बहस कर रहे थे। अनवर ने शुरू में ही बिना किसी सोच-विचार के गांधीजी के सिद्धान्त को अपना लिया था क्योंकि वह उसे अच्छा लगा था। बाद में गांधीजी के लेख और पुस्तकें और उनके भाषणों का अध्ययन करने से उसका विश्वास और पक्का हो गया था। वह जोर देकर रतन को यह समझा रहा था कि स्वतन्त्रता जैसे अच्छे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए साधन भी अच्छे ही इस्तेमाल किए जाने चाहिए। रतन लक्ष्य और साधनों में इस तरह अन्तर करने का ही मजाक उड़ा रहा था और यह बहस कर रहा था कि जुल्म का तख्ता उलटने के लिए कोई भी साधन उचित है। “साम्राज्यवाद की हिंसा का जवाब हिंसा से ही दिया जा सकता है,” उसने जोर देकर कहा और साथ ही यह भी कहा कि गांधीजी की अहिंसा बुद्धिदलों के लिए एक आड है। गांधीजी के बारे में रतन के मुह से ऐसी धृष्टता की बात सुनकर अनवर को बहुत धक्का पहुंचा और उसने अहिंसा के सिद्धान्त को उचित साबित करने की कोशिश करते हुए रतन को यह बताया कि सम्य जीवन का आधार प्रेम है, घृणा नहीं और यह कि जो स्वतन्त्रता अहिंसा के जरिये प्राप्त की जाएगी वह अराजकता और रक्तपात



द्वारा प्राप्त की गई स्वतन्त्रता से ज्यादा स्थायी होगी। “अगर हम सचमुच गांधीजी के कहे पर चले तो एक दिन हमारे दुश्मन भी हमारी बात को मानने लगेंगे और यह समझेंगे कि हमारी मांगे सही हैं।”

रतन उसका जवाब देने ही जा रहा था कि सहसा उसे अपने सिद्धान्त के पक्ष में एक व्यावहारिक तर्क पेश करने का मौका मिल गया और उसका खयाल था कि इस व्यावहारिक तर्क के आगे बाकी सारे तर्क बेकार हो जाएंगे।

अब पुराने किले की दीवारों और चारों ओर की खाई दिखाई देने लगी थी। अनवर ने चक्करदार सड़क छोड़कर घास की झाड़ियों के बीच से होते हुए छोटे रास्ते से जाने का फैसला किया। वे बहस में खोए हुए ऊँची-ऊँची घास के बीच से होकर जा रहे थे कि इतने में अनवर को ऐसा लगा कि उसका दाहिना पैर किसी नर्म और चिकनी चीज़ पर पड़ा। वह अभी ठीक से सभल भी न पाया था कि घास में सरसराहट हुई और दूसरे ही क्षण अनवर ने देखा कि एक ज़हरीला काला साप अपनी कुडली तोड़कर आगे बढ़ रहा है। यूनिवर्सिटी के आसपास के इलाके में बेहद साप थे और अनवर जानता था कि वे कितने ज़हरीले थे। अनवर को जैसे काठ मार गया और वह पत्थर की मूरत की तरह वहीं खड़ा का खड़ा रह गया जैसे किसीने उसपर जादू कर दिया हो। डर के मारे अनवर की आवाज़ बन्द हो गई थी इसलिए वह रतन को, जो उससे कुछ ही कदम आगे गया होगा, पुकार भी नहीं सकता था। साप ने हमला करने के लिए अपना चितकबरा फन ऊपर उठाया और अनवर टकटकी बाँधे उसे देखता रहा। उसके ज़हरीले दाँतों के बीच से एक पतली-सी दुहरी जवान विजली की तरह लपकी और अगले ही क्षण उस काले साप ने अनवर को डस लिया होता। लेकिन इतने में गोली चलने की आवाज़ आई और साप मृत्यु की पीड़ा से विह्वल होकर ज़मीन पर लोटने लगा। अनवर ने सतोष की साँस लेकर नज़र ऊपर उठाकर देखा लेकिन उसका दिल अभी तक दहला हुआ था। रतन हाथ में पिस्तौल लिए खड़ा हँस रहा था और पिस्तौल में से अभी तक धुआँ निकल रहा था।

“देखा तुमने, इन ज़हरीले काले साँपों का दिल मुहब्बत और अहिंसा से

नहीं बदला जा सकता।” अपने दोस्त की शारीरिक और नैतिक बेचैनी पर रतन को कुछ खुशी हो रही थी। उसने कहा, “इन जहरीले सापो को गोली से ही उड़ाना होगा और यही बात साम्राज्यवादी सापो के बारे में भी सच है।”

लेकिन अनवर उस काले साप को भूल चुका था और वह यह भी भूल चुका था कि वह अभी मौत के मुह से बाल-बाल बचा है। वह तो रतन के हाथ की उस पिस्तौल को टकटकी बांधे देख रहा था। वह जानता था कि उसका दोस्त आतंकवादी है फिर भी उसे सचमुच पिस्तौल चलाते देखकर अनवर को एक आघात-सा पहुंचा था। तो उसने ठीक ही कहा था कि जब किसीको मारने का वक्त आएगा तो वह पीछे नहीं हटेगा।

“अच्छा आओ,” रतन ने पिस्तौल अपने ओवरकोट की अन्दरवाली किसी चोर-जेब में रखते हुए कहा, “तुम्हारे लिए अच्छा ही हुआ कि मैं अहिंसा को नहीं मानता। लेकिन मुझे बस इसी बात का डर है कि कहीं किसीने गोली चलने की आवाज़ सुन न ली हो।”

खाई को पार करते हुए अनवर ने उसे यकीन दिलाया, “तुम फिक्र न करो। इस सुनसान किले में कोई नहीं आता।”

अनवर ने कहीं पढ़ा था कि दुनिया में औरत का मूड एक ऐसी चीज है जिसके बारे में पहले से कुछ नहीं कहा जा सकता। शेक्सपियर ने कहा था, ‘इंसान की ज़िन्दगी में ज्वार की लहरों की तरह उतार-चढ़ाव आता रहता है।’ इसी बात को बदलकर किसी दिलजले ने इस तरह कर दिया था कि ‘औरत के साथ इंसान की ज़िन्दगी में ज्वार की लहरों की तरह उतार-चढ़ाव आता रहता है!’ क्योंकि एक क्षण तो औरत मर्द की पूजा करके उसे लहर के शिखर पर पहुंचा देती है और दूसरे ही क्षण जब लहर नीचे उतरती है तो उसे घास-फूस की तरह किनारे पर ला पटकती है। अनवर ने अभी तक ज्वार की लहरों को उतरते नहीं देखा था लेकिन वह जिस अकेली औरत को जानता था, सलमा को, उसके हर क्षण बदलते हुए मूड से वह भली भांति अंदाज़ा लगा सकता था कि ज्वार की लहरों में चढ़ाव-उतार किस तरह आता होगा।

अभी सनीचर की रात को ही तो उसने चुम्बन से, बल्कि लगातार कई

चुम्बनो से, प्रेम के इस बंधन को पक्का किया था—प्यार-भरे भरपूर चुम्बनो से। लेकिन सोमवार को ही जब वह फिर शाम के वक्त उन्ही सुखद क्षणों के अनुभव को दुहराने के लिए सलमा के घर पहुंचा, जो उसके जीवन की सबसे सुखद स्मृतियों के क्षण बन चुके थे, तो उसने देखा कि सलमा न सिर्फ रुखाई से पेश आ रही है बल्कि गुस्सा भी है।

वह तो बड़े तपाक से सलमा से मिला लेकिन जब सलमा ने बहुत ही रस्मी ढंग से बिना कोई उत्साह दिखाए सिर्फ 'हैलो' कहा तो अनवर भी खिसियाकर चुप हो गया, क्योंकि वह सलमा के मूड को अच्छी तरह पहचानता था। वह जानता था कि सलमा इसी वजह से रूठी हुई है कि वह इतवार को वादा करके नहीं आया था। लेकिन फिर भी पहले उसे इसकी वजह तो पूछनी चाहिए थी और अगर वह कोई ठीक जवाब न दे पाता तभी वह सजा के तौर पर उससे नाराज हो जाती। सलमा की इस हठधर्मी से अनवर को बहुत दुःख हुआ और वह उदास हो गया। वह ड्राइंग रूम के एक कोने में विचारों में डूबा हुआ चुपचाप बैठा रहा और सलमा यह जताती रही कि वह अपनी बुनाई में बहुत व्यस्त है।

आखिरकार सलमा ने यह महसूस किया कि वह शायद जरूरत से ज्यादा रुखाई दिखा रही है, इसलिए बुनाई अलग रखकर उसने बहुत व्यग से कहा, "कल शायद तुम्हें दोस्तों के साथ बहस करने से फुरसत ही नहीं मिली।"

गतिरोध टूट गया था और अब वह सलमा से माफी माग सकता था। अगर सलमा ने उसे मौका दिया होता तो वह पहले ही माफी माग लेता क्योंकि वह तो आया ही इसीलिए था। "सलमा, मुझे बहुत अफसोस है, लेकिन दिल्ली से एक बहुत पुराने दोस्त अचानक आ गए थे, बस उन्हींके चक्कर में फसा रहा।"

"उन्हे भी यहा ले आते।" सलमा को लड़कों से मिलने में कभी कोई सकोच नहीं होता था क्योंकि उनमें उसके प्रशंसक भी हो सकते थे। इसके अलावा वह यह भी चाहती थी कि अनवर उसे अपने दोस्तों से मिलाए। "तुम जानते हो कि तुम्हारा कोई भी दोस्त खुशी से यहा आ सकता है।"

"यह तो मालूम है मुझे, लेकिन वह बहुत ही रूखी किस्म का आदमी है और मैंने सोचा कि शायद तुम्हें उससे मिलने में कोई दिलचस्पी न हो।"

"क्या नाम है उसका?"

"रामलाल।"



“रामलाल ? मुझे पता नहीं था कि तुम्हारे हिंदू दोस्त भी है ।”

सलमा का यह बात कहने का ढंग अनवर को अच्छा नहीं लगा । उसने यह बात कहकर बहुत सकीर्णता का परिचय दिया था जिसपर अनवर को बहुत झुझलाहट हुई । उसने कुछ चिढ़कर कहा, “खैर, चलो अब तो मालूम हो गया ।”

“अरे नहीं, मेरी भी याद कितनी खराब है । तुम्हारा एक सिख दोस्त भी था जिसका जिक्र तुमने डिबेट में किया था । क्या नाम था उसका ?”

“रतन ।”

इतने में प्रोफेसर सलीम वहा आ गए और अनवर उनका अदब करने के लिए खड़ा हो गया ।

“हैलो अनवर, मैं तुम्हीसे मिलना चाहता था । सलमा, जरा चाय भिजवा दो ।” और अनवर को अभी तक खड़ा देखकर उन्होंने कहा, “बैठ जाओ, बैठ जाओ ।”

प्रोफेसर साहब के लाख कोशिश करने के बावजूद अनवर कुछ परेशान ही रहा । उसे न जाने क्यों यह डर था कि प्रोफेसर साहब अब रामलाल की बात छेड़ेगे और हुआ भी यही ।

उन्होंने बिना किसी लाग-लपेट के अनवर से सीधा सवाल किया, “यह रामलाल कौन है ?”

सवाल इस तरह अचानक पूछ गया था कि एक क्षण के लिए तो अनवर कोई जवाब न दे सका । फिर उसने कहा, “मेरा दोस्त है । मैं उसे बचपन से जानता हूँ ।”

“यह तो सही है, लेकिन तुम उसकी सियासत के बारे में क्या जानते हो ? आजकल ज़माना बहुत खतरनाक है । जितना भी बचकर रहा जाए कम है । यूनिवर्सिटीवालों का खयाल है कि वह किसी किस्म का इन्कलाबी है । तुम्हें इस किस्म के लोगो से दूर ही रहना चाहिए । तुम्हारा सिविल सर्विस में जाने का चांस खत्म हो जाएगा ।”

लेकिन अनवर को सिविल सर्विस की फिक्र नहीं थी । इस वक़्त तो वह यह सोच रहा था कि अपने दोस्त की तरफ आदमी का क्या फर्ज होना चाहिए । “मुझे अफसोस है, लेकिन मैं अपने दोस्त को इस तरह निकाल नहीं सकता ।”



उसने सोच-सोचकर धीरे-धीरे यह बात कही और उसे खुद ताज्जुब हुआ कि उसमें इतनी हिम्मत आई कहा से।

प्रोफेसर साहब हमेशा की तरह बड़ी होशियारी के साथ बहुत नरमी से बातें कर रहे थे। “तुम खुद ही सोचकर फैसला कर लो। अगर मैं तुम्हारी जगह होता तो दोस्ती और मेहमाननवाजी की इन झूठी बातों की वजह से अपनी जिन्दगी बरबाद न करता।” और यह कह वे कपड़े बदलने चले गए।

सलमा चुपके से कमरे में आकर ये बातें सुन रही थी। सलमा को वहाँ देखकर अनवर उसकी तरफ इस उम्मीद से मुड़ा कि शायद वह उसकी बात को समझेगी और सहारा देगी। लेकिन सलमा अपनी नज़रे फेरकर अपनी बुनाई में व्यस्त हो गई। तो वह भी उसकी तरफ नहीं थी।

कुछ बेचैन होकर अनवर उठ खड़ा हुआ। सलमा ने बुनाई पर से नज़रें उठाकर उसकी तरफ देखा और मुस्कराकर बोली, “अनवर, जानते हो मैं क्या बुन रही हूँ ? तुम्हारे लिए स्वेटर।”

“शुक्रिया।” तो सलमा मुझे फसाने के लिए कटिया में यह चारा लगा रही है। “मैं चला।”

“खाना खाकर नहीं जाओगे ?”

“नहीं।”

“अनवर !”

“क्या है ?”

“जिद न करो। पापा ने तुम्हारी अपनी भलाई के लिए ही उस आदमी का साथ छोड़ देने को कहा है।”

“मैं जानता हूँ। लेकिन मैं जिद नहीं कर रहा हूँ। मैं जो कुछ कर रहा हूँ, ठीक ही कर रहा हूँ।”

अचानक सलमा अपनी बुनाई फेंककर सोफे पर से उठ खड़ी हुई और चिल्लाकर बोली, “जिद तो कर ही रहे हो—तुम बिल्कुल खच्चर की तरह अडियल हो।”

“मैं जा रहा हूँ,” अनवर ने दरवाज़े की तरफ बढ़ते हुए इतना ही कहा।

“तो वह तुम्हारा रामलाल तुम्हारे लिए सब कुछ है और मैं कुछ नहीं हूँ। अगर ऐसी बात है तो उसीके पास जाओ और अब यहाँ कभी न आना—कभी

नहीं ।” इतना कहकर वह सोफे पर गिर पड़ी और सिसक-सिसककर रोने लगी ।

अनवर फाटक से बाहर निकल चुका था । उसके दिमाग में एक तूफान मचा हुआ था—वह किसका साथ दे ?

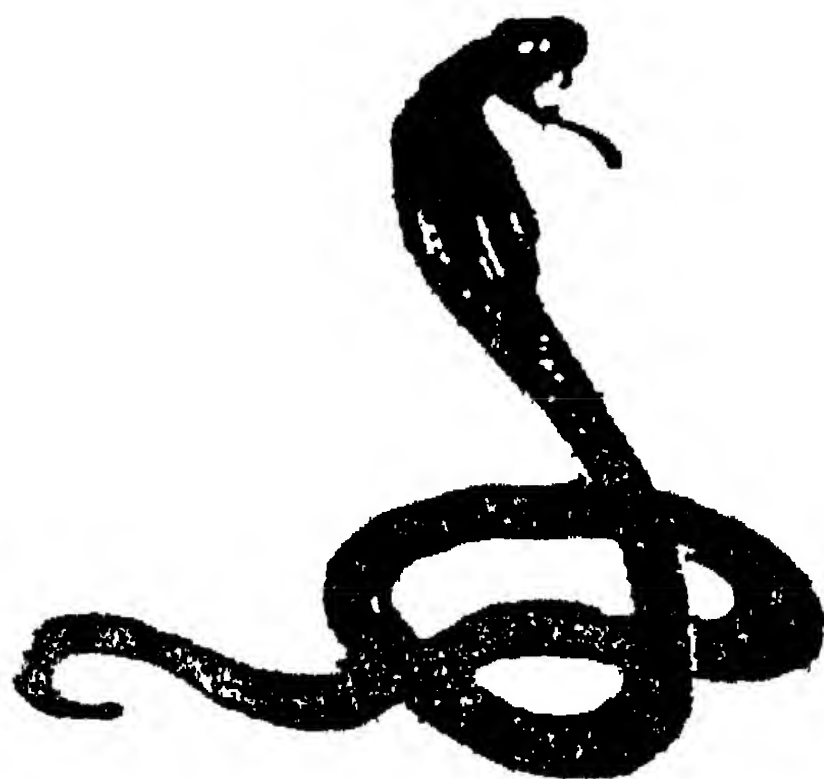
लेकिन उसके लिए इस बात का फैसला करने की नौबत ही नहीं आई क्योंकि हास्टेल वापस पहुंचने पर ‘राज’ ने उसे बताया कि उसका दोस्त रामलाल अचानक बिना कुछ कहे-सुने चला गया है । मेज पर प्रो-वाइस-चासलर का एक नोटिस पड़ा हुआ था जिसमें लड़को को ताकीद की गई थी कि वे बिना इजाजत लिए किसीको अपने कमरे में न रखे और यह कि अगर कोई मेहमान आ जाए तो उसकी सूचना फौरन प्राक्टर को दी जाए ।

“क्या उसने इसे देखा था ?” अनवर ने पूछा ।

‘राज’ ने सिर हिला दिया । तो रतन इसीलिए चला गया ।

अनवर को अपने दोस्त के इस तरह चले जाने का बहुत अफसोस था—किसी-को भी नहीं मालूम था कि वह कहा गया है और किस तरह वह अपने-आपको पुलिस के चंगुल से बचाएगा । फिर भी उसे लगा कि उसके सिर से एक बोझ उतर गया है । अब सलमा से उसका सम्बन्ध टूटने की नौबत नहीं आएगी ।

और इसलिए वह बेहयाई करके फिर मैरिस रोड की तरफ चल दिया । वह जाकर अपनी ठिठाई के लिए सलमा से माफी मागेगा । अभी आधे घंटे पहले वह सलमा से टक्कर लेने चला था लेकिन उस वक्त भी वह जानता था कि वह सलमा की बात टाल नहीं सकेगा—क्योंकि वह उससे प्यार करता था । उसने अपनी भावनाओं का यह जाल खुद बुना था । और वह जानता था कि उससे भाग निकलने का कोई रास्ता नहीं है । और वह निकलना चाहता भी नहीं था ।



## इन्कलाब ज़िंदाबाद

फरवरी खत्म होते ही अचानक बारिश शुरू हो गई और मार्च के शुरू में ऐसी ठंडी बर्फीली हवाएं चलने लगी कि तीर की तरह चुभती हुई हड्डियों तक जा लगती थी। अलीगढ़ के चारों तरफ के लगभग रेगिस्तानी इलाकों से धूल के बवंडर उड़कर सड़कों पर इस तरह मड़राते थे जैसे प्रेत नाच रहे हों। अनवर जैसे एम० ए० के विद्यार्थी के लिए दिन-भर में दो-तीन लैक्चरों में हाजिरी दे आने से ज्यादा और कोई काम नहीं था। कभी-कभी कोई डिबेट हो जाती थी लेकिन उनमें भी कोई नई बात नहीं थी और ज्यादातर बोलनेवाले पार्लियामेंट की बहसों के पिटे हुए चुटकुले बार-बार दुहराते रहते थे। नुमाइश की चहलपहल भी खत्म हो चुकी थी और टूर्नामेंट और खेल-कूद की प्रतियोगिताएं शुरू होने में अभी काफी दिन बाकी थे। ऐसा लगता था कि इन बर्फीली हवाओं से बचने के लिए यूनिवर्सिटी ने भी शिथिलता का कम्बल ओढ़ लिया था।

लेकिन देश में राजनीतिक गर्मी दिन-ब-दिन बढ़ती चली जा रही थी और अखबारों से अनवर को पता चलता था कि ये घिरती हुई घटाए किसी भी दिन टूटकर बरस पड़ेगी। देश के कोने-कोने से आतंकवादियों की सरगर्मियों की खबरें आ रही थी और अनवर अक्सर सोचा करता था कि उसके दोस्त रतन उर्फ रामलाल का इनमें कितना हाथ होगा। बम्बई में एक बार फिर साम्प्रदायिक दंगा हो गया था। किसीने योही अफवाह फैला दी थी कि पठान लोग बच्चे चुराकर ले जा रहे हैं और जब तक यह पता चला कि यह खबर झूठी थी उस वक्त तक काफी लोग मारे जा चुके थे और सैकड़ों लोग जखमी हो चुके थे। दूसरे शहरों में जहां कहीं भी साइमन कमीशन जांच करने के सिलसिले में दौरे पर गया था, वहां हड़तालों, काले झंडों, जबर्दस्त प्रदर्शनों और 'साइमन, वापस जाओ !' के नारों से उसका स्वागत किया गया था। महात्मा गांधी ने विदेशी

कपडे के बायकाट का आन्दोलन शुरू कर दिया था जिसकी वजह से लकाशायर और मानचेस्टर के कपडा-उद्योग के केन्द्रो को बहुत धक्का पहुच रहा था। ४ मार्च को गाधीजी विलायती कपडे की होली जलाने के जुर्म मे कलकत्ता मे गिरफ्तार कर लिए गए और उसके कुछ ही दिन बाद पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कौंसिल मे सरकार को करारी शिकस्त दी और कौंसिल मे सरकार के खिलाफ 'इस्तीफा दो ! इस्तीफा दो !' के नारे लगाए गए। कौंसिल के मेम्बरो ने सरकार के बजट मे से एक रुपये की कटौती कर दी थी और सरकार ने भी इसके विरोध मे गाधीजी पर इतनी ही रकम का—एक रुपये का—जुर्माना कर दिया था।

इन तमाम हंगामो के बीच अनवर ने इस बात को कोई महत्त्व नहीं दिया कि बहुत बड़ी हद तक प्रोफेसर सलीम के असर की वजह से उसे यूनिवर्सिटी की हिस्ट्री सोसायटी का सेक्रेटरी बना दिया गया। लेकिन आगे चलकर उसे पता चला कि यह परिस्थितियो के उस क्रम की पहली कड़ी थी जिसने उसकी सारी ज़िन्दगी का रुख बदल दिया और उसमे एक नया ही रंग पैदा कर दिया।

प्रोफेसर सलीम ने अनवर को उसके इस नये पद के लिए बधाई देते हुए उसे याद दिलाया कि अगले महीने से वे सिविल सर्विस की परीक्षा के लिए लडको को तैयार करने के वास्ते एक क्लास लेना शुरू करेगे और उन्होंने अनवर से कहा कि वह भी उस क्लास मे शामिल हो जाए। अनवर ने इस इम्तहान मे बैठने का अभी तक कोई पक्का इराद नहीं किया था, लेकिन न बैठने का भी कोई फैसला नहीं किया था इसलिए उसने सोचा कि प्रोफेसर साहब को निराश करने या सलमा से बहस करने से क्या फायदा क्योंकि सलमा तो उस दिन के इंतज़ार मे थी जब उसका अनवर सिविल सर्विस मे आ जाएगा।

अनवर की उम्र इस वक्त उन्नीस बरस से कुछ ज्यादा हो चुकी थी, वह ग्रेजुएट था और मुहब्बत भी करता था लेकिन अभी तक उसने फैसला नहीं किया था कि आगे चलकर ज़िन्दगी में वह क्या करेगा। उसे मोटे तौर पर इतिहास के बारे मे रिसर्च करने मे दिलचस्पी थी इसलिए उसने एम०ए० मे इतिहास ले लिया था। उसके अम्बा चाहते थे कि वह वकील बने। अन्य सभी समस्याओ की तरह ही इस



समस्या पर भी अपनी बिरादरी की भलाई के दृष्टिकोण से विचार करते हुए उन्होंने एक बार कहा था, “मुसलमानों में काबिल वकीलों की बहुत सख्त जरूरत है।” और इसलिए अनवर ने लॉ भी ले रखा था हालांकि वह शाम के वक्त होनेवाले लॉ-क्लास में कभी-कभी ही जाता था। प्रोफेसर सलीम, जो उससे होनेवाले ससुर की तरह रोब से बात करते थे, चाहते थे कि वह सिविल सर्विस के इम्तहान में बैठे और वह इसके लिए भी तैयार हो गया था।

उसके मन की गहराई में यह प्रश्न उसे हर वक्त परेशान करता रहता था कि वह आगे चलकर क्या करेगा। लेकिन उसे यह नहीं मालूम था कि उसके बहुत-से देशवासियों की तरह ही उसकी जिन्दगी के ढर्रे का फैमला भी किसी एक आदमी की इच्छा के अनुसार नहीं होगा बल्कि उसकी जिन्दगी का रास्ता तो उन घटनाओं के अनुसार तय होगा जो अभी तक समय की कोख में पनप रही थी और उन शक्तियों द्वारा निर्धारित होगा जो इतिहास की तरह ही विशाल थी।

२१ मार्च का दिन था। गर्मी कुछ कम थी और हालांकि हवा में रात के वक्त अब भी कुछ खूनकी रहती थी फिर भी मैरिस रोड से दो मील पैदल चलकर आने की वजह से अनवर के शरीर में कुछ गर्मी आ गई थी। सलमा उस शाम बहुत खुश थी। वे दोनों बैडमिंटन खेले थे। अनवर सलमा से हार गया था और अपनी इस हार पर बेहद खुश था। सलमा ने उसे अपने बचपन की तस्वीरों की एल्बम दिखाई थी और अनवर ने ‘जोश’ की एक नई नज़्म पढ़कर उसे सुनाई थी और प्रोफेसर साहब ने उन दोनों को अपनी आक्सफोर्ड के ज़माने की जिंदगी के दिलचस्प किस्से सुनाए थे। दोनों ही बेहद खुश थे और जब प्रोफेसर साहब अपना पाइप लेने के लिए उठकर चले गए थे तो सलमा ने अनवर को एक प्यार भी दिया था।

जिस वक्त अनवर हास्टेल पहुंचकर अपने कमरे में घुसा उस वक्त विक्टोरिया गेट के घटाघर की घड़ी ने ग्यारह बजाए। उसने सोचा था कि वह घंटे-भर तक अपने गर्म बिस्तरे में लेटकर कोई किताब पढ़ेगा और फिर चैन से सोकर सुनहरे ख्वाब देखेगा। लेकिन कमरे में घुसते ही उसने देखा कि सुभान

कपड़े पहने बैठा उसका इंतज़ार कर रहा है। ऐसा लगता था कि वह कहीं जाने के लिए तैयार होकर आया है।

“हैलो सुभानोव्स्की ! क्या इन्कलाब की घड़ी आ पहुँची है ?” उसने अपने ‘रूसी’ दोस्त का अभिवादन करते हुए मज़ाक में कहा। सुभान भी इस मज़ाक का कभी बुरा नहीं मानता था।

“हा, इस बार तो आ ही पहुँची है,” सुभान ने जवाब दिया, “तुमने अखबार नहीं पढ़ा आज का ?”

“हा, हा, पढ़ा क्यों नहीं। सुबह उठकर पहला काम यही किया था। लगता है सारे कामरेड एक ही साथ गिरफ्तार कर लिए गए हैं। तुम अब हम लोगों से क्या चाहते हो ? क्या हम लोग इस जुल्म के खिलाफ अपनी आवाज़ उठाने के लिए कोई मीटिंग करें।”

“वह तो बाद में देखा जाएगा,” सुभान ने कहा। “अभी तो तुम मेरे साथ दिल्ली चलो। उन सब लोगों को मेरठ ले जाया जा रहा है और अगर हमारा दाव लग गया तो हम उनके साथ गाज़ियाबाद तक चले जाएंगे। लैक्चर के वक्त तक लौट आएंगे।”

“तो तीरथ करने जा रहे हो। अच्छी बात है तवारिश्च, मैं चलता हूँ। लेकिन यह बताओ कि तुम्हारे पास टिकट खरीदने के लिए काफी ‘मास्को गोल्ड’ है या हमें बिना टिकट ही सफर करना पड़ेगा ?”

और इस तरह हंसी-मज़ाक करते हुए वे दोनों चल पड़े। अनवर इसलिए राज़ी हो गया था कि उसने सोचा कि चलो मज़ा रहेगा लेकिन वह यह भी जानता था कि सुभान ने उसे अपने साथ ले जाने के लिए क्यों चुना था। वह उन इने-गिने लोगों में से था जिसे राजनीति में दिलचस्पी तो थी लेकिन वह किसी पार्टी के साथ बंधा हुआ नहीं था, इसलिए राजनीति के मैदान के सारे शिकारी अनवर को अपनी कटिया में फसाने की कोशिश में रहते थे। ऐसा लगता था कि काग्रेसी, कम्युनिस्ट, मुस्लिम लीगी और यहाँ तक कि सरकार के टोडी भी, जो अपने-आपको ‘लिबरल’ कहते थे, उसकी आत्मा को अपने वश में करने के लिए लड़ रहे थे। उनमें सुभान सबसे ज्यादा होशियार था और अनवर को वह अच्छा भी सबसे ज्यादा लगता था। वह समझदार था, खुद अपनी बात कहने के साथ दूसरे की बात सुनने को भी तैयार रहता था। अगर वह यह

समझता है कि 'लाल' नेताओं की एक झलक-भर देख लेने से अनवर जैसा 'गुमराह आदर्शवादी' कम्युनिज्म के रास्ते पर लग जाएगा तो उसे इसीमें खुश रहने दो। जहां तक अनवर का सवाल था वह इन नेताओं को देखने के लिए इतना उत्सुक था कि अस्सी मील का सफर करने में भी उसे कोई एतराज नहीं था।

वह अखबारों में पढ़ चुका था कि इन नेताओं में एक लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य थे, एक डाक्टर थे, कई विद्यार्थी थे, कई ऐसे बुद्धिजीवी थे जिनका किसी पार्टी से संबंध नहीं था और कलकत्ता और बम्बई की ट्रेड यूनियनों के मुख्य पदाधिकारी थे। उनमें दो अंग्रेज और कई मुसलमान भी थे। कम्युनिस्ट आंदोलन एक अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन था और इस दृष्टि से जो लोग पकड़े गए थे वे इस आंदोलन का पूरी तरह प्रतिनिधित्व करते थे।

अनवर को 'नेताओं' से एक पैदायशी चिढ़ थी। उसे हमेशा ऐसा लगता था कि कुछ नेताओं को छोड़कर बाकी सारे हर वक्त अपनी नेतागिरी का रोब डालने के लिए एक खास किस्म के कपड़े पहनते थे, खास किस्म की बातें करते थे और कुछ खास बड़े हुए शब्द जरूर बोलते थे और जनता के सामने बनावटी विनम्रता दिखाते थे। उसे यह बात बहुत ही अजीब लगती थी कि अच्छा खाने और अच्छा पहननेवाले 'नेता' 'भूखी जनता' की बातें करें। उसे कुछ डर था कि जिन कैदियों से मिलने वह जा रहा था वे भी आरामकुर्सी पर बैठकर सियासत बघारनेवाले इसी तरह के इन्कलाबी होंगे, फ्रांस, रूस और आयरलैंड के उन इन्कलाबियों जैसे नहीं होंगे जिनके बारे में उसने किताबों में इतना पढ़ रखा था।

जिस वक्त उनकी गाड़ी दिल्ली के स्टेशन पर पहुंची, उस वक्त जमुना पर से सुबह का कुहरा छट रहा था। अभी तक काफी अंधेरा था और तीसरे दर्जे के खचाखच भरे हुए डिब्बे में खुली खिड़की के पास बैठे रहने की वजह से प्लेटफार्म पर उतरते ही उन्हें एक प्याली चाय की फिक्र हुई। घटो उबली हुई और कड़वी लेकिन खोलती हुई गरम चाय पीकर उनकी जान में जान आई और वे मेरठवाली गाड़ी की तलाश करने लगे। लेकिन बम्बई से आए हुए कैदियों के लिए जो खास डिब्बा अलग कर दिया गया था उसमें घुसना आसान काम नहीं था; उसके सामने हथियारबंद पुलिस वालों का भारी पहरा था जो डिब्बे के दोनों



तरफ टहल-टहलकर पहरा दे रहे थे ।

सुभान किसी तरह घुस-पिलकर डिब्बे तक पहुँच ही गया और अनवर ने पहली बार इन बदनाम कम्युनिस्टों की झलक देखी । उनके बारे में सबसे पहली बात तो उसने यह देखी कि वे देखने में बिल्कुल 'नेता' नहीं लगते थे । वे तरह-तरह के कपड़े पहने थे—कोई सूट पहने था तो कोई धोती पर सिर्फ कमीज पहने था, कोई बंद गले का स्वेटर पहने था तो कोई ओवरकोट ; कोई शाल ओढ़े था और किसीके सिर पर टोपी थी । लेकिन उनमें से कोई भी सफेद खहर की 'नेताओवाली वर्दी' नहीं पहने था । इतने लंबे सफर के बाद उनके बाल बिखरे हुए, दाढ़ी बड़ी हुई और कपड़े गंदे थे । लेकिन सबके सब बहुत मस्त थे । सुभान ने सबसे पहले जिससे भेट की वह एक बहुत ही दुबला-पतला लंबा-सा पारसी था जिसकी तोते की चोंच जैसी नाक पर बिना कमानीवाली ऐनक टिकी हुई थी और सफेद बालों की लंबी-लंबी लटे पीछे झूल रही थीं । उसने छूटते ही साम्राज्यवाद के इज्जत के साथ 'रैंड बोर्गी' जुड़ जाने के बारे में कोई मजाक किया । अनवर को पता चला कि ये भाबवाला साहब थे जो दरअसल कम्युनिस्ट नहीं थे लेकिन हिंदुस्तान में मजदूरों की जितनी ट्रेड यूनियन इन्होंने बनाई थी उतनी किसी और ने नहीं बनाई थी । इस सारे झुंड में दो अंग्रेज बहुत चमक रहे थे—एक तो चार्ली चैप्लिन जैसी मूछोवाला दुबला-पतला स्प्रैट और दूसरा भारी-भरकम शरीरवाला ब्रैंडले, जो सुरमई रंग का डबल-ब्रेस्ट सूट पहने हुए उन सबमें एकमात्र भला आदमी लग रहा था । सुभान ने अनवर को कुछ और लोगों के नाम बताए जिन्हें वह पहचानता था—मोटे शीशे का चश्मा लगाए हुए घने-घने काले बालोंवाले इटैलेक्चुरल जैसे दीखनेवाले डा० अधिकारी जिन्होंने जर्मनी से पी-एच० डी० की डिग्री ली थी, ताड़ जैसे लंबे निम्बकर, बिखरे हुए बालोंवाले जोगलेकर और कालेज के विद्यार्थी लगनेवाले मिरजकर । ये चारों मराठे थे और आपस में बातें भी मराठी में कर रहे थे—अनवर यह बोली अपनी जिंदगी में पहली बार सुन रहा था । उस डिब्बे के लोगों को देखने से ऐसा लगता था कि किसी कालेज की टीम वही मैच खेलने जा रही हो । अनवर को यह देखकर बहुत सतोष हुआ कि कम से कम ये कम्युनिस्ट नेता बूढ़े तो नहीं थे ।

आखिरकार सुभान ने किसी तरह आगे बढ़कर अलीगढ़ यूनिवर्सिटी के मार्क्सिस्ट स्टडी सर्किल के सेक्रेटरी के रूप में अपना परिचय दिया और सब लोग



उससे मिलकर बहुत खुश हुए और कुछ ने तो मुट्ठी तानकर उसे इन्कलाबी सलाम भी किया। किसीने कहा, “तो यह बीमारी अलीगढ़ में भी फैल गई है” और जब अनवर ने अपनी आटोग्राफ-बुक निकालकर उनसे स्टडी सर्किल के लिए उसपर कोई सदेश लिख देने को कहा तो सबने एक आवाज़ से कहा, “डॉक लिखेंगे,”—उनका मतलब अधिकारी से था।

“तुम यूनिवर्सिटी में क्या पढ़ते हो?” अधिकारी ने अपना कलम खोलते हुए पूछा।

“क्लास में फिलासफी,” सुभान ने जवाब दिया, “और बाहर मार्क्सिज्म।”

“मार्क्सिज्म से बढ़कर कोई दूसरी फिलासफी नहीं है,” अधिकारी ने आटोग्राफ-बुक वापस करते हुए कहा, जिसपर सुंदर अक्षरों में लिखा हुआ था, ‘अब तक दार्शनिकों ने ससार की तरह-तरह से व्याख्या करने की कोशिश की है। हमारा काम है उसे बदलना—कार्ल मार्क्स।’

सुभान उनका शुक्रिया अदा ही कर रहा था कि इतने में गार्ड ने सीटी बजा दी और इजन ने इसके जवाब में दुहरी सीटी बजाई। अब जाकर सुभान को अनवर का खयाल आया। “कामरेड, यह है हमारे दोस्त अनवरअली—अभी मार्क्सिस्ट हैं तो नहीं लेकिन जल्द ही रास्ते पर आ जाएंगे।”

“बहुत खुशी हुई आपसे मिलकर, कामरेड,” और एक बार फिर सबने उन लोगों से हाथ मिलाए। अनवर को इन मार्क्सिस्टों के जोश और उनकी लगन का अंदाजा हुआ। उनमें से ज्यादातर उसीकी उम्र के थे और देखने में सभी मध्यमवर्ग के बुद्धिजीवी मालूम होते थे जो मजदूर वर्ग के बीच क्रांति का सदेश लेकर जा रहे थे। उसे इस बात पर ताज्जुब हो रहा था कि इन लोगों ने एक ऐसे काम का बीड़ा क्यों उठाया है जिसे आम लोगों का बहुत समर्थन नहीं प्राप्त है। और दूसरा सवाल उसके मन में यह उठा कि वह कौन-सी चीज है जो इनका मनोबल बनाए रखती है?

गाड़ी चल पड़ी थी। ‘रैड बोगी’ (लाल डिब्बे) में से जोरदार नारों की आवाज़ सुनाई दी, ‘साम्राज्यवाद मुर्दाबाद!’ और ‘इन्कलाब जिंदाबाद!’ और अनवर ने देखा कि स्प्रेट और ब्रैडले ये नारे लगाने में सबसे आगे थे। दो अंग्रेज हिंदुस्तानियों के साथ मिलकर ‘साम्राज्यवाद मुर्दाबाद!’ का नारा लगा रहे थे—यह सचमुच एक अनोखी बात थी और अनवर ने मन ही मन फैसला

किया कि वह मार्क्स की किताबें बड़े ध्यान से पढ़ेगा, जिन्होंने इस चमत्कार को मुमकिन बनाया था।

पहले उन्होंने यह योजना बनाई थी कि वे कम्युनिस्ट नेताओं के साथ गाज़ियाबाद तक जाएंगे और फिर वहां से अलीगढ़ की गाड़ी पकड़ लेंगे। लेकिन जब उनकी यह योजना कामयाब नहीं हुई तो वे पंजाब-कलकत्ता मेल की जानी-पहचानी हरी गाड़ी को ढूँढने लगे। प्लेटफॉर्म पर खहरपोश लोगों की एक भीड़ जमा थी। कुछ लोगों के हाथ में कांग्रेस के तिरंगे झंडे थे। जाहिर था कि कोई कांग्रेसी नेता उधर से जा रहा था और वहां के कांग्रेसी उसे बिदा करने आए थे। जब वे उस डिब्बे के पास से गुजरे तो उन्होंने देखा सफेद कपड़े पहने हुए एक आदमी मुस्कराकर जनसमुदाय के अभिवादन का जवाब दे रहा था। देखते ही उन दोनों ने पहचान लिया—यह तो जवाहरलाल नेहरू थे। अनवर के दिल में हमेशा से एक ही नेता से मिलने की तमन्ना थी और वह थे जवाहरलाल नेहरू और इस वक्त वह उनके इतने पास खड़ा था। यह एक ऐसा मौका था जिसे वह हाथ से नहीं जाने दे सकता था। लेकिन क्या जवाहरलाल नेहरू उसके जैसे मामूली विद्यार्थी से मिलना गवारा करेंगे? उसने सुन रखा था कि उनका मिज़ाज बेहद तेज़ है, और जब उन्हें किसी बात से विरोध होता था तो वे बड़े से बड़े नेता को भी, यहां तक कि अपने बाप को भी, नहीं बर्खास्त थे। अगर अनवर उनके पास जाकर उनसे कहे कि वह उनसे कुछ मिनट बात करना चाहता है तो कहीं वे इसे गुस्ताखी तो नहीं समझेंगे? शायद वे उसे डिब्बे से बाहर निकाल दें। और अगर यह हुआ तब तो सुभान और यूनिवर्सिटी के सारे लड़के उसकी हंसी उड़ाएंगे।

“आओ, गाड़ी चल रही है,” सुभान ने कधा पकड़कर उसे भिभोड़ा। अनवर जैसे सपना देखते-देखते जाग पड़ा। दोनों तीसरे दर्जे के सबसे पासवाले डिब्बे में घुस गए।

गाज़ियाबाद के स्टेशन पर फिर बहुत बड़ी भीड़ ‘पंडित जवाहरलाल नेहरू की जय!’ के नारे लगा रही थी और अनवर ने इतनी बड़ी भीड़ देखकर इस महान नेता से जाकर मिलने का इरादा छोड़ दिया।

इसके बाद गाड़ी खुर्जा जक्शन पर रुकी। वहां बहुत ही थोड़े लोग थे और अनवर ने सोचा कि यह आखिरी मौका है। इसके बाद गाड़ी अलीगढ़ पर ही रुकेगी और अगर वह अब नहीं गया तो फिर यह मौका कभी उसके हाथ नहीं लगेगा।

“आओ सुभान,” उसने सुभान को बाहर घसीटते हुए कहा, “चलो, चलकर पंडित जवाहरलाल से मिलते हैं।”

प्लेटफार्म पर नारे लगाते हुए स्थानीय वालंटियरो के बीच से रास्ता बनाते हुए अनवर और सुभान डिब्बे में घुस गए। चूकि पंडितजी अभी तक वालंटियरों से बातें कर रहे थे इसलिए जब तक गाड़ी चल नहीं दी तब तक उनका ध्यान ही इन दोनों की तरफ नहीं गया।

खिड़की से सिर हटाकर उन्होंने पास की सीट पर पड़ी हुई किताबों में से एक उठा ली और दो घबराए हुए नौजवानों को आखे फाड़कर अपनी तरफ घूरते देखकर उन्होंने अंग्रेजी में कहा, “हैलो!” और फिर अपने साथी की तरफ मुड़कर बोले, “महमूद, ये कौन लोग हैं?”

“मेरा खयाल है स्टूडेंट हैं, आपसे मिलना चाहते हैं। और इनकी काली शेरवानियों से तो पता चलता है कि अलीगढ़ के लड़के होंगे—मैं भी वही पढ़ता था।” अनवर और सुभान को पता चला कि ये डाक्टर सैयद महमूद थे जो कैम्ब्रिज के जमाने से पंडितजी के पुराने दोस्त थे और अब उनके साथ आल-इंडिया कांग्रेस कमेटी के जनरल सेक्रेटरी थे।

पंडितजी ने बड़े अनमनेपन से किताब नीचे रख दी और उनके खूबसूरत चेहरे पर भुभुलाहट की एक हल्की-सी रेखा दौड़ गई और फिर वे इन बिन-बुलाए मेहमानों की तरफ मुड़कर बोले, “तुम लोग बैठ क्यों नहीं जाते?” वे दोनों चुपचाप सीट के किनारे पर टिककर बैठ गए।

अनवर जिस आदमी की पूजा करता आया था वह उसके सामने बैठा था। पंडितजी तस्वीरों में जितने खूबसूरत लगते थे, सचमुच वे उतने ही खूबसूरत थे, लेकिन अनवर ने जैसा सोचा था उसके मुकाबले में उनका कद काफी छोटा था। उनकी सफेद गांधी टोपी काफी तिरछी लगी हुई थी और खदर की ऊनी शेरबानी के तीसरे बटन में गुलाब का एक ताजा लाल फूल लगा हुआ था। एक रईस बाप के इस बेटे के बारे में अनगिनत किस्से मशहूर थे, जैसे यह कि वे



प्रिंस आफ वेल्स के साथ पढ़ते थे और यह कि उनके कपड़े अक्सर पेरिस से धुलकर आते थे। लेकिन यह बात सभी लोग जानते थे कि उन्होंने कौम की खातिर अपनी चल्ती हुई वकालत और ऐश-आराम की जिदगी छोड़ दी थी। कई बरस से वे कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी थे लेकिन उनका सम्बन्ध कई ऐसे सगठनों से भी था जो ज्यादा क्रांतिकारी थे, जैसे इंडिपेंडेस आफ इंडिया लीग और यूथ लीग। कई लोगों का यह विश्वास था कि वे ही कांग्रेस के पुराने दकियानूसी नेताओं को पूर्ण स्वराज्य के आदर्श की ओर ढकेल रहे थे। कुछ लोगों का तो यह भी खयाल था कि जल्द ही वे कांग्रेस के प्रेसीडेंट बन जाएंगे।

पंडितजी के खूबसूरत माथे पर अधीरता की वजह से बल पड़ गए। “बोलिए, कुछ तो बोलिए। जाहिर है आप लोग इतनी दूर सिर्फ मुझे घूरने तो नहीं आए हैं।”

अनवर के दिमाग में सैंकड़ों ऐसे सवाल मचल रहे थे जिनके बारे में वह पूछना चाहता था—पूर्ण स्वराज्य के बारे में, सोशलिज्म के बारे में, कम्युनिस्टों की गिरफ्तारी के बारे में, हिंसा और अहिंसा के बारे में—लेकिन इस तरह अचानक उससे कुछ बोलने को कहा गया था कि वह सिर्फ यही पूछ सका कि “पंडितजी, क्या यह सच है कि आप प्रिंस आफ वेल्स के साथ पढ़ते थे?”

“सब बकवास है!” उन्होंने ये शब्द इतने जोर से और इतने भुभुलाकर कहे थे कि अनवर को तो ऐसा लगा कि अब उन लोगों को चलती गाड़ी से नीचे फेंक दिया जाएगा। “यह सब बकवास है। मेरी तो समझ में नहीं आता कि आखिर ये सब बेवकूफी के किस्से फैलाता कौन है? जैसे किसी हिंदुस्तानी के लिए बादशाह के बेटे के साथ पढ़ना कोई बहुत बड़ी इज्जत की बात है। सच तो यह है कि न सिर्फ हम कभी साथ पढ़ते नहीं थे बल्कि मुझे तो कभी मिलने या बात करने का भी इत्फाक नहीं हुआ है। मेरा खयाल है कि अब आपका दूसरा सवाल यह होगा कि मेरे कपड़े पेरिस से धुलकर आते हैं।”

इस किस्से के बारे में पूछने की अनवर की हिम्मत नहीं हुई थी लेकिन चूंकि अब पंडितजी ने खुद ही इस बात का जिक्र किया था तो अनवर ने बहुत खिसियाते हुए कहा, “लोग कहते तो यही हैं।”

“लोग! आखिर ये लोग कौन हैं जिन्हें कोई नहीं जानता लेकिन जो हर



बात जानते हैं ?” पंडितजी जब ताने से बात करते थे तो उसमें भी बहुत तेजी होती थी। “जी हा, पेरिस में कपड़े धुलवाने की भी एक ही कही। इससे ज्यादा बेतुकी और बेवकूफी की बात तो मैं सोच भी नहीं सकता और अगर कोई आदमी इतना बड़ा बेवकूफ हो कि वह ऐसी शेखी की हरकत करे तो मेरी राय में तो उसे दुनिया के सबसे बड़े बेवकूफ का इनाम मिलना चाहिए। लेकिन मैं आप लोगों को क्यों डांट रहा हूँ ?” और अनवर ने एक बहुत ही अजीब बात देखी। पलक मारते में उनके चेहरे पर से भुभुलाहट के निशान गायब हो गए और उसकी जगह एक दोस्ताना मुस्कराहट खेलने लगी। “अच्छा, हम लोग एक-दूसरे को जान ले। मेरा नाम तो शायद आप लोगों को मालूम ही होगा,” इस बात पर अनवर और सुभान दोनों हस पड़े, “और ये डाक्टर महमूद है।”

अनवर ने अपना और सुभान का परिचय दिया और दोनों से हाथ मिलाए। इसके बाद दोनों ने सोचा कि अब सीट पर आराम से बैठ जाने में कोई हर्ज नहीं है। एक सिगरेट सुलगाकर पंडितजी ने उन दोनों से पूछा कि वे सिगरेट तो नहीं पिएंगे। और जब दोनों ने शुक्रिया के साथ मना कर दिया तो उन्होंने कहा, “तो फिर नारंगी या सेब खा लो” और फिर एक टोकरी में से, जो उनका कोई भक्त उनके लिए दे गया था, दो-दो सतरे और सेब निकालकर उन्होंने हवा में उछाले। सुभान ने तो अपना सेब पकड़ लिया लेकिन अनवर वाला नीचे गिर पड़ा।

“फील्डिंग में कच्चे हो,” कैम्ब्रिज में पढ़े हुए पंडितजी ने हसकर कहा, “मालूम होता है कभी क्रिकेट नहीं खेले।” और इसके बाद उनके बीच सकोच की जो दीवारे खड़ी थी वे ढह गई और ऐसा लगने लगा कि एक ‘नेता’ और दो विद्यार्थी नहीं बल्कि तीन ऐसे नौजवान आपस में बातें कर रहे हैं जिन्हें एक जैसी बातों में दिलचस्पी है। जवाहरलाल बहुत दोस्ताना रवैये से बातचीत कर रहे थे लेकिन उनके इस रवैये में भी एक थोड़ा-सा सकोच या कुदरती झिझक थी। वे ज्यादातर किताबों के बारे में, लेखकों के बारे में, कालेज की आराम-जिंदगी के बारे में और राजनीति की तरफ लड़कों के रवैये के बारे में बातें कर रहे थे।

“अच्छा, यह बताओ, तुम नौजवानों का आजकल की सियासी हालत के

बारे में क्या खयाल है ?” उन्होंने पूछा । अनवर की समझ में नहीं आया कि वह सब लड़कों को, रवैया मोटी-मोटी तरह कैसे बयान करे इसलिए उसने कहा, “मैं खुद तो गांधीजी के उसूलों को बहुत अच्छा समझता हूँ । मेरे ये दोस्त सुभान मार्क्सिस्ट है और मेरा एक और दोस्त है जो हथियारों के बल पर इन्कलाब लाना चाहता है, वह अंग्रेज अफसरों को जान से मार डालना चाहता है ।” लेकिन उसने रतन का नाम नहीं बताया ।

ऐसा लगा कि यह सुनकर जवाहरलाल कुछ सोचने लगे और थोड़ी देर तक वे बिल्कुल चुपचाप बैठे रहे । और फिर उन्होंने एक ऐसी बात कही जिसका अनवर उस वक्त कोई मतलब नहीं समझ सका और उस वक्त जो बातचीत हो रही थी उससे उसका कोई संबंध भी नहीं मालूम होता था । ऐसा लगता था कि वे कोई बात सोच रहे थे जो उनके मुँह से निकल गई थी । उन्होंने कहा, “तूफान आनेवाला है ।” और यह कहकर वे खिडकी के बाहर देखने लगे, उनकी नज़रों के साथ-साथ अनवर की नज़रें भी बाहर आसमान की तरफ उठ गईं और वह देखने लगा कि क्या आसमान पर सचमुच तूफान आने के आसार दिखाई दे रहे हैं । जवाहरलाल दूसरे ही किस्म के तूफान की तरफ इशारा कर रहे थे क्योंकि इसके बाद ही उन्होंने कहा, “तुम नौजवानों को चाहिए कि आजादी की लड़ाई के लिए तैयार रहो । क्योंकि जल्द ही वह वक्त आनेवाला है जब बहादुरी की इन बातों को बहादुरी के कामों से सच करके दिखाना होगा ।”

सुभान ने अपनी आटोग्राफ-बुक निकालकर उनके सामने बठा दी और उसके पन्ने पलटते वक्त उन्होंने अधिकारी के दस्तखत देखे । सुभान ने उन्हें बताया कि वे अभी कुछ ही घंटे पहले कम्युनिस्ट कैदियों से मिलकर आए हैं । पंडितजी ने इस बात में बड़ी दिलचस्पी दिखाई और सुभान ने मानो अपने मार्क्सिस्ट साथियों की तरफ से सवाल किया, “पंडितजी, ट्रेड यूनियनों के जो ये लीडर गिरफ्तार किए गए हैं, उनके सिलसिले में आप क्या करने जा रहे हैं ?”

“मैं कह नहीं सकता,” पंडितजी ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया, “हमें अभी तक इस सवाल पर गौर करने का वक्त नहीं मिला है । मैं तो समझता हूँ कि हमें उनकी पैरवी करने के लिए एक कमेटी बनानी चाहिए और उन्हें पूरी मदद देनी चाहिए ।”

इस बात पर अनवर को बहुत ताज्जुब हुआ क्योंकि उसने सुन रखा था कि कम्युनिस्ट कांग्रेस के कट्टर दुश्मन थे और उसे 'प्रतिक्रियावादी' समझते थे और जवाहरलाल पर भी हमला करने से नहीं चूकते थे। इसलिए उसने बेभिभक पूछा, "ये लोग आपके खिलाफ, गांधीजी के खिलाफ और कांग्रेस के खिलाफ जो प्रचार करते हैं क्या उसके बावजूद आप उनका साथ देंगे?"

पंडितजी के खूबसूरत होठों पर एक हलकी-सी मुस्कराहट दौड़ गई। "मैं जानता हूं, मैं जानता हूँ। कुछ कम्युनिस्टों के साथ तो आदमी अपना सब कायम ही नहीं रख सकता, उन्होंने दूसरों को नाराज करने का एक खास तरीका अपना लिया है। लेकिन यह मत भूलो कि ये लोग बहुत आजमाए हुए लोग हैं और उन्हें बहुत बड़ी-बड़ा मुश्किलों का सामना करना पड़ा है। हमारा इनके साथ कितना ही मतभेद हो लेकिन हमें उनकी हिम्मत की और उनकी कुरबानी की तो तारीफ करनी ही पड़ेगी।"

उन्होंने जल्दी से कुछ लिखकर आटोग्राफ-बुक सुभान को वापस कर दी। और फिर अनवर की तरफ मुड़कर पूछा, "तुम यूनिवर्सिटी में क्या पढ़ रहे हो?"

"हिस्ट्री में एम० ए० कर रहा हूँ।"

"वही पुराने ढंग की किताबें पढाई जाती होगी, मेरे खयाल में—तारीखें, बादशाहों और लड़ाइयों का हाल, आम लोगों का कोई जिक्र नहीं। बहुत अच्छा और बहुत जरूरी सबजेक्ट है लेकिन मेरी राय में हमारी यूनिवर्सिटियों में बहुत बुरे ढंग से पढाया जाता है।" अनवर ने कही पढ़ रखा था कि जवाहरलाल ने कैम्ब्रिज में बायोलॉजी पढ़ी थी और उसे इस बात पर बड़ा ताज्जुब हुआ कि वे हिस्ट्री में इतनी दिलचस्पी दिखा रहे थे। इसलिए उसने कहा कि वह हिन्दुस्तान के इतिहास के किसी एक काल के बारे में बुनियादी रिसर्च करना चाहता है।

"खयाल तो अच्छा है। लेकिन सिर्फ किताबों में ही उलझकर न रह जाना। ज़रा बाहर निकलकर इतिहास की और अपनी पुरानी तहजीब की शानदार यादगारों को भी देखना जो कन्याकुमारी से लेकर तक्षशिला तक जगह-जगह दिखाई देती हैं—लेकिन इन सब चीज़ों से बढ़कर जनता को देखना क्योंकि इनमें तुम्हें जीते-जागते इतिहास की झलक मिलेगी।" महान नेता ने अंत में



उसे यह सलाह दी ।

उनकी बातें सुनते हुए अनवर को खयाल आया कि वह हिस्ट्री सोसायटी का सेक्रेटरी भी था, क्योंकि अब उसकी समझ में आ गया था कि उसे सेक्रेटरी की हैसियत से क्या करना चाहिए—वह अपनी सोसायटी के सारे सदस्यों को ऐतिहासिक महत्व की जगहें दिखाने ले जाएगा—सारनाथ और बनारस और इलाहाबाद और अयोध्या और आगरा और दिल्ली ।...

लेकिन गाड़ी अब अलीगढ़ पहुंच चुकी थी और उन्हें जी न चाहते हुए भी बिदा होना पड़ा । प्लेटफार्म पर लोगों की भीड़ जमा थी जिनमें से ज्यादातर विद्यार्थी थे—किसी तरह लोगों को भनक मिल गई थी कि पंडितजी उस गाड़ी से उधर से गुज़रेगे । लोग नारे लगा रहे थे 'पंडित जवाहरलाल नेहरू की जय ।' अनवर और सुभान को भीड़ के बीच से निकलने में काफी कठिनाई हुई लेकिन जब उन्होंने मुड़कर देखा तो पंडितजी उन्हें देखकर हाथ हिला रहे थे ।

एक फटीचर इक्के पर बैठकर हास्टेल वापस जाते हुए अनवर ने सुभान से जवाहरलाल के आटोग्राफ दिखाने को कहा । उन्होंने अपने दस्तखत के ऊपर सिर्फ ये शब्द लिखे थे : जान हथेली पर लेकर चलो ।

इक्के की खड़-खड़ अनवर के दिमाग में लगातार यही शब्द प्रतिध्वनित कर रही थी—जान हथेली पर लेकर चलो ! जान हथेली पर लेकर चलो ! जान हथेली पर लेकर चलो ! उसके दिमाग में अभी यह बात बिल्कुल साफ नहीं थी, लेकिन न जाने क्यों उसे ऐसा लग रहा था कि इन शब्दों ने उसके सामने ज़िंदगी का वह रास्ता खोल दिया था जिसे वह बहुत दिनों से खोज रहा था ।

इसके बाद कुछ दिन तक अनवर ने जो भी काम किया वह अपने सामने एक निश्चित लक्ष्य रखकर । उसने पंडित जवाहरलाल नेहरू के साथ अपनी मुलाकात के बारे में एक लेख लिखा, उसे फाड़ डाला, फिर लिखा, कई बार ठीक किया, फिर उसे साफ-साफ नकल किया और उसे काफी भारी-भरकम शीर्षक देकर—'हमारे भविष्य की आशा . नेहरू'—दिल्ली में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के पते पर भेज दिया । लेकिन किसीको कानोकानो इसकी खबर नहीं



लगने दी क्योंकि वह यह नहीं चाहता था कि अगर वह लेख न छपे तो लोग उसका मजाक उड़ाए ।

इसी बीच में उसने हिस्ट्री सोसाइटी का पिछला हिसाब-किताब देखा तो मालूम हुआ कि यूनिवर्सिटी के खजांची के पास सोसाइटी के छ सौ सत्तावन रुपये साढ़े नौ आने पड़े हुए हैं, क्योंकि पिछले साल के सेक्रेटरी ने कोई काम ही नहीं किया था इसलिए कोई खर्च भी नहीं हुआ था। फिर वह हिस्ट्री डिपार्टमेंट के चेयरमैन को इस दौरे की इजाजत दे देने के लिए राजी करने के काम में जुट गया। प्रोफेसर हबीब बहुत ही शरीफ आदमी थे इसलिए उन्हें राजी करने में तो कोई कठिनाई नहीं हुई पर उसे प्रो-वाइस-चांसलर से भी अपनी योजना को मजूर कराना था। यह आसान काम नहीं था क्योंकि यह अग्रेज सज्जन क्लासरूम और खेल के मैदान के बाहर विद्यार्थियों की हर हरकत को सदेह की दृष्टि से देखते थे और उन्हें ऐसी हर हरकत में राजद्रोह की संभावना दिखाई देती थी। उन्होंने यूनिवर्सिटी सोशल सर्विस लीग की मिसाल भी पेश की और बताया कि इस संस्था ने आसपास के गांवों के लोगों को छोटी-मोटी डाक्टरी सहायता पहुंचाने के उद्देश्य से लड़कों की कुछ टोलियां साइकलो पर वहां भेजी थी—कुनीन की गोलियां बांटने के लिए, घावों पर टिक्चर आयोडीन लगाने के लिए और दुखती हुई आखें बोरिक से धोने के लिए—लेकिन यह निरापद योजना भी किस तरह कम्युनिस्टों की भयानक साजिश बन गई थी। एक लड़के ने यूनियन में खड़े होकर बताया कि समाज-सेवा के नाम पर लगाए गए इन चक्करो के दौरान में उसने गांवों की क्या हालत देखी थी और फिर जमींदारों को और सरकार को गालियां देते हुए एक जोशीला भाषण दिया था। लेकिन उन्होंने कहा कि अनवर अगर यकीन दिलाए कि यह योजना इतिहास के बारे में लड़कों का ज्ञान बढ़ाने के लिए ही बनाई गई है तो वे...

अनवर ने प्रो-वाइस-चांसलर साहब के भी दस्तखत करा दिए और जो बीस लड़के इस सफर के लिए चुने गए थे उन्होंने अनवर के पास खर्च-भर के पैसे भी जमा कर दिए। एक लारी किराये पर ले ली गई और २६ मार्च को मुहम्मदगंज ही यह टोली रवाना हो गई।

यह सफर सचमुच बहुत ही दिलचस्प रहा। मथुरा और वृंदावन के देहातो और आगरा और फतेहपुर सीकरी की आलीशान इमारतों का अपना-अपना निराला

ही आकर्षण था । कुछ लडको ने अपनी कापियो मे इन इमारतो की बनावट और पत्थर पर खुदी हुई अरबी की लिखाई की तस्वीरे बना ली, लेकिन कुछ लडको को सिर्फ सैर करने मे दिलचस्पी थी ।

दिल्ली मे अनवर ठहरा अपने घर पर ही था लेकिन वह ज्यादातर वक्त दिल्ली घूमने और अपने साथियो को ऐतिहासिक महत्व की जगहे दिखाने मे खर्च करता था ।

कुतुब मीनार जाते वक्त लारी बर्न बैस्टियन ब्रिज के पास मुडी और अनवर ने वहा 'हिन्दुस्तान टाइम्स' का साइनबोर्ड लगा हुआ देखा । उसने ड्राइवर से फौरन लारी रुकवाई और अपने साथियो से एक मिनट मे वापस आने को कहकर चला गया । वह एडीटर के दफ्तर मे गया और वहा 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के एडीटर मि० पॉथन जोसफ ने उसका स्वागत किया । उन्होने अनवर को बताया कि उसका लेख जल्द ही छपेगा । उन्होने अनवर से यह भी पूछा कि उसका दिल्ली किस सिलसिले मे आना हुआ, और जब अनवर ने उन्हे बताया कि वह अपने कुछ साथियो को लेकर ऐतिहासिक स्थानो का चक्कर लगा रहा है तो उन्होने उससे अपने इस सफर के बारे मे कुछ लाइने लिख देने को कहा और चलते-चलते यह भी कहा कि यह खबर अगले दिन के अखबार मे छपेगी ।

जिन दिनो अनवर दिल्ली मे था उसी जमाने मे एक और महत्वपूर्ण घटना हुई । वह एक दिन सुबह सो रहा था कि उसके अब्बा ने आकर उसे जगाया और कहा कि उसका दोस्त रामलाल उससे मिलने आया है ।

वह अभी तक नींद के नशे मे था । बुडबुडाकर बोला, "रामलाल ? मैं किसी रामलाल को नहीं जानता ।" लेकिन यह नाम दुहराते ही जैसे किसीने उसकी स्मृति के तार छेड़ दिए । वह उछलकर खड़ा हो गया और बोला, "कहा है वह ?"

रतन बैठक मे इंतजार कर रहा था और मिलते ही उसने पहली बात यह कही कि "मुझे बहुत खुशी है कि तुम्हारे अब्बा ने मुझे पहचाना नहीं ।"

"रतन, मुझे तुम्हारी तरफ से बड़ी फिक्र थी । तुम जिस तरह अलीगढ से चले आए उसका मुझे बहुत अफसोस है । लेकिन तुम्हे यह कैसे मालूम हुआ कि

मैं यहा हूँ ?”

रतन ने सुबह का लिपटा हुआ ‘हिन्दुस्तान टाइम्स’ उमे खोलकर दिखाया। “यह देखो, इसमे हिस्ट्री सोसाइटी और उसके सेक्रेटरी—ग्रेट मि<sup>०</sup> अनवरअली की खबर छपी है।”

“तो अच्छा ही हुआ कि उसमे मैने अपना नाम लिख दिया था। कही पुलिस तो तुम्हारा पीछा नहीं कर रही है।”

“नहीं, तुम फिक्र न करो, यहा दिल्ली मे मुझे कोई नहीं जानता।”

अनवर के अब्बा ने उन दोनों के लिए नाश्ता भिजवा दिया और दोनों दोस्तो ने पेट भरकर खाया। फिर अनवर कपडे पहनकर तैयार हो गया और दोनों साथ बाहर निकले। गलियो और बाजारो मे चहलपहल शुरू होने लगी थी और अखबार बेचनेवाले लडके खास-खास खबरे चिल्ला-चिल्लाकर अखबार बेच रहे थे।

जब वे दरियागज के चौराहे के पास पहुचे तो रतन ने कहा, “अनवर, याद है तुमने एक बार कहा था कि तुम हमारी मदद करने के लिए कुछ भी कर सकते हो....”

“हा, बशर्ते उसमे किसीको मारने का सवाल न हो। मैने यह बात उस वक्त भी साफ कर दी थी।”

“नहीं,” रतन ने बहुत धीरे-धीरे सोच-सोचकर कहा, “कोई मारा नहीं जाएगा।”

“तुम मुझसे क्या काम लेना चाहते हो ?”

“मैं तुम्हे अपने एक दोस्त से मिलाना चाहता हूँ। वे वहा उस मोटर मे हम लोगो का इतजार कर रहे हैं।”

रतन का दोस्त उन दोनों से उम्र मे बहुत बडा नहीं था। उसका चेहरा बहुत हसमुख था और उसपर बडी कोमलता थी, पर ऐंठी हुई नुकीली मूछो की वजह से उसपर एक कठोरता आ गई थी। वह फौजी ढंग की खाकी कमीज और गहरे रंग की पतलून पहने था और सिर पर फेल्ड हैट लगाए था जिसकी कगार सामने को कुछ झुकी हुई थी जिसका साया उसकी आखो पर पड रहा था।



अनवर ने उससे हाथ मिलाया और उसे ऐसा लगा कि उस हाथ की पकड़ में ताकत भी थी और दोस्ती भी। लेकिन उन दोनों का एक-दूसरे से परिचय नहीं कराया गया। अनवर ने यह समझ लिया कि वह उसके बारे में जानता ही होगा, और चूँकि उसे मालूम था कि इस तरह के इन्कलाबी कितनी सावधानी बरतते थे, इसलिए उसने उसका परिचय पूछा भी नहीं। तीन्द्रे मोटर की अगली सीट पर घुस-पिलकर बैठ गए और मूँछोवाले उस नौजवान ने स्टार्टर दबाया। गियर बदलते ही वह बड़ी-सी काली मोटर हवा से बातें करने लगी। वे तेजी से नई दिल्ली की तरफ बढ़ रहे थे।

अनवर उन दोनों इन्कलाबियों के बीच में कुछ घबराया और डरा हुआ बैठा था। उसे यकीन था कि पुलिस इन दोनों की तलाश में होगी। अनवर ने कनखियों से मोटर चलानेवाले को देखा। मोटर चलानेवाले के हाथ बहुत चिकने और साफ थे, उसकी उगलिया लम्बी और नाजूक थी, जैसी कलाकारों की होती है। लेकिन जिस मजबूती के साथ वह स्टीयरिंग का पहिया पकड़े हुए था उससे उन हाथों की ताकत का भी पता चलता था। उसमें परस्पर-विरोधी गुणों का यह अनोखा मिश्रण और कई बातों में भी व्यक्त होता था—उसकी तिरछी लगी हुई हैट उसके स्वभाव की बाकी सादगी के साथ मेल नहीं खाती थी और हालांकि उसकी कमीज और उसकी मूँछों पर फौजीपन की छाप थी पर वह बहुत ही धीमी आवाज में गालिब की एक गजल गुनगुना रहा था। जो शेर वह गुनगुना रहा था वे भी बहुत अर्थपूर्ण थे :

आज वा तेगो-कफन बाधे हुए जाता हूँ मैं,  
उज्र मेरे कत्ल करने में वह अब लाएंगे क्या ?

इस गुमनाम इन्कलाबा को अपने प्रिय शायर गालिब के शेर गुनगुनाते देखकर अनवर उसकी ओर बरबस आकर्षित हुआ। मोटर तेजी से भागी चली जा रही थी और अनवर मन ही मन सोच रहा था कि क्या वह यह गजल सिर्फ इसलिए गुनगुना रहा है कि उस वक्त इत्तफाक से वही गजल उसके दिमाग में आ गई थी ? या इसलिए कि उस गजल में इन्कलाबी की जान की बाजी लगा देने और अपने-आपको कुरबान कर देने की भावना व्यक्त होती थी ?

मोटर अचानक बाईं तरफ घूमकर पुराने किले की ओर बढ़ी और अनवर के बिचारों की शृंखला भंग हो गई।



“किधर जा रहे है हम लोग ?” उसने घबराकर पूछा ।

“फिक्र न करो,” रतन ने उसे तसल्ली देते हुए कहा, “तुम नई दिल्ली में जहा भी चाहोगे वहा हम तुम्हे उतार देगे, लेकिन पहले हमें कुछ बातें करनी है ।”

खडहरो के पास पहुचकर मोटर रुक गई । मोटर चलानेवाले ने दरवाजा खोला और उन दोनों को आराम से बैठकर बातें करने के लिए जगह देकर बाहर निकल गया ।

“कल तुम सब लोग असेम्बली जा रहे हो ?” रतन के इस सवाल में अनवर को कोई तुक नहीं दिखाई दी ।

“हा, जा तो रहे है, लेकिन तुम्हारा मतलब क्या है ? ”

“वह मैं अभी तुम्हे बता दूंगा, लेकिन पहले तुम यह बताओ कि तुम्हें अपने साथियों के लिए इक्कीस पास कहा से मिलेगे ?”

“हमारे प्रोफेसर साहब ने और अब्बा ने असेम्बली के कई मेम्बरो के नाम खत दिए है । हर मेम्बर दो पास दे सकता है । इस तरह हमें काफी पास मिल जाएगे ।”

“अच्छी बात है । अगर तुम्हे इक्कीस पास मिल सकते हैं तो तेईस भी मिल सकते हैं ।” रतन ने यह बात कुछ इस तरह कही जैसे हुक्म दे रहा हो ।

आखिरकार अनवर को इस बात का भयावह अर्थ समझ में आया और उसने ऊचे स्वर में कहा, “नहीं, नहीं । यह मुझसे नहीं होगा । तुम लोग कोई ऐसी-वैसी हरकत कर बैठोगे । हम सब पकड़े जाएगे ।” “नहीं, नहीं ।....”

“चिल्लाओ नहीं,” रतन ने सख्ती से कहा, “मैं तुमसे वादा कर चुका हूं कि किसीको जान से नहीं मारा जाएगा ।”

अनवर ने अपने दोस्त को देखा । क्या यह वही मस्त शरारती लड़का था जिससे वह अमृतसर में मिला था और जिसे उसने अपना दोस्त बनाया था ? उसके चेहरे पर एक अजीब जानी-पहचानी कठोरता थी, उसके होठों पर एक हलकी-सी कटुता थी और आंखों में क्रूरता की चमक । उसने यह मुद्रा पहले कहा देखी थी ? अचानक उसे जलियावाला बाग की याद आई, गोली चलने के बाद वहा मौत का सा सन्नाटा छा गया था और एक लड़का, जिसकी लटे उसकी पीली पगड़ी से बाहर निकली हुई थीं, अपने मृत पिता के चेहरे की ओर देख रहा

था। यह भयानक क्षण, जिसका अनुभव उन दोनों ही को एकसाथ हुआ था, उन दोनों के बीच सबंध स्थापित करनेवाली कड़ी था और अनवर जानता था कि रतन उससे ऊँचे कुछ करने को कह रहा था उससे वह इकार नहीं कर सकता।

“कामरेड, मेरी बात तो सुनो ” मूछोवाले उस लम्बे आदमी ने अनवर से कहा और जिस मित्रता के भाव से उसने अनवर को ‘कामरेड’ कहा था उसने अनवर की व्यथित आत्मा के लिए मरहम का काम किया, “हम किसी दूसरे को खतरे में नहीं डालना चाहते लेकिन यह काम जरूरी है। जो लोग बहरे हैं हमें उनके कान खोलने हैं। और यह कल ही होना है। सिर्फ तुम ही हमारी मदद कर सकते हो।”

वह हिंदुस्तानी हलके-से पजाबी लहजे के साथ बोलता था और उसके शब्दों में जोर भी था और विवश कर देनेवाली विनम्रता भी। परन्तु जिस चीज़ ने अनवर की सारी आपत्तियों को खत्म कर दिया वह था उसकी आखों का भाव। उसकी आखों में दृढ़ संकल्प की चमक थी। एक अजीब आकर्षण था उन आखों में और उनकी गहराई में बेहद उदासी की एक झलक थी। वह एक ऐसा आदमी था जो बहुत दुख भेल चुका था और मौत की आखों में आखें डालकर देख चुका था।

अनवर ने अपनी आखें उसकी तरफ से फेर ली और बोला, “पास तो मिल जाएंगे, लेकिन अपना वादा याद रखिएगा। कोई जान से न मारा जाए।”

गैलरी में से देखने पर अर्धवृत्ताकार असेम्बली चैम्बर एक गहरा कुआँ लगता था और वहाँ इतनी ऊँचाई से ‘माननीय सदस्यों’ की आवाज़ें ऐसी सुनाई देती थीं जैसे बहुत-से मेढक बोल रहे हों और उनके गले बैठे हुए हों। अनवर के दिमाग में फौरन यह बात आई कि वह असेम्बली के बारे में अपने अनुभवों पर एक लेख लिखेगा जिसका शीर्षक होगा ‘कुएँ के मेढक।’ विरोधी पक्ष के सदस्य, जिनमें से बहुत-से सफेद गांधी टोपियाँ लगाए थे, उठते थे, झुककर अध्यक्ष के प्रति सम्मान प्रकट करते थे, अपनी बात कहते थे, लेकिन सरकारी पक्ष के सदस्य पत्थर की मूर्त की तरह चुपचाप बैठे रहते थे और विरोधी पक्ष की बहुत मेहनत

के साथ जुटाई गई दलीलो की तरफ कोई ध्यान ही नहीं देते थे। अब तक अनवर अखबारों में जो कुछ पढ़ता आया था उसके अनुभव से वह जानता था कि अगले दिन राष्ट्रवादी अखबार इस खबर को इस शीर्षक से छापेंगे 'औद्योगिक भगडो के बिल की कड़ी आलोचना,' लेकिन यहाँ वह अपनी आँखों से जो कुछ देख रहा था उसमें न क्रोध था न कड़ी आलोचना, सिर्फ शब्दों का एक क्रम था जो समाप्त ही नहीं होता था और उन्हीं शब्दों को बार-बार सुनते-सुनते नींद आती थी, सब कोरे शब्द और कुछ नहीं।... इस सारी नीरस कार्रवाई में अगर कहीं थोड़ी-सी जान दिखाई दी तो वह थी विरोधी पक्ष के नेता पंडित मोतीलाल नेहरू के जोशीले भाषण में। खादी की रेशमी शेरवानी पहने और गांधी टोपी लगाए वे बहुत रोबदार लग रहे थे। इसके बाद फिर जैसे हर चीज़ गहरी नींद में सो गई और अनवर को यह देखकर ताज्जुब हुआ कि सरकारी पक्ष का एक सदस्य, एक मोटा-सा लाल मुहवाला अंग्रेज, बाकायदा खर्राटे ले रहा था और उसके पास बैठा हुआ एक दूसरा अंग्रेज 'क्रासवर्ड पजिल' हल कर रहा था। और उनके पीछे एक गिरोहबद जत्थे की शक्ल में अलेम्बली के नामजद किए हुए सदस्य बैठे थे। यही वे आज्ञाकारी महानुभाव थे जो एक के बाद दूसरे बिल पर सरकार की तरफ से मशीन की तरह हाथ उठा देते थे। वे बड़ी बेचैनी से अपनी कुर्सी पर पहलू बदल रहे थे और इस बात का इंतज़ार कर रहे थे कि कब वोट लेने का वक्त आए और वे उठकर ममर्थको के कक्ष में चले जाएँ और इस प्रकार मजदूर वर्ग के आन्दोलन को कुचलने के लिए देश पर थोपे गए कानून को जनसाधारण के समर्थन की भूठी प्रतिष्ठा प्रदान करें। और इस धोखेबाजी को, लोकतंत्र के नाम पर होनेवाले इस अत्याचार को, रोकने के लिए विरोधी-पक्ष की ओर से जनता के प्रतिनिधि सिर्फ बातें ही बातें करते थे, जिन बातों को कोई सुनता भी नहीं था।

इस कुएँ में भाककर देखते समय अनवर के दिमाग में कई बार यह शरारत-भरा विचार आया कि कोई निकम्मेपन और निरर्थकता के इस कुएँ में एक पत्थर फेंक दे और इसके ठहरे हुए गंदे पानी में हलचल पैदा कर दे। काश...

वह सोच रहा था कि आखिर रतन के दोनो दोस्त क्या करनेवाले हैं?— एक जिसकी मूँछ ऊपर की ऐंठी हुई थी और दूसरा जो देखने में बंगाली लगता था? अब तक तो वे अपने वादे पर कायम थे।



असेम्बली-भवन के अन्दर घुसते ही उन्होंने कार्ड अनवर को वापस कर दिए थे और अनवर ने योजना के अनुसार उन्हें फाड़कर फलश में बहा दिया था। अनवर ने उनके साथ गुलाबी रंग के कुछ पर्चे देखे थे और शायद वे उन्हें नीचे फेंकने के लिए मौके की ताक में थे। सुर्ख इन्कलाबी पर्चों की बारिश से ये लोग सचमुच जाग उठे। उनकी सारी शिथिलता दूर हो जाएगी। अनवर ने नज़र दौड़ाकर देखा तो उसे वे दोनों नौजवान, जिनके नाम वह अभी तक नहीं जानता था, पब्लिक गैलरी के दूसरे सिरे पर दिखाई दिए। वे सरकारी सदस्यों के ठीक ऊपर पहली कतार में बैठे थे।

“देखो, वाइसराय के बॉक्स में कौन है?” ‘राजू’ ने अनवर के कान में कहा, “मेरे खयाल में तो अपने वही दोस्त सर जान साइमन हैं।”

अनवर ने उनके सिर के छितरे अधपके बालों और उनके डबल-ब्रेस्ट सूट से पहचाना कि यही रायल कमीशन के चेयरमैन सर जान साइमन थे, जो पिछले साल सारे देश में साम्राज्यवादी दमन का प्रतीक बन गए थे। न जाने क्यों अनवर की नज़र अनायास ही रतन के दोस्तों की तरफ उठ गई और उसने देखा कि ऐंठी हुई मूछोवाला नौजवान वाइसराय के बॉक्स की तरफ टकटकी बाधे देख रहा है, मानो दोनों गैलरियों के बीच के फासले का अंदाज़ा लगा रहा हो, जो पूरे चैम्बर की चौड़ाई के बराबर था।

अनवर का दिल दहल गया। बार-बार वह अपने मन को समझा रहा था, ‘लेकिन उन्होंने वादा किया है। उन्होंने वादा किया है।’ उसने जल्दी से नीचे बैठे हुए लोगों पर नज़र डाला। जो आदमी बैठा ‘क्रासवर्ड पज़िल’ हल कर रहा था उसने शायद उसे हल कर लिया था और अब वह बैठा ‘इलस्ट्रेटेड वीकली’ के पन्ने उलट रहा था। लाल मुहवाला वह मोटा आदमी अभी तक खर्राटे भर रहा था। सरकारी सदस्यों में से कोई भाषण दे रहा था। फिर जब उसकी नज़र लौटकर गैलरी पर पड़ी तो उसने देखा कि वह मूछोवाला नौजवान उठ खड़ा हुआ जैसे बाहर जा रहा हो और दूसरे ही क्षण उसने कुछ नीचे फेंक दिया था...

बम ! एक भयानक विस्फोट के साथ सरकारी सदस्यों के सामने फर्श पर बम फट गया और उसके फौरन ही बाद लाल पर्चों की वर्षा शुरू हो गई। सदस्यों में, खास तौर पर अफसरों और अंग्रेजों में खलबली मच गई। कुछ भागकर



बाहर पाखानो में जा छिपे, कुछ रेंगकर मेजों के नीचे छिप गए। हर आदमी दरवाजे की तरफ भागने की कोशिश कर रहा था और देखते-देखते सारा चैम्बर बदबूदार धुएँ से भर गया। अनवर ने देखा कि सिर्फ दो आदमी ऐसे थे जो इस घबराहट का शिकार नहीं हुए—एक थे विठ्ठलभाई पटेल, लम्बी दाढ़ीवाले स्पीकर और दूसरे पंडित भोतीलाल नेहरू जो अपनी पार्टी के सदस्यों को समझा रहे थे : “अरे भाई, भागते क्यों हो, ये तो कोई हमारे ही आदमी होंगे।”

इस भगदड़ के शोर-गुल, औरतों की चीख-पुकार और पुलिस की सीटियों की तेज आवाज को दबाकर एक ललकार चैम्बर में बार-बार गूँज रही थी : इन्कलाब जिन्दाबाद ! इन्कलाब जिन्दाबाद !

यह उसी मूछोवाले नौजवान की आवाज थी, अनवर ने उसे देखा और उसका वह चित्र अनवर के हृदय पर हमेशा के लिए अंकित हो गया। वह एक कुर्सी पर निडर खड़ा था—एक पूरे साम्राज्य के खिलाफ एक अकेला आदमी—और वह नारा लगा रहा था जो शीघ्र ही एक पूरे राष्ट्र के लिए संघर्ष की ललकार बन जानेवाला था।

पुलिस उसे हाथ लगाते हुए डर रही थी इसलिए उसने बड़ी बेपरवाही से अपना रिवाल्वर उनके सामने फेंक दिया और अपने-आपको और अपने साथी को पुलिस के हवाले कर दिया। अनवर जब दूसरे विद्यार्थियों के साथ बाहर जा रहा था तो उसने पुलिस के एक दरोगा को उस लम्बे कदवाले नौजवान से उसका नाम पूछते सुना, जिसकी मूछों में अब भी विद्रोह का बाकपन था। उसने बड़े गर्व से उत्तर दिया, “भगतसिंह।” जब वह पास से होकर गुजरा तो अनवर को बहुत डर लगा। अगर उसके चेहरे से जरा भी इशारा मिला कि वह अनवर को पहचानता है तो अनवर गिरफ्तार कर लिया जाएगा। लेकिन भगतसिंह पास से होकर गुजर गया और उसके चेहरे का भाव जरा भी नहीं बदला, फिर भी उसकी आँखों में मुस्कराहट की एक चमक थी मानो वह अनवर से कह रहा हो, “कामरेड, हम अपने वादे पर कायम रहे न ?”

वे उसे गिरफ्तार करके ले गए पर बाहर बरामदे से उसकी पाटदार आवाज पूरे चैम्बर की दीवारों को हिलाती हुई गूँजती रही : इन्कलाब जिन्दाबाद !!

और उस क्षण अनवर ने महसूस किया कि ठहरा हुआ गदला पानी तली

तक हिल गया है। बहरो के कान खुल गए हैं। इन्कलाब आ गया है। अब हिन्दुस्तान वह पड्डेवाला हिन्दुस्तान नहीं रह जाएगा—उस एक बम का धमाका हर हिन्दुस्तानी की जिन्दगी को बदल देगा।



तूफान

## खुली साज़िश

\*\*\*इसलिए यह कांग्रेस पिछले वर्ष के कलकत्ता अधिवेशन द्वारा स्वीकार किए गए प्रस्ताव के अनुसार यह घोषणा करती है कि कांग्रेस के सविधान की धारा एक में 'स्वराज्य' शब्द का अर्थ 'पूर्ण स्वराज्य' होगा\*\*\*।"

जिस समय यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया उस समय अध्यक्ष के स्थान के पीछे लगी हुई घड़ी बारह बजा रही थी। बड़े-से पडाल में एक लाख दर्शक खचाखच भरे हुए थे, पडाल इतना बड़ा होते हुए भी उनके लिए छोटा था लेकिन उन्हें इस बात की तसल्ली थी कि लाहौर में दिसम्बर की रात की उस कड़ाके की सर्दियों में एक-दूसरे से सटकर बैठने की वजह से उनके शरीर में कुछ गर्मी आ रही थी। अनवर भी उनके बीच बैठा हुआ तालिया बजा रहा था और नारे लगा रहा था। तालिया बजाते-बजाते उसकी हथेलिया सूज गई थी और गला बैठ गया था। उसके गालों पर खुशी के आसू बह रहे थे। यही वह क्षण था जिसकी वह और देश के सभी नौजवान कई वर्षों से प्रतीक्षा करते आए थे, जिस क्षण के लिए इतने लोगो ने मुसीबतें भेली थी और अपनी जान जोखिम में डाली थी, मार खाई थी, यातनाएँ सही थी और अपनी जान तक दे दी थी।

जनसमुदाय खुशी के मारे पागल हो उठा था और लोग 'महात्मा गांधी की जय !' और 'पंडित जवाहरलाल नेहरू की जय !' के नारे लगा रहे थे। इन नारों की गूँज में घड़ी की आवाज़ बिल्कुल डूबकर रह गई थी। सभी नौजवानों के गलों से 'इन्कलाब जिंदाबाद' का वीरतापूर्ण नारा गूँज उठा जिसे अनवर ने असेम्बली चैम्बर में बम फटने के बाद भगतसिंह को लगाते सुना था। भीड़ इस नारे को मंत्र की तरह बार-बार दुहरा रही थी और इस गूँजती हुई आवाज़ में अपनी आवाज़ सुनकर अनवर का दिल बल्लियों उछलने लगा। यह आजादी का नया मंत्र था और अनवर उस नौजवान के बारे में सोचने लगा जिसे कालेपानी की सज़ा हुई थी और जो इस वक्त लाहौर में सांडर्स का खून करने के इससे भी गंभीर



अपराध की सजा सुनाए जाने की प्रतीक्षा कर रहा था। इस शोर-गुल, जयजयकार और नारेबाजी के कोलाहल में उसे बरबस भगतसिंह और उसके नौजवान बंगाली साथी बटुईश्वर दत्त की याद आ रही थी। न केवल सरकार के पिटू अखबारों और नरम दलवालों ने बल्कि राष्ट्रवादी अखबारों और महात्मा गांधी जैसे कांग्रेस के नेताओं ने भी उनका साथ देने से इंकार कर दिया था और 'असेम्बली बम कांड' के लिए उनकी निंदा की थी। फिर भी उस दिन इन दोनों ने जो विद्रोह का नारा लगाया था वह आज सारे देश में करोड़ों लोगों की ज़बान पर था। अपने चारों ओर अनवर को घूर दक्षिण से आए हुए काले रंग के तमिलवासी, दुबले-पतले फुर्तीले बंगाली, मोटे गुजराती और गठे हुए शरीर-वाले मराठे बैठे दिखाई दे रहे थे और वे सभी एक स्वर से फारसी के दो शब्द चिल्ला रहे थे : 'इन्कलाब जिंदाबाद !' क्रांति अमर हो !

देखते-देखते चारों ओर यह खबर फैल गई कि इस ऐतिहासिक प्रस्ताव के स्वीकार किए जाने के अवसर पर कांग्रेस के नये अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू आज़ादी का झंडा फहराएंगे। इस खबर के फैलते ही सब लोग बाहर निकलने के दरवाज़ों की तरफ भाग पड़े।

नदी के मटीले पानी में कांग्रेस के कैम्प की रोशनियों का प्रतिबिम्ब झिलमिला रहा था, पच्छिम की तरफ से ठंडी हवा चल रही थी जो तीर की तरह चुभती हुई उनकी हड्डियों को भी बेधे दे रही थी। पर उनके दिलों में आज़ादी की नई ज्योति जल उठी थी और एक बार फिर आधी रात का निस्तब्ध वायुमंडल उनके नारों से गूँज उठा, हालांकि सर्दियों के मारे उनके दांत बज रहे थे। बिजली की तेज़ रोशनियों का मुह पंडित जवाहरलाल नेहरू की तरफ मोड़ दिया गया। झंडे के नीचे काली शेरवाणी और चूड़ीदार पाजामा पहने खड़े हुए पंडितजी अपने कद से ज़्यादा लम्बे लग रहे थे। अनवर को ऐसा लगा कि वे एक व्यक्ति भी हैं और एक प्रतीक भी। इस उमड़ती हुई भीड़ को चीरकर वह आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा था। उसे शुरू के कुछ शब्द सुनाई नहीं दिए क्योंकि जवाहरलाल धुआंधार भाषण करनेवालों में से नहीं थे। लेकिन जब भीड़ बिल्कुल खामोश हो गई तो उनकी साहस-भरी आवाज़ बिल्कुल साफ सुनाई देने लगी और अनवर को ऐसा लगा कि वे ये शब्द उसीसे कह रहे हैं :

“अब हमने अपने मुल्क को विदेशी हुकूमत से आज़ाद करने की खुली

साजिश की है और, साथियो, आपको, हमारे देश के सब भाइयो और बहिनो को, इस खुली साजिश मे शामिल होने का न्योता दिया जाता है। लेकिन इसके बदले मे आपको तकलीफे उठानी पडेगी, जेल जाना पडेगा और हो सकता है आपको अपनी जान की भी कुरबानी देनी पडे। लेकिन आपको यह तसल्ली रहेगी कि आप हिंदुस्तान की खातिर जो कुछ कर सकते थे वह आपने किया और आपने इसानो को उनकी मौजूदा गुलामी से छुडाने मे कुछ थोडी-बहुत मदद की।....”

झंडा ऊपर चढकर फहराने लगा—लाल, सफेद और हरे रंग का तिरंगा झंडा जिसपर एक चरखा बना हुआ था। एक क्षण के लिए पूरी भीड़ पर सन्नाटा छा गया, तोग इस ऐतिहासिक क्षण के महत्त्व से और उस विद्रोह-भरी चुनौती के गभीर परिणामो को सोचकर कुछ सहम-से गए थे। इतने मे एक ओर से तालियो की आवाज लहर की तरह उठी और देखते-देखते तालिया तूफान की तरह गूज उठी और नारो मे एक नया नारा जुड गया : झंडा ऊचा रहे हमारा ।

३१ दिसम्बर १९२९।...१२ बजे रात। यह अविस्मरणीय क्षण था। एक वर्ष समाप्त हो रहा था और एक नया वर्ष आरम्भ हो रहा था। पर केवल इतनी ही बात नही थी। एक युग समाप्त हो रहा था और एक नया युग आरम्भ हो रहा था। अनवर अपने कैम्प मे वापस आया तो उसे ऐसा लगा रहा था कि वह अब भी भावनाओ की लहर पर सवार है और उसे ऐसा लगा कि उसने इतिहास की धारा को मुडते देखा है और उसे मोडने मे हिस्सा लिया है।

उस छप्पर मे छः लोग ठहरे हुए थे, सबके सब नौजवान। अनवर के अलावा अलीगढ से तीन और आदमी आए थे—उस्मान फजलभाई, ‘राज’ और एक बहुत छोटा स्कूली लडका यूनिस जो उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रात का रहनेवाला था और लाल कुर्तीवालो के नेता खान अब्दुलगफ्फारखा का कोई बहुत नजदीक का रिश्तेदार था। बाकी दो मे एक था राय, जो किसी बंगाली अखबार का रिपोर्टर था और दूसरा था सुदरम जो दक्षिण भारत मे बेजवाडा नामक नगर का विद्यार्थी कार्यकर्ता और युवक सघ का सदस्य था।

एक-एक करके वे वापस लौटे और कपडे उतारकर सर्दी मे ठिठुरते हुए अपनी-अपनी रजाइयो और कम्बलो में घुस गए। परंतु उस पठान लडके को

छोड़कर, जो दिन-भर लाल कुर्तीवाले वालटियरो के साथ परेड करते-करते थककर चूर हो गया था और आते ही सो गया था, उनमें से किसीको भी नींद नहीं आ रही थी। राय एक सिगरेट से दूसरी सिगरेट सुलगाकर लगातार धुआँ उड़ा रहा था और सुदरम हर बार उसे याद दिलाता था कि वह सिगरेट का टुरा देखभालकर फेका करे नहीं तो आग लग जाएगी। 'राज' कोई नज़्म गुनगुना रहा था, ऐसा लगता था कि उस दिन की प्रेरणाप्रद घटनाओं से प्रभावित होकर वह कोई नज़्म कह रहा था। उस्मान नज़्म पूरी होने से पहले ही सुन लेना चाहता था, लेकिन 'राज' राय और सुदरम के सामने सुनाना नहीं चाहता था क्योंकि उनकी उर्दू की जानकारी न होने के बराबर थी। लेकिन टीप का मिसरा बार-बार गुनगुनाते हुए एक बार अनजाने ही उसने उसे जोर से पढ़ दिया। कविता का शीर्षक था 'आधी रात का सितारा' और उसमें शायर ने उन ऐतिहासिक घटनाओं को जो उसने देखी थी तथा अपने हृदय पर उनके प्रभाव को प्रतीकात्मक ढंग से बयान किया था।

अनवर तो हमेशा से 'राज' की शायरी का दीवाना था। वह हर शेर पर बाह-बाह करने लगा। उसकी तारीफ सुनकर राय और सुदरम ने अंग्रेजी में उसका अनुवाद करने की माग की, लेकिन अंग्रेजी में बंगाली पत्रकार को उसमें कोई मज़ा नहीं आया और उसने ऐसे विचार व्यक्त किए जिन्हें सुनकर अनवर दग-रह गया क्योंकि उनमें उसे देशभक्ति के अभाव का आभास हुआ। राय ने कहा कि गांधी ने (वह उन्हें 'गांधीजी' तक नहीं कहता था) वामपक्षी विरोधियों को नीचा दिखाने के लिए और कांग्रेस पर फिर पहले की तरह अपना पूरा प्रभुत्व कायम करने के लिए तिकड़म से पड़ित जवाहरलाल नेहरू को कांग्रेस का अध्यक्ष चुनवा दिया था। अनवर यह नहीं बर्दाश्त कर सकता था कि उसके प्रिय नेता की इस तरह आलोचना की जाए, इसलिए उसने ज़बर्दस्त विरोध करते हुए कहा, "हर आदमी जानता है कि जवाहरलाल का चुनाव ज्यादा तरक्कीपसंद नौजवान लोगों की जीत है। तुमने अभी प्रेसीडेंट की हैसियत से उनकी तकरीर सुनी है। अगर तुम अब भी उन्हें 'रिएक्शनरी' समझते हो तो यह तुम्हारी हठधर्मी है और कुछ नहीं।"

"और तुम बिल्कुल अनाड़ी किस्म के जज़्बाती आदमी हो जो आदमी को हज़ीरे बनाकर उसे पूजते हो," राय ने जवाब दिया, "और तुमने अभी तक



आदमी की बातों और उसके कामों में फर्क करना नहीं सीखा है।”

इसपर उस्मान और सुन्दरम दोनों को गुस्सा आ गया। वे दोनों भी अनवर की तरह ही नेहरू के पक्के भक्त थे, इसलिए वे इसकी तरफ से बोलने लगे। उस्मान ने कहा कि जो नेहरू के नेतृत्व को स्वीकार नहीं करता वह गद्दार है, और सुन्दरम ने, जिसकी स्मरण-शक्ति बहुत अच्छी थी, पंडितजी द्वारा कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से दिए गए भाषण के कुछ हिस्से मुहजबानी दुहराना शुरू किया—वह हिस्सा जिसमें उन्होंने पूरी आजादी और अंग्रेजों से नाता तोड़ लेने पर जोर दिया था, खुले-आम यह स्वीकार किया था कि वे सोशलिस्ट हैं और हिन्दुस्तान में सोशलिज्म कायम करने के लिए काम करेंगे। उन्होंने देसी रज-वाडों पर हमले किए थे, गांधीजी के ‘ट्रस्टीशिप’ के सिद्धान्त से खुला मतभेद प्रकट किया था और राष्ट्रीय कांग्रेस तथा मजदूरों की ट्रेड यूनियन कांग्रेस के बीच घनिष्ठतर सहयोग की भविष्यवाणी की थी। उस साल वे इन दोनों ही सगठनों के अध्यक्ष थे।

“सब बातें ही बातें हैं, कोरी बातें,” अविश्वासी राय ने दूसरी सिगरेट जलाते हुए कहा और एक बार फिर नेहरू के तीनों भक्तों ने एकसाथ उसपर जवाबी हमला शुरू कर दिया।

“अच्छी बात है,” अनवर ने अपने दोनों समर्थकों की बात काटकर ऊंची आवाज़ में कहा, “हम थोड़ी देर के लिए माने लेते हैं कि गांधीजी रिएक्शनरी (प्रतिक्रियावादी) हैं और जवाहरलाल कमजोर आदमी है और उनमें बिल्कुल दम नहीं है। लेकिन क्या तुम किसी दूसरे नेता का नाम बता सकते हो जिससे हम आजादी की लड़ाई की रहनुमाई करने की उम्मीद कर सकते हैं?”

उसने सोचा था कि इस बात से वह राय का मुह बन्द कर देगा, पर राय को इस सवाल का जवाब ढूँढने में एक क्षण भी नहीं लगा। उसने बड़े विश्वास के साथ उत्तर दिया, “सुभाष बोस।”

उस्मान के तो यह सुनते ही जैसे आग लग गई। उसने जलकर कहा, “तुम बंगाली लोग तो हमेशा किसी बंगाली को ही पसंद करते हो। इसलिए तुम्हारी तरक्की की सारी बातें खुली प्राविशलिज्म (प्रान्तीयता) के अलावा और कुछ नहीं हैं।”

इसपर बहस में फिर गरमी पैदा हो गई और सब एकसाथ बोलने लगे।



राय, जिसकी जबान कैची की तरह चलती थी, इस तिहरे हमले से अपनी रक्षा करता रहा। एक बार तो ऐसा लगा कि वह दुबला-पतला बगाली, जो किसीसे कम गुस्सेवाला और जोशीला नहीं था, नेहरू के उन तीनों भक्तों से हाथापाई कर बैठेगा, पर इतने में यूनुस की आख खुल गई और वह पूछने लगा कि क्या गडबड है, इसलिए हाथापाई की नौबत नहीं आई। इसके अलावा बगलवाली भोपडी से किसीने बीच की दीवार को जोर से थपथपाकर गूजती हुई आवाज़ में कहा, “अरे, राम-राम, क्या गोलमाल मचा रखा है ? नींद हराम कर रखी है। हमें सुबह उठकर नदी पर नहाने जाना है और पूजा-पाठ करना है।”

उन लोगो ने बातें बन्द कर दी और जल्दी-जल्दी अपने-अपने कमबलों में दुबक गए, लेकिन राय ने सोने से पहले अपनी सिगरेट बुझाते हुए भी उनपर फिकरा कस ही दिया, “ये है तुम्हारे पडौसी, घास खानेवाले पवित्र गांधीवादी।”

नेहरू के खिलाफ राय की बातों से अनवर की आस्था में कोई कमी नहीं आई लेकिन मन ही मन उसने फैसला किया कि अगले दिन वह उस बगाली षत्रुकार से कहेगा कि वह उसे सुभाष बोस से मिला दे। इस तरह एक दिन में उसे तीन आदमियों से मुलाकात करनी पड़ेगी क्योंकि यूनुस से कहकर उसने लम्बे डील-डौलवाले पठान नेता अब्दुलगफ्फारखा से मिलने का इतजाम किया था और सुन्दरम ने वादा किया था कि वह उसे उन नेता से मिला देगा जिन्होंने कांग्रेस के साथ ही होनेवाले शराबबन्दी सम्मेलन की अध्यक्षता की थी; उनका नाम कुछ बहुत ही टेढ़ा-सा था लेकिन कहा जाता था कि वे दक्षिण भारत के सबसे काइयां नेता थे।

बाकी लोग तो जल्द ही सो गए लेकिन अनवर लेटा-लेटा उन तमाम बातों के बारे में सोचता रहा जो उसने देखी और सुनी थी। राय के ऐसे सनकी चाहे जो कहे पर अनवर को इस बात में कोई भी सन्देह नहीं था कि लडाई का बिगुल बज चुका था और जल्द ही सारा राष्ट्र गांधी और नेहरू के नेतृत्व में आजादी की आखिरी लडाई छेड़नेवाला था। वह सोचने लगा, इस लडाई में वह क्या करेगा ? क्या वह अलग खड़े रहकर सिर्फ तमाशा देखेगा ? वह जानता था कि यह उससे न होगा। वह यह भी जानता था कि संघर्ष में कूदने का मतलब यह होगा कि उसे जेल जाना पड़ेगा, शायद यूनिवर्सिटी से उसे निकाल भी दिया जाए, शायद अपने अब्बा से भी उसे नाता तोड़ना पड़े क्योंकि अब

वे कांग्रेस के पक्के विरोधी हो गए थे । फिर भी ज़िये सब खतरे तो उसे मोल लेने ही होंगे । अगर वह अपने तर्क और अपने विश्वासों के तर्क सच्चा रहना चाहता था तो उसे उसके लिए कीमत तो चुकानी ही होगी । रास्ता साफ था । उसने देखा कि हजारों लोग जेल-यात्रा कर रहे हैं, हजारों लोग अहिंसा की लड़ाई लड़ने के लिए आगे बढ़ रहे हैं, कोई जवाबी हमला किए बिना और भागे बिना (जवाहरलाल की तरह) लाठिया खा रहे हैं, यहां तक कि हसते-हसते फासी के तख्ते पर भी चढ़ रहे हैं । और उसने देखा कि वह जेल में बन्द है । वह अपनी खोपड़ी पर लाठियों की बौछार महसूस करने लगा और कम्बल का सिरा उसे अपने गले में फासी के फन्दे की तरह मालूम होने लगा ।

और फिर, जैसाकि नींद आने से पहले के क्षणों में हमेशा होता था, सलमा की जादू-भरी मनोमोहक तस्वीर उसकी आंखों के आगे घूम गई—मुलायम घुघराले बालों में घिरा हुआ वह लम्बोतरा चेहरा, बड़ी-बड़ी मासूम आंखें और लाल-लाल होठ, जिनसे सलमा ने उसे मुहब्बत के अटूट बन्धनों में बांध लिया था । आज उसके सामने सलमा का जो चित्र आया उसमें उसके चेहरे के चारों ओर एक प्रश्नसूचक चिह्न का घेरा था, जैसे पूरे चांद पर ग्रहण लग गया हो । अभी उसने अपने दिमाग में देश की सेवा की जो योजना तैयार की थी उसमें वह किस तरह खप सकेगी ? उसके अब्बा सरकार के वफादार थे और हालांकि वह जताती ऐसा थी कि उसे राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं है लेकिन वह अनवर के सियासी दोस्तों और उसकी राजनीतिक दिलचस्पियों से बहुत जलती थी । वह उसके लाहौर जाने पर खुश नहीं थी और इसलिए उसे यह बहाना बनाना पड़ता था कि वह वहां अपनी राजनीतिक दिलचस्पी की वजह से नहीं बल्कि सैर करने जा रहा है । वह जानता था कि सलमा इसके लिए कभी भी राजी नहीं होगी कि वह किसी भी खतरनाक राजनीतिक काम में हाथ डाले । लेकिन क्या यह एक औरत के लिए कुदरती बात नहीं थी ? जब मर्द लड़ाई पर चले जाते हैं तब भी तो उनकी औरतें रोती हैं, लेकिन क्या इस वजह से सिपाही फौज में भरती होना बन्द कर देते हैं ? वह उससे मुहब्बत करती थी इसलिए वह उसे जाने तो नहीं देना चाहेगी लेकिन वह उसे बताएगा कि उसके लिए जाना क्यों जरूरी है, यह सिर्फ उसके फर्ज का ही नहीं बल्कि उसकी इज्जत का भी सवाल है, और वह समझ जाएगी । वह रो-रोकर उसे

बिदा करेगी और जब सघर्ष खत्म होगा और आजादी मिल जाएगी तब वह लौटकर आएगा और वह मुस्कराकर उसका स्वागत करेगी । फिर उनकी शादी हो जाएगी और उनके दिन चैन से... ..

नींद से उसकी आखें बन्द होने लगी थी और वह इस सुखद कल्पना को सीने से लगाकर करवट बदलकर सो गया ।

अनवर ने देखा कि कुछ बातों में सुभाष बोस का व्यक्तित्व जवाहरलाल नेहरू जैसा ही आकर्षक था, लेकिन कुछ बातों में वे उनसे बिल्कुल अलग थे । दोनों ही बहुत खूबसूरत थे लेकिन नेहरू के चेहरे पर काफी नरमी थी और नाक-नक्शा काफी उभरा हुआ था, और इस जोशीले बंगाली नेता का चेहरा कुछ भरा हुआ और गोल था । अनवर ने उन्हें कांग्रेस में भाषण करते हुए सुना था । उन्होंने कांग्रेस के सामने यह प्रस्ताव रखा था कि आजादी के प्रस्ताव को व्यवहार में पूरा करने के लिए और साम्राज्यवाद को चुनौती देने के लिए मजदूरों, किसानों और नौजवानों के संगठनों के आधार पर अंग्रेजों की सरकार की टक्कर पर एक दूसरी सरकार बनाई जाए । पुराने नेताओं के विरोध के कारण यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया था परंतु श्रोताओं में जो नौजवान थे वे सुभाष बोस की साहसपूर्ण योजना और उनके जोशीले भाषण से बहुत प्रभावित हुए थे । दोनों के भाषण सुनने के बाद अनवर इस सोच में पड़ा रहा था कि बोस और नेहरू में क्या अंतर है ? वह इस नतीजे पर पहुंचा कि हालांकि दोनों समाजवादी थे लेकिन बोस आजादी और सामाजिक न्याय की तरफ अपने जोशीले रवैये की वजह से हृदय की भावनाओं को छू लेते थे, लेकिन नेहरू की बात दिमाग को छूती थी और उन्नीसवीं शताब्दी के राजनीतिक दार्शनिकों की तरह वे ज्ञान के प्रसार द्वारा दुनिया को बदलना चाहते थे ।

मंच पर से भाषण देते समय बोस बहुत जोशीले आदमी मालूम हुए थे लेकिन जब अनवर ने उन्हें उनकी झोपड़ी में करीब से देखा तो वे बिल्कुल ही दूसरी किस्म के आदमी निकले—बहुत शिष्ट, बहुत नरमी से बोलनेवाले और कुछ आरामतलब भी ; उन्हें बीच-बीच में नेहरू की तरह गुस्सा भी नहीं आता था । राय ने, जो बंगाली नेता को काफी अच्छी तरह जानता था, अनवर



का परिचय कराते हुए कहा, “ये अलीगढ़ के एक बहुत कट्टर नौजवान नेशनलिस्ट है—लेकिन घोर नेहरूवादी है।” यह सुनकर बोस, मुस्करा दिए। पत्रकार राय ने पहले ही से अपने अखबार के लिए उनका इण्टरव्यू लेने की योजना बना रखी थी, लेकिन उसने अपने सवाल इस तरह तैयार किए थे कि अनवर के विचारों में एक नई रोशनी पैदा हो और शायद वह अपने पुराने विचारों के प्रति कुछ निराश हो।

“बोस बाबू,” उसने बंगाली का प्रचलित सम्बोधन इस्तेमाल करते हुए पूछा, “लाहौर कांग्रेस के बारे में आपका क्या खयाल है?”

बोस बाबू ने रुक-रुककर धीरे-धीरे बहुत सघे हुए अंदाज में सोच-सोचकर जवाब दिया, “जाहिर है मुझे इस बात की तो खुशी है कि कांग्रेस ने पूरी आजादी को अपना लक्ष्य मान लिया है, लेकिन मुझे इस बात का बड़ा अफसोस है कि मैंने सरकार की टक्कर पर अपनी अलग सरकार बनाने का जो अमली सुझाव रखा था उसे स्वीकार नहीं किया गया और इसका नतीजा यह हुआ है कि मजिल तक पहुंचने के लिए कोई रास्ता नहीं बताया गया है और न आने-वाले साल के लिए काम का कोई प्रोग्राम ही बनाया गया है।” फिर कुछ देर रुककर, जिसके दौरान में उन्होंने अपने मोटे-से चश्मे के पीछे से अनवर को एक नजर देखा, उन्होंने ज्यादा जोर देकर और कुछ झुंझलाकर कहा, “इससे ज्यादा हास्यजनक भी कोई बात हो सकती है, यह तो मैं सोच भी नहीं सकता, लेकिन राजनीति में कभी-कभी ऐसा होता है कि आदमी को न सिर्फ वास्तविकता का आभास नहीं रह जाता बल्कि वह अपनी सामान्य बुद्धि भी खो देता है।”

राय ने फौरन दूसरा सवाल पूछा, “क्या यह सच है कि आपको वर्किंग कमेटी में नहीं लिया गया है?”

इस सवाल को सुनकर वे बहुत खुश हुए और जोश में आकर बंगाली बोलने लगे लेकिन फिर यह सोचकर कि उनकी बात अनवर की समझ में नहीं आएगी, उन्होंने फिर अंग्रेजी में बोलना शुरू कर दिया, “यह कोई छिपी हुई बात नहीं है, क्योंकि कल रात वर्किंग कमेटी के मेम्बरो के नामों का ऐलान कर दिया गया है और सिर्फ मुझीको नहीं बल्कि गरम दल के लगभग सभी लोगों को जानबूझकर कमेटी में शामिल नहीं किया गया है।”

अनवर ने हिम्मत करके बीच में दखल देते हुए कहा, “लेकिन यह तो



अजीब बात है क्योंकि प्रेसीडेंट खुद गरम दल के है और सोशलिस्ट भी है। आखिर उन्होंने अपनी पसंद के लोगो को कमेटी मे क्यों नहीं लिया ?”

“क्योंकि,” सुभाष बोस ने जवाब दिया, “लोगो को चुनने का काम महात्माजी करते हैं और वे नहीं चाहते कि कमेटी मे कोई ऐसा आदमी हो जो उनके खिलाफ आवाज उठाए। जवाहरलाल तो प्रेसीडेंट बस नाम-भर के है।” फिर उन्होंने पत्रकार राय को, जो उनकी बातें लिखता जा रहा था, चेतावनी देते हुए कहा, “लेकिन यह सब कुछ अभी अखबार मे छापने के लिए नहीं है।”

अनवर यूनुस के साथ जाकर खान अब्दुलगफ्फारखा से मिला। उसने उनसे ज्यादा लम्बा आदमी अब तक नहीं देखा था। दूसरे लोग उनके आगे बिलकुल बौने लगते थे। उनकी लम्बी-सी झुकी हुई नाक और चट्टान जैसा खुरदरा सख्त चेहरा, जिसपर दाढ़ी उगी हुई थी, उत्तर-पश्चिमी सीमात के उन कठोर पर्वत-प्रदेशों की याद दिलाता था जिनपर कोई काबू नहीं पा सका था। अपने लम्बे-चौड़े डीलडौल के बावजूद उनमे बच्चों जैसी मासूमियत और संतो जैसी नरमी थी। वे इतनी विनम्रता से बातें करते थे कि सुननेवाला शर्मिन्दा हो जाता था।

अनवर का हमेशा से यह खयाल था कि पठान बहुत खौफनाक लडाकू लोग होते है। लेकिन इस समय उसके सामने एक ऐसा पठान था जो भोली चिड़िया की तरह नरमी से बोलता था और यह विश्वास रखता था कि गांधीजी की अहिंसा के रास्ते पर ही चलकर पठानों को मुक्ति मिल सकती है। उनके चारों ओर कोई दर्जन-भर दूसरे पठान खड़े थे जो खद्दर की शलवारे और गहरे लाल रंग के कुर्ते पहने थे (इसी वजह से उनका नाम ‘लाल कुरतीवाले’ पड़ गया था)। खान साहब ने अनवर को अपने प्रान्त की अजीब हालत के बारे में बताया—जहां अंग्रेज बारी-बारी से ‘सोने और बंदूको’ की मदद लेकर हुकूमत करते थे। जहां भी मुमकिन होता था वे कबीलो को रिश्वत देकर काम निकालते थे और जब जरूरत होती थी तो उनपर बम बरसाते थे, और इस तरह वे फौजी महत्त्व के इस इलाके को अपने काबू में रखते थे। अनवर आंखें फाड़े हुए आश्चर्य से उनकी बातें सुनता रहा। उन्होंने अनवर को उन ब्रिटिश पोलिटिकल

एजेंटों के बारे में बताया जो लाखों की रकम पानी की तरह खर्च करते थे और बहुत बड़े इलाके में वे जिसे चाहते मरवा सकते थे। उसने यह भी सुना कि अब्दुलगफ्फारखा अपने इसी सूबे में शिक्षा का प्रसार करने और सामाजिक सुधार करने की कोशिश कर रहे थे। अनवर को यह सुनकर भी ताज्जुब हुआ कि सरकार गफ्फारखा की इन कोशिशों को नाकाम करने की कोशिश कर रही थी क्योंकि सरकार चाहती थी कि लोग जाहिल और पिछड़े हुए रहे। लेकिन आजादी के दीवाने कबीलेवाले किसी भी कीमत पर अपनी आजादी बेचने को तैयार नहीं थे और वे बहुत ही भोड़ी किस्म की देसी बंदूकों की मदद से ब्रिटिश साम्राज्य की 'आगे बढ़ने की नीति' के खिलाफ जान की बाजी लगाकर लड़ रहे थे।

“और फिर भी खान साहब,” अनवर ने हिम्मत करके पूछा, “आप समझते हैं कि इन निडर कबीलेवालों को हथियार फेंककर अहिंसा का रास्ता अपनाना चाहिए ?”

“हां, मैं तो यही समझता हूँ,” उस लम्बे-चौड़े पठान ने जवाब दिया। “अहिंसा का रास्ता सही रास्ता है—वही खुदा का बताया हुआ रास्ता है। इस मुहिम में हम गांधीजी के साथ हैं और इशा-अल्लाह, हम यह दिखा देंगे कि पठान आजादी के लिए जान देना भी जानता है।”

अनवर जब तीसरे नेता से मुलाकात करने के लिए बिदा हुआ तो वह सोच रहा था कि यह पठान भी कैसा अजीब आदमी है, लेकिन इस पठान में एक अजीब आकर्षण था। सुन्दरम ने दक्षिणी भारत के जिस नेता से उसका परिचय कराया उनका नाम था राजगोपालाचार्य—अनवर के लिए यह नाम इतना टेढ़ा था कि उसका सही उच्चारण करने के लिए उसे यह नाम लिख लेना पड़ा। अब्दुलगफ्फारखा के मुकाबले में वे एक काले बौने जैसे लग रहे थे और अपनी गंजी चाद और गहरे रंग के चश्मे की वजह से उनकी शक्ल-सूरत कुछ खास आकर्षक नहीं थी। अनवर उनकी प्रखर बुद्धि और उनकी हाज़िरजवाबी से बहुत प्रभावित हुआ और उसने देखा कि वे नरम दल की हर नीति को सबसे अच्छी तरह पेश कर सकते थे। लेकिन एक ऐसे आदमी से बातें करने में बड़ी उलझन होती है जिसकी आंखें गहरे रंग के चश्मे के पीछे छिपी रहे। ऐसा आदमी खुद तो सब कुछ देखता रहता है पर उसे कोई नहीं देख सकता। जब

बातचीत का रुख राजनीति से हटकर घर्म की ओर मुड़ गया और वह दुबला-पतला छोटा-सा मद्रासी आदमी गीता के श्लोक सुनाने लगा तो अनवर की समझ में नहीं आया कि वह क्या करे।

सुभाष बोस, खान अब्दुलगफ्फारखा, राजगोपालाचार्य—एक जोशीला बंगाली, एक शान्त और गम्भीर पठान, एक चालाक और सूक्ष्म मद्रासी। अनवर एक ही दिन में इन तीनों से मिला था और उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि कांग्रेस की राजनीति के ढाँचे में इन तीनों को एकसाथ कैसे बिठाया जाए। अब तक तो वह यही समझता आया था कि कांग्रेस की राजनीति का फैसला गांधीजी की महात्माओं जैसी मानवोपकारिता और जवाहरलाल के समाजवादी आदर्शवाद की बुनियाद पर होता है ! जो आंदोलन जल्द ही छिड़ने-वाला था क्या उसमें इन पंचमेल विभूतियों और परस्पर-विरोधी शक्तियों को एकसाथ शामिल किया जा सकता था ? यदि इसमें कामयाबी मिल गई तो यह गांधीजी की नीति की सबसे बड़ी विजय होगी। उस रात यही सोचते-सोचते अनवर को नींद आ गई।

अनवर 'राज' और यूनुस के साथ अलीगढ़ वापस जाने की तैयारी कर रहा था लेकिन अभी वह बिस्तर बाँध ही रहा था कि इतने में रतन—बल्कि कहना चाहिए रामलाल, क्योंकि अब उसका यही नाम था—वहा आ पहुँचा। तो वह अभी तक पुलिस के चंगुल से बचा हुआ था। अनवर उसे देखकर बहुत खुश हुआ और दोनों दोस्तों ने लपककर एक-दूसरे को गले लगा लिया।

“अरे भाई, कहा जा रहे हो ?”, रतन ने उसके सामान की तरफ इशारा करते हुए कहा। “अभी तो तुमने कांग्रेस देखी है, लाहौर तो घूमे ही नहीं। तुम्हें दूढ़ते-दूढ़ते मुझे चार दिन हो गए। क्या तुम समझते हो कि मैं तुम्हें इस तरह चला जाने दूँगा ? कम से कम कुछ दिन तो तुम्हें मेरे साथ रहना ही पड़ेगा। मुझे यकीन है, तुम्हारे दोस्तों को कोई एतराज नहीं होगा।”

और यह कहकर वह अनवर को अपने साथ घसीट ले गया और उसका सूटकेस और बिस्तर तागे में डालकर उसने तागेवाले से कृष्णनगर चलने को कहा। फिर अनवर से बोला, “मैंने किराये पर एक घर ले रखा है जिसमें मैं



अपने कुछ दोस्तों के साथ रहता हूँ।” अनवर को अच्छी तरह इस बात का अंदाजा था कि वह किस तरह के दोस्तों के साथ रहता होगा और जब वह रतन के घर पहुँचा और उसने अंदर के कमरे में तरह-तरह की झोतले, शीशियाँ, काच की नलियाँ और तेजाब की सुराहियाँ, पुराने लोहे के टुकड़े और बमों के कुछ फौलाद के खोल भरे हुए देखे तो उसके मन में तरह-तरह की आशंकाएँ उठने लगीं और वह समझ गया कि ये सब चीजें सिर्फ बम बनाने के ही काम आ सकती हैं।

“मुझे यहाँ लाकर क्या तुमने बहुत बड़ा खतरा नहीं मोल लिया है?” अनवर ने इतमीनान से बैठते हुए कहा। “क्या तुम्हारी पार्टी के लोग इस बात पर एतराज नहीं करेंगे कि तुमने ऐसी खुफिया जगह एक अजनबी आदमी को दिखा दी?”

“अनवर, तुमने दिल्ली में हम लोगों के लिए जो कुछ किया उसके बाद तुम अब पार्टी के लिए अजनबी नहीं रह गए।”

इस बात पर अनवर को याद आया कि उस घटना को दस महीने हो गए थे लेकिन अनवर को अभी अपने दोस्त से एक हिसाब चुकता करना था। उसने शिकायत करते हुए कहा, “उस बार तुम अपने वादे पर कायम नहीं रहे। तुम्हें याद है मैंने क्या कहा था—बशर्ते कि किसीको मारने का सवाल न हो।”

रतन यह सुनकर हस पड़ा और बोला, “तुम्हें भी याद है हमने क्या कहा था, ‘कोई जान से नहीं मारा जाएगा’।” भगतसिंह, बटुकेश्वर दत्त और दूसरे साथियों की याद आते ही, जिनपर वहाँ से कुछ ही मील की दूरी पर लाहौर सेंट्रल जेल में कत्ल और बगावत के सगीन जुर्मों में मुकदमा चलाया जा रहा था, रतन का चेहरा कुछ उदास हो गया। उसे शायद इस बात का भी अंदाजा हो गया होगा कि अनवर ने उसकी भावनाओं को ताड़ लिया है क्योंकि किसीका नाम लिए बिना उसने कहना शुरू किया, “तुम्हें यह तो मालूम ही हुआ होगा कि उनके साथ कैसा सलूक हो रहा है—भूख-हडताल के बारे में और इकसठ दिन की भूख-हडताल के बाद यतीन दास की मौत के बारे में तो तुमने सुना होगा। अनवर, ज़रा सोचो, दो महीने तक उसने अनाज का एक दाना भी नहीं खाया। तुमने उसे देखा नहीं था। वह यो भी इतना दुबला-पतला और इतने कोमल स्वभाव का था कि हम लोग उससे कहा करते थे कि ‘यतीन, तू तो बिल्कुल



लडकियो जैसे हो', और हमारी इस बात पर वह शरमाकर हंस देता था। और जब उसकी अर्थी उठी उस वक्त वह सूखकर बिलकुल काटा हो चुका था और उसका वजन बच्चे के वजन से ज्यादा नहीं था।”

अनवर ने देखा कि रतन की आखों में आसू छलक आए थे और इधर कुछ दिनों से उसने सख्ती का जो एक बाहरी गिलाफ ओढ़ रखा था वह अचानक हट गया। अब उससे वही पुराना रतन बातें कर रहा था जिससे वह लडकपन में मिला था और जिसका स्वभाव इतना कोमल था। “अबबारी में इसका पूरा हाल नहीं छापा जाता कि पुलिस हमारे साथियों के साथ क्या सलूक कर रही है। उन्हें बुरी तरह पीटा गया है और हफ्तों अघेरी कालकोठरियों में बन्द करके रखा गया है, उन्हें सख्त तकलीफें दी गई हैं और नगा करके बर्फ की सिलो पर लिटाया गया है। हम अब उन्हें ज्यादा दिन तक ये तकलीफें नहीं सहने दे सकते। जल्द ही हमें...”

सहसा वह बात कहते-कहते रुक गया। उसने महसूस किया कि वह जितनी बातें बताना चाहता था उससे ज्यादा उसने बता दी है। इतनी बातें तो उसे पूरे भरोसेवाले दोस्त को भी नहीं बतानी चाहिए।

“तुम्हारा मतलब है कि तुम उन लोगों को छुड़ाने की कोशिश करोगे ?” अनवर से पूछे बिना न रहा गया। इस साहसपूर्ण योजना की कल्पना करके ही उसके रोगटे खड़े हो गए।

रतन ने सिर हिलाकर दूसरे कमरे की तरफ इशारा किया जहां अनवर पहले ही ‘बम का कारखाना’ देख चुका था। “हमारे कुछ साथी इसीकी तैयारियां कर रहे हैं। असली दल यह नहीं है, मैं तो एक छोटी-सी टोली के साथ काम कर रहा हूँ। लेकिन मैं तुमको इस काम में नहीं लगाना चाहता। मैं तो तुमसे एक दूसरी ही चीज़ के बारे में बातें करना चाहता हूँ जो कहीं ज्यादा जरूरी है, लेकिन जिसमें तुम्हारे लिए खतरा बहुत कम है।”

अनवर यह जानने के लिए उत्सुक था कि वह क्या चीज़ थी जिसके बारे में रतन उससे बातें करना चाहता था पर रतन को बताने की कोई जल्दी नहीं थी। “फिर बातें करोगे, लेकिन यहां नहीं। अब दूसरे लडके वापस आते होंगे और मैं यह बात उनके कानों में भी नहीं पड़ने देना चाहता।” फिर उसने एक ऐसी बात कही कि अनवर चक्कर में पड़ गया। उसने कहा, “तुम कपड़े बदल-

कर अपना सबसे अच्छा सूट पहन लो। शायद हम खाना खाने के लिए एक बहुत ही फैशनेबल होटल में चलेगे।”

वह संगीत सबसे पहले अफ्रीका के जंगलों से आया था, जहाँ के आदिम वनवासी भूत-प्रेत भगानेवाले डाक्टर के आदेशों के अनुसार ढोल पीटकर, भोपू बजाकर और अपने तने हुए काले पेट बजाकर अजीब-अजीब आवाजों में चिल्लाते थे। जब गुलामों की त्रिज्जारत करनेवालों ने इन बेचारे हबिश्यों को चुराकर सात समुन्दर पार नई दुनिया में जाकर बसनेवाले लोगों के हाथ बेचा तो ये अपने साथ अपना संगीत भी ले गए। न्यूयार्क, शिकागो और सैन फ्रांसिस्को के उकताए हुए बेहद शौकीन लोगों को यह संगीत भा गया और दक्षिणी अमरीका की कामोत्तेजक भीगी-भीगी हवा में इस संगीत को एक नये साचे में ढाला गया और वह पहले से भी ज्यादा उद्दाम हो गया। सर्वशक्तिमान डालर की भूमि से आनेवाली दूसरी चीजों के साथ हालीवुड की फिल्में, फोर्ड की मोटर गाड़ियाँ, लिपस्टिक, च्यूइंग गम और जाज़ संगीत भी भारत पहुँचा। यह संगीत लाहौर में बड़ी तेजी से पनपने लगा क्योंकि नौदौलत ज़मींदारों के बेटों को इसमें स्वयं अपने देश के समृद्ध और जानदार लोकसंगीत की एक अजीब विकृत-सी प्रतिध्वनि सुनाई देती थी।

रतन अनवर को माल रोड पर एक नाइट क्लब में ले गया और वहाँ उसे लाहौर की ज़िन्दगी के एक ऐसे पहलू से परिचित कराया जो कांग्रेस कैम्प के सोलहो आने राजनीतिक वातावरण से बिल्कुल भिन्न था। यह बिल्कुल ही दूसरी दुनिया थी—कपड़े की दूकानें, जिनमें सैकड़ों किस्म का रंग-बिरंगा विलायती कपड़ा ठसाठस भरा हुआ था; जगमग करती हुई जौहरियों की दूकानें; रेस्तरा; शराबखाने और नाइट क्लब। अल्पाका के डिनर सूट, कलफदार कमीज़ें, चार्जेंट और चीनी क्रैप की साड़ियाँ, ज़री की कमीज़ें और शलवारे, हीरे के बुंदे और मोती के हार, पाउडर और सुर्खी से रंगे हुए चेहरे, रसीले होठ और दावत देती हुई आँखें, बेझिझक कहकहे, गिलासों की खनक, शराब की झिलमिलाहट, गाल से गाल मिलाकर नाचते हुए जोड़े, और कागों के जगली संगीत की धुन पर थिरकते हुए लचकदार शरीर और इन सब चीजों पर छाया

हुआ सिगरेट का धुआ और विहस्की की भभक....।

रतन ने उसे बताया कि उसने यह नियम-सा बना लिया था कि वह सारी खुफिया बातें किसी नाइट क्लब में ही करता था—जहाँ भीड़ में रहकर भी आदमी अकेला रहता था और उस हल्लड के बीच खुलकर बातचीत कर सकता था। अनवर को शुरू-शुरू में तो इसमें बहुत खतरा मालूम हुआ लेकिन नाचघर की मद्धिम रोशनी में कुछ मिनट तक कोनेवाली मेज़ पर बैठने के बाद उसे यकीन हो गया कि रतन ने यह जगह पसंद करने में कितनी समझदारी का सबूत दिया था। शराब के देवता का यह मंदिर आखिरी जगह थी जहाँ पुलिस किसी क्रांतिकारी की तलाश में आ सकती थी।

थोड़ी ही देर में वह वहाँ के वातावरण से परिचित हो गया इसलिए अब उसका ध्यान अपने चारों ओर की चीजों की तरफ से हट गया था और उसने अपने दोस्त की बात ध्यान से सुनना शुरू किया।

रतन ने उसे बताया कि जेल के अंदर और बाहर दोनों ही जगह के क्रांतिकारियों को अब भी यकीन नहीं था कि कांग्रेस कोई इन्कलाबी कदम उठाएगी। फिर भी वे यह महसूस करते थे कि आजादीवाला प्रस्ताव आगे की दिशा में एक कदम है और बहुत थोड़ी ही सही लेकिन इस बात की संभावना है जरूर कि जितने दिन तक जवाहरलाल कांग्रेस के प्रेसीडेंट हैं तब तक कांग्रेस शायद कुछ वामपक्ष की ओर झुके।

अनवर को यह सुनकर बहुत दिलचस्पी पैदा हुई क्योंकि उसने महसूस किया कि आतंकवादी भी अब धीरे-धीरे उसीके ढंग से सोचने लगे हैं लेकिन फिर भी उसने पूछा, “तो इसमें मैं क्या कर सकता हूँ ?”

“यही तो मैं बताने जा रहा हूँ,” रतन ने जवाब दिया और बताया कि क्रांतिकारी यह महसूस करते हैं कि उन्हें अब अपना काम राजनीतिक क्षेत्र में करना होगा और बम वगैरह फेंकने तक ही सीमित नहीं रहना होगा। इसके लिए किसी ऐसे आदमी की जरूरत है जो दूसरे दलों तक हमारी बात पहुँचा सके और उनकी बात हमें बता सके, क्योंकि इन दलों का तरीका हमारे अब तक के तरीके से अलग भले ही हो पर इन्कलाब के लिए उनके दिल में हमसे कम लगन नहीं है।

“तुम्हारा मतलब,” अनवर ने उसकी बात का मतलब समझने की कोशिश



करते हुए कहा, “कम्युनिस्टो से है।”

“हा, कम्युनिस्टो से भी, औरो से भी। शायद अलीगढ मे मैने तुम्हे बताया था कि हमारी पार्टी की पालिसी मे सोशलिज्म की तरफ एक नया झुकाव आया है। हमारे साथियो की भूख-हडताल के जमाने मे मेरठ के कैदियो ने भी हमारी हमदर्दी मे भूख-हडताल करके हमारे साथ अपने भाईचारे का सबूत दिया था। इसका मतलब यह है कि साथ मिलकर काम करने की बुनियाद मौजूद है। लेकिन मैं चाहता हू कि हमारी तरफ से मेरठ एक सदेश पहुंचा दिया जाए जिसमे हमारे ठोस सुझाव हो।”

आखिरकार अनवर की समझ मे आने लगा कि इसमे वह क्या कर सकता है।

“तो तुम मुझसे यह चाहते हो कि...?”

“हा, तुम्ही एक ऐसे आदमी हो जो इस काम को कर सकते हो। हममे से कोई भी मेरठ की अदालत मे जाने की हिस्मत नहीं कर सकता क्योंकि वहा आधे दर्जन सूबो के सी० आई० डी० वाले मौजूद होंगे।”

उनके निजी सबब इतने गहरे थे कि विचारो मे बेहद मतभेद होने के बावजूद रतन कभी भी अनवर से यह पूछता नहीं था कि वह उसका कोई काम करेगा कि नहीं। वह बस सीधे उसमे वह काम करने को कह देता था।

अनवर कुछ घबरा रहा था लेकिन उसने उसे ढाढस बधाते हुए कहा, “मैने सब नक्शा तैयार कर लिया है। तुम्हारे लिए कोई भी खतरा नहीं है। कल जब हमारे साथियों का मुकद्मा पेश हो तो तुम एक प्रेस-रिपोर्टर बनकर अदालत मे जाना—मैने तुम्हारे लिए प्रेस का पास बनवा लिया है। वहा उनमे से कोई एक चुपके से तुम्हारे हाथ मे एक चिट्ठी सरका देगा। तुम्हे बस मेरठ जाकर वहा उनमे से किसीको वह चिट्ठी दे देनी है। बस इतना ही काम है। तुम्हे और कुछ नहीं करना है। बहुत ही सीधी-सी बात है।”

अनवर को यह बात इतनी सीधी नहीं मालूम हुई, क्योंकि उसे पहले इस प्रकार के गुप्त काम का कोई अनुभव नहीं था। लेकिन कांग्रेस के आंदोलन को कुछ बाधपक्ष की ओर ले जाने के लिए कम्युनिस्टो और आतंकवादियो के बीच मेल हो जाने का विचार उसे जच गया। इसलिए उसने स्वीकृति मे अपना सिर हिला दिया। इसके बाद दोनो दोस्तो ने नाच की तरफ ध्यान दिया, जहा कई



जोड़े एक जोरदार 'फडकती हुई' धुन पर नाच रहे थे और एक लडकी बहुत कसा हुआ काला फ्राक पहने, जो एक तरफ से इस तरह खुला हुआ था कि उसकी नंगी टांग दिखाई देती थी, भूम-भूमकर दीवानों की तरह गा रही थी :

चिकी चिकी बूम चिक ।

आई लव यू सो मच, सो मच, सो मच ।

दूसरे दिन बहुत सुबह ही अनवर ने एक तागा पकड़ा और कृष्णनगर से सीधा स्टेशन गया । वहाँ उसने अपना सूटकेस और बिस्तर क्लोक-रूम में डाला और लगभग एक घंटे तक वेटिंग रूम में वक्त काटने के बाद सेट्रल जेल के लिए दूसरा तागा लिया—रतन ने उसे अच्छी तरह समझा दिया था कि तागा करते वक्त अच्छी तरह देख ले कि वह पहलेवाला तागा न हो । जेल का लोहे का भारी फाटक बंद था पर प्रेस-कार्ड दिखाने पर उसे फौरन छोटी खिड़की खोलकर चला जाने दिया गया और फौरन ही बाद खिड़की में फिर ताला ठोक दिया गया । ऐसा लगता था जैसे वह खुद कैदी हो ।

अदालत का कमरा वकीलो, कचहरी के कर्मचारियों, अखबारों के रिपोर्टरों और अभियुक्तों के रिश्तेदारों से खचाखच भरा हुआ था । अनवर जाकर रिपोर्टरों की मेज पर बैठ गया । अनवर ने पीछे मुड़कर देखा और इस बात पर उसे बहुत सतोष हुआ कि वह कटहरा जिसमें अभियुक्त लाकर बिठाए जाने-वाले थे, ठीक उसके पीछे था ।

इतने में अभियुक्तों ने कतार बाधकर कमरे में प्रवेश किया और सारा कमरा 'इन्कलाब जिंदाबाद' और दूसरे क्रांतिकारी नारों से गूँज उठा और अनवर यह देखकर दंग रह गया कि अदालत में जितने भी लोग मौजूद थे सब अभियुक्तों के सम्मान में उठ खड़े हुए । सारे कैदियों का रंग पीला पड़ गया था और यह जाहिर था कि भूख-हडताल की वजह से वे अभी तक बेहद कमजोर थे । भगतसिंह को भी अनवर उसकी नुकीली ऐंठी हुई मूँछों की वजह से ही पहचान सका । वह बहुत दुबला हो गया था और उसके चेहरे पर तपस्वियों जैसा भाव आ गया था और अनवर ने उसकी आँखों में पहले जो उदासी देखी थी उसके स्थान पर अब उनमें एक नरमी और आत्मिक शांति का भाव दिखाई देता था । ऐसा लगता था कि अब उसके लिए सारी विषमता और सारी कटुता का, सारे संघर्ष और हिंसा का अंत हो चुका था

और अब अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करते समय वह केवल अपने पिछले जीवन पर दृष्टिपात कर रहा था और उसे किसी बात का खेद नहीं था। उसने अनवर को पहचाना और एक क्षण के लिए उसकी नजरो ने अनवर के चेहरे पर रुक-कर मानो चुपचाप ही उसे सलाम किया और फिर सारे कमरे का निरीक्षण करने लगी। सतर्क जी० आई० डी० वालो को इस बात का सदेह तक नहीं हो सका कि वे नजरे बीच में कहीं ठहरी भी थी।

अग्रेज जज आकर अपनी-अपनी कुर्सियों पर विराजमान हो गए। अदालत के कर्मचारियों ने वहां पर उपस्थित लोगों को कह-कहकर माननीय न्यायाधीशों के सम्मान में खड़ा किया। लोग खड़े तो हो गए पर उत्साह के साथ नहीं। उनके चेहरों पर अरुचि का भाव स्पष्ट था।

अदालत की कार्रवाई शुरू हुई और सरकारी गवाहों से जिरह शुरू हुई। अनवर चूँकि वहां रिपोर्ट लिखने नहीं आया था इसलिए वह व्यर्थ की ब्योरे की बातों में कोई दिलचस्पी नहीं ले रहा था बल्कि इसके बजाय अभियुक्तों की प्रतिक्रिया को देख रहा था। उसने देखा कि ये लोग अदालत की कार्रवाई की ओर जरा भी ध्यान नहीं दे रहे थे। एक स्थानीय अखबार के रिपोर्टर ने अनवर को कटहरे में बैठे हुए प्रमुख क्रांतिकारियों के नाम बताए। भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को अनवर पहले ही से पहचानता था। बहुत दुबला-पतला आदमी पूना का एक मराठा था जिसका नाम राजगुरु था। उसके पास सुखदेव बैठा था, जिसके बारे में मशहूर यह था कि वह पूरी पार्टी का दिमाग है। अनवर ने अखबारों में इस मुकदमे का ब्योरा पढ़ा था और वह जानता था कि सरकारी वकील इस बात की कोशिश कर रहे थे कि उनमें से ज्यादा से ज्यादा लोगों को फासी की सजा हो जाए। फिर भी वे सब, जिनमें जवानी और जिदगी की उमंग थी, वहां बिलकुल शांत बैठे थे जैसे उन्हें किसी बात की चिंता न हो, किसी बात का डर न हो।

एक बजे अदालत लंच के लिए बर्खास्त हो गई। रतन की हिदायतों के अनुसार अनवर के लिए अपना काम करने का वक्त आ गया था। वह दो कदम बढ़कर कटहरे के पास गया और इस तरह वहां खड़ा हुआ कि उसके कोट की जेब लकड़ी के जंगले से सटी हुई थी। उसने भगतसिंह की आखों में आखें डालकर देखा और कहा, “मैं एक अखबार का रिपोर्टर हूँ। क्या आप मुझे बताएंगे कि

आप लोगो के साथ जेल में कैसा सलूक हो रहा है ?” यह सवाल पहचान के लिए था ।

उस क्रांतिकारी की आखे एक क्षण के लिए इस तरह चमक उठी जैसे वह उसे पहचानता हो और उसने जवाब दिया, “आप हम लोगो की सूरतो से अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि हमारे साथ किस तरह का सलूक होता है ।” और फिर कटु व्यंग्य के भाव से उसने कहा, “क्या हमारी सूरत से नहीं लगता कि हमें भरपेट खाना मिलता है और हम चैन की जिंदगी बसर करते हैं ? आप देखते नहीं कि हम सब लोगो का वज़न कितना बढ़ गया है । आप लोग अपने अखबारो में लिखिए कि हमारी सरकार कितनी रहमदिल और मेहरबान है ।”

जिस वक्त वह ये बातें कह रहा था अनवर को कागज की सरसराहट सुनाई दी और एक खत चुपचाप उसकी जेब में सरक गया ।

अनवर “थैंक यू, थैंक यू ।” कहता हुआ जल्दी से कटहरे के पास से खिसक आया क्योंकि इसी बीच में पुलिस के एक दारोगा साहब उसकी तरफ भपट पड़े और ठेठ पंजाबी लहजे में उससे पूछने लगे, “क्यों जी, वहाँ क्या चाहिए तुम्हें ?” अनवर ने शांत भाव से उन्हें समझाया कि वह एक अखबार का रिपोर्टर है और वह कैदियों से सिर्फ यह जानना चाहता था कि जेल में उनके साथ अच्छा सलूक तो हो रहा है न, हालांकि मन ही मन वह डर रहा था कि कहीं उसकी तलाशी न ली जाए और उसकी जेब में वह कागज न पकड़ा जाए ।

“ये सब लोग ठीक हैं, तुम इनकी फिक्र न करो,” दारोगा साहब ने गुस्से से भल्लाकर कहा । “खबरदार, जो तुम अब उनके पास गए । मैं तुम्हें यहाँ से बाहर निकाल दूँगा, सारी रिपोर्टें घरी रह जाएंगी ।”

अनवर ने वादा किया कि वह अब ऐसा नहीं करेगा और फिर उसने ऊँचे स्वर में पुलिसवालों को सुनाने के लिए दूसरे रिपोर्टरों से कहा कि वह बाहर खाना खाने जा रहा है और यह कहकर वह जेल से बाहर निकल गया । स्टेशन पहुँचकर उसने प्रेस-कार्ड फाड़कर फेंक दिया और जो बंद लिफाफा उसे दिया गया था, उसे अपने बटुए में हिफाज़त से रखकर उसने मेरठ का टिकट खरीदा ।

मेरठ में कम्युनिस्टों पर षड्यन्त्र के मुकदमों से सारी दुनिया में हलचल



पैदा हो गई और कम्युनिस्ट षड्यन्त्रकारियों के इस मुकदमे की खबर भेजने के लिए न सिर्फ दिल्ली और लाहौर से, बम्बई और कलकत्ता और मद्रास से बल्कि अंग्रेज और अमरीकी सवाददाता भी मेरठ आ रहे थे। इसलिए अनवर को 'बाम्बे क्रानिकल' के विशेष सवाददाता की हैसियत से इस मुकदमे की रिपोर्ट भेजने के लिए प्रेस-कार्ड बनवा लेने में कोई कठिनाई नहीं हुई। वह जानता था कि इस अखबार ने अपना कोई सवाददाता मेरठ नहीं भेजा है।

जिस खास अदालत में इस मुकदमे की सुनवाई हो रही थी वह एक मकान के एक बड़े-से कमरे में कायम की गई थी जिसे 'जरनल साहब की कोठी' कहते थे। किसी जमाने में जनरल गार्डन, जिनका ब्रिटिश साम्राज्य को बढ़ाने में बहुत बड़ा हाथ था, यही रहते थे और यह उचित ही था कि साम्राज्य के दुश्मनों पर उन्हींकी छत्रछाया में मुकदमा चलाया जाए। अनवर पुलिस के कई सतरियों को पार करता हुआ कमरे में घुसा। अदालत की कार्रवाई शुरू हो चुकी थी। अनवर देख रहा था कि अखबार के रिपोर्टर कहा बैठे हैं। उसने उस लम्बे-से सफेदी किए हुए कमरे को एक सिरे से दूसरे सिरे तक देखा। बीच में लकड़ी का एक बड़ा-सा चबूतरा ऐसा बनाया गया था जिसपर मजिस्ट्रेट साहब की मेज लगी हुई थी। चबूतरे के सामने एक और मेज थी जिसपर कानून की मोटी-मोटी किताबों का बड़ा-सा ढेर लगा हुआ था और मेज के दोनों तरफ काले गाउन पहने हुए सरकारी और सफाई के वकील बैठे हुए थे। मि० मिन्नर व्हाइट मजिस्ट्रेट, जिनके सामने यह मुकदमा पेश था, बहुत ही छोटे डीलडौल के नम्र स्वभाव के अंग्रेज थे और ऐसा लगता था कि एक ऐसे तरनाक मुकदमे का फैसला करने के लिए, जिसकी जड़े मेरठ से मास्को तक फैली हुई थी, बहुत ही गलत आदमी को चुना गया था। सरकारी वकील के धुआधार भाषण को दर्ज करने के लिए टाइपराइटर पर उगलिया दौड़ाते हुए मजिस्ट्रेट साहब अनवर को बहुत दयनीय लगे। इस विचित्र और बेतुकी तस्वीर का एक हिस्सा और भी था और वह थी मजिस्ट्रेट साहब की पत्नी जो उनकी बगल में बैठी हुई बुनाई कर रही थी। उन्हें अदालत की कार्रवाई में जरा भी दिलचस्पी नहीं थी।

परन्तु इस नाटक में मुख्य भूमिका न तो उन छोटे-से शरीफ-सूरत मजिस्ट्रेट साहब की थी और न कटहरे में खड़े हुए उन तीस कैदियों की, बल्कि इस नाटक का मुख्य पात्र वह दुबला-पतला लम्बा-सा सरकारी वकील था जो इस समय



अदालत के सामने अपना पक्ष प्रस्तुत कर रहा था। वह बोलता था तो ऐसा लगता था कि अगारे उगल रहा है। उसका नाम कुछ अमरीकियो जैसा था—जे० लैंगफर्ड जेम्स—लेकिन एक आख पर बिना कमानी का चश्मा, छितरे-छितरे बालू के रंग के बाल, उसकी कटुता-भरी हसी और व्यग उसके ठेठ अंग्रेज होने के प्रमाण थे। वह किसी समय कलकत्ता के यूरोपियन एसोसिएशन का प्रेसीडेंट रह चुका था और ऐसा लगता था कि 'पंच' पत्रिका का कोई कार्टून जिंदा हो उठा हो। इस मुकदमे में एक वकील की हैसियत से दिलचस्पी होने के अलावा उसे कम्युनिस्टों पर कीचड़ उछालने में खास मजा आता था। उसे इस बात की बेहद खुशी थी कि वह कम्युनिज्म के खिलाफ 'जिहाद' में हिस्सा ले रहा है, चौदह सौ रुपये रोज (छुट्टियों के दिन भी) की तुच्छ फीस लेकर इतना जबरदस्त काम करना सचमुच बहुत बड़ी कुरबानी थी।

दूसरे सवाददाताओं से, जो इस मुकदमे के शुरू से ही यहाँ मौजूद थे, अनवर को इस अजीबोगरीब मुकदमे के बारे में कुछ बहुत ही दिलचस्प बातें मालूम हुईं, जिसकी बदौलत जेम्स साहब को अपने वाक्चातुर्य का परिचय देने का मौका मिला था। पिछले नौ महीनों से यह मुकदमा चल रहा था और इस अरसे में तीन सौ से ज्यादा सरकारी गवाह पेश किए जा चुके थे और अन्दाजा लगाया गया था कि जब तक यह मुकदमा खत्म होगा उस वक्त तक इसपर दस लाख रुपये या इससे भी ज्यादा खर्च हो चुके होंगे। और लैंगफर्ड जेम्स साहब सरकारी पक्ष में पांच दिन से बोल रहे थे और उम्मीद की जाती थी कि वे अभी कई दिन तक और बोलते रहेंगे। अनवर को ऐसा लगा रहा था कि उनका धुआधार भाषण, जो किसी खास अभियुक्त के खिलाफ दोषारोपण के मुकाबले में कम्युनिज्म के विचारों पर हमला ज्यादा था, कभी समाप्त नहीं होगा।

'कैपिटल' का एक मोटा-सा ग्रन्थ ऊपर उठाकर ताड़ जैसे लम्बे सरकारी वकील ने, जो रूस में कम्युनिस्टों के अकथनीय 'अत्याचारों' के बारे में विस्तार-पूर्वक भाषण दे रहा था, क्रोधावेश में कहा, "इन सिद्धान्तों को... मार्क्स के इन बेतुके सिद्धान्तों को, बड़ी निर्दयता से लागू किया गया, जैसी निर्दयता इतिहास में इससे पहले कभी नहीं देखी गई थी।" इतना कहकर वह बड़े नाटकीय ढंग से रुका और किताब मेज पर रखकर कुछ ढीले कदमों से अभियुक्तों के कटहरे की तरफ बढ़ा और उन्हें इस तरह घूरकर देखने लगा मानो वह उन सबको इन

अत्याचारों का दोषी ठहरा रहा हो। “यह है,” और इन शब्दों पर जोर देते हुए उसने अभियुक्तों को एक बार फिर इस तरह घूरकर देखा मानो वह उन सबको इस सामूहिक विभीषिका में शामिल कर रहा हो, “यह है वह” सुनहरा स्वर्ग जिसके लिए इन हत्यारों के इशारे पर रूस की खुफिया पुलिस ने पच्चीस लाख मर्द, औरत और बच्चे मौत के घाट उतार दिए हैं।”

वह एक बार फिर रुका ताकि उसके शब्द लोगों के दिलों में बैठ जाए और मजिस्ट्रेट साहब को अपने छोटे-से टाइपराइटर पर उन्हें टाइप करने का मौका मिल जाए, और वह अभियुक्तों को इस तरह घूरकर देखने लगा जैसे उसे उनमें से हर एक से कोई ज़ाती शिकायत हो और वह उनकी संवेदनशील चेतना में घाव करके उसे अपने व्यंग के चाकू से कुरेदकर आनन्द प्राप्त कर रहा हो। परन्तु इस बार भाषण के बीच में रुकना उसके लिए घातक सिद्ध हुआ। उस दुबले-पतले अंग्रेज़ की एक आख पर लगे हुए बिना कमानों के चश्मे का सारा रोब धूल में मिल गया। हुआ यह कि जेम्स साहब के रुकते ही सारे कैदियों ने अपनी उकताहट जाहिर करने के लिए एकमात्र बड़े जोर से जम्हाई ली। इसपर सब लोग हस पड़े, यहाँ तक कि खुद जेम्स साहब के नीचे काम करनेवाले एक हिन्दुस्तानी वकील साहब भी जिनके मुटापे की वजह से ठोड़ी के नीचे खाल लटक आई थी, अपनी हसी नहीं रोक सके। और तो और मजिस्ट्रेट साहब भी इस हास्यजनक परिस्थिति पर अपनी हसी लाख रोकने पर भी मुस्करा ही दिए। जब जेम्स साहब ने कम्युनिस्ट कैदियों की इस गुस्ताखी पर झुझलाकर तेजी से मुड़कर उन्हें घूरा तो उनका चश्मा नीचे गिर पड़ा और काली डोरी से झूलने लगा। इसपर सब लोग फिर ठहाका मारकर हस पड़े।

‘योर ऑनर, आई प्रोटेस्ट। मैं आपका ध्यान इस बात की ओर दिलाना चाहता हूँ कि:—’

मजिस्ट्रेट साहब ने अपनी हसी छिपाने के लिए एक फाइल अपने मुँह के सामने कर ली और जेम्स साहब को अपना एतराज़ पूरा करने का मौका दिए बिना ही उन्होंने कहा, “अच्छा, अब अदालत लच के लिए बख़्ति होती है।”

कैदियों को खाना खिलाने के लिए बगले के पीछे ले जाया गया। उनका खाना एक लम्बी-सी मेज़ पर लगा हुआ था। बहुत-से सवाददाता कैदियों को नज़दीक से देखने के लिए टहलते हुए उसी तरफ बढ़े। उनमें एक मोटा-सा लाल

मुहवाला अमरीकन भी था जो धूप से बचाव के लिए इतनी बड़ी हैट लगाए था कि देखकर हसी आती थी। अनवर ने कुछ कैदियों को तो पहचान लिया क्योंकि उन्हें वह दिल्ली के स्टेशन पर देख चुका था, बाकी को स्थानीय रिपोर्टरों ने पहचानवा दिया। स्प्रेट और ब्रैडले के अलावा अब उनमें एक तीसरा अंग्रेज भी था—हचिसन नामक एक नवयुवक पत्रकार। कैदियों में सबसे बड़े डी०आर० ठेगडे नामक एक वयोवृद्ध मराठा सज्जन थे, जिनकी उम्र इस समय ६५ वर्ष की थी और जो ट्रेड यूनियन कांग्रेस के प्रेसीडेंट रह चुके थे। गोरखपुर के एक मोटे-से होमियोपैथ डाक्टर मुखर्जी की सज्जन निराली ही थी, उन्होंने लेनिन के ढग की एक छोटी-सी काली दाढ़ी रख छोड़ी थी। पंजाब के एक विशालकाय सिख सज्जन के बारे में, जो अपनी उलझी हुई दाढ़ी के कारण बहुत भयानक दिखाई देते थे, अनवर को बताया गया कि वे मशहूर क्रांतिकारी सोहनसिंह जोश थे जो भगतसिंह की नौजवान भारत सभा के प्रेसीडेंट रह चुके थे। इसके बाद अनवर ने एक दुबले-पतले गोरे-से नौजवान के बारे में पूछा जो सिर से पाव तक काले कपड़े पहने था। उसके रिपोर्टर दोस्त ने बताया, “ये हैं लाहौर के केदारनाथ सहगल, जिन्होंने कसम खाई है कि जब तक देश गुलाम रहेगा तब तक काले कपड़े ही पहनेगे।” इन इकतीस कैदियों में हर तरह के लोग थे और अनवर को ऐसा लगा कि सच्चे मार्क्सवादियों के साथ शायद बहुत-से क्रांतिकारी आदर्शवादियों और कुछ सनकी लोगों को भी पकड़ लिया गया था। उनमें से कुछ स्पष्टतः विद्यार्थी थे जो अभी हाल ही में कालेज से निकले थे। अनवर उनमें से एक के पास गया जो लगभग उसीकी उम्र का लड़का था—भरा हुआ गोल-मटोल चेहरा और आखों पर ऐनक लगी हुई। अनवर ने बातचीत शुरू करने के लिए कहा, “मेरठ में उतनी सर्दी गही है जितनी लाहौर में थी।”

“क्या तुम लाहौर से आ रहे हो?” उस लड़के में नौजवानी का जोश उमड़ा पड़ रहा था और वह बोलते वक्त कुछ हकलाता था।

“हां,” अनवर ने जवाब दिया और फिर पीछे मुड़कर देखा कि कोई उसकी बात सुन तो नहीं रहा है, “मैं आप लोगों के लिए टैररिस्ट कैदियों का एक खत लाया हूँ। क्या मैं आपका नाम जान सकता हूँ?”

“पी० सी० जोशी। तुम वह खत मुझे दे दो।”

अनवर ने छोटा-सा पतला लिफाफा जोशी की तरफ सरकाया ही था कि



इतने में एक पुलिस सब-इस्पेक्टर को अपनी तरफ झपटकर आते हुए देखकर उसके होश उड़ गए। जोशी खाना खाने में जुटे रहे। “कुछ तुम भी खाओ,” दारोगा साहब के वहां पर पहुंचते ही जोशी ने अनवर को खाने का निमन्त्रण देते हुए कहा।

“मैंने तुम्हें अभी एक चिट्ठी इन्हें देते देखा है,” दारोगा साहब ने अनवर पर आरोप लगाया और फिर जोशी से बोले, “लाओ, निकालो, किधर है वह खत?”

जोशी ने चुपचाप रोटी का एक बड़ा-सा कौर मुह में रखा और जवाब दिया, “कैसा खत?” जिस वक्त जोशी की तलाशी ली जा रही थी अनवर के होश-हवास गुम थे, लेकिन तलाशी में कुछ भी हाथ नहीं आया। दारोगा साहब खिसियाकर यह कहते हुए चले गए, “खैर, लेकिन मेरा खयाल है कि इन्होंने कोई चीज दी जरूर थी।”

दारोगा साहब जब काफी दूर पहुंच गए तो अनवर ने उस नौजवान कम्युनिस्ट की तरफ प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा। “तुम फिक्र न करो,” जोशी ने एक और कौर अपने मुह में रखते हुए कहा, “मैंने सब पचा लिया है।”

अनवर की सारी मेहनत बेकार गई। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि इस बात पर खुश हो कि पुलिस ने उसे पकड़ा नहीं था या इस बात पर निराश हो कि जो खत वह लाया था वह नष्ट हो गया था। लेकिन जब वह बाकी लोगों के साथ वहां से चलने लगा तो जोशी ने चुपके से उससे कहा, “तुम फिक्र न करो। इस बार हम लोग खुद उनके पास खत भेजेगे।”

अनवर का काम पूरा हो गया था फिर भी वह न होने के बराबर था। उसने गाजियाबाद की गाड़ी पकड़ी जहां से उसे अलीगढ़ के लिए गाड़ी बदलनी थी। उसी डिब्बे में एक अमेरिकन संवाददाता भी सफर कर रहा था—एक गजा-सा, अघेड़ उम्र का बहुत ही चुस्त आदमी जो नाक के सुर में बोलता था। उसने बिना किसी तकल्लुफ के खुद अपना परिचय देते हुए कहा, “मैं अमेरिकन न्यूज फीचर्स का कारेस्पाडेंट राबर्ट मिल्स हूँ।”

“आप सिर्फ इस मुकदमे की रिपोर्ट भेजने के लिए इतनी दूर मेरठ तक आए थे?”

“हां। लेकिन मैं अभी कुछ दिन और हिंदुस्तान में रहूंगा। मेरा खयाल है



कि अब चूँकि गांधीजी ने आजादी के बारे में मजबूत कदम उठाया है इसलिए अब यहाँ काफी हलचल रहेगी। गांधीजी ने स्वतन्त्रता की एक शपथ भी जारी की है। तुमने आज का अखबार पढ़ा ?”

अनवर को उस दिन अखबार पढ़ने का मौका नहीं मिला था इसलिए उसने मिल्स से अखबार लेकर मोटी-मोटी खबरे पढ़ डाली। केन्द्रीय और प्रांतीय विधानसभाओं के सभी कांग्रेसी सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया था। कांग्रेस की नई वर्किंग कमेटी ने हर साल २६ जनवरी को सारे देश में ‘पूर्ण स्वतन्त्रता दिवस’ मनाने का फैसला किया था और यह कहा था कि इस दिन हर जगह मीटिंगों में खुले-आम स्वतन्त्रता की घोषणा पढ़ी जाए और सब लोगों से स्वतन्त्रता की शपथ लेने को कहा जाए।

“ओह ब्वाय, ओह ब्वाय !” वह अमरीकी पत्रकार कह रहा था, “यहाँ भी हमारे यहाँ के जेफरसन और टाम पेन वाला किस्सा दुहराया जानेवाला है। मेरा मन कहता है कि तुम्हारे इस प्राचीन देश में जल्द ही बहुत बड़ी-बड़ी घटनाएँ होनेवाली हैं। कभी दिल्ली आओ तो मुझसे मिलना। मैं सेसिल होटल में हूँ।”

अनवर उसकी बात नहीं सुन रहा था। वह लाहौर की एक खबर बड़े गौर से पढ़ रहा था। खबर का शीर्षक था ‘कई आतंकवादी पकड़े गए—कृष्णनगर में बम फैक्ट्री पर पुलिस का छापा।’ गिरफ्तार किए गए लोगों के बारे में यह लिखा था कि उनमें ‘रतनसिंह उर्फ रामलाल भी शामिल है जिसे भगतसिंह और उनके साथियों की गिरफ्तारी के बाद संगठित किए गए आतंकवादी दल का नेता बताया जाता है।’

अलीगढ़ वापस पहुँचकर अनवर की जिन्दगी फिर उसी पुराने ढर्रे पर चलने लगी। सुबह क्लास में जाना, तीसरे पहर ‘राज’ सुभान और उस्मान के साथ राजनीति पर कभी न खत्म होनेवाली बहसे, लेकिन शाम होते ही उसके पाव अपने-आप मैरिस रोड की तरफ उसे इस तरह खींच ले जाते थे जैसे सूरज ढले शराबी शराबखाने की तरफ खिंचता है। सलमा से रोज मिलना उसके लिए एक नशा-सा हो गया था—इसके बिना वह जिन्दा नहीं रह सकता था। सलमा की तरफ उसका बढ़ता हुआ लगाव एक ‘दर्द-लादवा’ हो गया था।

अनवर एक दुहरी जिन्दगी बसर कर रहा था लेकिन कभी-कभी ही उसे खयाल आता था कि इसमें क्या खतरे छिपे हुए हैं। अपने कमरे में अपने दोस्तों के बीच पहुँचकर वह राजनीतिक चेतना रखनेवाला नौजवान बन जाता था जो उस नाटक में, जो शीघ्र ही सारे देश में खेला जानेवाला था, अपनी भूमिका अदा करने के लिए न सिर्फ तैयार था बल्कि उत्सुक और बेचैन भी था। 'राज' और कुछ दूसरे लोगों के साथ वह स्थानीय कांग्रेस कमेटी का सदस्य बन गया था और उसने खद्दर पहनना शुरू कर दिया था, हालांकि जेल जाने की तैयारी में उसने 'राज' की तरह पलग और बिस्तर छोड़कर फर्श पर सोना शुरू नहीं किया था। शाम को प्रोफेसर सलीम के घर पर वह राजनीति पर कोई बातचीत नहीं करता था। अगर कभी राजनीति का कोई प्रसंग निकल भी आता था तो वह बातचीत का रुख दूसरी तरफ मोड़ देने की कोशिश करता था। वह जानता था कि सलमा और उसके अब्बा दोनों ही को उसके विचार पसन्द नहीं आएंगे और वह यह नहीं चाहता था कि कोई ऐसी बहस छिड़े जिससे बदमज्गगी पैदा हो। सलमा से वह दूसरी ही तरह की बातें करता था— वह उसे इश्किया नज्मे पढ़कर सुनाता था या फिल्मों के बारे में बातें करता था या फिर उसे यह बताता था कि उन्नाबी रंग का स्वेटर पहनकर वह कितनी खूबसूरत लगती थी। या फिर वह कोई भी बात नहीं करता था, चुपचाप उसके पास बैठा हुआ उसके समीप होने का आनन्द लेता रहता था। सलमा की उपस्थिति से सारा वातावरण महक उठता था और अनवर की आखें उसके सौंदर्य का रसपान करती रहती थी। इस वक्त राजनीति और क्रांति उसे बहुत दूर की चीज़ें मालूम होती थी, जिनका कोई वास्तविक रूप नहीं था; इस वक्त तो उसके लिए सिर्फ उनके प्रेम का अस्तित्व होता था।

फिर भी रोज़ सलमा के घर के लिए रवाना होते वक्त वह इरादा करता था कि वह अपने सारे विचार उसके सामने रख देगा, वह उसे अपनी दूसरी जिन्दगी की भी एक झलक दिखाएगा, वह भविष्य की अपनी सारी कल्पनाओं के बारे में उसे बताएगा। वह बार-बार अपने मन में इस डायलाग का रिहर्सल करता था : 'सलमा, मैं तुम्हारे बिना जिन्दा नहीं रह सकता, लेकिन मैं कौम के लिए अपने फर्ज को भी नहीं भूल सकता। मेरे दिल में जो तूफानी कशमकश है उसे तुम ही खत्म कर सकती हो—मैं जैसा हूँ वैसा ही मुझे कबूल करके,

यह जानते हुए कि मैं आगे चलकर बागी बननेवाला हूँ।' उसने कई बार अपने दिल में कहा था कि हो सकता है कि बेरुखी के पर्दे के पीछे सलमा खुद भी एक बागी हो और उसे बगावत की राह पर ले जाने के लिए शायद सिर्फ एक हलके-से इशारे की, मुहब्बत के साथ समझाने-बुझाने की जरूरत हो। शायद....? हो सकता है कि ऐसा न भी हो। वह यह खतरा मोल लेने को तैयार नहीं था।

स्वतन्त्रता-दिवस से दो दिन पहले 'राज' ने अनवर से कहा कि अगर उनकी यूनिवर्सिटी में स्वतन्त्रता की घोषणा न पढ़ी गई तो यह उन सबके लिए बहुत ही शर्म की बात होगी। उसका ख्याल था कि यूनियन पर इस बात के लिए जोर डालना चाहिए कि इस काम के लिए एक मीटिंग करे। लेकिन यूनियन का वाइस-प्रेसीडेंट अधिकारियों से डरता था और वह इस बात के लिए भी तैयार नहीं था कि अधिकारियों की इजाजत के बिना यूनियन की इमारत में कोई मीटिंग हो। लेकिन धीरे-धीरे हर तरफ इस बात का चर्चा फैल गया और विद्यार्थियों के विभिन्न दल, जिनमें सुभान के 'रूसी' भी शामिल थे, उनके कमरे में आकर उन्हें यकीन दिलाने लगे कि वे इस तरह की मीटिंग करने में उनके साथ हैं। नौजवान दिलों में जोश था और जब २५ जनवरी को उन्हें मालूम हुआ कि अग्रेज प्रो-वाइस-चांसलर ने यह कहा था कि वह इस तरह की कोई मीटिंग नहीं होने देगा तो उनका गुस्सा हृद पर पहुंच गया।

'आजादी की लड़ाई के सिपाही की हैसियत से यह मेरी पहली आज्ञामांश है,' अनवर हर वक्त मन ही मन अपने-आपसे यही कहता रहता था। 'मुझे इस आज्ञामांश में पूरा उतरना है, मुझे कदम पीछे नहीं हटाना है।'

उस दिन शाम को जब वह सलमा के घर पहुंचा तो वह कुछ घबराया हुआ और परेशान था, क्योंकि उसने फैसला कर लिया था कि आज वह सलमा को बता देगा कि कल वह क्या करने जा रहा है। 'काश वह हमारा साथ दे सके,' यह विचार उसके दिमाग पर हथोड़े की तरह चोटे मारता रहा, 'अगर वह हमारा साथ दे तो फिर मुझे दुनिया में किसी बात की फिक्र नहीं है।' वह उसे सब कुछ बता देगा, अपने सारे विचार, अपनी आकांक्षाएं, अपनी सारी



योजनाएँ और अपने सारे स्वप्न, क्योंकि वह उसकी जीवनसगिनी बननेवाली थी—उसके सारे जीवन की साथी, उसके सारे प्रेम की साभेदार। कल कुछ भी हो सकता है।

उसने सोचा था कि सलमा घर पर अकेली होगी क्योंकि यह उसके अब्बा का क्लब जाने का वक्त था। लेकिन जब वह वहाँ पहुँचा तो न सिर्फ़ प्रोफेसर साहब वहाँ मौजूद थे बल्कि उनके अलावा एक लम्बा-चौड़ा, गोरा-चिट्ठा कसरती नौजवान भी वहाँ मौजूद था जिसका सर इतनी कम उम्र में ही गजा हो चुका था। इससे पहले अनवर ने उसे वहाँ कभी नहीं देखा था। फिर भी वह बड़ी बेतकल्लुफी से सोफे पर आराम से बैठा हुआ था और सलमा उसे चाय बनाकर दे रही थी। अनवर खुद को इतना समझदार मानता था कि सलमा को किसी दूसरे नौजवान आदमी से बातें-भर करते देखकर उसे ईर्ष्या नहीं होने लगी, पर न जाने क्यों उसके दिल में एक अजीब बेचैनी पैदा हुई।

“हैलो अनवर,” प्रोफेसर साहब ने उसका स्वागत करते हुए कहा, “ये है मज़ूर, इनके अब्बा हमारे बहुत पुराने दोस्त हैं।”

अनवर जब मज़ूर से हाथ मिला रहा था उसी वक्त सलमा बोल उठी, “पापा, खाली मज़ूर क्यों कहते हैं आप इन्हें, कहिए ‘मिस्टर मज़ूरआलम, डी०एस०पी०’ क्योंकि ये तो किसी भी वक्त किसीको भी पकड़कर जेल में बन्द करवा सकते हैं।”

अनवर से यूँ ही, रस्मी तौर पर “हैलो, आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई” कहने के बाद उसने सलमा की चोट का जवाब देते हुए बड़ी निर्लज्जता से कहा, “सलमा, तुम्हें गिरफ्तार करके कौन पुलिस अफसर खुश नहीं होगा?”

अनवर को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि सलमा उसकी इस बात का बुरा मानने के बजाय इसे अपनी तारीफ़ समझकर बहुत खुश हुई।

इस बेफिकरे, दभी और लम्बे डीलडौलवाले पुलिस अफसर के सामने अनवर को ऐसा लगा कि उसकी पुरानी भीरुता और भिन्नक फिर वापस आ गई है। एम० ए० में पढ़नेवाले एक काफी प्रमुख विद्यार्थी से बदलकर जो सारी यूनिवर्सिटियों के विद्यार्थियों की कई डिबेटों में इनाम हासिल कर चुका था, जो जवाहरलाल नेहरू और सुभाष बोस से बातें कर चुका था, जो बड़े-बड़े क्रांतिकारियों और राजनीतिज्ञों से मिल चुका था, वह अचानक स्कूल में पढ़नेवाले



उस शर्मीले और भेपू लडके जैसा हो गया जो बड़े लोगो के बीच आकर खोया-खोया-सा रहता है। जब उसे मालूम हुआ कि मजूर न सिर्फ उनके साथ ठहरा हुआ है बल्कि खाना खाने के बाद वह उन लोगो के साथ सिनेमा देखने भी जानेवाला है, तो सलमा के साथ बातें करने की अनवर की सारी योजनाएँ धरी की धरी रह गईं।

धूम-फिरकर राजनीति की चर्चा चल पड़ी और अगले दिन के लिए कांग्रेस ने स्वतंत्रता दिवस के जिस कार्यक्रम की घोषणा की थी उसके बारे में प्रोफेसर सलीम ने कुछ बहुत ही निंदाजनक बातें कही।

“प्रोफेसर साहब, आप फिक्र न कीजिए,” मजूर एकदम बोल पड़ा, “हम इन कांग्रेसियों से निबटने के लिए पूरी तरह तैयार हैं। आप देखते जाइए कि हम मिस्टर गांधी की इस सिविल नाफरमानी की तहरीक को किस तरह चौबीस घंटे के अदर-अदर कुचलकर रख देंगे। हर चीज का रत्ती-रत्ती फैसला कर लिया गया है। बल्कि हम दो-चार रिहर्सल भी कर चुके हैं।”

फिर वह किसी बात को याद करके मन ही मन बहुत खुश हुआ और हसने लगा। “मैं आपको एक वाक्य के बारे में बताता हूँ जो खुद मेरे जिले में हुआ था। जवाहरलाल ने जिले के गांवों का दौरा किया था और लोगों में बगावत फैलानेवाली तकरीरे की थी। मैं चाहता तो उन्हें वही गिरफ्तार कर लेता लेकिन हम लोगो को आर्डर मिले हुए हैं कि हम अभी कुछ सब्र से काम लें। खैर, उनके चले जाने के बाद ज़मींदारों ने शिकायत की कि कुछ किसान, जिन्हें जवाहरलाल कांग्रेस का वालंटियर बना गए थे, बहुत अकड़ने लगे थे और गुस्ताखी से पेश आते थे—वे बेगार करने से इकारा करते थे, पलटकर जवाब देते थे वगैरह-वगैरह। मैंने अपने आदमियों को भेजकर उनमें से बारह आदमियों को गड़बड़ फैलाने के जुर्म में गिरफ्तार करवा लिया। उनमें से नौ मामूली किसान थे, उन्हें तो मैंने दस-दस कोड़े लगवाकर छोड़ दिया। लेकिन उनमें से तीन इलाहाबाद के पड़े हुए लड़के थे जिन्हें यहाँ हंगामा खड़ा करने के लिए भेजा गया था, इसलिए मैंने उनसे निबटने के लिए दूसरा रास्ता अख्तियार किया।”

मंजूर सिगरेट जलाने के लिए और अपने इस किस्से में सुननेवालों की दिलचस्पी बढ़ाने के लिए बीच में रुका तो अनवर के गाल गुस्से से तमतमा उठे। “मंजूर, उनके साथ तुमने क्या किया?” सलमा ने बेकरार होकर पूछा, “उन्हें

तो शायद कोड़े नहीं लगवाए होंगे ।”

“नहीं, नहीं, उनके साथ ऐसा भोडा तरीका इस्तेमाल करने का सवाल ही नहीं था ।” मजूर ने सिगरेट का कश लगाते हुए कहा, “मैंने बहुत ही बढ़िया तरीका इस्तेमाल की जिससे साप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे । मैंने शहर के पाच-छ छूटे हुए बदमाश बुलवाए और उनको एक-एक बोतल ठर्रा पिलवा दिया । प्रोफेसर साहब, यह ठर्रा भी बहुत ही जालिम चीज होती है । जब वे नशे में बिलकुल चूर हो गए तो मैंने उन्हें उन तीन काग्रेसी वालंटियरो के साथ एक ही कोठरी में बंद करवा दिया । सुबह तक मेरे बदमाशों ने उन तीन नौजवान सत्याग्रहियों की हड्डी-पसली एक कर दी । सुबह तक उनकी यह हालत हो गई कि उनके मुह से बोल नहीं निकलता था । और लुत्फ तो यह था कि हमारे किसी आदमी ने उन्हें हाथ तक नहीं लगाया । अगर कैदी आपस में लड़े और उनमें से किसीको चोट आ जाए तो इसमें हमारा क्या कसूर है ?”

फिर वह अपने इस बेरहमी के मजाक पर जोर से हसा और अनवर को उससे नफरत होने लगी कि कोई आदमी अपने निर्दयी होने पर इतना गर्व करे ।

“तो प्रोफेसर साहब, अगर आपको कल यूनिवर्सिटी में किसी हंगामे का खतरा हो तो मुझसे बताइएगा । लेकिन मेरा खयाल है कि आपके यहाँ इस तरह के सिरफिरे बागी नहीं होंगे—या है ?”

इससे पहले कि प्रोफेसर साहब कोई जवाब देते, अनवर अपनी जगह से उठा और जाकर मजूर के सामने खड़ा हो गया । ऐसा करना उसके लिए आसान नहीं था । वह जानता था कि उसके ऐसा करने से एक तूफान खड़ा हो जाएगा । उसके गाल और कान अभी तक गुस्से के मारे लाल हो रहे थे, लेकिन वह महसूस कर रहा था कि अगर इस वक्त उसने पुलिस के इस बददिमाग अफसर से मोर्चा न लिया तो वह उम्र-भर मर्द कहलाने के लायक नहीं रह जाएगा । “मिस्टर मंजूर,” उसका स्वर उत्तेजना के कारण काप रहा था लेकिन वह थम-थमकर एक-एक शब्द बहुत तोल-तोलकर कह रहा था, “मैं आपको दावत देता हूँ कि कल सुबह ग्यारह बजे यूनियन हाल में हम लोग इंडिपेंडेंस डे की जो मीटिंग कर रहे हैं उसमें आप भी तशरीफ लाइए । आप वहाँ तशरीफ लाइए ताकि हम भी देखें कि पुलिस अफसर में कितना दम होता है ।”

“अनवर !” सलमा के मुह से एक चीख-सी निकली, “तुम मजूर की ‘इन्सल्ट’ कर रहे हो।”

उसकी आवाज़ सुनकर अनवर को ऐसा लगा कि किसीने उसके मुह पर एक जोर का तमाचा मार दिया है, लेकिन जो कदम वह उठा चुका था उससे वह पीछे नहीं हट सकता था। “जाहिर है मैं ‘इन्सल्ट’ कर रहा हूँ,” उसने कहा और वहां से चल देने के लिए मुड़ा।

“अनवर !” प्रोफेसर सलीम ने कड़ककर कहा।

“अनवर !” सलमा ने उसे पुकारकर कहा, “प्लीज, कम हियर।”

लेकिन वह उनकी आवाज़ को अनसुना करके बाहर निकल गया। वह जानता था कि उसने कोई बहुत ही खौफनाक बात की है लेकिन साथ ही वह यह भी जानता था कि उसने बहुत शानदार काम किया है। यह पहला मौका था कि सलमा ने उसे पुकारा था और वह कुत्ते की तरह दुम हिलाता हुआ उसके पास नहीं गया था।

“दोस्तो और साथियो !” अनवर ने भाषण देना शुरू दिया। अनजाने ही उसने अपना भाषण उन्ही शब्दों से आरंभ किया था जो उसने जवाहरलाल नेहरू को बोलते सुने थे। “मुझे इस बात का बहुत अफसोस है कि हमें जबर्दस्ती इस हाल में घुसना पड़ा, जिसे इस्तेमाल करने का हमें पूरा हक है, लेकिन हमारा यह हक हमें देने से इंकार किया गया था...”

अनवर ने सोचा आज मेरी आवाज़ लड़खड़ा क्यों रही है, मेरा गला रुंधा क्यों जा रहा है। वही यूनिथन हाल है जहां मैं पहले भी कई बार बोल चुका हूँ। कहीं मैं इस बात से डर तो नहीं रहा हूँ कि इसका नतीजा क्या होगा? लेकिन मैंने तो यू भी यूनिवर्सिटी छोड़ देने का फैसला कर लिया है। और फिर मैं अकेला भी तो नहीं हूँ। मेरे साथ ‘राज’ है, सुभान है, उस्मान फज़लभाई है। इन्हे तो डर नहीं लग रहा। डटे रहो, अनवर, तुम भी डटे रहो।...

“मैं आपके सामने इस वक्त पंडित जवाहरलाल नेहरू की वह बात दुहराऊंगा जो उन्होंने उस यादगार रात को रावी के किनारे आजादी का परचम लहराते वक्त कही थी। उन्होंने कहा था, ‘अब हमने अपने मुल्क को विदेशी हुकूमत से



आजाद करने की खुली साजिश की है और, साथियो, आपको, हमारे देश के सब भाइयो और बहिनो को, इस खुली साजिश मे शामिल होने का न्योता दिया जाता है । लेकिन इसके बदले मे आपको तकलीफे उठानी पडेगी, जेल जाना पडेगा और हो सकता है आपको अपनी जान की भी कुरबानी देनी पडे ।’... अब मे ‘प्लैज’ पढता हूँ, आप सब लोग मेरे साथ दुहराइए ।’...

“ हम यह यकीन रखते है कि किसी भी दूसरी कौम की तरह हम हिंदुस्तानियो का भी यह पैदायशी हक है कि हम आजाद हो और अपनी मेहनत के फल खाए और हमारी जिदगी की तमाम जरूरते पूरी हो ताकि हमे तरक्की करने का पूरा मौका मिल सके । हम यह भी यकीन रखते है कि अगर कोई हुकूमत किसी कौम से ये हक छीने और उसपर जुल्म करे तो ।’...

“ ...जनता को इस बात का भी हक है कि वह उस हुकूमत को बदल दे या खत्म कर दे । हिंदुस्तान मे ब्रिटिश हुकूमत ने हिंदुस्तान की जनता से न सिर्फ उसकी आजादी छीन ली है बल्कि उसने अपनी बुनियाद जनता का खून चूसने पर रखी है और आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आत्मिक रूप से तबाह कर दिया है । इसलिए हमारा यह यकीन है कि हिंदुस्तान को अंग्रेजो से अपना नाता तोडकर ‘पूर्ण स्वराज्य’ यानी मुकम्मल आजादी हासिल करनी चाहिए ।

“ ...हिंदुस्तान को आर्थिक रूप से तबाह कर दिया गया है । हमारी जनता से जो कुछ वसूल किया जाता है वह हमारी आमदनी से कई गुना ज्यादा है । हमारी औसत आमदनी सात पैसे रोज है और हम जो भारी टैक्स अदा करते है उसका बीस फीसदी हिस्सा लगान की शकल मे लिया जाता है और तीन फीसदी नमक पर टैक्स की शकल मे, जिसका सबसे ज्यादा बोझ गरीबो पर पडता है ।’...

“ ...गाव के उद्योगो को, जैसे हाथ से सूत कातने के उद्योग को तबाह कर दिया गया है जिसकी वजह से किसान साल मे कम से कम चार महीने खाली बैठे रहते है, उनका हुनर तबाह हो गया है और इसके बदले मे उन्हे कोई दूसरा हुनर भी नहीं सिखाया गया है जैसाकि दूसरे मुल्को मे किया गया है । बाहर से आनेवाले माल पर टैक्स का और मुद्रा का बन्दोबस्त इस चालाकी से किया गया है कि उसकी वजह से किसानो पर बोझ और बढता है । बाहर से जो माल आता है उसमे ज्यादातर माल ब्रिटेन के कारखानो का बना हुआ होता है । कस्टम



ड्यूटी के मामले में ब्रिटेन के कारखानों के देने हुए माल के साथ साफ तरफदारी की जाती है और इससे जो आमदनी होती है उसे जनता का बोझ हलका करने के लिए नहीं बल्कि हुकूमत की फिजूलखर्ची के लिए इस्तेमाल किया जाता है। हिन्दुस्तानी रुपये और ब्रिटिश पाउंड में जो रिश्ता कायम किया गया है उसमें और भी मनमानी धाधली की गई है जिसकी वजह से हमारे मुल्क से करोड़ों रुपया खिंचकर बाहर चला जाता है। ”

वह एक क्षण के लिए रुका। हाल में लोगों की हलकी-हलकी आवाजों के बीच उसे प्रो-वाइस-चासलर साहब की मोटर का हार्न सुनाई दिया। अच्छा है यह अंग्रेज भी चार सौ हिन्दुस्तानियों को आजादी की कसम लेते हुए सुन ले।... वह सधी हुई आवाज से दुहराता रहा।

“...सियासी एतबार से हिन्दुस्तान की हालत कभी इतनी पस्त नहीं रही है जितनी कि अंग्रेजों की हुकूमत में। कोई भी सुधार ऐसा नहीं हुआ है जिससे जनता को सच्ची सियासी ताकत मिली हो। हममें से बड़े से बड़े आदमी को भी विदेशी हुकूमत के आगे झुकना पड़ता है। अपने ख्यालात जाहिर करने और संगठन बनाने की आजादी हमसे छीन ली गई है और हमारे बहुत-से देशवासियों को मजबूर होकर अपने देश से बाहर रहना पड़ रहा है और वे अपने देश वापस नहीं आ सकते। हमारे लोगों में सरकार का काम चलाने की जो काबलियत है उसे कुचल दिया जाता है और उन्हें गांवों में छोटी-मोटी सरकारी नौकरिया और दफ्तरों में क्लर्कों पर ही सब्र करना पड़ता है।...”

अनवर ने देखा कि प्रोफेसर सलीम बाहर बरामदे में इतजार कर रहे थे। उसने यह भी देखा कि एक अजनबी आदमी ने आकर उनसे कुछ पूछा।... वह जरूर कोई सी० आई० डी० का आदमी रहा होगा। उसने सोचा, कोई बात नहीं है, ऐसे आदमी के अलावा और कौन सरकार की मदद कर सकता है?

“सांस्कृतिक रूप से, शिक्षा की व्यवस्था ने हमें अपनी जड़ों से अलग कर दिया है, और हमें जो कुछ सिखाया जाता है उसकी वजह से हम उन्हीं जजीरों को सीने से लगाए रहते हैं जिनमें हम जकड़े हुए हैं।

“रूहानी एतबार से, जबर्दस्ती हमसे हथियार छीन लिए जाने की वजह से हम डरपोक हो गए हैं और हमारे मुल्क पर कब्जा जमाए रखनेवाली विदेशी फौज के मौजूद रहने से, जिसे हमारी विरोध की भावना को कुचलने के लिए

बड़ी बेरहमी के साथ इस्तेमाल किया जाता है...”

उसे अचानक अमृतसर की सड़क पर जाती हुई घुड़सवारों की वह फौज याद आ गई... और वह लालमुहा अफसर जिसने ‘फायर !’ का हुक्म दिया था और बीसियों बंदूकों की गोलियाँ उगलने लगी थी। जलियावाला बाग... क्या अभी इस तरह के और कत्ले-आम होंगे ? वह रुका और फिर डबडबाई हुई आँखों से उसने जोर देकर पढ़ना शुरू किया।

“...हम यह सोचने लगे हैं कि हम अपनी देखभाल खुद नहीं कर सकते और विदेशियों के हमले से अपनी हिफाजत नहीं कर सकते या चोरो-डाकुओं और बदमाशों से अपने घरों और अपने परिवारों की हिफाजत भी नहीं कर सकते।...”

“हम और ज्यादा दिन तक एक ऐसी हुकूमत के गुलाम बने रहने को, जिसने इन चार तरीकों से हमें तबाह किया है, इंसान और खुदा के खिलाफ एक गुनाह समझते हैं। लेकिन हम यह मानते हैं कि अपनी आजादी हासिल करने का सबसे कारगर तरीका हिंसा का तरीका नहीं है।...”

“इसलिए हम जहाँ तक हो सकेगा अपनी मर्जी से ब्रिटिश हुकूमत के साथ कोई ताल्लुक न रखकर अपने-आपको तैयार करेंगे, हम सिविल नाफरमानी (सविनय अवज्ञा) की तैयारी करेंगे, जिसमें टैक्स अदा न करना भी शामिल है। हमें पूरा यकीन है कि अगर हम किसी भी तरह का उकसावा दिए जाने पर भी किसी भी तरह की हिंसा किए बिना अपनी तरफ से कोई मदद न दें और टैक्स अदा करना बंद कर दें तो इस बेरहम हुकूमत का खात्मा यकीनी है। इसलिए हम कसम लेते हैं कि पूर्ण स्वराज्य हासिल करने के लिए कांग्रेस वक्त-वक्त पर जो भी हिदायत देगी उन्हें हम पूरा करेंगे।...”

और फिर उसने उन सबकी तरफ देखा। उसे यह देखकर ताज्जुब हुआ कि सबके चेहरों पर आजादी की चमक थी। उसने देखा कि ‘राज’ की आँखों से आँसू बह रहे हैं। सुभान का ऐसा सख्तदिल आदमी भी इस अवसर की गंभीरता से प्रभावित हो गया था और उसकी आँखें नम थीं। लेकिन खुद अनवर के गालों पर यह क्या बह रहा था ? पसीना—जनवरी में ? मुमकिन है। उसने अपने मन में कहा, ‘नहीं, मुझे फौरन इसे पोछ डालना चाहिए क्योंकि ये लोग आ रहे हैं—प्रो-वाइस-चांसलर, प्रोफेसर सलीम, प्रोफेसर नबीबख्श, प्राक्टर,

वार्डन, यूनियन के वाइस-प्रेसीडेंट साहब और उन सबके पीछे ऐडता हुआ पुलिस अफसर मजूर। मैं मर जाऊंगा लेकिन उन्हें अपनी आखों में ग्रासू नहीं देखने दूंगा।'''

लेकिन इस किस्से का खात्मा अचानक हो गया। अनवर को जिस जोश-खरोश की उम्मीद थी वह कहीं भी दिखाई नहीं दिया।

‘राज,’ सुभान और उस्मान फजलभाई के साथ उसे भी यह सूचना दी गई कि उसे यूनिवर्सिटी से निकाल दिया गया है। उन चारों से कहा गया था कि वे चौबीस घंटे के अंदर-अंदर हास्टेल खाली कर दें। जिन चार सौ लड़कों ने वह गैरकानूनी मीटिंग करने में हिस्सा लिया था उनमें से मुश्किल से दर्जन-भर ऐसे रहे होंगे जो खुले तौर पर इन चार अपराधियों का साथ देकर यूनिवर्सिटी से निकाले जाने का खतरा मोल लेने को तैयार हों। देशभक्ति के जोश की लहर उतर गई थी, एक बार फिर नौजवानी का जोश डर, दबूपन और बेदिली में दब गया।

अनवर को यूनिवर्सिटी से निकाले जाने का कोई गम नहीं था—उसने बी०ए० पास ही कर लिया था और सरकारी नौकरी करने का इरादा उसका कभी भी नहीं था। लेकिन उसे इस बात की फिक्र जरूर थी कि उसके अब्बा पर और सलमा पर इसका क्या असर होगा। क्या सलमा उम्र-भर के लिए एक बागी का साथ देने को तैयार होगी? क्यों नहीं होगी? माना कि उसे राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं है, लेकिन वह उससे मुहब्बत करती है और जब उसे मालूम होगा कि उसने इन्कलाब के रास्ते पर चलने का फैसला कर लिया है तो उसकी मुहब्बत उसके कदमों को भी उसी रास्ते की तरफ मोड़ देगी। उसके अब्बा जरूर अडचन डालेंगे, क्योंकि उन्होंने अपने दिल में यह तै कर लिया था कि उनका दामाद आई० सी० एस० हो। इसलिए अनवर के इस तरह गुमराह हो जाने से उन्हें जरूर निराशा होगी। हो सकता है कि वे इस बात की भी कोशिश करें कि उनकी बेटी अनवर को छोड़कर मंजूर जैसे किसी आदमी को स्वीकार कर लें, हालांकि सलमा से उसे इस बात का डर नहीं था कि वह उसे छोड़कर किसी दूसरे से प्रेम कर सकती है।



प्रोफेसर सलीम का नौकर सलमा का खत लेकर आया। उसने बहुत जल्दी में सिर्फ इतना लिखा था, “मुझे अभी सब कुछ मालूम हुआ। लेकिन तुम फिक्र न करना। सब ठीक हो जाएगा। तुम मुझसे मिलने कब आ रहे हो? मैं तुम्हारा इंतजार करूंगी।” सलमा को उसका कितना खयाल था। किस्मत के थपेड़ों से उसे बचाने के लिए और उसे तसल्ली देने के लिए वह उसके पास मौजूद थी। और थोड़ी ही देर बाद अनवर साइकल तेजी से भगाता हुआ मैरिन रोड पर चला जा रहा था।

सलमा उसकी राह देख रही थी और वह उसे सीधे अपने कमरे में ले गई। यह देखकर अनवर का दिल भर आया कि उसकी आखें लाल थीं जिससे जाहिर था कि वह रो रही थी। जैसे ही सलमा ने दरवाजे की चटखनी लगाई, अनवर ने उसे अपनी बाहों में जकड़ लिया और उसकी गर्म तथा सूजी हुई पलकों को चूमने लगा। बेचारी सलमा! उसकी हर बात कितनी प्यारी थी। उसके हृदय में सलमा के प्रति कोमल भावनाओं का एक ज्वार उमड़ आया और सलमा उसकी बाहों में सिसक-सिसकर रोने लगी।

कुछ देर तक दोनों में से कोई नहीं बोला। अनवर अपने चुम्बनों से उसके आसुओं को रोकने की कोशिश करता रहा। उसने उसकी भीगी हुई पलकों को, उसके कापते हुए होठों को, उसकी गरदन को और उसके कानों की कोमल लुबों को चूमा और हर चुम्बन के साथ उसकी भावनाओं की कोमलता प्रबल कामावेश में परिवर्तित होती हुई प्रतीत हुई। सलमा ने अपने शरीर को उसके बाहुपाश में ढीला छोड़ दिया और अनवर ने उसके स्पन्दनशील वक्ष को अपने सीने के साथ कसकर जकड़ लिया। उसके सीने में वासनाओं की लहर उठ रही थी। अनवर सलमा के लिए अपने हृदय की इस प्यास से हमेशा से परिचित था जो अदर ही अदर एक आग की तरह सुलग रही थी। उस क्षण अनवर को आभास हुआ कि सलमा उससे कितना प्यार करती है, और वह यह भी समझने लगा कि वह उसकी किसी बात को, किसी भी बात को नहीं टाल सकती।\*\*\*

अनवर को ऐसा लग रहा था कि उसकी वासना ने उसे ढकेलकर एक अथाह गर्त के किनारे पर ला खड़ा किया था। “डार्लिंग अनवर, तुम मुझसे प्यार करते हो न?” सलमा ने एक गहरी सास लेकर कहा।

“मेरी जान, तुम्हें इसमें कोई शक है क्या?” और यह कहकर उसने जोर



से सलमा के होठों को चूम लिया ।

सलमा ने अपनी बोझिल पलके उठाईं तो अनवर ने देखा कि वे वासना के बोझ से झुकी जा रही है । लेकिन इतने में सलमा बोली, “तो तुम मुझे छोड़कर नहीं जाओगे । तुम माफी माग लोगे । माग लोगे न, स्वीटहार्ट ?”

उसके इन शब्दों का वास्तविक अर्थ अन्तर की चेतना पर अकित होते ही वासना का यह तूफान ठंडा पड़ गया और उसे ऐसा लगा कि धीरे-धीरे उसके सारे शरीर पर एक शिथिलता छा गई । कहीं ऐसा तो नहीं था कि उसने सलमा की बात ठीक से सुनी ही न हो ?

“सलमा, क्या कह रही हो तुम ?” अनवर ने उसकी आँखों में आँखें डालकर पूछा । “क्या तुम चाहती हो कि मैं गद्दारी करूं ?”

“इसका मतलब यह है कि तुम मुझसे मुहब्बत नहीं करते,” सलमा ने रुठकर कहा और फिर उसके चारों ओर वासना का जाल बुनने लगी, “वरना तुम्हें माफी के कुछ लफ्जों पर दस्तखत कर देने में क्या एतराज है ? पापा ने प्रो-वाइस-चासलर साहब से सब कुछ तै कर लिया है । डार्लिंग, ज़िद न करो । तुम मुझे छोड़कर कैसे चले जाओगे ?”

अनवर ने महसूस किया कि उसे खो देने के डर और मुहब्बत की वजह से ही सलमा ऐसी नासमझी की बातें कर रही थी । उसने कहा, “लेकिन, मेरी जान, तुम जानती हो कि मैं कहीं भी रहूँ, जेल में रहूँ या फासी के तख्ते पर, मेरा दिल हमेशा तुम्हारा रहेगा । मैं जो कुछ हूँ और आगे चलकर जो कुछ भी बनूँगा, जो कुछ भी करूँगा, तुम हमेशा मेरे साथ रहोगी—क्योंकि तुम्हारे बिना मैं हमेशा किसी चीज़ की कमी महसूस करूँगा । यह सत्याग्रह हमेशा तो नहीं चलेगा । जब मैं जेल से वापस आऊँगा तब हम शादी कर लेंगे ।...”

“नहीं, नहीं,” सलमा ने बीच में बात काटकर कहा, “मैं इतने दिन तक इतज़ार नहीं कर सकती ।”

“अच्छी बात है,” अनवर ने फैसला करते हुए कहा, “तो फिर हम अभी शादी कर ले—आज ही, इसी वक्त ।” अनवर जानता था कि उसके अब्बा सलमा जैसी नई रोशनी की लड़की को अपनी बहू बनाना पसंद नहीं करेंगे, लेकिन उन्हें वह किसी तरह समझा-बुझाकर राजी कर लेगा । “मैं तुम्हें ज्यादा कुछ तो नहीं दे सकता लेकिन जो कुछ भी मेरा है, जो कुछ भी मैं इस वक्त हूँ और

आगे चलकर बनूंगा—वह सब तुम्हारा है। सलमा, आओ हम लोग शादी करके दुनिया का मुकाबला करें।”

थोड़ी देर तक तो सलमा ने कोई जवाब नहीं दिया फिर वह धीरे-धीरे हर शब्द को तोल-तोलकर इस तरह बोली जो उसके लिए बहुत ही अस्वाभाविक बात थी और इसलिए अनवर को उसका इस तरह बोलना बहुत बुरा लगा। सलमा ने कहा, “अच्छी बात है। लेकिन तुम वादा करो कि तुम यह सियासत की सारी बकवास छोड़ दोगे, मेरे अब्बा जो कुछ कहेंगे वह करोगे, आई० सी० एस० की तैयारी करोगे और...”

“नहीं,” अनवर के इस एक तीखे शब्द ने सलमा को चुप कर दिया, जो इस तरह बोल रही थी जैसे अपनी भावनाओं को ताक पर रखकर कोई मौदा चुका रही हो। अनवर गहरी निराशा के कारण काप रहा था।

“तो इसका मतलब सिर्फ यह है कि तुम मुझसे मुहब्बत नहीं करते। तुम्हारे लिए तुम्हारी सियासत और तुम्हारे गांधी और जवाहरलाल और आजादी की यह सारी बकवास ही सब कुछ है, मेरी मुहब्बत कुछ भी नहीं है।” और इतना कहकर वह सिसक-सिसककर रोने लगी। “मुझे पहले ही यह समझ लेना चाहिए था। सबने मुझे यही समझाने की कोशिश की थी पर मैं यकीन नहीं करती थी। मैं यही समझती थी कि तुम सचमुच मुझसे प्यार करते हो। लेकिन उनका कहना सही था और मैं जो कुछ समझती थी, वह गलत था।”

“उनका।” अनवर को यह बहुवचन प्रयोग कुछ खटका। “उनका कौनका?”

सलमा ने कुछ ध्यान दिए बिना ही कह दिया, “सभीका। पापा का, मजूर का” और इसके बाद सहसा वह रुक गई।

अनवर को लगा कि उसकी आखों के सामने से एक परदा हट गया। तो यह बात थी। जब तक उसे उम्मीद थी कि वह आगे चलकर आई० सी० एस० बनेगा तभी तक वह उसे एक प्रेमी और पति के रूप में स्वीकार करने को तैयार थी। खुद उसकी अपनी कोई कद्र नहीं थी। वह घूरे पर फेंक देने के लायक था। तो इसे वे मुहब्बत, लगाव और इज्जत समझते थे—प्रोफेसर सलीम, मजूर और खुद सलमा भी। फिर भी उसने एक आखिरी कोशिश करने का फैसला किया।

“सलमा, क्या तुमने अच्छी तरह सोच-समझकर यह तैयारी कर ली है कि तुम्हें मेरी जरूरत नहीं है। या सिर्फ मजूर की खाकी वर्दी के रोब में आकर तुम...”

“शट अप !” सलमा चिल्लाई और अनवर ने सलमा को एक नये रूप में देखा, बदमिजाज और भगडालू सलमा के रूप में। वह कह रही थी, “तुम्हें मजूर का नाम बीच में लाने का कोई हक नहीं है। वह कम से कम शरीफ आदमी तो है। लेकिन तुम... मुहब्बत के झूठे दावे करने के बाद मुझे इस तरह ठुकरा दिया तुमने... मुझे तुमसे नफरत है... हा, मैं तुमसे नफरत करती हूँ.....”

अनवर समझ गया कि अब और कुछ कहना बेकार है। ऐसी चिड़चिड़ी और बदमिजाज औरत से कोई कैसे बहस कर सकता था।

अपनी सारी कटु भावनाओं को दबाते हुए उसने कहा, “अच्छा सलमा, मैं जाता हूँ। जब तुम्हारा गुस्सा ठंडा हो तो मेरे बारे में ज्यादा सजीदगी से सोचने की कोशिश करना। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं हमेशा तुम्हारा एहसानभद रहूँगा और मेरे दिल में तुम्हारे लिए हमेशा मुहब्बत रहेगी।” वह कहना तो नहीं चाहता था फिर भी उसने कह ही दिया, “एक दिन तुम्हें अदाज़ा होगा कि मैं कितने सच्चे दिल से कितनी पूरी तरह तुमसे मुहब्बत करता था।”

अनवर दरवाज़ा खुला छोड़कर कमरे से बाहर निकल गया पर सलमा ने न तो उसकी बात का कोई जवाब दिया न उसे बुलाया ही। लेकिन जब वह विचारों में उलझा हुआ और उदास-उदास बैठक से बाहर निकला तो उसने सुना कि सलमा ने बहुत गुस्से के साथ दरवाज़ा बंद करके चटखनी चढ़ा ली।

रेलगाड़ी उसे अलीगढ़ से दूर लिए जा रही थी। यूनिवर्सिटी के छोटे-छोटे चौकोर लान, घंटाघर, मस्जिद के गुम्बद और मीनारे रेलगाड़ी की खिडकी के पास से पीछे भागती हुई दिखाई दे रही थी। सिर्फ यूनिवर्सिटी की बस्ती ही नहीं बल्कि उसकी जवानी उससे दूर भागकर धुधले क्षितिज में विलीन हुई जा रही थी। जब घंटाघर की चोटी आम के पेड़ों के पीछे छिप गई और आख से बिल्कुल ओझल हो गई तो अनवर को ऐसा लगा कि उसके अंदर एक अजीब खालीपन पैदा हो गया है।

जब शीतकाल के आकाश पर अन्धकार छाने लगा तो उसकी उदासी और गहरी होने लगी। डगोड़े दर्जे के छोटे-से घुटे हुए डिब्बे में बिजली की बत्तियों से बुझी-बुझी-सी रोशनी आ रही थी और ऐसा लगता था कि वे भी अनवर



की तरह ही उदास है। रेलगाड़ी के पहियों से लगातार एक आवाज आ रही थी जो अनवर के दिमाग पर हथौड़े जैसे मार रही थी—सलमा ! सलमा ! सलमा ! उसके हृदय में निराशा की पीड़ा छाई हुई थी और उसे ऐसा लग रहा था कि यह निराशा उसका गला घोट देगी। जनवरी की सुर्द हवा से बचने के लिए लोगो ने खिड़किया बन्द कर रखी थी और अनवर का दम घुटा जा रहा था। उसे ऐसा लग रहा था कि वह मर जाएगा।

उसने घबराकर एक खिड़की खोल दी और बर्फ जैसी ठडी हवा ने जैसे उसके मुह पर एक तमाचा मारा। तेज हवा उसकी आखो में तीर की तरह चुभने लगी। और उसके ओवरकोट के कालर में से जब यह हवा अन्दर घुसी तो वह सर्दी से काप उठा। फिर भी न जाने क्यों उसे यह सर्दी अच्छी लग रही थी, उसमें फिर से जान आ गई थी। अधकारमय आकाश, ठडी हवा और गाडी की गडगडाहट—सब उसे चुनौती दे रहे थे, जिससे उसके मस्तिष्क की उलझन दूर हो गई थी और उसमें एक नया जोश पैदा हो गया था। बहुत दूर दिल्ली की दिशा में अधकारमय क्षितिज पर बिजली चमक रही थी। कहीं पानी बरस रहा था। महावटो की बारिश शुरू हो गई थी। थोडी देर बाद रेलगाडी तूफान और बारिश को चीरती हुई दिल्ली की तरफ भागी चली जा रही थी और दिल्ली की झपकती हुई रोशनिया मानो इशारा करके उसे अपनी ओर बुला रही थी।





## अनोखी यात्रा

वह एक उड़नेवाले घोड़े की पीठ पर सवार आसमान की तरफ उड़ता चला जा रहा था। आसमान का रंग ब्रुखार की तरह पीला था। वह घोड़ा बहुत अजीब था लेकिन फिर भी पहचाना हुआ लग रहा था, जैसे बचपन की कोई भूली हुई याद हो। यह सुखद स्वप्नों की निर्विघ्न प्रवाहमयी उड़ान नहीं थी बल्कि वह बड़ी मेहनत से ऊपर चढ़ रहा था और उसे बड़ी तकलीफ हो रही थी। उसे ऐसा लग रहा था कि किसी भी क्षण वह अपना सतुलन खो बैठेगा और नीचे एक अथाह गर्त में गिर जाएगा। थोड़ी देर बाद वह घोड़ा गायब हो गया और वह हवा में लटका रह गया। उसमें इतनी ताकत नहीं थी कि वह आसमान पर उड़ जाए और ज़मीन की तरफ गिरते हुए उसे डर लगता था। क्षितिज उसे धीरे-धीरे अपने शिकजे में जकड़े ले रहा था। क्षितिज का रंग गहरा पीला था, बिलकुल सलमा के कसे हुए स्वेटर की तरह पीला। और सलमा के स्वेटर की याद आते ही उसे ऐसा लगा जैसे किसीने उसके दिल में खजर घुसा दिया हो। उसे आकाश या क्षितिज अपने शिकजे में नहीं जकड़ रहा था बल्कि वह खुद सलमा थी, उसका कोमल शरीर उसके शरीर से सटा हुआ था और उसे गर्मी पहुँचा रहा था। और खुद उसका चेहरा सलमा के शरीर से इतना करीब था कि उसे सिर्फ उसके पीछे स्वेटर की बुनाई दिखाई दे रही थी जिसमें उसके सीने की गोलाइयाँ ज्यों की त्यों उभर आई थी। वह उसे दिखाई तो नहीं दे रही थी पर वह उसे महसूस कर सकता था। उसके यौवनमय शरीर की मादक सुगंध उसके अग-अग में बसी जा रही थी और वह उसकी गर्म वासना-युक्त सास का स्पर्श अपने गालों पर अनुभव कर रहा था। सहसा सैकड़ों पुरानी कोमल स्मृतियों ने जागरित होकर उसके मन में वासना जागरित कर दी और उसकी गोद में अपना मुँह छिपाकर वह डरे हुए बच्चे की तरह सिसक-सिसककर रोने लगा।

जब उसका स्वप्न भग हुआ तो बुखार से तपते हुए उसके गालों को भीगे हुए तकिये का स्पर्श बहुत सुखद प्रतीत हुआ लेकिन वह ठीक से नहीं कह सकता था कि यह पसीना था या आसू—हो सकता है दोनों ही रहे हों। उसे समय का कोई ज्ञान नहीं रह गया था, शायद वह कई हफ्ते से बिस्तर पर लेटा था। लोग कहते थे कि शायद उसे ट्रेन में सर्दी लग गई थी जिसकी वजह से पहले उसे इनफ्लुएन्जा हो गया था और फिर टायफाइड। लेकिन वह जानता था कि यूनिवर्सिटी से निकाले जाने पर उसके दिल को जो धक्का लगा था और सलमा से छूट जाने पर उसके दिल पर जो और भी गहरी चोट लगी थी उसीकी वजह से उसका शरीर जवाब दे गया था। बड़ी अजीब बात थी कि अलीगढ़ में वह इतना शांत था—अपने अभिमान के कारण वह अपनी पीड़ा को स्वयं भी स्वीकार करना नहीं चाहता था, दूसरों से उस पीड़ा की चर्चा करने का तो सवाल ही नहीं था। जब रेलगाड़ी तूफान को चीरती हुई आगे बढ़ रही थी तब उसे ऐसा लगा था कि उसमें फिर से जान पड़ गई है लेकिन भीतरी चोट की तरह यह उसे अंदर ही अंदर खोखला किए दे रही थी। उसे अपने अब्बा को यह बताने का भी मौका नहीं मिला कि वह यूनिवर्सिटी से क्यों निकाल दिया गया था कि इतने में बुखार ने उसे आ दबोचा।

अकबरअली यह खबर सुनकर ज़रा भी परेशान नहीं हुए। अनवर जानता था कि हाल ही में आगाखा के नेतृत्व में मुस्लिम कांफ्रेंस नामक जो संस्था बनी थी उसमें उसके अब्बा भी शामिल थे। आगाखा भी एक पहेली थे—वे खुदा, पैगम्बर, फैशनेबल रईस और अंग्रेजों के वफादार दोस्त सभी कुछ थे और उनके नेतृत्व में मुस्लिम कांफ्रेंस कांग्रेस का, गांधीजी का और सत्याग्रह-आंदोलन का ज़बर्दस्त विरोध कर रही थी। ऐसे लोगों की सोहबत में रहकर अकबरअली कुछ खुश नहीं थे लेकिन उनका खयाल था कि 'चालाक हिंदुओं का मुकाबला करने' के लिए हर विचार के मुसलमानों को एक हो जाना चाहिए, क्योंकि हिंदू सिर्फ मुसलमानों को दबाने के लिए ही आज़ादी चाहते थे और वे समझते थे कि मुसलमानों में उनके और अली-बधुओं की तरह के जो अंग्रेज-विरोधी तत्त्व थे वे आगाखा की मुस्लिम कांफ्रेंस को अंग्रेजों के हाथ की कठ-

पुतली बना देने से रोक लेगे ।

अनवर कुछ समय से यह महसूस कर रहा था कि उसके और उसके अब्बा के राजनीतिक विचारों तथा भावनाओं में बहुत अंतर पैदा हो गया था । जब उसने अपने यूनिवर्सिटी के निकाले जाने की खबर सुनाई तो उसे डर था कि बहुत तूफान मचेगा । उसे डर था कि उसके अब्बा बहुत नाराज होंगे और उसे घर से निकाल देंगे, उसे उत्तराधिकार से वंचित कर देंगे । वह मन ही मन खुद अपने-आप पर तरस खाने लगा था और अपने-आपको शहीद समझने लगा था । उसने फैसला कर लिया था कि वह मुसीबतें उठाकर और अपने-आपको हर सुख से वंचित रखकर सेवा और त्याग में अपना जीवन व्यतीत कर देगा । लेकिन उसके अब्बा ने सिर्फ इतना कहा, “अब तुम बड़े हुए, समझदार हो, अपना भला-बुरा खुद समझते हो । तुम जानते हो मेरे सियासी खयालात तुमसे मुक्तलिफ है लेकिन मैं अपने खयालात तुम्हारे ऊपर थोपना नहीं चाहता । मुझे सिर्फ एक बात की खुशी है कि तुमने अपनी जान बचाने के लिए माफी नहीं मागी—शाबाश !” और यह कहकर उन्होंने अपने बेटे की पीठ भी थपकी थी । अब्बा के इस प्यार ने अनवर की चेतनाओं की रही-सही शक्ति को भी नष्ट कर दिया था । काश उसके अब्बा उसपर बरस पड़े होते, काश उन्होंने उसे डाटा-फटकारा होता, बुरा-भला कहा होता, तो उनका मुकाबला करने के लिए उसने अपनी शक्ति को कायम रखा होता । लेकिन इस उदारता और सहानुभूति के आगे वह बिल्कुल लाचार हो गया, वह कमजोर और शिथिल हो गया । पिछले कुछ दिनों की सारी थकान लौट आई और उसका सिर चकराने लगा और वह सिर्फ इतना ही कह पाया, “अब्बा, जरा मेरी नब्ज तो देखिए । मुझे ऐसा लगता है कि मुझे बुखार है ।”

अकबरअली ने तन-मन से अपने बेटे की सेवा की । तेज बुखार की बेहोशी में बीच-बीच में जब उसे होश आता तो अनवर देखता कि उसके अब्बा उसके माथे पर गीला कपड़ा रख रहे हैं, उसका बुखार देख रहे हैं, उसे दवा दे रहे हैं । जब दर्द से उसका सिर फटने लगता तो वे उसका सिर भी दबाते थे और अपने बेटे को बीमारी से चगा करने के लिए वे पांच वक्त नमाज भी पढ़ते थे । उन्हें अपने कारोबार के लिए या अपने दोस्तों के बीच बैठने के लिए बहुत ही थोड़ा वक्त मिलता था । हकीम बेदिल, जिनके सारे बाल अब सफेद हो चुके थे और



कमर बुढापे से दुहरी हो गई थी, बीमार अनवर को किस्से और शेर सुनाकर उसका दिल बहलाते थे। एक दिन जब अनवर तेज बुखार की वजह से कुछ-कुछ बेहोश था, तो रामेश्वर काका भी उसकी तवियत पूछने आए थे। सबको मालूम था कि वे 'शुद्धि' आंदोलन के लिए पैसा देते थे, जिसका उद्देश्य निम्न-वर्ग के गरीब मुसलमानों को हिंदू बनाना था। यह काम आर्यसमाज के जरिये हो रहा था जिसने हिंदू धर्म को मजबूत बनाने का बीड़ा उठाया था। और अकबरअली का सबध तबलीग के आंदोलन के साथ था जो मुसलमानों की तरफ से शुद्धि का जवाब था। वे अक्सर अपने पुराने दोस्त और सांभोदार रामेश्वरदयाल की बुराई भी करते रहते थे।

अनवर ने आखे खोली और अब्बा के पास बैठे हुए रामेश्वर काका को उसने पहचाना, लेकिन उसमें बोलने की ताकत नहीं थी। मुस्कराकर वह सोचने लगा, 'सियासत के इस सारे भगड़े के पीछे दोनों में अब भी काफी दोस्ती है।' उसने रामेश्वर काका को कहते सुना, "अकबर, तुम्हें लडके को इतनी ढील नहीं देनी चाहिए नहीं तो वह इस सत्याग्रह के चक्कर में फस जाएगा और किसी दिन उसे फासी हो जाएगी।" अकबरअली ने कहा, "उसकी सियासत मुझे भी उतनी ही नापसंद है जितनी तुम्हें, लेकिन जिस चीज को वह सही समझता है उसके लिए जान देने की अगर उसमें हिम्मत हो, तो वह हमारे लिए बहुत खुशी की बात होगी।" हमारे लिए ? उसके अब्बा ने विदेशी कपड़ा बेचनेवाले इस बुज-दिल व्यापारी के साथ अपना नाम क्यों जोड़ा था, जिसकी दुकान पर काप्रेसी वालटियर किसी भी दिन धरना देनेवाले थे ? अनवर के दिमाग में यह धुधला-सा सवाल उठा ही था कि अपने अब्बा का जवाब सुनकर उसकी शका दूर हो गई, "नहीं, रामेश्वर, अगर वह गांधीजी की फौज में भरती होना चाहता है तो मैं उसे रोकूंगा नहीं। मुझे तो बस उसकी सेहत की बड़ी फिक्र है।"

अनवर इतना उत्तेजित था कि उसके सारे शरीर से पसीना छूटने लगा। सहसा उसे ऐसा लगा कि उसका जी हलका हो गया है और वह अच्छा हो गया है। वह बार-बार अपने मन में यही एक बात मंत्र की तरह रटने लगा : मैं अच्छा हो जाऊंगा। मैं अच्छा हो जाऊंगा। मैं अच्छा हो जाऊंगा।



अनवर अच्छा हो गया। उसका बुखार उतर गया लेकिन वह कमजोर बहुत हो गया था और चलता था तो उसके पैर लडखडाते थे। उसने सोचा कि यह मुनासिब ही होगा कि वह अपने अम्बा को बता दे कि वह जल्द ही सत्याग्रह के लिए कांग्रेस के बालटियरो में अपना नाम लिखा लेगा। अकबर-अली ने कुछ देर सोचने के बाद कहा, “मुझे कोई एतराज नहीं है, लेकिन अगर तुम जेल जाना ही चाहते हो तो क्या यह ज्यादा अच्छा न होगा कि पहले तुम बिल्कुल अच्छे हो जाओ और तुम्हारे जिस्म में कुछ ताकत आ जाए? मेरी राय में तो तुम जाकर डाक्टर साहब से मिल लो।” उनका अभिप्राय डाक्टर असारी से था इसलिए उन्होंने अर्थपूर्ण मुस्कराहट के साथ कहा, “जाहिर है तुम्हें उनसे मिलने में कोई एतराज नहीं होगा। वे तुम्हारी इस बीमारी के अलावा तुम्हारी सियासी बीमारी का भी कोई इलाज बता देंगे।”

अनवर तागा लेकर दरियागजवाली सड़क पर फसील के पास जमुना के किनारे डाक्टर असारी के बगले के लिए रवाना हुआ तो उसे अपने अम्बा के इस मजाक पर हसी आ गई। अनवर को डाक्टर साहब का यह बड़ा-सा बगला बहुत अच्छा लगता था—चौड़े-चौड़े ठड़े बरामदे, उनका चमकदार टाइल का फर्श, मिलने आनेवालों और रोगियों के लिए बेत की आरामदेह कुर्सियाँ। डाक्टर साहब के यहां बीमारों का और मिलने के लिए आनेवालों का ताता बंधा रहता था क्योंकि वे एक मशहूर डाक्टर होने के अलावा एक बहुत बड़े राष्ट्रीय नेता भी थे। अनवर ने डाक्टर साहब के हर काम को बड़ी दिलचस्पी के साथ देखा था और दो साल पहले मद्रास कांग्रेस में अध्यक्ष के पद से भाषण देते हुए उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता की जो जोरदार अपील की थी उससे वह बहुत प्रभावित हुआ था। अनवर इस देशभक्त डाक्टर से दुबारा मिलने के लिए बहुत उत्सुक था।

बरामदे में जो लोग उनका इन्तज़ार कर रहे थे उनमें बुझे हुए चेहरोवाले घबराए हुए रोगियों के अलावा, जिन्हें डाक्टर साहब में सिर्फ एक डाक्टर की हैसियत से दिलचस्पी थी, कुछ खहरधारी कांग्रेसी कार्यकर्ता और लम्बी-लम्बी दाढ़ियोंवाले मौलाना भी थे जो शायद जमीअत-उल-उलेमा के लोग थे। यह मुसलमान मौलवियों की अंग्रेज-विरोधी संस्था थी जो कांग्रेस की समर्थक थी।

लेकिन अनवर को वहा नीली आखोवाले एक अंग्रेज नौजवान को देखकर बड़ा ताज्जुब हुआ क्योंकि उसका सबध इनमे से किसीसे भी नहीं हो सकता था। वह जो कपडे पहने था, वैसे कपडे अंग्रेज आम तौर पर नहीं पहनते थे। वह खद्दर की कमीज, खद्दर की नेकर और नीला खद्दर का कोट पहने था। उसकी टांगो पर मोजे नहीं थे और पैरो मे वह पेशावरी चप्पल पहने था। सबसे बड़ी ताज्जुब की बात यह थी कि उसके हाथ मे एक सफेद गांधी टोपी थी जो उसने फौरन अपने सुनहरे बालो पर लगा ली। कोई पक्का साहब कभी भी इस तरह के देसी और विद्रोहियों जैसे कपडे नहीं पहन सकता था। वह आखिर यहा क्या कर रहा था ?

अनवर ने मेज पर रखा हुआ सवेरे का 'हिंदुस्तान टाइम्स' उठाकर देखा तो यह पहेली हल हो गई। पहले ही पृष्ठ पर मोटी-मोटी खबर छपी थी। "वाइसराय के नाम महात्माजी का पत्र—'ब्रिटिश शासन की संगठित हिंसा' का मुकाबला करने के लिए अहिंसात्मक सविनय अवज्ञा—सत्याग्रह का कार्यक्रम घोषित—नौजवान अंग्रेज शिष्य के हाथ ऐतिहासिक चुनौती भेज दी गई।"

गांधीजी के पत्र के साथ ही नीली आखोवाले उसी नौजवान की तस्वीर छपी हुई थी और तस्वीर के नीचे लिखा था : साबरमती आश्रम के निवासी श्री रेजिनल्ड रेनोल्ड्स जिन्होंने गांधीजी का ऐतिहासिक पत्र लार्ड इर्विन को दिया।

अनवर ने एक बार फिर रेजिनल्ड रेनोल्ड्स की आखो को देखा और उसे उनमे एक अनोखी कोमलता दिखाई दी जो अंग्रेजो की आखो मे उसने कभी नहीं देखी थी। या शायद यह जानने की वजह से कि उसने भारत के लिए कितना बड़ा काम किया था, उसे उसकी आखो मे एक सुखकर तथा आध्यात्मिक भाव दिखाई देने लगा था। वह इस विचित्र अंग्रेज नौजवान से बातें करने की अपनी इच्छा को न दबा सका।

"मि० रेनोल्ड्स," अनवर ने उसके पासवाली खाली कुर्सी पर बैठते हुए उसे संबोधित करके कहा।

"यस प्लीज।" उस अंग्रेज की आवाज मे भी बड़ी नरमी थी, उसमे वह बड़े साहबोवाली अकड़ नहीं थी।

"क्या आपके ऐसे अंग्रेज के लिए यह अजीब बात नहीं है कि आप खुद

अपने लोगो के खिलाफ हम लोगो का साथ दे रहे है ?”

उस नौजवान अंग्रेज ने, जो उम्र मे अनवर से कुछ ही बडा रहा होगा, उसकी तरफ देखकर कहा “हा, मेरे दोस्त, दुर्भाग्य से यह कुछ अजीब बात तो है और इसीलिए यह जरूरी भी है। हमारे नाम पर साम्राज्य ने जो पाप किए है उसका प्रायश्चित्त हममे से कुछ लोगो को तो करना ही होगा।”

डाक्टर असारी के सेक्रेटरी ने आकर अनवर से कहा कि अब उसकी बारी है और अनवर ने उठकर उस अंग्रेज से बिदा लेते हुए कहा, “मेरा नाम अनवर-अली है। मुझे आपसे मिलकर बडी खुशी हुई।” और उससे हाथ मिलाते हुए अनवर ने फिर कहा, “मिस्टर रेनोल्ड्स, आप जानते है यह पहला मौका है कि मैं किसी अंग्रेज से हाथ मिला रहा हूँ...” फिर सहसा उसे यूनिवर्सिटी के अंग्रेज प्रोफेसरो का खयाल आया और उसने अपनी बात पूरी करते हुए कहा, “...एक दोस्त की हैसियत से।” रेनोल्ड्स ने मुस्कराकर जवाब दिया, “मैं उम्मीद करता हूँ कि यह आखिरी मौका नहीं होगा।”

जब अनवर डाक्टर असारी के कमरे मे घुस रहा था तो उसे उस सुबह की दूसरी अप्रत्याशित सुखद घटना का अनुभव हुआ, क्योंकि उसी वक्त डाक्टर असारी के कमरे से राबर्ट मिल्स निकल रहा था, वही अमरीकी सवाददाता जिससे वह मेरठ मे मिला था।

“हि: देयर।” उसने नाक के स्वर मे अनवर का स्वागत करते हुए कहा, “ग्रेट मैन—दिस डाक्टर इन देयर।”

डाक्टर साहिब ने अनवर को अच्छी तरह देखा और सारे समय वे उससे उसकी सेहत के बारे मे ही नहीं बल्कि उसके अब्बा और उनकी राजनीति के बारे मे भी सवाल करते रहे। उन्होंने यह भी पूछा कि वह यूनिवर्सिटी से क्यों निकाला गया था और फिर इस बात पर बडी देर तक चर्चा करते रहे कि वाइसराय के नाम गांधीजी के पत्र से पता चलता है कि सत्याग्रह जल्द ही शुरू हो जाएगा। जब उन्होंने अनवर के सीने पर आला लगाकर देखा तो उनकी घनी भवो के नीचे चिता के चिल्ला स्पष्ट दिखाई देने लगे। उन्होंने अनवर को अपने फेफड़ों का ध्यान रखने के लिए सचेत करते हुए कहा, “मिया, मुझे यह



आवाज़ कुछ अच्छी नहीं मालूम होती।” और फिर अनवर को चिंतित देखकर बोले, “घबराने की कोई बात नहीं है, लेकिन खास तौर पर टायफाइड की इतनी लम्बी बीमारी के बाद एहति यात बरतना जरूरी है। मैं तुम्हें एक टानिक लिखे देता हूँ। लेकिन उससे ज्यादा जरूरी यह है कि तुम आराम करो, ताज़ी हवा में खूब टहलो और हरी सब्जियाँ खाओ।...”

अनवर ने उनकी बात बीच में ही काट दी। “लेकिन डाक्टर साहब, मैं तो सत्याग्रह करने के लिए अपना नाम वालंटियरों में लिखाने वाला हूँ, फिर जेल में ताज़ी हवा और हरी सब्जियाँ कहा मिलेगी?”

“वहाँ तो नहीं मिलेगी, इसीलिए तुम्हें कोई भी ऐसा काम करने से मना किया जाता है जिसमें जेल जाने का खतरा हो। हम तुम्हें वालंटियर बनाएंगे ही नहीं। कम से कम छः महीने के लिए जेल जाने की बात भूल जाओ।”

शहीद बनने के स्वाब देखने वाला अनवर यह सुनकर बहुत निराश हुआ। “आप मुझे यह हुक्म एक डाक्टर की हैसियत से दे रहे हैं या कांग्रेस के नेता की हैसियत से?”

“दोनों ही की हैसियत से,” डाक्टर साहब ने फौरन जवाब दिया और इसपर अनवर को अपने अब्बा की बात याद आ गई। अपनी घोर निराशा के बावजूद उसके चेहरे पर मुस्कराहट दौड़ गई।

“किस बात पर मुस्करा रहे हो?” डाक्टर साहब ने पूछा।

अनवर ने उन्हें बताया कि “चलते वक्त मेरे अब्बा ने कहा था कि डाक्टर असारी तुम्हारी इस बीमारी का भी कोई इलाज बताएंगे और तुम्हारी सियासी बीमारी का भी।” इसपर डाक्टर साहब भी खूब हसे। लेकिन उठते-उठते भी अनवर को यही विचार चिंतित कर रहा था कि ऐसे समय पर जबकि सभी देशभक्तों के कदम जेल की ओर उठ रहे होंगे वह हाथ पर हाथ धरे बैठा रहेगा। उसने कहा, “डाक्टर साहब, मैं आपका कहना तो नहीं टाल सकता, लेकिन अगर मैं इस तहरीक में हिस्सा न ले सका तो मुझे बहुत दुःख होगा। आप जानते हैं मैंने इसीके लिए यूनिवर्सिटी छोड़ी है।” वह इसके साथ ही यह भी कह सकता था कि इसीके लिए उसने सलमा को छोड़ा था और अपने मुहब्बत के सब स्वाबों को चकनाचूर कर दिया था।

“तुम फिक्र न करो,” सहृदय डाक्टर साहब ने उसे आश्वासित करते हुए



कहा, “मेरी यह पाबदी सिर्फ कुछ महीनों के लिए ही है ताकि तुम्हारी तन्दुरुस्ती ठीक हो जाए। और फिर मुल्क की खिदमत करने का अकेला यही तरीका तो नहीं है कि आदमी जेल चला जाए।”

अनवर ने बड़ी उत्सुकता से पूछा, “क्या मैं किसी और तरीके से भी खिदमत कर सकता हूँ ? डाक्टर साहब, अगर कोई तरीका हो तो मुझे बताइए।”

“हा, है क्यों नहीं,” डाक्टर साहब ने मेज पर से एक कार्ड उठाते हुए कहा और कार्ड को इस तरह देखने लगे जैसे उन्हें कोई बहुत अच्छी तरकीब सूझ गई हो। “राबर्ट मिल्स के साथ सारे मुल्क का चक्कर लगाने और उनके इन्टरप्रेटर और गाइड की तरह काम करने के बारे में तुम्हारा क्या खयाल है ?”

अनवर तो किसी भी किस्म के सफर के लिए हमेशा तैयार रहता था और मिल्स को उसने जितना देखा था उससे तो वह बहुत ही मिलनसार और दोस्त किस्म का आदमी मालूम हुआ था। उसके साथ रहकर शायद वह थोड़ा-बहुत जर्नलिस्ट भी बन जाए। लेकिन इससे मुल्क की क्या खिदमत होगी ?

डाक्टर साहब ने उसे धैर्यपूर्वक समझाया। उन्होंने बताया कि यह बहुत जरूरी है कि गांधीजी के नेतृत्व में भारतीय स्वतंत्रता का जो संघर्ष शीघ्र ही आरम्भ होनेवाला है उसके बारे में दुनिया को बताया जाए। ब्रिटेन के अखबार जाहिर है उसकी ओर कोई ध्यान न देने या उसके महत्त्व को कम करके पेश करने की कोशिश करेंगे। लेकिन अमरीकी निष्पक्ष है और अगर अमरीकियों को सचाई बताई जाए तो वे हमारे दोस्त हो सकते हैं। इसलिए राबर्ट मिल्स जैसे ईमानदार अमरीकी कारेस्पॉण्डेंट की मदद करने से फायदा हो सकता है, जो सत्याग्रह-आंदोलन की खबरे अपने अखबारों के लिए जमा करने ही खास तौर पर हिन्दुस्तान आया है। उसे इस आंदोलन के हर पहलू को देखने और अपने अखबारों में उनकी पूरी खबर देने में हर तरह की सुविधा दी जानी चाहिए। “मिल्स के इन्टरप्रेटर की हैसियत से काम करके एक समझदार देशभक्त नौजवान अपने मुल्क के लिए बहुत कुछ कर सकता है। तुम हिन्दुस्तान और उसकी जनता के अरमानों को अमरीकियों तक पहुंचाओगे जो अपनी तारीख और अपनी रवायत की वजह से हमारे साथ हमदर्दी रखते हैं। यह मत भूलो कि सत्याग्रह से गांधीजी मुट्ठी-भर अंग्रेजों को परेशान नहीं करना चाहते बल्कि

वे सारी दुनिया को इंसाफ के लिए ललकारना चाहते हैं।”

अनवर को और ज्यादा लालच देने की जरूरत नहीं थी। उसने फौरन ‘डाक्टर साहब का हुक्म’ मानने का वादा कर लिया। उसने चलते हुए कहा, “खुदा हाफिज़, डाक्टर साहब ! मैं अपनी तरफ से पूरी कोशिश करूंगा और आपको या मिस्टर मिल्स को शिकायत का कोई मौका नहीं दूंगा।”

उसके चले आने के बाद डाक्टर साहब ने घटी बजाकर अपने सेक्रेटरी को बुलाया और उससे कहा कि वह सेसिल होटल में मिल्स साहब को खबर कर दे कि उनके लिए इटरप्रेटर का इतज़ाम हो गया है। इतने में टेलीफोन की घटी बजी और उन्होंने टेलीफोन उठा लिया।

“हैलो... मैं असारी बोल रहा हूँ।...कौन, अकबर साहब ?...जी हां, सब ठीक है। मैंने उसे अच्छी तरह देख लिया है; उसे सिर्फ आराम और ताज़ी हवा की जरूरत है।...आप फिक्र न कीजिए, वह जेल नहीं जाएगा, कम से कम अभी कुछ दिन तक तो नहीं। मैंने उसे दूसरा इलाज बताया है।”

कई महीने तक अनवर उस अमरीकी पत्रकार के साथ सफर करता रहा। कहने को तो एक ही अमरीकी उसके साथ था लेकिन वास्तव में दो थे। एक तो था हट्टा-कट्टा, लाल चेहरेवाला, खबरो का दीवाना राबर्ट मिल्स, जो पिछले पच्चीस बरस से खबरो की तलाश में कितनी ही लड़ाइयां, गृहयुद्ध और क्रांतियां देख चुका था और अब वह नये किस्म की लड़ाई की, एक नई तरह की क्रांति की, खबरे जमा करने आया था। राबर्ट मिल्स ने जिस दूसरे अमरीकी से अनवर का परिचय कराया वह कोई जगह नहीं घेरे हुए था। वह तो बस एक भूत या एक याद की तरह था, फिर भी वह हरदम उनके साथ था और दिल्ली से अहमदाबाद जाते समय राजपूताना के रेगिस्तानों को पार करते हुए अनवर इस सहृदय और बुद्धिमान बूढ़े अमरीकी से भली भांति परिचित हो गया—हवा में उड़ती हुई लम्बी सफेद दाढ़ी, सिर पर एक पुराना हैट और हाथ में एक लाठी लिए हुए वह उसी लगन के साथ मनुष्य के गीत गाता था जैसे भक्तजन ईश्वर का गुणगान करते हैं। अनवर ने इससे पहले कभी अब्राहम लिंकन के समकालीन अमरीकी कवि वाल्ट व्हिटमैन का नाम नहीं सुना था, क्योंकि बी० ए० के अंग्रेजी

साहित्य के पाठ्यक्रम में किसी भी अमरीकी कवि की रचनाएं शामिल नहीं थी और उसे तो शुबहा था कि उसके प्रोफेसरो ने इस अमरीकी कवि का कभी नाम भी नहीं सुना होगा। अनवर को यकीन था कि अगर उन्होंने नाम सुना भी होगा तो वे इस क्रांतिकारी कवि की रचनाएं पढ़ाना कभी भी स्वीकार नहीं करते जिसकी कविता जीवन और साहित्य के किसी बंधन को स्वीकार नहीं करती थी और जिसमें इस विद्रोही भावना का प्रचार किया गया था कि सभी मनुष्य आपस में भाई हैं।

लम्बे सफर के लिए मिल्स से अच्छा साथी मिलना मुश्किल था। उसने पृथ्वी के कोने-कोने से ज्ञान का अनंत भंडार जमा कर रखा था, उसने बहुत कुछ पढ़ रखा था और बहुत-सी ऐतिहासिक घटनाएं अपनी आंखों से देखी थीं। क्रांति के कुछ ही समय बाद वह रूस में था और बोल्शेविकों ने जो कुछ कर दिखाया था उसकी वह बहुत तारीफ करता था लेकिन पक्का 'व्वेकर' होने की वजह से वह उनकी नास्तिकता तथा हिंसा को नापसन्द करता था। यही वजह थी कि उसे गांधीजी के सिद्धान्तों में इतनी दिलचस्पी थी। वह कहा करता था, "हिन्दुस्तान में तुम लोग हिंसा के बिना क्रांति करके लेनिन के आदर्शों की बुराईया दूर कर सकते हो। और जब यह हो जाएगा तो ईसा के बाद होनेवाले सारे क्रांतिकारियों का काम पूरा हो जाएगा।" फिर वह ईसामसीह की बातें करने लगता। "वह ईसा नहीं जो धनवानों का सत है, जिसे गिरजाघरों में काच पर बनी हुई तस्वीरों में रेशमी वस्त्र पहने हुए दिखाया जाता है। बल्कि असली ईसामसीह जो मेहनत करनेवाला बढई था, जिसने हराम के पैसे बनानेवालों को उसी तरह मार भगाया था जैसे लेनिन ने अपनी तिजोरिया भरनेवालों को रूस से मार भगाया था।" और फिर वह बताता कि ईसामसीह के क्रांतिकारी उपदेशों को किस प्रकार भ्रष्ट और विकृत किया गया था। वह गांधीजी का स्रोत ईसा के उपदेशों और उससे भी पहले महात्मा बुद्ध के उपदेशों में बताता था। "लेकिन यह मत भूलो कि तुम्हारे गांधी के विचारों को ढालने में हम अमरीकियों का भी कुछ हाथ रहा है।" वह 'गांधी' को हमेशा 'गैडी' कहता था। "उन्होंने खुद एमर्सन का उतना ही आभार माना है जितना टाल्सटाय का।"

लेकिन सबसे ज्यादा आनन्द उसे अनवर को वाल्ट व्हिटमैन की कविताएं पढ़कर सुनाने में आता था। वह अपने साथ हमेशा बाइबल की एक प्रति के



अलावा उसकी कविताओं का 'लीब्ज आफ ग्रास' नामक मोटा-सा संग्रह भी रखता था। जब वह इन अतुकात कविताओं को पढ़ते-पढ़ते थक जाता तो वह उसे कवि के जीवन के बारे में बताने लगता। अनवर के लिए यह एक नया साहित्यिक माध्यम था, पर इन अतुकात कविताओं को सुनकर उसमें एक विचित्र उत्साह जागरित होता था। उसने अनवर को बताया कि यह कवि अपने जीवन में बारी-बारी से बठई, दफ्तर का क्लर्क, मल्लाह और सिपाही सभी कुछ रह चुका था और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वह अपने जीवन-भर एक घुमक्कड़ रहा और उस जमाने में जबकि दास-प्रथा का अन्त नहीं हुआ था और स्त्रियों ने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि उन्हें वोट देने का अधिकार मिलेगा, वह खुले-आम स्त्रियों और पुरुषों की बराबरी और हर जाति तथा वर्ण के लोगों की बराबरी की बातें करता था। व्हिटमैन की 'पैसेज टु इंडिया' नामक कविता पढ़कर सुनाने में उसे सबसे ज्यादा आनंद आता था। इस कविता में उसने स्वेज नहर के खुलने पर हर्ष प्रकट करते हुए कहा था कि यह 'मराठीपो और महा-सागरो और नाना प्रकार की जलवायु का विवाह-संस्कार है' और इसी प्रसंग में उसने भारत की प्राचीन मस्कृतियों तथा दर्शन-पद्धतियों का गुणगान करते हुए कहा था :

The far-darting beams of the spirit,

The unloos'd dreams,

The deep diving bibles and legends

The daring plots of poets, the elder religions

और जब वे 'जयपुर के गुलाबी शहर' से होकर गुजरे और उन्होंने वहां के महलों और मन्दिरों को सूरज में चमकते हुए देखा तब उसे फौरन व्हिटमैन की ये पंक्तियाँ याद आ गईं :

O you temples fairer than lilies

Pour'd over by the rising sun

You lofty and dazzling towers, pinnacled,

Red as roses, burnished with gold

"और तुम्हारा ताजमहल ! चादनी में ताजमहल जितना सुन्दर लगता है उतनी सुन्दर चीज मैंने इस दुनिया में कहीं नहीं देखी। व्हिटमैन ने उसका वर्णन बहुत ही सुन्दर शब्दों में इस प्रकार किया है कि 'क्षणिक स्वप्नों से ढाली



गई अमर गाथाओ के मीनार ।' क्या ताज का इससे सुन्दर कोई वर्णन हो सकता है ?”

चादनी में ताजमहल । स्मृति के पखो के सहारे अनवर का अपना 'क्षणिक स्वप्न' फिर उसे व्यथित करने के लिए लौट आया और उस दिन रात को जब वह होटल के कमरे में सोने के लिए बिस्तर पर लेटा तो उसे नीद नहीं आई । छत पर टगा हुआ बिजली का पखा सारी रात एक ही शब्द दुहराता रहा—  
सलमा । सलमा ॥ सलमा ॥

वे ११ मार्च को सुबह अहमदाबाद पहुँचे । अहमदाबाद बेढगे तरीके से दूर तक फैला हुआ एक पुराना शहर था जिसमें जगह-जगह पर मिलो की चिमनिया आकाश की ओर चली गई थी । “यह एक ओर सामती पतन और दूसरी ओर उद्योगों के विकास का अनोखा मेल है ।” बाब मिल्स ने शहर को देखकर कहा, “रूस की क्रांति से पहले पेत्रोग्राद भी बहुत कुछ ऐसा ही शहर था ।”

डाकखाने जाकर उन्होंने अपनी डाक ली । मिल्स के अखबारों ने उसे तार भेजा था कि वह 'गांधीजी की डडी-यात्रा' के बारे में विस्तृत रिपोर्टें भेजे । ऐसा लगता था कि अमरीका में लोगों को इस खबर में बहुत दिलचस्पी थी । अनवर के नाम उसके अब्बा ने एक मोटा-सा लिफाफा भेजा था जिसमें उन्होंने उसके पीछे उसके नाम आए हुए सारे खत भेजे थे । एक खत सुभान का था जो कानपुर की किसी ट्रेड यूनियन में काम कर रहा था । उसने लिखा था, “मेहनतकश लोग नये हिन्दुस्तान की इन मिलों और फैक्ट्रियों में इन्कलाब करेंगे, इन्कलाब उस आश्रम में नहीं होगा जहाँ एक सत बैठा हुआ ब्रिटिश साम्राज्य के शेर की दुम पर घर का बना हुआ एक चुटकी नमक रखकर उसे डराने की कोशिश कर रहा है ।” सुभानोव्स्की बिलकुल नहीं बदला था । अनवर अपने मित्र की इस अनोखी उपमा पर मुस्करा दिया । फिर उसने उस पोस्ट-कार्ड पर नज़र डाली जिसपर लखनऊ की मुहर लगी हुई थी । उसपर शायर की बहुत खूबसूरत जनानी लिखाई में गालिब का सिर्फ एक शेर लिखा हुआ था लेकिन उससे उसका यह मतलब बिलकुल साफ था कि उसने सत्याग्रह में शामिल

होने और जेल जाने का फैसला कर लिया था। पोस्टकार्ड पर लिखा था

खानाजादे-जुल्फ है ज़जीर से भागेगे क्यों ?

है गिरफ्तारे-वफा जिंदा से घबराएंगे क्या ?

वे लोग वहा ठीक वक्त से पहुंचे थे क्योंकि गांधीजी उसी दिन रात को अपनी यात्रा शुरू करनेवाले थे और सारे शहर में एक हलचल थी। प्रोग्राम पहले से घोषित करके 'शत्रु' को उसकी सूचना दे दी गई थी। पुलिस को यह मालूम था कि गांधी-सेना में कितने सत्याग्रही होंगे, उनके नाम क्या हैं, वे किस रास्ते से होकर दो सौ मील की यात्रा के बाद समुद्र के किनारे डडी नामक स्थान पर पहुंचेंगे और रास्ते में किन-किन गांवों में ठहरेंगे। यह एक नये ढंग की सेना थी जो एक नये ढंग की लड़ाई लड़ रही थी और सैन्य-कला के इतिहास में इस रणनीति का कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता था। इसलिए इसको एक नया नाम दिया गया था—सत्याग्रह। सचमुच यह 'सत्य की लड़ाई' थी।

उन्होंने होटल से एक टैक्सी ली और सावरमती नदी का पतला-सा पुल पार करके एक घूल-भरी सड़क से होते हुए आश्रम की तरफ चले। आश्रम नीम के पेड़ों के बीच छोटी-छोटी सफेद भोपड़ियों का एक समूह था। आश्रम के शांत वातावरण में एक हलचल छिपी हुई थी। जिन पचहत्तर लोगों को इस यात्रा के लिए चुना गया था वे आखिरी तैयारियां कर रहे थे। महात्मा गांधी अपने नियम के अनुसार तीसरे पहर सो रहे थे, लेकिन उनके एक सेक्रेटरी से उन लोगों ने सारी बातें मालूम कर लीं। गांधीजी ने खुद बहुत ध्यान देकर ऐसे लोगों को अपने साथ ले चलने के लिए चुना था जो अहिंसा में पूरा विश्वास रखते थे। इनमें मुसलमान और हरिजन भी शामिल थे और उनको यह आदेश था कि वे अपने साथ बिल्कुल ही जरूरी चीजों के अलावा कुछ भी न ले जाएं।

सेक्रेटरी की बात बीच में ही काटकर मिल्स ने कहा, "वे अपने साथ एक लाठी के अलावा और कुछ न ले, न कोई हुडी न रोट्टी और न पैसा। उनके पैरों में केवल एक जोड़ा जूता और शरीर पर केवल एक वस्त्र हो।"

"जी हा, जी हा।" सेक्रेटरी को बड़ा आश्चर्य हुआ, "आपको यह सब कैसे मालूम हुआ?"

"यह तो बहुत पुरानी कहानी है—अब से कोई उन्नीस सौ तीस वर्ष पुरानी!" अमरीकी पत्रकार ने गांधीजी के सेक्रेटरी के चेहरे पर विस्मय का

भाव देखकर कहा । “मैं तो आपको बाइबल में लिखी हुई बात सुना रहा था । ईसा ने अपने बारह शिष्यों को यही आदेश दिया था ।”

“मेरा विचार है कि गांधीजी को इस पवित्र उदाहरण का पता नहीं है । लेकिन उन्हें यह सुनकर बहुत खुशी होगी । जब वे सोकर उठेंगे तो मैं उन्हें आपकी यह बात बताऊंगा ।”

“जरूर, जरूर, और उनसे मेरा सलाम कह दीजिएगा । मैं आज उन्हें परेशान नहीं करना चाहता, आज उन्हें बहुत-सी बातों के बारे में सोचना होगा, लेकिन रास्ते में कहीं पर मैं उनसे मुलाकात करना चाहूंगा ।”

शहर वापस पहुंचकर मिल्स ने डडी-यात्रा की तैयारियों का वर्णन करते हुए एक तार भेजा । उसी होटल में दूसरे अंग्रेज और अमरीकी सवाददाता भी ठहरे हुए थे इसलिए मिल्स उनसे पीछे रह जाने के लिए किसी भी हालत में तैयार नहीं था । वह अपनी ‘स्टोरी’ टाइप करता जा रहा था और जब एक पेज पूरा हो जाता था तो वह अनवर को उसे तार से भेज देने के लिए टैक्सी पर डाकखाने भेज देता था । यह तूफान की रफ्तार से काम करनेवाली अमरीकी पत्रकारिता थी जिसमें खर्च की कोई चिंता नहीं की जाती थी ।

खाना खाकर वे फिर टैक्सी पर आश्रम जा पहुंचे । उन्होंने देखा कि हजारों लोगो ने उनका रास्ता रोक रखा था । वे अपने हृदयसम्राट महात्मा गांधी को बिदा करने आए थे । आसपास दूर तक फैले हुए मैदान पर अघेरा छाता जा रहा था और प्रायः बिल्कुल ही सूखी हुई नदी के उस पार असंख्य मशालों की रोशनी हो रही थी मानो अघेरी रात में जुगनू चमक रहे हों । ये लोग शहर और आसपास के गांवों से साबरमती के तट पर स्थित आश्रम की ओर आ रहे थे । जब उनकी मोटर भीड़ को चीरती हुई आश्रम के निकट पहुंची उस समय आधी रात का समय हो चुका था और आसपास की खुली जगह में लोग खचाखच भरे हुए थे । बड़ी मुश्किल से वे गांधीजी के सेक्रेटरी के पास पहुंचे और उसने उन्हें बताया कि बाइबल में ऐसी ही घटना के उल्लेख की बात सुनकर गांधीजी बहुत प्रभावित हुए थे पर उन्होंने अमरीकी पत्रकार से अनुरोध किया था कि वह इस बात का कहीं जिक्र न करे क्योंकि गांधीजी ने कहा था कि ईसा जैसे पैगम्बर के साथ अपनी तुलना करना बहुत अहंकार की बात होगी और धर्म का अपमान होगा ।



“जो आदमी स्वयं सत और पैगम्बर हो, उसीमें इतनी विनम्रता हो सकती है,” अमरीकी पत्रकार ने कहा।

पौ फट रही थी। गांधीजी एक लंगोटी पहने अपनी झोपड़ी में से निकले और उन्हें देखते ही दस हजार कण्ठों ने एकसाथ जयजयकार की ‘महात्मा गांधी की जय!’ नरामदे में खड़े होकर गांधीजी ने अपने खास ढग से पोपले मुह से मुस्कराकर इस जयजयकार का उत्तर दिया और हाथ उठाकर लोगों से शांत हो जाने को कहा। स्वयंसेवकों ने जल्दी से उनके चारों ओर एक घेरा बना लिया और उन्हें नदी के तट की ओर ले चले जहाँ यात्रा आरम्भ होने से पहले प्रार्थना होनेवाली थी। एक दुबला-पतला अधनगा कृषकाय व्यक्ति चबूतरे पर आखे बन्द किए हुए ध्यानमग्न बैठा था। पीछे से आती हुई मशालों की रोशनी में उसके क्षीण शरीर की केवल एक काली-सी रूपरेखा ही दिखाई दे रही थी। गीता के श्लोक पढ़े जा रहे थे। इसके बाद सफेद दाढ़ीवाने एक मौलवी साहब ने आकर भारी गूजती हुई आवाज से कुरान की आयते पढ़ी, फिर पारसी धर्मग्रंथ के कुछ हिस्से पढ़े गए और अन्त में ईसाइयों की प्रार्थना ‘लीड, काइडली लाइट’ गाई गई। मिल्स भी अनायास ही इस समूह-गान में सम्मिलित हो गया और नाक के सुर से गाते हुए उस अमरीकी पत्रकार की भारी आवाज शर्मिली भारतीय आवाजों पर छा गई। अनवर ने देखा कि गांधीजी ने इस अपरिचित स्वर पर किंचित् विस्मय होकर एक क्षण को अपनी आखे खोली और उस विशालकाय अमरीकी को वही प्रार्थना गाते देखकर उन्होंने अपनी आखे बन्द कर ली और उनके पिचके हुए गालों पर और ऐनक के पीछे उनकी आखों में एक मुस्कराहट दौड़ गई।

प्रार्थना समाप्त होने पर गांधीजी ने अपनी लाठी उठाई और अन्धकार को चीरते हुए अपनी यात्रा पर चल पड़े, उनके पीछे-पीछे सत्य के इस युद्ध में लड़ने-वाले उनके पचहत्तर सिपाही दो पत्नियों में चले जा रहे थे। जनसमूह ने एक बार फिर मिहनाद किया ‘महात्मा गांधी की जय!’ महात्मा गांधी ने अपनी पदयात्रा आरम्भ कर दी थी।

मिल्स भागकर अपने होटल पहुँचा और टाइपराइटर पर जल्दी से एक छोटी-सी खबर खड़खड़ा दी। उसके बाद इसी खबर को विस्तारपूर्वक टाइप करने से पहले उसने अनवर को उस संक्षिप्त खबर के साथ डाकखाने दौड़ा दिया ताकि



वह तीसरे पहर निकलनेवाले अखबारो मे छपने के लिए ठीक समय पर न्यूयार्क पहुंच जाए । खिडकी पर तार देते समय अनवर ने उन शब्दो को पढा और उसके सारे शरीर मे उत्साह की एक लहर दौड गई । खबर कुछ इस प्रकार थी

### अंतराष्ट्रीय समाचार . न्यूयार्क

भारत के देहातो मे एक नये ईसा की पदयात्रा । आत्मा की इस अजेय शक्ति के आगे नई दिल्ली के महलो मे अत्याचारी शासक भयभीत हो उठे । आज पौ फटते ही मदगामी साबरमती के तट से महात्मा गांधी ने अपने पचहत्तर अनुगामियो के साथ ईसाइयो की प्रार्थना 'लीड, काइडली लाइट' गाते हुए अपनी ऐतिहासिक पदयात्रा आरभ की । अपने कोटिसंख्यक देशवासियो के लिए यह कृषकाय व्यक्ति गहन अधिकार के बीच आशा की एक किरण के समान है । नमक बनाकर अंग्रेजो का कानून भंग करने के लिए गांधीजी ने समुद्र-तट की ओर अपनी यात्रा आरभ कर दी । यही उनके देशवासियो की स्वतंत्रता-यात्रा है । विस्तृत समाचार बाद मे भेज रहा हू । ए० मि०

कुछ दिन तक तो गांधीजी जिधर जाते उधर ही वे दोनो भी मोटर से पहुंच जाते । अनवर ने ऐसा महसूस किया कि शुरू-शुरू मे उसे जितना जोश था वह गांधीजी के सत्याग्रह के धार्मिक पहलू को देखकर काफी ठंडा पड गया था । यह स्वतंत्रता की सेना रणक्षेत्र के लिए कूच नहीं कर रही थी बल्कि ऐसा लगता था कि एक पवित्रात्मा के साथ कुछ यात्री किसी तीर्थस्थान को जा रहे है । जहा भी वे जाते हजारो की संख्या मे गांधीवाले आकर वहा जमा हो जाते और महात्मा के पैर छूने के लिए, या जहा पर उन्होंने कदम रखा था कम से कम वहा की पवित्र धूल ही ले जाने के लिए धक्कामुक्की करने लगते । अनवर जानता था कि महात्मा गांधी इस बात को पसंद नहीं करते थे पर वे इस प्रकार की अधी मूर्ति-पूजा को बर्दाश्त क्यों करते थे ? वे ऐसा वातावरण ही क्यों पैदा करते थे जो लोगो को घृणित सरकार के खिलाफ लडने के बजाय उनकी पवित्रता की ओर आकर्षित करता था ? जिन गावो से होकर वे गुजरे वहा के किसान बहुत गरीब थे । आखिर महात्माजी उन किसानो को न केवल विदेशी

सरकार के खिलाफ बल्कि उनका खून चूसनेवाले जमींदार और महाजन के खिलाफ विद्रोह करने के लिए क्यों नहीं उकसाते थे ? ...आखिर क्यों नहीं ? ...क्यों नहीं ?

अनवर ने एक बार जब गांधीजी को किसानों की एक भीड़ के सामने भाषण देते सुना तो उसकी कुछ शकाए दूर हो गई और उसे अपने कुछ सवालों का जवाब भी मिल गया, वे गुजराती में बोल रहे थे और एक स्वयंसेवक उनके भाषण का अनुवाद हिंदुस्तानी में करता जाता था, जिसका अनुवाद अनवर को मिल्स के लिए अंग्रेजी में करना पड़ता था। यह बहुत ही लम्बा सिलसिला था और इस दुहरे अनुवाद में बीच-बीच में कुछ शब्द रह भी जाते थे लेकिन अनवर को इस बात की खुशी थी कि वे सत्ता की तरह धैर्य रखने का उपदेश नहीं दे रहे थे बल्कि उनका भाषण अत्याचार का विरोध करने के लिए एक क्रांतिकारी का संदेश था।

उन्होंने कहा, “भारत में ब्रिटिश शासन ने इस महान देश को नैतिक, भौतिक, सांस्कृतिक और आत्मिक दृष्टि से तबाह कर दिया है। मैं ऐसे शासन को एक अभिशाप समझता हूँ। मैंने इस शासन-व्यवस्था को नष्ट कर देने का बीड़ा उठाया है। मैं ‘गाड सेव द किंग’ का गीत गा चुका हूँ और मैंने दूसरों को यह गीत गाना सिखाया भी है। मैं प्रार्थना-पत्रों, प्रतिनिधि-मंडलों और मित्रता-पूर्ण वातचीत की राजनीति में विश्वास रखता था। परंतु ये सब तरीके बेकार साबित हो चुके हैं। मैं जानता हूँ कि सरकार इन तरीकों से सही रास्ते पर नहीं आएगी। अब राजद्रोह मेरा धर्म है। हमारी लड़ाई अहिंसा की लड़ाई है। हम किसीको जान से मारने के लिए नहीं निकले हैं लेकिन यह हमारा धर्म है कि इस सरकार के अभिशाप का नाम-निशान मिटा दें।”

अनवर सोचने लगा कि अगर महात्माजी ऐसा कोमल स्वभाव का आदमी इस तरह की बातें कर सकता है तो वह इन्कलाब जिसका नारा भगतसिंह ने बम फेंकने के बाद लगाया था, सचमुच आ गया है। किसानों का उत्साह भी नारे लगाने तक ही सीमित नहीं था। इस सभा में गांधीजी का भाषण समाप्त होते ही बड़ी-बड़ी पगड़िया बांधे हुए आधे दर्जन आदमी कूदकर मंच पर पहुंच गए। वे गांवों के सरकार द्वारा नियुक्त किए हुए पटेल थे। मंच पर खड़े होकर उन्होंने अपने इस्तीफे की घोषणा की। उनमें से एक ने चिल्लाकर कहा, “हमें

- महात्मा का हुक्म मिल गया है, अब हम इस दुष्ट सरकार की सेवा नहीं करेंगे। तालियों की आवाज से आकाश गूज उठा और पता लगाने पर उन पत्रकारों को यह मालूम हुआ कि इन छ पटेलों को लेकर गुजरात में इस्तीफा देनेवाले पटेलों की संख्या दो सौ तक पहुँच चुकी है। सरकार को धीरे-धीरे जनता के असहयोग का अंदाजा होता जा रहा था।

आखिरकार मिल्स को महात्मा गांधी से इटरव्यू का वह मौका मिल ही गया जिसके फेर में वह कई दिनों से था। लेकिन जब तक दूसरे विदेशी पत्रकार सत्याग्रहियों की इस टोली के साथ लगे हुए थे तब तक वह इस इटरव्यू को टाले हुए था। लेकिन कुछ दिन बाद अंग्रेज और अमरीकी पत्रकार रोज तेज धूप और गर्म में पदरह-पदरह मील चलते-चलते उकता गए और इसलिए वे अहमदाबाद लौट गए। उसी दिन शाम को जम्बूसार नामक गाँव में अनवर और मिल्स गांधीजी से मिले। गांधीजी आम के एक पेड़ की छाया में बैठे चरखा कात रहे थे। अनवर ने उन्हें याद दिलाया कि वह एक बार पहले भी उनसे मिल चुका था और गांधीजी ने कहा, “अरे हा, मुझे याद है, मुझे याद है, लेकिन उस वक्त से तुम बहुत बड़े हो गए हो। इसके बाद अनवर ने उन्हें राबर्ट मिल्स के बारे में और भारत की स्वतंत्रता के ध्येय के प्रति उसकी सहानुभूति के बारे में बताया और यह भी बताया कि डाक्टर असारि ने उसे उस अमरीकी पत्रकार के साथ एक इटरप्रेटर की हैसियत से सारे देश का चक्कर लगाने के लिए तैनात किया था। अनवर ने देखा कि महात्माजी इस बात से बहुत खुश हुए क्योंकि उन्होंने मुस्कराकर कहा, “अच्छा ! अच्छा !” गांधीजी के सेक्रेटरी ने बताया कि मिल्स भारत की ओर मित्रता की भावना रखनेवाला वही अमरीकी सवाददाता था जिसने ईसामसीह के जीवन की एक घटना के साथ सत्याग्रहियों की तुलना की थी। यह सुनकर गांधीजी ईसामसीह की बातें करने लगे जिनके प्रति वे बहुत श्रद्धा रखते थे। इसके बाद वे ताल्सताय और एमर्सन की बातें करते रहे, जिनके दोनों ही बहुत प्रशंसक थे। बातों के दौरान में मिल्स ने वाल्ट विह्टमैन का उल्लेख किया पर गांधीजी ने इस कवि की कोई रचना नहीं पढ़ी थी। फिर भी जब उन्हें बताया गया कि लिंकन की घोषणा से बहुत पहले ही इस कवि ने दास-प्रथा के उन्मूलन के बारे में बहुत कुछ कहा था और उसके लिए बहुत काम किया था तो गांधीजी को इस कवि में बड़ी दिलचस्पी पैदा हुई। मिल्स ने जब देखा



कि उसे इटरव्यू के लिए जो एक घंटे का वक्त दिया गया था उसका ज्यादातर हिस्सा तो राजनीति से कोई सबध न रखनेवाली इधर-उधर की बातों में छिकल गया, तो उसने आखिरी कुछ मिनटों में जल्दी-जल्दी सामयिक समस्याओं के बारे में प्रश्न पूछने शुरू किए ।

“महात्मा गैन्धी,”—वह ‘गांधी’ को अब भी ‘गैन्डी’ ही कहता था लेकिन दूसरे पत्रकारों की तरह वह उसके पहले ‘मिस्टर’ का शब्द नहीं जोड़ता था—  
“अंग्रेजों से आपको क्या शिकायत है ?”

गांधीजी ने चरखा चलाते हुए उत्तर दिया, “एक शब्द में मेरी शिकायत का आधार उनका शोषण है । वे हिन्दुस्तान का खून चूसते ले रहे हैं । वाइसराय की तनख्वाह को ही ले लीजिए, जिसका जिक्र मैंने लार्ड इर्विन के नाम अपने पत्र में किया था । उसे हर महीने इक्कीस हजार रुपये से ज्यादा मिलते हैं । इसका मतलब यह है कि उसे रोज सात सौ रुपये से ज्यादा मिलते हैं जबकि औसत हिन्दुस्तानी की आमदनी दो आने रोज से भी कम है—जिसका मतलब यह है कि उसे औसत हिन्दुस्तानी के मुकाबले में पांच हजार गुने में भी ज्यादा तनख्वाह मिलती है । औसत अंग्रेज की आमदनी दो रुपये रोज है, फिर भी वहां के प्रधान मंत्री को केवल १८० रुपये रोज मिलते हैं । क्या यह शोषण नहीं है ? यह तो सिर्फ एक मिसाल है । शासन का पूरा तरीका गलत और अत्याचार का तरीका है ।”

“अंग्रेजों की हुकूमत का मुकाबला करने के लिए आपने नमक कानून जैसे छोटे कानून को तोड़ने के लिए क्यों चुना ?”

“क्योंकि गरीबों की नज़र से देखा जाए तो इस कानून को मैं सबसे ज्यादा बेइसाफी का कानून समझता हूं । चूँकि आज़ादी का आंदोलन बुनियादी तौर पर सबसे गरीब लोगों के लिए है, इसलिए मैंने सबसे पहले इस बुराई को ही दूर करने का बीड़ा उठाया है ।”

“अगर आप गिरफ्तार हो गए तो क्या होगा ?”

“मैं गिरफ्तार भी किया जा सकता हूँ और यह भी हो सकता है कि मैं जान से मार दिया जाऊँ । लेकिन मुझे इस बात की पूरी उम्मीद है कि मेरे बाद इस काम को अनुशासित ढंग से पूरा करने के लिए दसियों हजार लोग तैयार होंगे ।”



“थियोडोर पार्कर ने भी बिल्कुल ऐसी ही बात कही थी।”

“मैं बहुत अज्ञानी आदमी हूँ,” गांधीजी ने कहा, “थियोडोर पार्कर कौन थे?”

मिल्स ने उन्हें थियोडोर पार्कर का किस्सा बताया। वह लिंकन और व्हिटमैन के जमाने में एक बहुत बड़ा धर्मोपदेशक गुजरा था और दास-प्रथा के उन्मूलन का प्रचार करनेवाले सर्वप्रथम लोगों में से था। उसका कहना था कि यह निंदनीय दास-प्रथा ईसाई धर्म के खिलाफ है। जो धर्मशास्त्री इस अन्यायपूर्ण स्थिति को ज्यों का त्यों कायम रखना चाहते थे उन्होंने उसे खुले-आम बहस करने के लिए ललकारा। उसके दोस्तों ने उसे सलाह दी कि वह उस सभा में न जाए क्योंकि यह उसे मार डालने का षड्यन्त्र था। लेकिन वह जाने पर तुला हुआ था इसलिए उन्होंने उसे उसके घर में बंद कर दिया। सभा में उसके शत्रुओं ने उसपर कायरता का आरोप लगाया। सहसा पार्कर वहां आ पहुंचा और कूदकर मंच पर जा खड़ा हुआ और जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगा, “अगर चाहो तो मुझे जान से मार डालो ! लेकिन तुम मेरा जो खून बहाओगे उसकी एक-एक बूंद से हजारों पार्कर पैदा होंगे और दास-प्रथा का अंत कर देंगे।” उसके शत्रु लज्जित होकर चुप हो गए।

गांधीजी पार्कर के उदाहरण से स्पष्टतः बहुत प्रभावित हुए और कुछ क्षण तक चुप रहने के बाद बोले, “यह अहिंसा की शक्ति का एक ज्वलंत उदाहरण है।” पर मिल्स फिर तात्कालिक राजनीतिक समस्याओं पर बातें करने लगा।

“लार्ड इर्विन ने आपके पत्र का जो जवाब दिया है उसके बारे में आपका क्या खयाल है?”

“घुटने टेककर मैंने रोटी मागी थी और जवाब में मुझे पत्थर मिला। फिर भी मुझे इसपर कोई आश्चर्य नहीं है। अंग्रेज कौम सिर्फ ताकत के आगे सिर झुकाने हैं।”

गांधीजी के सेक्रेटरी पत्रों का एक बड़ा-सा ढेर लिए चले आ रहे थे इसलिए मिल्स ने जल्दी से एक सवाल और पूछा, “अंग्रेजों की इस दलील के बारे में आपका क्या खयाल है कि उनके शासन से हिंदुस्तान को फायदा ही पहुंचा है क्योंकि उन्होंने इस देश में शांति कायम की है?”

अंग्रेजों के शासन में हमारे देश को जो शांति नसीब हुई है वह जेलखाने या कब्रिस्तान की ही शांति है। उन्होंने पूरे हिन्दुस्तान को एक बहुत बड़ा

जेलखाना बना रखा है।”

इतने में गांधीजी जो सूत कात रहे थे वह टूट गया और ऐसा प्रतीत हुआ कि सूत का टूटना बातचीत का क्रम समाप्त होने का सूचक था। गांधीजी ने अपनी कमर पर से एक ज़जीर से लटकती हुई सस्ती-सी गोल जेबी घड़ी हाथ में लेकर अमरीकी पत्रकार को दिखाते हुए कहा, “आप पांच मिनट वक्त ज्यादा ले चुके हैं” और यह कहकर वे बच्चों की तरह खिलखिलाकर हस पड़े।

वहां से बाहर निकलते हुए अनवर ने मिल्स से पूछा, “हमारे महात्मा के बारे में आपका क्या खयाल है?”

“मैं चाहता था कि मैं और कुछ देर उनसे बातें कर सकता। अभी भी बहुत-सी ऐसी बातें हैं जो मेरी समझ में नहीं आती, जैसे मिसाल के लिए यह बात कि वे चरखे पर इतना जोर क्यों देते हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि यह प्रगति के क्रम को पीछे मोड़ देने के समान है। लेकिन इस बातचीत के बाद मुझे एक बात का पहले से भी ज्यादा यकीन हो गया है—वह है उनकी ईमानदारी और नेकी। इतनी नेकी खतरनाक हो सकती है।”

“किसके लिए खतरनाक हो सकती है?”

“यह तो मैं नहीं कह सकता, लेकिन हो सकता है खुद उनके लिए।”

अनवर इस बात का पूरा मतलब नहीं समझ सका इसलिए उसने पूछा, “आपका मतलब मैं समझ नहीं पाया।”

“यह तो मैं भी नहीं बता सकता,” उस अमरीकी पत्रकार ने विचारमग्न होकर कहा, “मैं फिर ईसा की बात सोच रहा था।”

जब वे अहमदाबाद वापस पहुंचे उस समय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सैकड़ों सदस्य—जिसे राष्ट्रवादी अखबार ‘राष्ट्र की ससद’ कहने लगे थे—सविनय अवज्ञा आंदोलन आरंभ करने के बारे में वर्किंग कमेटी के निर्णय का अनुमोदन करने के बाद वापस जाने की तैयारियां कर रहे थे। उन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू की एक झलक देखी। वे अपने साथियों से बिदा ले रहे थे। इस बात की संभावना थी कि उन थोड़े-से लोगों को छोड़कर जो जेल में उनके साथ ही रखे जाएं, बाकी लोगों से कई दूर तक उनका

मिलना न हो सके । जब वे लोग एक-दूसरे से गले मिलकर बिदा हो रहे थे उस समय उनके चेहरो पर एक उदासी की झलक थी, साथ ही उन्हें इस बात का भी आभास था कि वे आखिरी कदम उठाने जा रहे हैं ; लड़ाई के लिए दोनों तरफ के मोर्चे जम चुके हैं । लेकिन साथ ही उनकी आंखों में एक चमक भी थी, शत्रु को अपना कसबल दिखा देने का दृढ सकल्प भी था । वातावरण में चिन्ता की जो भावना व्याप्त थी उसे मानो दूर करने के लिए बीच-बीच में लोग हसी-मजाक भी कर रहे थे । सरोजिनी नायडू, जो कवयित्री भी थी और राजनीतिज्ञ भी, जो बात-बात में लोगों को हसाती थी और कई संग्रामों में वीरतापूर्वक लड़ भी चुकी थी, जिनमें अपने भारी-भरकम शरीर और अधेड़ उम्र के बावजूद अभी तक लड़कियों जैसी चपलता थी । वे अपनी खास आवाज़ में कह रही थी, “अच्छा जवाहर, बिदा । मेरा खयाल है कि अब हम सब लोगों को जेल की तीर्थयात्रा की तैयारियां कर लेनी चाहिए ।”

जब ऐतिहासिक घटनाओं का रगमच अहमदाबाद से हटकर कहीं और जा रहा था, इसलिए रात की गाड़ी से अनवर और मिल्स बम्बई के लिए रवाना हो गए ।

‘बम्बई । अनवर के लिए तो इस नाम में ही एक जादू-सा था । नगर के वातावरण में सजीवनी का प्रभाव था । बड़ी-बड़ी इमारतें, सड़कों की भीड़-भाड़, ट्रामे, बसे और बिजली की रेलगाड़ियां, होटलों और चायखानों में तरह-तरह के लोगों की चहलपहल, जगमगाती हुई दुकानें—हर चीज आधुनिकता के साचे में ढली हुई मालूम होती थी । हर चीज उसे मुग्ध भी करती थी और साथ ही पहुंच के बाहर भी मालूम होती थी । उसे ऐसा लगता था कि इस शहर में उज्ज्वल भविष्य की संभावना भी है और एक चुनौती थी । उसने फैसला कर लिया कि वह इस नगर पर विजय प्राप्त करेगा ।

वे लोग ताज में ठहरे । अपने सीधे-सादे विद्यार्थियोंवाले लिबास में अनवर को ऐसा लगा कि वह इस जगह के लायक नहीं है । और इसके अलावा वह इसका भी कोई कारण नहीं समझता था कि जब वह आसानी से अपने एक दोस्त के साथ ठहर सकता है तो फिर मिल्स उसके लिए इतना पैसा क्यों खर्च



करे। इसलिए उसने उस्मान फजलभाई को उसके अब्बा के इत्र के कारखाने में टेलीफोन किया और उसे फौरन टेलीफोन पर ही इस बात का आभास हो गया कि उस्मान को उसकी आवाज सुनकर कितना आश्चर्य हुआ था और साथ ही कितनी खुशी हुई थी। घंटे-भर के अंदर ही उस्मान अनवर को अपने घर ले जाने के लिए होटल आ पहुँचा। अनवर के साथ ही उस्मान को भी कालेज से निकाल दिया गया था। मिल्स नहीं चाहता था कि अनवर उसे छोड़कर जाए। वह अपने इंटरप्रेटर को सचमुच बहुत प्यार करने लगा था और वह महसूस करता था कि उसकी पूरी जिम्मेदारी उसके ऊपर है, लेकिन जब उस्मान ने बहुत जोर दिया तो वह राजी हो गया। इसके अलावा अनवर ने मिल्स को यह भी बताया कि ताज में रहकर बम्बई से उसका सम्पर्क नहीं रह पाएगा और चूँकि उस्मान स्थानीय कांग्रेस की सरगमियों में आगे बढ़कर हिस्सा ले रहा था इसलिए उनके जरिये वह अपने दोस्त के लिए खबरे हासिल कर सकेगा।

६ अप्रैल को खबर आई कि गांधीजी डंडी पहुँच गए थे और उन्होंने समुद्र-तट पर से नमक उठाकर नमक कानून तोड़कर सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू कर दिया था। यह सारे देश में कानून भंग करने का आंदोलन आरंभ करने का संकेत था। हर जगह सभाएँ हुईं, जुलूस निकाले गए, विदेशी कपड़े की दुकानों पर धरना दिया गया और खुले-आम नमक बनाया गया। सरकार ने इस विद्रोह को भड़कानेवाले मुख्य नेता को तो हाथ नहीं लगाया पर उसके अनुगामियों पर अभूतपूर्व पाशविकता के साथ प्रहार किया।

उस्मान का एक दोस्त 'बाम्बे क्रानिकल' में सब-एडिटर था और अनवर अपना बहुत काफी समय वही बिताकर यह देखता रहता था कि अखबार के दफ्तर में किस तरह खबरे लगातार आती रहती थी। कराची में एक अदालत के सामने, जहाँ कुछ सत्याग्रहियों पर मुकदमा चल रहा था, एक निहत्थी भीड़ पर गोली चलाई गई। दो नवयुवक मारे गए और सात को गहरी चोट आई, जिनमें गठे हुए शरीरवाले सिंधी नेता जैरामदास दौलतराम भी थे, जिन्हें अनवर ने अभी कुछ ही दिन पहले अहमदाबाद में देखा था। पटना, कलकत्ता, मद्रास, रत्नागिरी और शिरोदा से भी गोली चलने की खबरे आई थी। पेशावर में कई लोग फौज और पुलिस की गोलियों से मारे गए थे जिनमें एक औरत और उसका बच्चा भी था जिसे माँ के स्तन से दूध पीते हुए ही गोली का निशाना बना दिया



गया था। एक सब-एडिटर ने अनवर को बताया, “शुरू-शुरू में तो जब कहीं भी पुलिस गोली चलाती थी तो वह खबर इतनी सनसनीपूर्ण समझी जाती थी कि उसे पहले पृष्ठ पर सात कालम की हैड-लाइन लगाकर छापा जाता था, लेकिन अब तो रोज़ इतनी जगहों से गोली चलने की खबरे आती हैं कि हम उन्हें एक कालम से ज्यादा की हैड-लाइन नहीं दे सकते। लाठी-चार्ज की खबरे तो योही किसी कोने में छापकर टाल दी जाती हैं।”

सारे देश में विद्रोह की आग धधक रही थी। बम्बई में भी यही हाल था। अनवर को ऐसा लगता था कि किसी भी दिन यह आग भड़क उठेगी। इस शहर में कांग्रेस का संगठन दूसरे शहरों के मुकाबले में ज्यादा अच्छा था और इसलिए यहाँ वह ताकतवर भी ज्यादा थी। उस्मान ने उसे बताया कि बम्बई में अंग्रेज सरकार से अलग, एक दूसरी सरकार की बुनियाद पड़ रही थी। कांग्रेस के हजारों स्वयंसेवक थे जिनकी अपनी अलग वर्दी थी, इनमें मर्द भी थे और औरतें भी। घायलों को ले जाने के लिए एम्बुलेस गाड़ियों, प्राथमिक चिकित्सा-केन्द्रों और अस्पताल का पूरा प्रबन्ध था। कांग्रेस हाउस की आज्ञा पर करोड़ों रुपये के विदेशी कपड़े से भरे हुए गोदामों में ताला लगा दिया गया था और कांग्रेस के स्वयंसेवक दिन-रात उनपर पहरा देते थे। शराब की दूकानों पर धरना दिया जा रहा था और शराब का कारोबार लगभग बिलकुल ठप पड़ा था। चूँकि अखबारों पर रोक लगाने के लिए उनके सम्पादकों के खिलाफ कई आज्ञाए जारी कर दी गई थी इसलिए गैरकानूनी तौर पर साइक्लोस्टाइल करके कांग्रेस बुलेटिन सुबह और शाम को निकाले जाते थे और खुले-आम सड़कों पर बेचे जाते थे। सबसे ताज्जुब की बात तो यह थी कि पुलिस की नजरों से छिपाकर कांग्रेस का एक रेडियो स्टेशन भी काम कर रहा था, जो विद्रोह का संदेश प्रसारित करता था और चाय की दूकानों में हजारों लोग खुले-आम पुलिस के सामने इस रेडियो का कार्यक्रम सुनते थे।

एक रात जब अनवर मिल्स के साथ ताज में खाना खा रहा था तो उसने विद्रोह की इस नई भावना का एक विचित्र प्रदर्शन देखा। खाना खानेवाले ज्यादातर लोग अंग्रेज या अमरीकी थे। मर्द काले रंग के डिनर-कोट और औरतें ईवनिंग गाउन पहने थीं। इनमें कुछ पारसी, एंग्लो-इंडियन और इक्का-दुक्का ऐसे हिन्दुस्तानी भी थे जो अपने रहन-सहन में बिलकुल अंग्रेजों जैसे थे। इतने में

उनके बीच से एक लम्बा-तगड़ा, खूबसूरत-सा नौजवान सफेद खद्दर की धोती, कुरता और गांधी टोपी पहने हुए गुजरा। वह चुपचाप एक मेज पर जाकर बैठ गया और खाने का आर्डर देने लगा। हैड वेटर इस खद्दरपोश नौजवान को देखकर स्तम्भित रह गया और सैकड़ों आखें इस नौजवान पर आकर जम गईं जिसके खद्दर के कपड़े काले कोटों के समुद्र में एक सफेद द्वीप की तरह चमक रहे थे। अनवर अपनी फंटीचर काली शेरवानी की वजह से यूँ ही कुछ घबराया हुआ बैठा था। जब उसने मैनेजर को क्रोध से उस नौजवान की मेज की तरफ बढ़ते देखा तो अनवर ने समझा कि अब वह खद्दरपोश बहुत बेइज्जती के साथ वहाँ से निकाल दिया जाएगा। लेकिन जब मैनेजर मेज के पास पहुँचा तो उसका पूरा रवैया ही बदल गया। वह बहुत झुककर मुस्करा-मुस्कराकर कहने लगा, “डिनर सर, यस सर, इनडीड सर।” बोलते हुए उसकी जवान लडखडा रही थी और वह बिना मुड़े पीठ की तरफ कदम उठाता हुआ वहाँ से चला गया। पास की मेज पर बैठे हुए एक पारसी नौजवान ने बताया, “आप जानते हैं, यह नौजवान आदमी मोहन शाह है। इसके बाप कोई एक दर्जन मिलों के मालिक होंगे और अगर वे चाहे तो इस होटल को खरीद सकते हैं।”

खाना खाकर उस खद्दरपोश नौजवान ने बिल पर दस्तखत किए, वेटर को टिप दी और एक सुनहरे सिगरेट-केस का खटका दबाकर उसमें से बीड़ी निकाली और प्लेटिनम के लाइटर से उसे जलाकर चल देने को उठ खड़ा हुआ। अनवर ने देखा कि वह अपनी बगल में कागजों का एक बडल लिए हुए था और उनकी मेज के पास से गुजरते समय उसने एक कागज इस तरह गिरा दिया मानो अपने-आप गिर गया हो। अनवर ने जल्दी से वह कागज उठा लिया। वह साइक्लो-स्टाइल किया हुआ कांग्रेस बुलेटिन था और उसके सामनेवाले पृष्ठ पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था।

प० जवाहरलाल नेहरू गिरफ्तार

कल शहर में विरोध प्रकट करने के लिए बहुत बड़ा जुलूस निकाला जायगा।

अनवर को याद नहीं था कि पहले उसने उसे देखा या झंडे को—लेकिन

जुलूस में वे ही दोनों सबसे ज्यादा उभरकर सामने आ रहे थे। या शायद वे दोनों एक ही थे क्योंकि दोनों एक ही विचार, एक ही भावना के प्रतीक थे। वह बिल्कुल झड़े जैसी थी—साहसी और सीधी तनी हुई। हरे रंग का ब्लाउज़ और केसरिया रंग के किनारे की सफेद साड़ी पहने हुए वह साकार एक तिरंगा झंडा लग रही थी और वह इतनी नाजुक थी कि हवा के झोंके से उसका शरीर हिलता हुआ प्रतीत होता था। और झंडा बिल्कुल उसका जैसा था—रंगीन, स्पंदनशील, संप्राण वस्तु, गर्वीली और चंचल।

झंडा जुलूस के आगे-आगे चल रहा था। दो स्वयंसेवक उसे मजबूती से अपने हाथों में थामे हुए थे—उनमें से एक दाढ़ीवाला सिख नौजवान था जो सिर पर अकालियोवाली नीली पगड़ी बांधे था (उसे देखते ही अनवर को रतन की याद आ गई, जो इस वक्त किसी जेल में पड़ा सड़ रहा था और मौत की सजा का इंतजार कर रहा था) और दूसरा एक नौजवान पठान था जो स्लेटी रंग की खदर की शलवार और लाल कमीज पहने था। उनके ठीक पीछे झड़े के नीचे स्वयंसेविकाओं की एक टोली चल रही थी, और इस टोली की सबसे अगली पात में वह थी, उनके बाद हजारों दूसरे स्वयंसेवकों की कतारें थी, जिन्हें फौज के ढग से अलग-अलग जत्थों में बांट दिया गया था, इनमें पंजाब के अकाली और सीमाप्रांत के पठान 'लाल कुर्तीवाले' सबसे ज्यादा चमक रहे थे।

हर चीज शांत थी। सड़कों पर आवाजाही बंद थी और सिर्फ दो लाख पैंरो की सधी हुई आवाज़ सुनाई दे रही थी। अनवर को ऐसा लगा कि उसने अपनी सारी जिंदगी में इससे ज्यादा खूबसूरत और उत्साहवर्धक दृश्य नहीं देखा था। यह साम्राज्य की ताकत को भारतवासियों का जवाब था, जिसने उनके प्रिय नेता जवाहरलाल पर हाथ डाला था। यह विद्रोह के मार्ग पर अग्रसर भारत था। और इस जुलूस का सारा तात्पर्य जुलूस की अगली पात में चलनेवाली उस लड़की के चेहरे पर झलकनेवाली विद्रोह की पवित्र भावना में केन्द्रीभूत हो उठा था।

जुलूस की सबसे पिछली पातों से तूफान की घन-गरज की तरह एक आवाज़ गूँज उठी—इन्कलाब जिन्दाबाद ! जुलूस के बीच में से किसीने इस नारे को उठा लिया और फिर उसे वापस पीछे लौटा दिया। ऐसा लगता था कि खेल में गेंद इधर से उधर फेंकी जा रही हो। यह आवाज़ क्राफर्ड मार्केट की दीवारों से



टकराती हुई ऊपर को उठी और ट्राम के बिजली के तारों को पार करती हुई मेघाच्छदित आकाश पर छा गई ।

इन्-क-लाब जिन्दाबाद ! सीमाप्रात के पठान लड़के 'क' की आवाज़ गले की गहराई में से इतनी शुद्ध निकालते थे कि ऐसा लगता था कि वे कुरान की आयते पढ़ रहे हों ।

इन-कि-लाब जिन्दा-बाद । पंजाब के मिख अरबी के शुद्ध उच्चारण की ओर कोई ध्यान दिए बिना पूरे जोश के साथ नारा लगा रहे थे ।

“इन्-किलाब...” स्वयंसेवकों की टोली के एक कप्तान ने नारा लगाया और हजारों युवा कठों ने एक स्वर से जवाब दिया—“जिन्दाबाद !”

दजनों प्रकार के अलग-अलग उच्चारणों में, मोटी और पतली, तेज़ और धीमी आवाज़ों में, मंत्र की तरह उच्चरित या युद्ध-घोष की तरह गुंजित इन दो शब्दों ने एक विशाल जनसमुदाय को मन्त्रमुग्ध कर रखा था—जिसमें हिन्दू और मुसलमान और सिख और पारसी सभी थे, उनमें गुजराती सेठ भी थे और मिलो के मराठे मजदूर भी, सीमाप्रात के गोरे पठान भी और दक्षिण के काले मद्रासी भी । अनवर सोच रहा था कि यह भी कैसी अजीब बात है कि ‘इन्कलाब’ अरबी का शब्द था और ‘जिन्दाबाद’ फारसी का, लेकिन इन दोनों शब्दों ने मिलकर हिंदुस्तानियों को वह नारा दिया था जो सारी दुनिया के मजदूरों का संघर्ष का नारा था : क्रांति अमर हो ! उसे उदास आखोंवाले सुहृदय क्रांतिकारी भगतसिंह की याद आ गई जिसने देश को यह नारा दिया था और जो शीघ्र ही देश के लिए अपने प्राणों की बलि देने वाला था । उसे मेरठ के उन बत्तीस कैदियों का ध्यान आया जिनपर इसी ‘इन्कलाब’ को लाने का षड्यन्त्र करने का अभियोग लगाया था, जिसकी घोषणा उनके लाखों देशवासी खुले-आम किसी भी चीज़ की परवाह न करते हुए कर रहे थे । उसकी आखों के आगे गांधीजी का दुबला-पतला शरीर नाचने लगा, जिन्होंने समुद्र-तट पर से नमक उठाकर, जो देखने में बहुत ही छोटी बान मालूम होती थी, सारे देश में विद्रोह की लहर पैदा कर दी थी । उसे वह बात याद आई जो जवाहरलाल नेहरू ने सुभान की आटोग्राफ बुक में लिखी थी और उसे अब ऐसा महसूस हो रहा था कि सारा देश ‘जान हथेली पर रखकर’ निकल पड़ा था । हर आदमी ‘इन्कलाब’ को अपने ढंग से समझता था—गांधीजी चाहते थे कि



हर आदमी चरखा चलाए, कम्युनिस्ट चाहने थे कि सामूहिक खेत कायम किए जाए, हजारों और फैक्ट्रियां लगाई जाएं ताकि देश का उद्योगीकरण हो सके—लेकिन इन्कलाब तक पहुंचने के लिए पहले कदम के बारे में सबकी राय एक थी कि विदेशी सरकार को हटाया जाए।

जब जुलूस विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन के पास पहुंचा तो कम से कम एक हजार पुलिसवालों ने उसे आगे बढ़ने से रोक दिया। पुलिसवाले नीली बर्दियां पहने थे और उनके सिरों पर छोटी-छोटी पगडियों की शकल की टोपियां थीं। कुछ के हाथ में लाठियां थीं और कुछ के हाथ में राइफलें, अफसरों के पास रिवाल्वर थे। मिल्स ने अनवर के कान में भारी आवाज में कहा, “अब तमाशा देखना।” अनवर का दिल धक् से हो गया। वह सोचने लगा कि अगर कहीं कुछ हो गया तो वह तो आगे सबसे पहली कतार में है, पहला वार उसीपर पड़ेगा।

एक पुलिस अफसर सीधा औरतो के पास गया और उसने उनसे कहा कि जुलूम गैरकानूनी है इसलिए सब लोग फौरन वहां से चले जाए। औरतो ने उसे जवाब दिया कि वे चौराहे के उस पार आजाद मैदान में मीटिंग करने जा रही हैं और कोई भी ताकत उन्हें वापस नहीं लौटा सकती। अफसर ने अपनी घड़ी देखकर कहा कि वह उन्हें पांच मिनट का वक्त दे सकता है। इसके जवाब में औरतें सड़क पर धरना देकर बैठ गईं। कांग्रेस के अधिकारियों और जुलूस का नेतृत्व करनेवाली औरतो के बीच, जिनमें वह भी शामिल थी, कुछ सलाह-मशविरा हुआ और यह फैसला किया गया कि सिर्फ औरतें सत्याग्रह करेंगी और बाकी लोग शांतिपूर्वक वापस चले जाएंगे। सिर्फ वे दो लोग जो झुंडा लिए हुए थे और अकाली और पटान स्वयंसेवक बाकी रह गए और उन्होंने ज़मीन पर बंटी हुई औरतो की रक्षा करने के लिए उनके चारों ओर एक घेरा बना लिया।

यह कोई शाम के चार बजे की बात होगी और जब सूरज डूबा और सड़क की बत्तियां जली, उस वक्त भी औरतें वही बैठी थीं। आसपास की चाय की दूकानों के मालिक सत्याग्रहियों के लिए केतलियों में भर-भरकर चाय और

मिठाई के डिब्बे भेज रहे थे। अनवर को यह देखकर हसी आ गई कि कुछ औरतो ने घर से अपने बच्चों को मगवा लिया था और वे उन्हें वही सड़क पर बैठकर दूध पिला रही थी। लेकिन पुलिस अफसरों को इसमें खुश होने की कोई बात दिखाई नहीं दी क्योंकि उन्हें अभी तक खाना नसीब नहीं हुआ था।

जब घटाघर ने रात के बारह बजाए, उमें वक्त औरते बहुत जोश के साथ गाने गा रही थी। “ये लोग आठ घंटे से यहाँ बंठी है,” राबर्ट मिल्स ने कहा, “मैं सोचना न दुनिया को इसकी खबर कर देनी चाहिए।” और वह सड़क की बत्ती के नीचे बैठकर तार लिखने लगा। अनवर ने उसके कंधे पर से भाककर तार पड़ा और उसके पहले ही शब्द पढ़कर वह रोमांचित हो उठा :

रात के बारह बजे बम्बई की पांच हजार औरते पिछले आठ घंटों से सड़क पर धरना दिए बैठी हैं। वे न सिर्फ एक हजार पुलिसवालों का मुकाबला कर रही हैं बल्कि भारतीय जनता द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य की ताकत के अहिंसात्मक विरोध का प्रतीक हैं।...

बम्बई में सुबह हो रही थी लेकिन वे औरते अब भी वही थीं। चौदह घंटे तक वहाँ बैठे रहने के बाद भी उनके चेहरों पर न थकावट थी न निराशा। पुलिस के अफसरों की आखें रात-भर जागने की वजह से लाल हो रही थी और वे झुझला रहे थे। उनमें से एक अफसर ने एक बार फिर उन औरतों के पास जा कर उन्हें चेतावनी दी कि वे वहाँ से हट जाए नहीं तो... औरतो ने इसके जवाब में एक विद्रोही गीत गाना शुरू कर दिया :

नहीं रखनी, नहीं रखनी,  
सरकार जालिम नहीं रखनी।

सुबह आठ बजे जब अनवर दूसरा तार देने तारघर गया तो वह वहाँ से एक तार लाया भी जो पहले तार के जवाब में आया था। उस तार में लिखा था :

बधाई। बम्बई की औरतोवाली खबर ने सनसनी पैदा कर दी। सब अखबारों में पहले पृष्ठ पर छपा। अगर प्रदर्शन जारी रहे तो दो-दो घंटे बाद तार भेजना।

एक एंग्लो-इंडियन सार्जेंट, जो देखने से ही झुझलाया हुआ मालूम होता था, उनके पास आकर जोर से बोला, ‘तुम लोग यहाँ क्या कर रहे हो?’ जवाब में मिल्स ने उसे न्यूयार्क से आया हुआ वह तार थमा दिया जिसे देखकर

सार्जेंट का मुह फौरन उतर गया। वह उनके पास से चला गया और जाकर सड़क पर जमा होती हुई भीड़ पर चिल्लाने लगा। वह उनपर चिल्लाता, उन्हें गालिया देता और डंडे से उन्हें धमकाता पर भीड़ उसकी इन हरकतों पर हस देती जिससे उसे और गुस्सा आता लेकिन वह कुछ भी नहीं कर सकता था। मिल्स ने तार पर लिखा, “देवियो, दुनिया की नज़रें आपपर लगी हुई हैं” और एक स्वयंसेवक के हाथ वह तार सड़क पर बैठी हुई औरतों के पास भेज दिया। उन दोनों ने देखा कि आन की आन में खबर सारी औरतों के बीच पहुंच गई और उनके चेहरे खुशी और दृढ़ सकल्प से चमक उठे। अनवर ने कहा, “अब इसके सहारे वे कम से कम कुछ घंटे और जमी रहेगी।”

लेकिन इतने में पानी बरसना शुरू हो गया—मानसून का पहला छीटा और ऐसा प्रतीत हुआ कि पानी का छीटा पड़ते ही पुलिसवालों की पस्तहिम्मती और झुकलाहट दूर हो गई और उनमें नया जोश आ गया। अपनी बरसातिया पहने या छतरिया लगाए वे औरतों को मूसलाधार बारिश में भीगता हुआ देखते रहे। वे उम्मीद लगाए हुए थे कि किसी भी क्षण औरतें घबराकर वहां से भाग खड़ी होंगी। थोड़ी ही देर में सड़क पर कई-कई इंच पानी भर गया लेकिन औरतें उसी पानी में बैठी रही। सारी औरतें सिर से पाव तक भीग चुकी थी और उनकी गीली साड़िया बदन से चिपकी जा रही थी पर वे टस से मस न हुईं। अनवर इस बात पर बहुत लज्जित हुआ कि ऐसे क्षण में वह अगली पातवाली उस लड़की के सुडौल शरीर को प्रशंसा-भरी दृष्टि से देख रहा था।

पानी फट-फटकर बरसता रहा यहाँ तक कि बादलों का सारा पानी खत्म हो गया और पुलिसवालों का धैर्य भी टूट चुका था। मूसलाधार बारिश कम होती गई, अब सिर्फ फुहारे पड़ रही थी और जब शाम के चार बजे और आसमान पर से बादल छूट गए, उस समय भी औरतें सड़क पर बैठी थीं। “चौबीस घंटे!” मिल्स ने कहा, “इन लोगों ने तो रिकार्ड तोड़ दिया। मैं जाकर एक और तार दे दूँ। अनवर, तुम यही ठहरना और देखते रहना कि क्या होता है मैं एक घंटे में वापस आता हूँ।”

जब साढ़े चार बजे तो पुलिस के अफसर काबू से बाहर हो गए। उन्होंने आखिरी बार चेतावनी दी कि अगर औरतें पांच मिनट के अंदर वहाँ से नहीं हटी तो उन्हें सजबूर होकर लाठी-चार्ज करना पड़ेगा। सीटिया बजी और पुलिसवाले अपनी



अपनी जगहों पर लाठियां संभालकर खड़े हो गए। वे सड़क पर अपनी लाठियां पटक-पटककर देख रहे थे कि वे कितनी मजबूत हैं। अकाली और पठान स्वयं-सेवकों ने औरतो के चारों ओर घेरा बना लिया। ध्वजावाहकों ने फिर आगे बढ़कर झंडा फहरा दिया, जो बारिश से बचाने के लिए लपेट लिया गया था। पांच मिनट बीतते ही 'महात्मा गांधी की जय।' के गूँजते हुए नारे ने निस्तब्धता को काव की दीवार की तरह भग कर दिया।

और फिर लाठियां बरसने लगीं।

अनवर ने लाठी-चार्जों के बारे में सुना और पढ़ा था लेकिन उसके लिए वे दूसरी घटनाओं की तरह की ही एक घटना थे—उन्हे वह बुरी जरूर समझता था लेकिन उनके साथ उसका कोई संबंध नहीं था। लेकिन इस वक्त उसने जो कुछ अपनी आंखों से देखा उसके बारे में वह यह नहीं कह सकता था कि उसके साथ उसका कोई संबंध नहीं है। लाठी का हर बार किसीके सिर पर या सीने पर या पीठ पर या टांग पर पड़ता था और यह कोई इमान होता था जिसकी मांसपेशियां संवेदनशील होती थीं, जिसकी हड्डियां टूट सकती थीं, जिसका खून बह सकता था। उनमें से हर एक किसीका बेटा या भाई, किसीका दोस्त या साथी, किसीका पति या प्रेमी था। लाठी के हर बार के पीछे एक कहानी थी—मुमीबते भेलने और वीरता के साथ लड़ने की कहानी। ये स्वयंसेवक—ये अकाली और पठान, गुजराती और मराठे—आगिर किस चीज के बने थे कि वे बेरहमी से चलाई जानेवाली लाठियों की मार खाते रहते थे पर अपनी जगह से टस से मस नहीं होते थे, वे ज़रा भी नहीं हिचकते थे, वे अपना मुंह भी नहीं फेरते थे। वे सीधे-सादे मामूली लोग थे—क्लर्क और विद्यार्थी और दूकानदार और मिल-मजदूर—लेकिन वे साबित कर रहे थे कि वे भी हीरो बन सकते हैं।...

बीसियों लोग घायल और बेहोश होकर गिर रहे थे और उन्हें फौरन स्ट्रेचरों पर उठाकर पास ही खड़ी हुई एम्बुलेसों पर पहुंचा दिया जाता था। यह संवमुच की लड़ाई थी—लेकिन अजीब लड़ाई थी जिसमें मारने का सारा काम एक पक्ष करता था और दूसरा पक्ष धैर्यपूर्वक सब कुछ बर्दाश्त करता जाता था।



अनवर ने देखा कि एक तगड़े पठान के सीने पर लगातार लाठियां पड़ रही थी और हर बार पड़ते ही वह जोर से नारा लगाता था, यहा तक कि पुलिसवाले ने झुकलाकर उसकी खोपड़ी पर वार किया। पठान चक्कर खाकर गिर पड़ा, उसके सिर से खून बह रहा था। पर उसके गिरते ही उसकी जगह एक सिख ने ले ली और इस बार पुलिसवाले ने छूटते ही उसके सिर पर वार किया। एक गुजराती वालटियर स्ट्रेचर लेकर उसकी तरफ लपका लेकिन पुलिसवाले के सिर पर तो खून सवार था, उसने एक लाठी उसके भी रसीद कर दी। कुछ देर बाद जब दूसरे स्ट्रेचर पर उन्हे वहा से ले जाया गया तो अनवर ने देखा कि जहा वे तीनों गिरे थे वहा पर खून का एक बहुत बड़ा धब्बा था।\*\*\*

स्वयसेवको की सख्या कम होती गई और जो थोड़े-बहुत बच गए थे उन्हे पुलिस कभी भी मार गिरा सकती थी। ऐसी दशा मे औरतो ने आगे बढ़कर उन नौजवान लडको की रक्षा करने के लिए उनके चारो ओर घेरा डाल लिया। अघेड उम्र की एक गुजराती औरत खून देखकर बिलकुल पागल हो उठी थी और वह लगातार चीख-चीखकर यही कह रही थी, “मारो, और मारो, मुझे मार डालो।” एक क्षण के लिए तो पुलिसवालो ने लज्जित होकर अपने हाथ रोक लिए लेकिन जब उन्होंने देखा कि औरते दृढ सकल्प के साथ मैदान की ओर बढ़ रही है तो वे उनपर बेरहमी से दूट पडे। वह औरत जो पहले चिल्ला रही थी, उसकी टांग पर एक लाठी पड़ी और वह ट्राम की पटरी पर गिर पड़ी, लेकिन वह अब भी यही चिल्ला रही थी, “मारो, मार डालो मुझे।” इतने मे कुछ ज्यादा जोशीली लडकिया और वे दोनो स्वयसेवक जो झंडा उठाए हुए थे, पुलिस का घेरा तोडकर मैदान मे जा पहुंचे थे। अनवर लपककर वहा पहुंचा और उसने देखा कि औरते झंडे के चारो ओर जमीन पर बैठी थी और वह दुबली-पतली लडकी उनके सामने भाषण दे रही थी। इस समय वह पहले से भी ज्यादा विद्रोह की भावना का प्रतीक मालूम हो रही थी। तो आखिरकार उन लोगो ने पुलिस को नीचा दिखाकर अपनी मीटिंग कर ही ली थी।

यह देखकर पुलिस पागल हो उठी और भागकर वहा जा पहुंची और उन दोनो स्वयसेवको पर दूट पड़ी जो झंडा लिए हुए थे। वह पठान और अकाली बहादुरी से अपनी जगह पर डटे रहे और मजबूती से झंडा ऊंचा किए रहे, लेकिन पुलिस ने भी बड़ी चालाकी से पहले तो उनकी टांगो पर लाठिया मारी

और जब उन्होंने गिर पड़ने के बाद भी झुके को नीचा न होने दिया तो पुलिस-वालों ने उनके हाथों पर लाठिया मारनी शुरू की। इतने में हड्डी चटकने की आवाज़ आई। लाठी ने किसीकी कलाई तोड़ दी थी। झुगा डगमगाकर ज़मीन की तरफ गिरने लगा। गोरे सार्जेंट के चेहरे पर पैशान्विक मुस्कराहट खेलने लगी।

लेकिन झुके को गिरने नहीं दिया गया। जो लड़की भाषण दे रही थी उसने लपककर झुके को थाम लिया और उसे इतनी मजबूती से कसकर पकड़ लिया कि उसके छोटे-छोटे नाज़ुक हाथों की उंगलियों के जोड़ सफेद पड़ गए। वह पुलिसवालों के सामने सीना ताने खड़ी थी। यह सब कुछ पलक मारते में हो गया। एक सिपाही ने अपनी लाठी उठाकर हवा में ही रोक ली। एक लड़की पर वार करने का उसे साहस न हुआ। एक गोरे सार्जेंट ने गरजकर कहा, “झुगा छोड़ दो!” लेकिन जब इसके जवाब में लड़की ने ‘महात्मा गांधी की जय!’ का नारा लगाया तो वह सार्जेंट आपे से बाहर हो गया और पुलिस-वालों की लाठी छीनकर उसकी तरफ झपटा, उसका चेहरा क्रोध के मारे विकृत हो गया था। अनवर को कुछ हो गया। एक क्षण में उसने अपनी स्वाभाविक भीरुता, अहिंसा में अपने बौद्धिक विश्वास, सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के भय, और आत्मसंयम को इस तरह त्याग दिया जैसे साप अपनी केंचुल उतार देता है। उसके दिमाग पर बस एक ही विचार छाया हुआ था : इस लड़की को कोई हाथ न लगाने पाए। क्योंकि उस क्षण वह उसकी नज़रों में केवल एक लड़की नहीं थी बल्कि झुके की इज्जत थी, भारत की आत्मा थी। उसकी आंखों के आगे लाल-पीले धब्बे नाचने लगे और दीवानों की तरह वह सार्जेंट पर टूट पड़ा।

उसकी पीठ पर लाठी का जो पहला वार पड़ा वह सबसे खतरनाक था। उसके सारे शरीर में पीड़ा की लहरे दौड़ गईं और जब उसके कंधे पर दूसरा वार पड़ा तो उसकी आंखों में आसू छनक आए। लेकिन उसने अपने दांत भीचकर आसू रोक लिए। ‘नहीं, हरगिज़ नहीं, मैं इन लोगों के सामने और उसके सामने बुज़दिली का सबूत नहीं दूंगा। मैं इन सार्जेंटों और पुलिसवालों को अपना मज़ाक नहीं उड़ाने दूंगा।’ उसने अपने दांत अपने होठों में गड़ा लिए और जब उसकी पीठ पर, टांगों पर और बांहों पर लगातार लाठिया पड़ने लगी तो उसने स्वयं अपने

शक्त का स्वाद अनुभव किया। लेकिन उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसे अब उतनी पीडा नहीं हो रही थी। 'ये लोग अगर मुझे मारते-मारते अपनी लाठिया भी तोड़ दे तो भी मैं पीछे नहीं हटूंगा। मारने दो! मारने दो!' इतने में उसने देखा कि वही सार्जेंट उसकी तरफ वही लाठी लिए हुए झपटा चला आ रहा है जिससे उसने उस लड़की को मारने की कोशिश की थी और जैसे ही लाठी हवा में घूमी उसे एक लड़की के चीखने की आवाज़ सुनाई दी और उसने जल्दी से सिर घुमाकर देखा तो उसे लड़की की आँखों में भय दिखाई दिया, लेकिन वह अभी ठीक से उसे देख भी न पाया था कि उसे ऐसा महसूस हुआ कि ज़मीन आकर उसके माथे से टकराई और उसकी आँखों के आगे सितारे नाचने लगे और फिर उसकी आँखों में अंधेरा छा गया।





## मूखा शेर

हलकी-हलकी पीडा की बेहोशी में अनवर ने अधखुली आंखों से उसे देखा। चार दिन तक अस्पताल के दृश्य देखने, अस्पताल की आवाजें सुनने और अस्पताल की खुशबूएं सूघने के बाद—वही सफेद दीवारे, पलंगों की कभी समाप्त न होनेवाली दुहरी कतारें, घायलों की आहें और कराहें और हर तरफ फिन यल की तेज खुशबू—इन तमाम चीजों के दरमियान उसे बस एक नज़र देख-भर लेना अनवर के लिए अक्सीर साबित हुआ।

अनवर को बेहोशी की हालत में लोगों ने स्ट्रेचर पर काग्रेस अस्पताल पहुंचा दिया था। लाठी-चार्ज के बाद उसे इसी मैदान में उमरी हालत में पड़ा पाया गया था। जब उसकी बेहोशी टूटी उम वक्त तक उसकी खोपड़ी के जख्म में टाके लग चुके थे और पट्टी बांधी जा चुकी थी और यह समझने में उसे कुछ देर लगी कि उसके सिर में जो सख्त दर्द हो रहा था उसका पिछली शाम की घटनाओं के साथ भी कुछ संबंध था। फिर भी उमकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि हर बार जब वह गहरी सांस लेता था तो उसके सीने में दर्द क्यों होता था। उसने नौजवान खट्टरपोश डाक्टर से जब यह बात कही तो उसने बताया कि शायद बेहोश हो जाने के बाद उसे एक लाठी और जड़ दी गई होगी। लेकिन इस समय उसे आता देखकर उसकी सारी पीडा दूर हो गई।

चोट की पीडा से ज्यादा वह अकेलेपन की पीडा अनुभव कर रहा था—खचाखच भरे हुए अस्पताल का वह अजीब अकेलापन जहां ज़रादातर बीमार या तो बेहोश थे या उन्हें इतनी सख्त तकलीफ थी कि वे एक-दूसरे से बातें भी नहीं कर सकते थे। जैसे ही वे चलने-फिरने और बातें करने लायक होते थे वे 'मोर्चों' पर से धायल होकर आनेवाले दूसरे लोगों के लिए जगह खाली करके अस्पताल से चले जाते थे। लड़ाई अब भी पूरे जोर पर जारी थी। अनवर के पलंग की दाहिनी तरफ वाले पलंग पर एक बहुत दुबला-पतला गुजराती लड़का था



जिसका रंग बिलकुल पीला पड़ चुका था। जब स्वयंसेवक उसे उठाकर लाए उस वक्त तक उसके सिर की चोट से इतना खून बह चुका था कि डाक्टरों ने उसके बचने की उम्मीद ही छोड़ दी थी। लेकिन इच्छाशक्ति का चमत्कार समझिए कि वह बच गया, हूँलाकि उसका चेहरा बिलकुल मुर्दों जैसा हो गया था और अस्पताल आने के बाद से उसने अभी तक आँखें भी नहीं खोली थी। अनवर के पलग की दूसरी तरफ एक लम्बा-तगड़ा काली दाढ़ीवाला सिख था और उसे देखकर अनवर को फिर रतन की याद आई जिसपर लाहौर में मुकदमा चल रहा था। अनवर का जी चाहता था कि वह उससे बातें करे लेकिन उस सिख के शरीर के हर हिस्से पर चोट लगी थी और उसे बहुत तेज़ बुखार था और वह लगातार बेहोशी में बड़बड़ाता रहता था। वह गालियाँ देता, नारे लगाता और कभी-कभी पजार्बी में चिल्लाने लगता और अनवर उसकी बातों का कुछ भी मतलब नहीं समझ पाता। 'मारो, और मारो, सुअर के बच्चों।' वह कभी-कभी बुड़बुड़ाता और कभी चिल्ला पड़ता, 'सुअरों, मैं तुम्हारे सिर तोड़ देता लेकिन मैं महात्माजी को वचन दे चुका हूँ, मैं वचन दे चुका हूँ कि मैं पलटकर नहीं मारूँगा, मैं वचन दे चुका हूँ' उसकी आवाज़ धीरे-धीरे बिलकुल डूब जाती और अनवर अपनी पीड़ा भूलकर यह सोचने लगता कि सिखों और पठानों जैसे जोशीले और लडाकू लोगों के लिए यह कितना मुश्किल होता होगा कि मारते-मारते उनकी हड्डी-पसली एक कर दी जाए फिर भी वे अहिंसा पर डटे रहे, जबकि खुद उसका जैसा स्वभावतः दबू आदमी भी पलटकर मारने से बाज़ नहीं रह सका था।

मुलाकात के वक्त राबर्ट मिल्स उसे देखने आया था—बेचारा अनवर की वजह से बहुत परेशान नज़र आता था, वह यह महसूस करता था कि पुलिसवालों ने अनवर को जो चोट पहुँचाई थी उसके लिए ज़ाती तौर पर वह ज़िम्मेदार था। वह ख़बर लाया था कि विलायती कपड़े के गोदाम पर धरना देने के लिए स्वयंसेवकों की एक टोली को ले जाते हुए उस्मान गिरफ्तार कर लिया गया था। अकेले रह जाने की वजह से अब मिल्स को इस अनोखी लड़ाई के विभिन्न 'मोर्चों' की ख़बरें जमा करने के लिए ज्यादा दौड़-भाग करनी पड़ती थी, और यह लड़ाई भी रोज़ ज़्यादा जोर पकड़ती जा रही थी। अनवर मिल्स के काम का महत्त्व समझता था और इसलिए उसने उससे मना कर दिया कि वह बार-बार

अस्पताल आने की चिन्ता न किया करे।

अनवर इसी तरह अस्पताल में लेटा-लेटा छत की खपरैले गिनता रहता था या खिडकी में से सूरज और बादलों की आखमिचौनी देखता रहता था। वह बिल्कुल अकेला था और रात के वक्त चोरो की तरह सलमा की याद उसके दिल में आती थी, उसे तसल्ली देने के लिए नहीं बल्कि उसे सताने के लिए। कभी-कभी तो उसे लगता था कि उसके हृदय का गीतापन उसके सिर के धाव या उसके सीने की छिपी हुई चोट से भी ज्यादा कष्टदायक था।

इतने में वह आई। केसरी रंग की गोट लगी हुई खदर की सफेद साड़ी और हरा ब्लाउज पहने हुए वह फूल की तरह खिली हुई थी। अनवर को मन ही मन उस आदमी से ईर्ष्या हो रही थी जिससे मिलने वह आई थी, लेकिन उसे यह देखकर ताज्जुब हुआ कि वह उसे ही खोज रही थी। अनवर को विश्वास नहीं हुआ।

“हेनो,” उसने खिली हुई मुस्कराहट के साथ अनवर का स्वागत किया मानो वे बरसों से एक-दूसरे को जानते हो, “मैं आपका वृत्तिया अदा करने आई हूँ। आप न होते तो शायद मेरी जान न बचती।”

अनवर खुशी के मारे बिल्कुल दीवाना हो गया। उसने दबी ज़बान में कुछ इस तरह की बात कही कि यह तो उसका फर्ज था।

“अच्छा, अब आप कैसे हैं? चोट तो बहुत बुरी आई थी लेकिन अब तो आप ठीक दिखाई देते हैं।” और यह कहकर उसने उसके सिर पर बधी हुई पट्टी पर इतनी नरमी से प्यार के साथ हाथ फेरा कि अनवर को न जाने क्यों दर्द कम मालूम होने लगा। वह उसके पलंग की पट्टी पर बैठ गई और उसके बालों की खुशबू अनवर को मदहोश करने लगी।

“किस बात पर मुस्करा रहे हैं आप?”

“कुछ नहीं, बस यूँ ही गालिब का एक शेर याद आ गया था।” वह उसके सामने वह शेर पढ़ने से भिन्नक रहा था।

“गालिब?”

“हा, एक शायर थे जो मुझे बहुत पसन्द हैं।”

“क्या कहा है उन्होंने?”

उसके इस बेबाक दोस्ताना रवैये को देखकर अनवर की सारी भिन्नक दूर

हो गई और उसने शेर पढ़कर सुनाया—

उनके देखे से जो आ जाती है मुह पर रौनक,  
वह समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।

और फिर इसकी व्याख्या करते हुए उसने कहा, “इसका मतलब है कि तुम्हें देखकर कोई भी बीमार अपने-आपको चगा महसूस करेगा।”

अनवर का खयाल था कि इस तरह की खुली तारीफ पर वह भेंप जाएगी, लेकिन वह हम दी।

“मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि आप ऐसा समझते हैं,” उसने कहा।  
“मैं आपको अपने घर ले जाने के लिए आई थी।”

अनवर उस बड़ी-सी पीली मोटर में इस अजनबी लड़की की बगल में बैठा उसे देख रहा था जिसने बिना किसी तकल्लुफ के उससे दोस्ती कर ली थी। लड़की खुद मोटर चला रही थी। जुलूस में तो वह भंडे की तरह ही एक प्रतीक थी, अब जाकर अनवर ने पहली बार उसे एक व्यक्ति के रूप में देखा था। उसका कद छोटा और शरीर दुबला-पतला था। उसने अपने काले चमकदार बालों को बीच से माग निकालकर पीछे कसकर एक जूड़ा बांध रखा था जिसमें उसने चमेली के फूलों की वेणी लगा रखी थी। उसकी नाक पर बच्चों की तरह छोटी-छोटी लाल चित्तिया पड़ी हुई थी और जब भी वह मुस्कराती थी तो उसके दोनों गालों पर छोटे-छोटे गढ़े पड़ जाते थे। बम्बई में हर आदमी की तरह उसका रंग भी कुछ पीला और फीका था और अनवर को यह देखकर बहुत खुशी हुई कि वह पाउडर, सुर्खी या लिपस्टिक नहीं इस्तेमाल करती थी। वह किसी भी एतबार से बहुत सुन्दर नहीं थी और न ही उसमें कामुकता का वह आकर्षण था जिसमें सलमा नहाई रहती थी। फिर भी उसके निर्मल, दुबले-पतले, यौवन-मय शरीर में, उसकी ऊपर की उठी हुई नाक में, उसके बात करने के उल्लास-मय, निःसंकोच और सीधे-सादे ढंग में और जिस आत्मविश्वास के साथ वह मोटर चला रही थी उसमें कोई बात ऐसी जरूर थी जिसकी वजह से उसका व्यक्तित्व हृदय को बरबस अपनी ओर खींच लेता था।

“क्या आप जानती हैं कि मुझे आपका नाम तक नहीं मालूम?” अनवर ने



कहा । लडकी उस समय बड़ी होशियारी से क्राफर्ड मार्केट के भीड़-भाड़वाले इलाके से मोटर निकाल रही थी ।

“हा, मैं जानती हूँ,” उसने उत्तर दिया और उसके गालों में गढ़े पड़ गए और उसके चेहरे पर शरारत-भरी मुस्कराहट दौड़ गई । “नाम तो मैं भी नहीं जानती आपका । चलिए दोनों बराबर हो गए ।”

फिर मजबूती से स्टियरिंग व्हील सभालकर उसने मुड़कर अनवर की तरफ देखा और मोतियों की तरह चमकते हुए छोटे-छोटे दांतों की छटा दिखाते हुए बोली, ‘मेरा नाम आशा है । आशा शाह । और आपका ?’

“अनवरअली ।”

उसका हाथ पहिये पर ज़रा-सा डगमगा गया और अनवर को उसके स्वर में विस्मय के साथ ही कुछ निराशा का भी आभास हुआ, जब उसने पूछा, “तो आप मुसलमान हैं ?”

इसमें बुरा मानने की तो कोई बात नहीं थी फिर भी अनवर ने कुछ चिढ़कर कहा, “जी हा, मैं मुसलमान हूँ । आपको कोई एतराज है ?”

एक क्षण के लिए विचलित होने के बाद वह फिर सभनकर मोटर चला रही थी और चौराहे पर बड़े इतमीनान के साथ मोटर घुमाते हुए उसने हमकर कहा, “जी नहीं, मुझे क्यों एतराज होगा ? मेरे कई बहुत अच्छे दोस्त मुसलमान हैं । मुझे कुछ ताज्जुब जरूर हुआ क्योंकि आप देखने में मुसलमान लगते नहीं ।”

अनवर की समझ में नहीं आ रहा था कि यह कोई तारीफ की बात है या नहीं, इसलिए उसने बातचीत का रुख बदलते हुए पूछा, “हम लोग कहा जा रहे हैं ?” मोटर फोर्ट के इलाके में बाज़ार की तरफ जा रही थी ।

“पहले तो मैं तुम्हें डाक्टर के पास ले जाऊँगी,” आशा ने सीधा-सादा जवाब दिया । काग्रेस अस्पताल के डाक्टर अभी नये-नये हैं और उन्हें बहुत तजुर्बा भी नहीं है । फिर उन्हें इतने बहुत-से लोगों की देखभाल करनी पड़ती है कि वे किसीका खास ध्यान नहीं रख सकते । उन लोगों ने तुम्हारे घाव को तो ठीक-ठाक कर दिया है पर हाउस सर्जन ने मुझे बताया कि उसे तुम्हारे सीने की चोट के बारे में इतमीनान नहीं है इसलिए उसने मुझसे कहा था कि मैं किसी स्पेशलिस्ट को दिखा लूँ ।”

वह स्पेशलिस्ट एक बहुत ही खुशमिजाज बूढ़े पारसी डाक्टर थे । अनवर



ने देखा कि वे भी खदर के कपड़े पहने थे। डाक्टर ने अनवर का सीना अच्छी तरह ठोक-बजाकर देखा, पसलियों पर आला रखकर बड़े गौर से उसके दिल की धड़कन सुनी और सहसा उनके चेहरे पर विता के चिह्न प्रकट हुए।

“खासी बुरी तरह पिटाई हुई है तुम्हारी,” उन्होंने जाच करने के बाद कहा, “लेकिन फिर भी तुम्हारे सीने की जैसी बुरी हालत है वह पिटाई की वजह से नहीं हो सकती।” और फिर अचानक उन्होंने पूछा, “तुम्हारे बाप को तो सीने या फेफड़ों की कोई बीमारी नहीं थी—ब्राकाइटिस, दमा, निमोनिया, टी० बी० वगैरह।

जहां तक अनवर को याद था उसने अपनी जिंदगी में कभी अपने अब्बा की किसी बीमारी का जिक्र नहीं सुना था। साठ बरस की उम्र में भी वे सीधे तनकर चलते थे और उनके गालों पर अभी भी लाली थी जो अच्छी तन्दुरुस्ती की निशानी थी। उनका कहना था कि बचपन में अच्छा घी खाने और खालिस दूध पीने से ही उनकी सेहत इतनी अच्छी थी। अनवर ने डाक्टर साहब को अपने अब्बा की तन्दुरुस्ती के बारे में बताया और बूढ़े डाक्टर साहब को इस बात पर सचमुच बहुत ताज्जुब हुआ। फिर उन्होंने अनवर से उसकी मा के बारे में पूछा और अनवर को यह बताना पड़ा कि उसे अपनी मा के बारे में कुछ भी मालूम नहीं था, क्योंकि वे तो उसके पैदा होते ही मर गई थी।

“मुमकिन है उन्हींके खून का असर हो,” डाक्टर साहब ने सोचते हुए कहा, “हालांकि आम तौर पर वह बाप के ही खून का असर होता है।” यह कहकर वे मेज पर बैठ गए और अनवर के लिए ताकत की कुछ दवाएँ लिखने लगे। “इनसे तुम हफ्ते-भर में ठीक हो जाओगे लेकिन तुम्हें बहुत खयाल रखना चाहिए। तुम्हारा दिल और सीना दोनों बहुत कमजोर हैं। सर्दी से बचो, अच्छा और ताकत देनेवाला खाना खाओ—अंडे, दूध और हरी सब्जियाँ—और सुबह उठकर रोज़ खुली हवा में गहरी सास लिया करो। अच्छा, यह तो बताओ कि आम तौर पर तुम्हारा इलाज कौन डाक्टर करता है? क्या तुम्हारे घर का कोई बंधा हुआ डाक्टर है?”

अनवर ने डाक्टर असारी का नाम बताया।

“ओह, असारी! बहुत ही उम्दा डाक्टर है और आदमी भी बहुत अच्छे हैं। मेरे साथ एडिनबरा में पढ़ते थे। उनसे अच्छा डाक्टर मिलना मुश्किल है।

लेकिन जब तक वे जेल में हैं तब तक अपनी सेहत का खयाल रखना।”

अनवर ने हिम्मत करके यह भी बताया कि वह खुद भी जेल में जाना चाहता था पर डाक्टर उसे इस बात की इजाजत देने को बिलकुल तैयार नहीं थे। “बेकार की बातें न करो,” डाक्टर ने सहमा बिगड़कर कहा, ‘अमारी भी तुम्हें कभी इस बात की इजाजत नहीं देते।’ फिर वे आशा को सम्बोधित करके बोले, “आशा, अपने दोस्त का खयाल रखना और उसे किसी हंगामे में न फँसने देना। अच्छा, अब तुम लोग चलो। बाहर बहुत-से मरीज इंतज़ार कर रहे हैं। और अपने पापा और मा से मेरा सलाम कहना न भूलना।”

“डाक्टर जमशेदजी बहुत ही प्यारे आदमी हैं, है न ?” आशा ने मोटर में बैठते हुए कहा।

“हां, ठीक ही हैं,” अनवर ने कुछ विडकर कहा। “लेकिन मैं इसे पसंद नहीं करता कि मुझे बीमार समझा जाए।” फिर सहमा उसे यह आभास हुआ कि आशा ने उसे इतने बड़े डाक्टर के पास ले जाकर उसपर जो उपकार किया था उसका वह आभार नहीं मान रहा है, इसलिए उनने कहा, “मेरी बात का बुरा न मानना। जब से डाक्टर अमारी ने मुझे जेल जाने को मना किया है तब से मुझे डाक्टरों से चिढ़ हो गई है।”

“मैं अपनी मा को ले लूँ, तुम्हें कोई जल्दी तो नहीं है ?” आशा ने मोटर पीछे करते हुए पूछा। “जब से उन्होंने सुना है कि तुमने कस तरह मुझे पुलिस की लाठियों से बचाया है उस दिन से वे तुमसे मिलने को बहुत बेचैन हैं। असल में उन्होंने ही मुझसे कहा था कि मैं तुम्हें घर ले आऊँ। तुम्हें मेरी मा बहुत अच्छी लगेगी।”

अनवर ने हामी भरी।

“हां, तुम्हें मेरी मा तो अच्छी लगेगी, लेकिन शायद पापा अच्छे न लगे।” आशा के स्वर में कुछ खिमियाहट थी।

अनवर ने पूछा कि उसके पापा में ऐसी क्या बात थी कि वे अच्छे न लगे।

“मालूम नहीं,” आशा ने भीड़ में से मोटर निकालते हुए नज़रें घुमाए बिना

ही उत्तर दिया, “कह नहीं सकती। एक बात तो यह कि वे कांग्रेसी नहीं हैं और इस आंदोलन से खुश नहीं है। दूसरी बात यह कि वे पूजीपति हैं और मेरा खयाल है कि तुम पूजीवाद को पसंद नहीं करते, मैं भी नहीं करती। खैर छोड़ो, कुछ और बात करे। मुझे अपने बारे में बताओ।”

अनवर ने कहा कि वह अपने बारे में ज्यादा तो क्या बता सकता है, अलावा इसके कि वह अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में पढ़ता था और उसे एक मीटिंग में आजादी की कसम पढ़कर सुनाने के जुर्म में यूनिवर्सिटी से निकाल दिया गया था और फिर कुछ दिन बीमार रहने के बाद वह अमरीकी पत्रकार राबर्ट मिल्स के इंटरप्रेटर की हैसियत से काम कर रहा था। फिर अनवर ने आशा से उसके बारे में पूछा। उसने बताया कि वह बी० ए० के पहले वर्ष में पढ़ती थी। जब गांधीजी ने आंदोलन के लिए सारे देश को ललकारा तो वह भी पढाई छोड़कर स्वयंसेवक बन गई। “हजारों लड़कियाँ स्वयंसेवकों में भरती हुई हैं लेकिन उनमें सबसे बहादुर सफिया सोमजी हैं जो आजकल जेल में हैं। जैसा कि तुम्हें उसके नाम से ही पता चलता होगा, वह मुसलमान हैं। वह मेरी बहुत गहरी दोस्त हैं।” अनवर ने देखा कि आशा ने आखिरी बात बहुत जोर देकर कही थी।

मोटर भिंडी बाजार की मुस्लिम बस्ती से निकलकर भायखला का पुल पार करके लालबाग की तरफ चली जा रही थी। उनके सामने मिलो की ऊँची-ऊँची चिमनियाँ सिर ऊँचा किए खड़ी थी और उनसे धुआँ निकलकर आसमान पर फैल रहा था। सड़क पहले से बहुत खराब थी, पटरियाँ भी बहुत पतली और गढ़ा थी और लोग भी मैले-कुचैले दिखाई पड़ते थे। वे छ-सात मजिली इमारतों के बीच से होकर गुजर रहे थे जिनमें लोग शहद की मक्खी के छतों की तरह छोटी-छोटी खोलियों में रहते थे। हवा में पेट्रोल, चिमनियों के धुएँ, नारियल के तेल, सड़ती हुई खुली नालियों और पसीने की मिली-जुली गंध बसी हुई थी। आशा ने अपना सेंट से महकता हुआ रुमाल निकालकर नाक पर रख लिया। फिर मोटर बाईं ओर को मुड़ी और रेल का पुल पार करके एक पतली-सी गली में घुसी और रास्ते के बीचोंबीच पड़े हुए कचरे के ढेर के पास जाकर रुक गई। सड़क की पटरी पर, जो पान की पीक और केले के छिलकों से बेहद गंदी थी, बहुत-से बेघरवार लोग सो रहे थे। यहाँ की इमारतें तो बड़ी



सड़क पर बनी हुई उन चालो की तरह ऊची भी नहीं थी, जिनके बीच से होकर वे अभी आए थे। दुमजिले मकान, जो पुराने होकर विलकुल गिरने को हो रहे थे और जिनपर बनने के बाद से कभी पुताई नहीं हुई थी, इस तरह एक-दूसरे से सटे हुए खड़े थे जैसे शराबी एक-दूसरे का सहारा लेकर खड़े हो। और इन मकानों के चारों ओर गरीबों के और भी गरीब रिश्तेदारों की तरह टीन की छतोंवाली टूटी-फूटी भोपड़ियों का एक झुंड था, जो चीड़ के पुराने बक्सों की लकड़ी, टूटे-फूटे टीन के टुकड़ों और टाट के चीथड़ों से बनाई गई थी। उनमें एक भोपड़ी ऐसी भी थी जो एक छोटे-से तम्बू की शक्ल की थी और जिसकी छत किसी सिनेमा के पुराने बोर्ड के कपड़े से बनाई गई थी; कपड़े पर तस्वीर के रंग बहुत कुछ धूप से उड़ गए थे पर उसमें मशहूर 'दिल की रानी' की शक्ल अब भी साफ पहचानी जाती थी। बहुत-से दुबले-पतले, सूखी टांगोवाले, नगे बच्चे सड़क पर और नालियों में खेल रहे थे और सड़क के नल के पास औरतों की भीड़ जमा थी क्योंकि उस पूरे इलाके में यही एक नल था और उसमें भी पानी बहुत पतली धार से आता था।

“ये है वे गद्दी बस्तिया जिनपर हमारे शहर को इतना नाज है,” आशा ने अनवर को चारों ओर नज़र डालते हुए देखकर बड़ी व्यग-भरी कटुता से कहा।

“हां, लेकिन हम लोग तो तुम्हारी मा को लेने जा रहे थे।”

“चलेगे, लेकिन मैंने तुम्हें यह दिखाने के लिए ही मोटर रोक ली थी।” यह कहकर उसने मोटर फिर स्टार्ट कर दी और अनवर को यह देखकर बहुत ताज्जुब हुआ कि अब मोटर पहले से भी पतली और गद्दी गली में घूम रही थी जो रेल की पटरी के किनारे ताड़ के पेड़ों के झुरमुट में जाकर खरम हो गई थी। इतने में अचानक बारिश शुरू हो गई और उन्हें मोटर की खिड़कियों के शीशे चढ़ा लेने पड़े। अनवर की समझ में अब भी यह नहीं आ रहा था कि वे आशा की मा को लेने ऐसी गद्दी जगह क्यों आए थे और उसने यह बात आशा से कह भी दी। जवाब में आशा ने सिर्फ एक भोपड़ी की तरफ इशारा किया जो फूस के छप्परवाली दूसरी भोपड़ियों जैसी ही लगती थी। अनवर को भीगे हुए शीशे में से धुधला-धुधला दिखाई दिया कि उस भोपड़ी के सामने एक भीड़ जमा है। आशा ने बटन दबाया और सामने का शीशा साफ करनेवाला पुर्जा



चलने लगा । अनवर ने देखा कि वह भोपडी असल में ताड़ी की दूकान थी और उसके सामने मूसलाधार बारिश में एक दुबली-पतली औरत सफेद साड़ी पहने खड़ी भीग रही थी, वह हाथ जोड़कर अदर जानेवाले ग्राहको से, जो देखने में हट्टे-कट्टे प्रहलवान लगते थे, मिन्नते कर रही थी कि वे दूकान में न जाए ।

“तो ये तुम्हारी मा है ?” अनवर यह तो जानता था कि बड़े-बड़े होटलो और विलायती शराब की दूकानों के सामने औरतें धरना देती थी लेकिन उसने कभी सोचा भी नहीं था कि आशा की मा जैसी अमीर घराने की बूढ़ी औरत शराबबंदी के बारे में गांधीजी के सदेश का प्रचार करने के लिए इतनी गंदी बस्ती में आने की हिम्मत करेगी ।

“नौजवान लडकिया शहर के ऐसे हिस्सों में आने से घबराती थी, इसलिए इन गन्दी बस्तियों में धरना देने का काम मेरी मा और दूसरी बूढ़ी औरतों ने सभाल लिया । मेरी मा....”

बाकी वाक्य पास से गुजरती हुई बिजली की रेल के शोर में डूब गया ।

“क्या कह रही थी तुम ?” अनवर ने ऊचे स्वर में पूछा ।

रेलगाड़ी का शोर खत्म हो गया । “मैं यह कह रही थी कि मेरी मा एक खास वजह से शराब की दूकानों पर ही धरना देती है । जब तुम मेरे पापा से मिलोगे तो तुम्हें इसकी वजह समझ में आ जाएगी ।”

अनवर अपने दिमाग में एक तस्वीर बनाने लगा जिसमें एक पतिव्रता स्त्री और उसके शराबी पति के बीच हरदम झगडा रहता था और इसलिए वह चुप हो गया । इतने में बारिश और तेज हो गई और उसने देखा कि आशा की बूढ़ी मा की खदर की साड़ी बिल्कुल भीग चुकी थी, लेकिन उन्होंने ज्यादातर ग्राहको को लज्जित करके घर वापस भेज दिया था । सिर्फ एक तगडा-सा आदमी, जो पहले से ही नशे में मालूम होता था और जिसके पैर लडखडा रहे थे, बड़ी ढिठाई के साथ अब तक वहां डटा हुआ था ।

“तुम्हारे खयाल में क्या यह बेहतर न होगा कि अब हम लोग उन्हें वहां से ले आए ? बिल्कुल भीग गई है । मेरा तो खयाल है कि वे आज-भर के लिए काफी लोगों को इस पाप के गढे में गिरने से बचा चुकी है ।”

आशा ने अपनी घड़ी देखी । “पाच मिनट बाद दूकान बंद हो जाएगी ।

बारिश तो क्या अगर बर्फ भी गिरने लगे तो भी वे दूकान बंद होने से पहले वहां से नहीं हटेगी। मैंने तो उनसे इस मामले में बहस करना ही छोड़ दिया है।”

आखिरकार ताड़ी की दूकान बंद होने का वक्त हो गया और अनवर ने यह अनहोनी बात देखी कि ताड़ी बेचनेवाले ने उस अनास्त को हाथ जोड़कर नमस्कार किया जो उसके धवे के खिलाफ लोगों में प्रचार कर रही थी और उसके ग्राहकों को दूकान में आने से रोक रही थी।

“मानना पड़ता है कि यह अनोखी शराफत है,” अनवर ने कहा।

“नहीं, यह एक अनोखा देश है,” आशा ने अनवर की बात को ठीक करते हुए कहा।

वे वृद्ध महिला चलकर मोटर तक आईं और जब अनवर उनका स्वागत करने के लिए घबराकर मोटर से नीचे उतरा तो उन्होंने अनवर से परिचय होने का इन्तज़ार किये बिना ही उसे बड़े प्यार से डाटते हुए कहा, “तू क्यों भीगता है, बेटा ? बैठ अन्दर।” वे गुजराती लहजे में हिंदुस्तानी बोलती थी पर उनकी आवाज़ में नरमी और मिठास थी।

अनवर उन वृद्ध महिला के साथ पीछे की सीट पर बैठ गया। वे एक सूखे तौलिये से अपने भीगे हुए हाथ और मुह पोछने लगी और अनवर उन्हें ध्यान से देखने लगा। उसने सोचा पचास से काफी ऊपर होगी लेकिन उनके चेहरे पर भुर्रियों का कहीं नाम भी नहीं था। बालों में एक पट्टी चादी की तरह चमकते हुए सफेद बालों की थी और छोटी-छोटी चमकदार आखों के चारों ओर गहरे गढ़े पड़ गए थे। लेकिन उनकी नाक भी बेंटी की तरह ही जग-सी ऊपर को उठी हुई थी और यह भी साफ था कि हसते वक्त आशा के गालों में जो गढ़े पड़ते थे वे भी उसे अपनी मा से मिले थे।

जब उन्होंने ‘मेरी बेंटी की जान बचाने के लिए’ अनवर को बार-बार धन्यवाद देना शुरू किया तो अनवर कुछ खिसिया-सा गया क्योंकि वे बड़े विस्तार से इस बात का जिक्र कर रही थी कि बिना सोचे-समझे पुलिस सार्जेंट पर टूट पड़ने में उसने असाधारण वीरता का परिचय दिया था। इसलिए जब उन्होंने बातचीत का रुख बदलते हुए पूछा, “बेटा, तुम्हारा नाम क्या है ?” तो अनवर को बहुत खुशी हुई।

अनवर ने अपना नाम बताया और उसे यह देखकर बहुत सतोष हुआ

कि यह जानकर कि वह मुसलमान है उन्होंने कोई आश्चर्य नहीं प्रकट किया ।

“जुग-जुग जियो बेटा ।” उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा ।

बेटा ! अनवर को इन उदार वृद्ध महिला के मुह से यह शब्द बहुत ही मीठा लगा । और अपनी उम्र में पहली बार अनवर को अपने हृदय में छिपी हुई एक तृष्णा का आभास हुआ—अपनी मा को देखने की, लालसा का, जिसे उसने कभी नहीं देखा था ।

कोई हफ्ते-भर बाद एक दिन सुबह जब अनवर की आख खुली तो उसने देखा कि उसके कमरे की खिड़की के बाहर गौरैयाओं का एक झुंड शोर मचा रहा है । अनवर को ऐसा लगा जैसे वह बहुत लम्बा सुखद सपना देखकर उठा हो । उसे अनुभव हुआ कि स्प्रिंगदार पलग उसके शरीर के बोझ में लचक रहा था, उसने दीवार के पास रखी हुई बहुमूल्य शृंगार मेज देखी ; बाग से फूलों की मादक सुगंध आ रही थी । उसे यह समझने में कुछ देर लगी कि वह सेठ मानिकलाल शाह की मलाबार हिल वाली कोठी में मेहमान है । वह मिष्टभाषी सेठजी से एक बार मिला था, जिनका गजा सिर बिलकुल उबले हुए अंडे की तरह चिकना था और उसने देखा था कि उनकी छोटी छोटी आखों में चालाकी और धन-लोलुपता की चमक थी लेकिन उन आखों के चारों ओर गहरे रंग के घेरे भी पड़े हुए थे । सारा दिन वे दलाल स्ट्रट के अपने दफ्तर में, सट्टा बाजार में शेयर खरीदने और बेचने में या परेल में अपनी किसी मिल का निरीक्षण करने में व्यतीत करते थे और रात को ताज में या जुहू के अपने उस बगले में शराब पीते रहते थे जो खास तौर पर इसी काम के लिए ले रखा गया था । लोग दबी जबान में यह भी चर्चा करते थे कि सेठजी ने वहां कोई रखैल रख छोड़ी थी । जुहू के बगले में जुए और शराब की महफिल जमती थी और सेठजी की तफरीह के लिए किराये पर नाचनेवालिया लाई जाती थी । सेठजी शायद ही कभी दो बजे रात से पहले घर लौटते थे और उनकी पत्नी बीमार होने पर भी कभी उनके लौटने से पहले सोती नहीं थी । फिर भी सेठजी न जाने क्यों अपनी दुबली-पतली, छोटी-सी पतिव्रता स्त्री से डरते थे । अनवर ने कभी भी उन्हें घर पर ऊंची आवाज़ में बोलते या अपनी पत्नी की बात का खडन



करते नहीं सुना था।

उनसे अनवर की सिर्फ एक बार मुलाकात हुई थी और वे अनवर के साथ बहुत ही शरफत के साथ पेश आए थे। लेकिन जिस ढंग से उन्होंने बात की थी उससे अनवर को ऐसा लगा था कि वे अपने-आपको उंचा और अनवर को नीचा समझते हैं। खास तौर पर जिस उदारता के साथ उन्होंने अनवर को 'जब तक जी चाहे' रहने का निमन्त्रण दिया था। उसमें जोर इस बात पर था कि वे अपनी पत्नी और बेटी की इस तरह की हर सनक को पूरा करने का खर्च बर्दाश्त कर सकते हैं। आशा ने उसे पहले ही से अपने पापा के बारे में बताया था, फिर भी अनवर का दिल किसी तरह इस बात को मानने को तैयार नहीं होता था कि ऐसा आदमी आशा जैसी लड़की का बाप और माजी जैसी औरत का पति हो सकता था।

उस परिवार में बस एक आदमी और था, आशा का बड़ा भाई मोहन। मोहन वही खद्दरपोश नौजवान निकला जिसे अनवर ने ताज में खाना खाने के बाद कांग्रेस का गैरकानूनी वुलेटिन बाटते देखा था। अनवर यह फैसला नहीं कर पा रहा था कि मोहन उसे अच्छा लगता है या नहीं। मोहन कुछ था ही ऐसा। वह अभी कुछ साल तक पेरिस में रहने के बाद वापस लौटा था, जहाँ उसने लम्बे-लम्बे बाल बढ़ा लिए थे और आर्ट सीखने के बहाने वह बिलकुल लावबालीपन की 'बोहेमियन' जिन्दगी बिता रहा था। भारत लौटने के बाद से उसने खद्दर पहनना शुरू कर दिया था और उसका यह इन्कलावी चोला भी उतना ही बनावटी था जितना कि उसका पहलेवाला कलाकारों का भेष। उसमें भोलेपन और दिखावटी अकड़ का एक अजीब मिश्रण था। उसमें दिखावा जरूर था लेकिन ऐसा भी नहीं था कि उसके दिल में बिलकुल ही लगन न रही हो। वह एक खद्दरपोश शौकीन नौजवान था, वह ऐसा देशभक्त था जो खुशी-खुशी फासी पर चढ़ जाता लेकिन इस शर्त पर कि शहीद होते वक्त उसकी तस्वीरें खींचने के लिए अखबारों के फोटोग्राफर वहाँ मौजूद हों। वह अनवर पर बहुत रोब भावता था, लेकिन उसे नीचा दिखाने के लिए नहीं बल्कि एक बड़े भाई की तरह। वह अनवर को हमेशा 'भाई ब्वाय' कहता था। जब भी दोनों अकेले होते वह अनवर से कहता, "भाई डियर ब्वाय, तुमने जिन्दगी नहीं देखी है। जब तक आदमी कम से कम साल-भर तक पेरिस की रंगीनी न देखे तब तक उसने जिन्दगी में कुछ भी नहीं

देखा।” लेकिन दूसरे ही क्षण वह गैरकानूनी पर्चे छापने और बांटने के बारे में अपनी किसी अनोखी योजना पर बहस करने लगता था।

बिस्तर पर लेटे-लेटे अनवर उन विचित्र परिस्थितियों पर विचार कर रहा था जिन्होंने उसे इस धर में पहुंचा दिया था। इतने में उसे माजी की आवाज़ सुनाई दी, “उठ गए बेटा ? चाय भैज दू ?”

“जी हा माजी, मैं बिलकुल तैयार हूं।” अनवर ने चादर उतार फेंकी और फुर्ती से उठकर खिडकी के पास जाकर बूढ़े डाक्टर जमशेदजी के आदेशानुसार खुली हवा में गहरी-गहरी सासे लेने लगा। उसके सीने का दर्द लगभग बिलकुल खत्म हो गया था। माथे का घाव भी भर गया था, सिर्फ एक निशान बाकी रह गया था। अनवर के शरीर में नई स्फूर्ति आ गई थी ; उसके मन में नई उमंग थी।

चाय आई तो उसके साथ आशा और मोहन भी आए। आशा लडको जैसा पाजामा पहने थी और उसके खुले हुए बाल उसके कंधों पर बिखरे थे। उसे देखकर अनवर को हसी आ रही थी पर साथ ही वह अच्छी भी बहुत लग रही थी। मोहन का पहनावा उसके स्वभाव की तरह ही आधा तीतर और आधा बटेर था। वह खादी के स्लीपिंग सूट पर चीनी सिल्क का ड्रैसिंग गाउन पहने था और मुह के एक कोने में वह लम्बा-सा सिगरेट-होल्डर दबाए था।

“अनवर, हम लोग तुमसे एक काम करवाना चाहते हैं। क्या तुम्हारी तबियत अब इतनी ठीक है कि तुम बाहर जा सको ?” आशा ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

“जाएगा क्यों नहीं, अब यह बिलकुल चगा हो गया है,” मोहन ने आशा को डाटते हुए कहा। “तुमने भी इसे बिलकुल बच्चा बना रखा है।”

“बच्चा न सही, लेकिन बीमार तो था। जानते हो डाक्टर जमशेदजी ने...”

“छोड़ो उस बूढ़े अनाड़ी डाक्टर की बातें। उसकी बातों के चक्कर में जो पड़ जाए उसे उम्र-भर बैसाखियों का सहारा लेकर ही चलना पड़े।”

अनवर भाई-बहिन के हर वक्त के इन झगड़ों का आदी हो चुका था लेकिन चूँकि यह झगड़ा उसे लेकर हो रहा था इसलिए उसे बीच में बोलना पड़ा। “अच्छा, तुम दोनों अपना झगड़ा बन्द करके कुछ यह भी बताओगे कि आखिर काम क्या है।”

“अनवर, माई ब्वाय, ...” मोहन अवसर के महत्त्व को देखकर कुछ सोचने लगा ।

“जरा ठहरो,” आशा ने घबराकर ऊचे स्वर में कहा, “पहले मैं दरवाजा बन्द कर लू । कोई कहीं हमारी बातें न सुन ले ।”

अनवर इस सारी कार्रवाई के जासूसी वातावरण को देखकर बहुत चकित हो गया ।

“बात यह है कि काम बहुत ही जरूरी है,” मोहन ने दुबारा कहना शुरू किया, लेकिन उसकी अधीर बहिन ने उसे फिर रोक दिया ।

“भैया, तुम सारा खेल बिगाड़ दोगे । मैं बताऊंगी ।”

आखिरकार अनवर को सारी बात का पता चल गया और उसे यह जानकर कुछ आश्चर्य हुआ कि बात सचमुच गंभीर थी । उन लोगों को किसी गुप्त स्रोत से पता चला था कि गांधीजी उसी रात को धरसाना में गिरफ्तार करके पूना के पास यरवदा जेल ले जाए जानेवाले थे ।

“हम लोग चाहते यह है कि तुम जाकर गांधीजी से मिलो,” मोहन ने उसे समझाते हुए कहा । “हम सब लोगों पर पुलिस की नज़र है, इसलिए अगर हममें से कोई बम्बई से बाहर जाएगा तो पुलिस को शक होगा । लेकिन तुम आसानी से जा सकते हो, क्योंकि यहाँ की सी० आई० डी० अभी तुम्हें जानती नहीं है ।”

“अनवर,” आशा ने बड़े आग्रहपूर्वक कहा “तुम महात्मा गांधी का सदेश ले आओ फिर हम उसे अपने बुलेटिन में छापेंगे और अपने कांग्रेस रेडियो पर पढ़कर सुनाएंगे । सनसनी फैल जाएगी । बहुत बड़ा ‘स्कूप’ रहेगा ।”

अनवर ने उन्हें यकीन दिलाया कि वह यह काम बड़ी खुशी से करेगा, लेकिन सवाल यह था कि रात से पहले वह धरसाना पहुँचेगा कैसे ?

“वह सब इतज़ाम हम लोग कर देंगे, माई ब्वाय, लेकिन गांधीजी का इंटरव्यू तुम उनके गिरफ्तार होने के बाद ही लेना । यह असली बात है । अनवर, बस तुम हमारा इतना काम कर दो, फिर तुम जो कहोगे वह मैं करूँगा ।”

“करोगे ?” अनवर ने पूछा ।

“हा, जरूर करूँगा,” मोहन ने उसे आश्वासन दिया ।

“अच्छा, तो मुझे ‘माई ब्वाय’ न कहा करो ।”



“मान लिया, माई ब्वाय ।”

इमपर सब लोग हस पडे और मोहन दाढी बनाने चला गया और आशा नहाने । आशा ने दरवाजे पर से पीछे मुडकर देखा और बोली, “मैं तो कांग्रेस हाउस जा रही हूँ और शायद तुम्हारे जाने से पहले फिर तुमसे मुलाकात न हो सके । काम पूरा करके आना ।”

तो आखिरकार सरकार ने गांधीजी को गिरफ्तार करने का फैसला कर ही लिया, अनवर ने उठते हुए सोचा । इसका मतलब था कि अब कोई समझौता नहीं हो सकता । जब सरकार जनता के महान नेता को गिरफ्तार कर लेगी तो जनता और भी दृढ सकल्प के साथ अपने लक्ष्य की ओर, अपने नारों और अपने स्वप्नों के इन्कलाब की ओर आगे बढ़ेगी ।

वह बहुत ही ऐतिहासिक दिन होनेवाला था । इसलिए अनवर ने कलेंडर पर नज़र डाली । ४ मई, १९३१—शनिवार का दिन था ।

अनवर का काम उससे कहीं मुश्किल साबित हुआ जितना कि उसने तमझा था । उसने मोहन और आशा से यह बात मनवा ली थी कि वह राबर्ट मिल्स को भी इस योजना में शामिल कर लेगा क्योंकि बहरहाल वह अब भी मिल्स के ही साथ काम कर रहा था । मिल्स यह खबर सुनकर बेहद खुश हुआ और उसने अनवर को इस ‘स्कूप’ के लिए पहले ही से बधाई दी, जिसके लिए वे अभी योजनाएँ ही बना रहे थे । उसे अपनी सफलता का इतना विश्वास था कि उसने अपने न्यूयार्क के दफ्तर को एक महत्वपूर्ण ‘स्टोरी’ की ‘प्रतीक्षा करने’ के लिए तार भी भेज दिया । शाम के वक्त वे सेठ मानिकलाल की मोटर में बैठकर सूरत के लिए रवाना हुए । रास्ते में खाने के लिए उन्होंने अपने साथ कुछ सैंडविच रख लिए थे । लगभग दो हफ्ते तक पलग पर पड़े रहने के बाद अनवर के लिए यह बहुत ही सुखद अनुभव था और उसे कुछ-कुछ इस बात का भी आभास था कि वह इतिहास के विकास-क्रम में हिस्सा ले रहा है ।

गाड़ी आधी रात के बाद आई लेकिन उसे वक्त से ज्यादा देर तक रोक रखा गया । एक बजे तक तमाम खोचेवालों को और उन तमाम लोगों को जिनके पास उस गाड़ी के टिकट नहीं थे प्लेटफार्म पर से हटा दिया गया ।

इतने में गाड़ ने सीटी बजाई और लोग भागकर अपने-अपने डिब्बों में पहुँच गए। लेकिन एक क्षण तक सकोच करने के बाद जैसे ही अनवर और मिल्स लपककर एक डिब्बे में चढ़े वैसे ही गाड़ी एक झटके के साथ रुकी और साथ ही सफेद वस्त्रों में गांधीजी की आकृति दिखाई दी। उनके साथ पुलिस अफसरों की एक टोली थी। दूसरे ही क्षण गाड़ी फिर चल दी।...

इस तरह अनवर उसी गाड़ी पर सफर कर रहा था जिसपर गांधीजी को जेल ले जाया जा रहा था। अब सवाल यह था कि उनमें मुलाकात कैसे की जाए। जब गाड़ी अगले स्टेशन पर रुकी तो वे दोनों यह पता लगाने के लिए उतरे कि कैदी को किस डिब्बे में बिठाया गया था। प्लेटफार्म पर मिट्टी के तेल के कुछ लैम्पों से जो धुधली-धुधली रोशनी हो रही थी उसमें उन्होंने कुछ हथियारबंद पुलिसवालों को डाइनिंग कार के सामने टहलते देखा। “यही है।” मिल्स ने चुपके से कहा, “इसी डिब्बे में है, और कहीं हो ही नहीं सकते।” अब सवाल उनके पास तक पहुँचने का था। गाड़ी बहुत सवेरे ही बम्बई पहुँच जानेवाली थी और यह यकीन था कि बम्बई से पहले ही उन्हें किसी जगह उतार लिया जाएगा। मिल्स ने आँखों में धूल भोंककर डिब्बे में घुस जाने का फैसला किया और डिब्बे के सामने टहलते हुए पुलिसवालों की ज़रा भी परवाह किए बिना वह डाइनिंग कार के दरवाज़े के पास गया और बिल्कुल पक्के साहबों की तरह ‘व्वाय ! व्वाय !!’ पुकारने लगा।

“क्या चाहिए, सा’ब ?” एक पुलिसवाले ने उसका रास्ता रोककर काफी झिड़ककर पूछा।

अनवर वहाँ से कुछ दूर पर खड़ा राबर्ट की हाजिरजवाबी पर मन ही मन मुस्करा रहा था। “विस्की-सोडा मागदा—जल्दी ! समझा ?” और यह कहकर मिल्स ने दरवाज़ा खोलने की कोशिश की लेकिन वह अदर से बंद था।

“नहीं साहब। डाइनिंग कार बंद हो चुकी है। अब विस्की-सोडा का टाइम नहीं है।” पुलिसवाले ने भी साफ-साफ बता दिया कि राबर्ट की तिकड़म नहीं चलेगी और इसलिए अमरीकी पत्रकार को उलटे पाव वापस आना पड़ा।

गाड़ी ने सीटी दी और उन्हें भागकर अपना डिब्बा पकड़ना पड़ा, लेकिन जब गाड़ी चल पड़ी तो अनवर ने इतना ज़रूर देख लिया कि डाइनिंग कार का दरवाज़ा खुला और पुलिसवाले चलती गाड़ी में लपककर चढ़ गए।

अगले स्टेशन पर ही उनके लिए आखिरी मौका था, क्योंकि उसके बाद गाड़ी दादर पर ही खड़ी होनेवाली थी और उन्हें पूरा यकीन था कि गाड़ी उससे कुछ मील पहले ही रोक दी जाएगी और गांधीजी को चुपचाप वहां से मोटर में बिठाकर ले जाया जाएगा। इसलिए अनवर ने राबर्ट को मना कर दिया कि वह अगले स्टेशन पर न उतरे नहीं तो पुलिसवालों को शक हो जाएगा। इस बार उसने खुद किस्मत आजमाने का फैसला किया था।

जब गाड़ी छोटे-से सुनसान स्टेशन पर रुकी तो अनवर एक थर्मस लेकर नीचे उतरा और पीने का पानी ढूँढने लगा। उसने स्टेशन पर पानी का कोई इन्तजाम न होने के बारे में कुली, टिकट-कलेक्टर और स्टेशन-मास्टर सबसे बहस की। वह पुलिसवाले की तरफ ध्यान दिए बिना डाइनिंग कार से आगे निकल गया लेकिन जाते-जाते उसने खिड़की के काच पर गांधीजी की जानी-पहचानी आकृति की छाया देखी। पूरब की ओर आकाश पर पौ फट रही थी। जब गार्ड ने सीटी दी और गाड़ी चलने लगी उस वक्त वह इजन के पास था। वह घबराया हुआ पीछे अपने डिब्बे की तरफ भागा लेकिन गाड़ी की रफ्तार काफी तेज हो चुकी थी और अगर इस गड़बड़ी में उसने पुलिसवालों के घुस जाने के बाद डाइनिंग कार का हैंडिल पकड़ लिया तो इसमें उसका क्या दोष था? इससे पहले कि पुलिसवाले समझ पाते कि क्या हो रहा है, वह अन्दर पहुँच चुका था और उस महान कैदी के सामने खड़ा था।

गांधीजी उसे पहचानकर मुस्करा दिए। “चलती गाड़ी में चढ़कर अपनी जान खतरे में डालना अच्छी बात नहीं है।”

“मैं जानता हूँ,” अनवर ने अपनी नोटबुक और पैसिल निकालते हुए जवाब दिया, “लेकिन आपसे मिलना जरूरी था। आप अपनी निरपत्तारी के बाद जनता से क्या करने की उम्मीद करते हैं?”

“जाहिर है मैं यही उम्मीद करता हूँ कि वे आंदोलन चलाते रहे।” वे धीरे-धीरे बोल रहे थे मानो हर शब्द कहने से पहले तोल रहे हों। “बिना कुरबानी के जो स्वराज मिलता है वह कभी कायम नहीं रहता। इसलिए लोगों को बेहद कुरबानी देनी होगी। असली कुरबानी में सारी तकलीफें एक तरफ वालों को बर्दाश्त करनी पड़ती हैं, दूसरे की जान लिए बिना खुद अपनी जान देनी पड़ती है। मैं चाहता हूँ कि भारत इस आदर्श पर चल सके। इस समय भारत की इज्जत और



हर चीज मुट्ठी-भर नमक में छिपी हुई है। यह मुट्ठी तोड़ भले ही दी जाए लेकिन खुलने न पाए।”

गाड़ी धीमी हो चली थी और वे वम्बई के पास पहुंच चुके थे। अनवर गांधीजी से कोई स्पष्ट और निश्चित संदेश चाहता था इसलिए उसने पूछा, “क्या सत्याग्रह की हद नमक कानून तोड़ने तक ही रहनी चाहिए या लोगों को इसके अलावा भी कोई कदम उठाना चाहिए?”

अनवर को अपने प्रश्न का जो उत्तर मिला उससे वह रोमांचित हो उठा। वह अहिंसा की सेना के सेनापति से बातें कर रहा था जो लड़ाई चलाने के बारे में आदेश दे रहे थे। “समुद्र-तट से नमक बटोरने या नमक बनाने में पूरे के पूरे गांवों को हिस्सा लेना चाहिए। औरतो को शराब की दुकानों, अफीम के ठेको और विलायती कपड़े की दुकानों पर धरना देना चाहिए। विलायती कपड़े की होलिया जलाई जानी चाहिए। हिंदुओं को किसीके साथ छुआछूत का बरताव नहीं करना चाहिए। हिन्दुओं, मुसलमानों, पार्सियों और ईसाइयों सभीको एक-दूसरे को भाइयों की तरह गले लगाना चाहिए। लड़कों को सरकारी स्कूल छोड़ देने चाहिए और सरकारी नौकरो को सरकारी नौकरिया छोड़कर जनता की सेवा करनी चाहिए, जैसाकि गुजरात के पटेलो और तलातियो ने किया है।”

अनवर ने देखा कि जब वह गांधीजी का संदेश लिख रहा था उस समय पुलिस के अफसर क्रोध के मारे तिलमिला रहे थे, पर वे कुछ कर नहीं सकते थे। वे शायद यह फैसला कर ही रहे थे कि उसे वहीं गिरफ्तार कर ले कि इतने में गाड़ी के ब्रेक लगे और वह एक झटके के साथ रुक गई। ऐक्सप्रेस रुक गई और डाइनिंग कार रेल की पटरी को पार करनेवाली सड़क के फाटक के सामने आ लगी। अब पुलिसवाले अपने कैदी को उतारने में इतने व्यस्त थे कि उन्हें और किसी बात का ध्यान ही नहीं था।

अनवर ने हाथ जोड़कर चुपचाप नमस्कार किया और गांधीजी ने मुस्कराकर उसे आशीर्वाद दिया और खद्दर की चादर अपने कंधों पर डालकर गाड़ी से नीचे उतर गये।

फाटक के पास खड़े हुए दो विदेशी पत्रकारों को अनवर ने पहचाना और वह मन ही मन इस बात पर मुस्कराने लगा कि जब उन्हें यह मालूम होगा कि

कोई उनसे पहले ही गांधीजी से इटरव्यू ले चुका है तो वे कितना कुढ़ेंगे ।

“मिस्टर गांधी, आपको कुछ कहना है ?” उसने एक पत्रकार को सवाल करते सुना और गांधीजी ने उत्तर दिया, “इंग्लैंड और अमरीका के लोगो से कहिए कि आज सुबह जो कुछ आप देख रहे हैं उसका असली मतलब समझें । क्या यही आजादी है ...?”

वे इससे ज्यादा और कुछ नहीं पूछ सके, क्योंकि पुलिस जल्दी से गांधीजी को मोटर में बिठाकर फौरन वहां से ले गई । जब ऊघते हुए मुसाफिरो को इस ऐतिहासिक नाटक का पता चला तो हर डिब्बे से लोग बाहर भाक-भाककर देखने लगे । लेकिन पुलिसवालो को और पत्रकारो को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जिस डिब्बे में गांधीजी सफर कर रहे थे उसीकी एक खिडकी में से अनवर बाहर सिर निकाले भाक रहा था ।

“भना यह कौन है ?” उनमें से एक ने पूछा । उसे कुछ-कुछ इस बात का शक हो गया था कि सीने उससे भी ज्यादा फुरती दिखाकर मार्के की खबर पहले ही उड़ा ली थी ।

लेकिन गाडी चल पडी थी और अनवर अपना खाली थर्मस हिला-हिलाकर चिल्लाकर कह रहा था, “जानते नहीं हो, मैं पानी की खोज में भटकनेवाला काला आदमी हू ।”

गांधीजी का सदेश लाने में अनवर की सफलता पर आशा इतनी खुश थी कि उसने अनवर को निमंत्रण दिया कि वह भी उसके साथ कांग्रेस के गुप्त रेडियो स्टेशन में चले जहां से वह सदेश उसी शाम को प्रसारित किया जानेवाला था ।

“तुम्हें यकीन है कि मुझे अपना इतना बड़ा भेद बताकर तुम कोई खतरा नहीं मोल ले रही हो ? मान लो अगर मैं सी० आई० डी० का भेजा हुआ भेदिया हू तो ?” वह आशा को छेड़ रहा था और यह भी देख रहा था कि वह उसपर कितना भरोसा करती है ।

“बकवास न करो, हम तुम्हें अपना ही आदमी समझते हैं ।” जिस तरह से उसने यह बात कही उसमें मित्रों जैसे विश्वास के अलावा भी कुछ था ।

“और फिर सी० आई० डी० का कोई आदमी एक वालटियर की जान बचाने के लिए पुलिस से अपनी खोपड़ी न तुड़वाता।”

“पहली बात तो यह कि तुम कोई मामूली वालटियर नहीं हो, और फिर गद्दारों के सीने में भी तो दिन हाता है।” आशा अपनी यह तारीफ सुनकर कुछ शरमा गई। पर वह सीधे-सादे स्वभाव की थी। उसे नखरे दिखाना बिलकुल नहीं आता था। “दूसरी बात यह कि कभी-कभी दूसरों का एतबार हासिल करने के लिए सी० आई० डी० वालों को अपना सिर भी तुड़वाना पड़ता है, जैसा कि मैंने किया है। मेरा खयाल है कि मुझे जो चोट लगी है उसकी वजह से मुझे तरक्की मिल गई है।”

आशा बहुत ही दोस्ताना ढंग से लड़कों की तरह हसी। अनवर को उसकी यही बात अच्छी लगती थी। आप उसके साथ बिलकुल बराबरी से बातें कर सकते थे, हसी-मजाक कर सकते थे और आपको यह एहसास भी नहीं होता था कि आप किसी लड़की से बातें कर रहे हैं।

दोपहर का खाना खाने के बाद वे आशा की मोटर में बैठकर अपोलो बंदर गए और वहां से आशा ने ड्राइवर के साथ मोटर वापस भेज दी। उस समय समुद्र-तट पर बने हुए घाट पर बिलकुल सन्नाटा था, सिर्फ गेटवे आफ इंडिया के ठंडे फर्श पर कुछ बेघरबार लोग चैन से सो रहे थे। उन दोनों ने ताज हर्बर बार में जाकर कुछ सैंडविच और केक खरीदे। फिर वे घाट पर जाकर एक मोटरबोट में बैठ गए। अनवर ने देखा कि बोटवाला आगा को जानता था क्योंकि उसने न तो पैसों के लिए कोई मोलतोल किया और न ही यह पूछा कि वे कहा जाना चाहते हैं।

जब मोटरबोट फट-फट करती हुई बदरगाह से बाहर निकली तो अनवर ने पूछा, “किसीको शक तो नहीं होगा? कहीं ऐसा न हो कि कोई हमारा पीछा करे?”

“हृद से हृद कोई यही तो शक करेगा कि मैं तुम्हारे साथ रोमांस करने के लिए सैर को जा रही हूँ और लोग हमारे बारे में तरह-तरह की बातें करेंगे।”

“और तुम्हें इसकी कोई परवाह नहीं है?”

“नहीं, बिलकुल नहीं, अगर इससे कांग्रेस रेडियो का भेद छिपाए रखने में मदद मिलती हो।”



अब वे खुले समुद्र में पहुँच चुके थे और अनवर सोच रहा था कि शायद वे किसी रमणीक द्वीप की तरफ जा रहे हैं। उसने देखा कि बोटवाला उसे कुछ अविश्वास और चिंता के साथ देख रहा था और अनवर इसे कोई बुरी बात भी नहीं समझता था। जो लोग गुप्त क्रांतिकारी काम करते थे उन्हें हर तरह से सतर्क रहना ही पड़ता था, खास तौर पर नये लोगों के मामले में। बोटवाला अपनी उत्सुकता को दबा न सका और उसने अनवर की तरफ इशारा करके मराठी में आशा से कुछ कहा। अनवर की समझ में यह तो नहीं आया कि उसने क्या कहा था लेकिन वह इतना ज़रूर समझ गया कि वह उसीके बारे में पूछ रहा था। लेकिन आशा ने उसकी बात का जवाब हिंदुस्तानी में देते हुए उससे अनवर का परिचय कराया और बताया कि “ये उत्तर भारत के एक साथी हैं, जो आंदोलन की बड़ी सेवा कर रहे हैं।” उसने बोटवाले को यह भी बताया कि अनवर ने किस प्रकार सुबह गांधीजी से मुलाकात की थी। इसपर मराठा बोटवाला खुश होकर मुस्कुरा दिया। यह सब कुछ जान लेने के बाद ही उसने मोटरबोट को एक दूसरी नाव की दिशा में मोड़ा जो समुद्र में अकेली तैर रही थी और जिसके सफेद पाल हवा में तने हुए थे। ऐसा लगता था वह मछलियाँ पकड़नेवाली कोई नाव थी।

इसी नाव पर कांग्रेस का गुप्त रेडियो स्टेशन था—उसके ऊँचे-ऊँचे मस्तूल बड़ी आसानी से एरियल का काम देते थे और बैट्रियाँ, माइक्रोफोन और दूसरी मशीनें नाव में बने हुए एक बक्स में छिपा दी गई थी। अनवर ने जब अपने ही लाए हुए गांधीजी के सदेश को रेडियो पर सुना तो वह बहुत रोमांचित हो उठा। “हम कांग्रेस रेडियो से बोल रहे हैं। यह कांग्रेस रेडियो है। अब हम आपको अपने प्रिय नेता महात्मा गांधी का वह सदेश पूरा सुनाते हैं जो उन्होंने आज सुबह हमारे विशेष सवाददाता को अपनी गिरफ्तारी के बाद दिया था।”

अनवर को शक था कि शायद गांधीजी इस तरह की गुप्त कार्रवाइयों को पसंद न करें। कांग्रेस रेडियो का प्रबंध पूरी तरह कुछ साहसी और सूझ-बूझवाले नौजवानों के हाथ में था। उन्होंने अपने ट्रांसमीटर की जगह जल्दी-जल्दी बदलकर पुलिस के जासूसों और सरकार के रेडियो-विशेषज्ञों को चक्कर में डाल रखा था। कभी वे शहर के बाहर किसी सुनसान बगले में अपना रेडियो

स्टेशन चलाते थे, तो कभी किसी सुनसान सड़क पर चलती हुई मोटर पर। एक बार तो उन्होंने एलिफैंटा की गुफाओं में भी अपना रेडियो स्टेशन कायम किया था। लेकिन समुद्र में तैरती हुई नाव पर रेडियो स्टेशन कायम करने की व्यवस्था सबसे सुविधाजनक और सुरक्षित साबित हुई थी।

जब वे दोनों वहाँ से बिदा हुए उस समय भी ट्राममीटर पूरी आवाज से कह रहा था—“यह कांग्रेस रेडियो है। हम कांग्रेस रेडियो से बोल रहे हैं !! आप आजादी की आवाज सुन रहे हैं।”

जब वे अपोलो बंदर वापस पहुँचे तो मोटर उनका इंतजार कर रही थी। इस बार आशा ने ड्राइवर को छुट्टी दे दी और खुद मोटर चलाने लगी।

“शहर के बाहर घूमने चलते हो?” उसने पूछा और इससे पहले कि अनवर कोई जवाब देता आशा ने कहा, “मेरा एक दोस्त खार में रहता है और मैं चाहती हूँ कि तुम उससे जरूर मिलो।”

यह फैसला होते ही मोटर हार्नबी रोड पर दफ्तर से लौटते हुए लोगों की भीड़ में से होती हुई, बोरीबंदर स्टेशन और क्राफर्ड मार्केट को पार करती हुई — भिंडी बाजार, लालबाग और परेल की गंदी बस्तियों से गुजरकर दादर पहुँची, फिर बाई ओर मुड़कर तिलक ब्रिज पार करके माहिम पहुँची और फिर वहाँ समुद्र पर बना हुआ छोटा-सा पुल पार करके बवई के उपनगर की बस्तियों की ओर बढ़ी। सारी देर अनवर यही सोचता रहा कि आशा का यह दोस्त किस किस्म का आदमी होगा। आशा ने जिस ढंग से उसके बारे में बताया था उससे यह स्पष्ट था कि वह उसका कोई ‘सावधान मित्र’ नहीं था, बल्कि कोई ऐसा आदमी था जिसके लिए उसके दिल में खास इज्जत थी। शायद वह उससे प्यार करती थी। यह विचार आते ही उसका मन बेचैन क्यों हो उठा, उसे कुछ कुछ ईर्ष्या क्यों होने लगी? कहीं ऐसा तो नहीं था कि वह खुद आशा से थोड़ा-थोड़ा प्यार करने लगा था?

वह विचार मन में पैदा होते ही उसने अपने-आपको समझाया, “अनवर, बेवकूफी की बातें नहीं करते।” इतने में मोटर एक छोटे-से बगले के अहाते में जाकर रुक गई। “वह यही रहता है,” आशा ने मोटर का इंजन बंद करते हुए

कहा, “और हा, उसका नाम यशवत देसाई है।”

यह कहकर वह अनवर को बगले में नहीं बल्कि मोटरखाने में ले गई जो उसी अहाते में बगले के पीछे की तरफ बना हुआ था। अनवर के चेहरे पर आश्चर्य का भाव देखकर आशा ने कहा, “बड़ी अजीब बात लगती है न, लेकिन वह है ही अजीब आदमी। और फिर आजकल घर मिलना भी मुश्किल है।” दरवाजा खटखटाए बिना वे अंदर चले गए और वहां अनवर ने एक विचित्र वातावरण में एक अजीब आदमी को देखा।

यशवत बहुत दिनों से बीमार था और चारपाई पर ही पड़ा रहता था। उसका शरीर धुलकर बिल्कुल ढाचा रह गया था और उसकी दाढ़ी बहुत बढ़ आई थी, उसके शरीर में सिर्फ आखे ही ऐसी थी जिनमें जान मालूम होती थी—बड़ी-बड़ी डरावनी आखें थी उसकी, लेकिन साथ ही उन आखों में भी कोई अज्ञात भय छिपा हुआ था, उनमें एक अजीब आकर्षण था। आशा ने उन दोनों का परिचय कराया। यशवत कोशिश करके मुस्कराया और उभन कम्बल के नीचे से अपना सूखा हुआ हाथ निकालकर अपने मेहमान की तरफ बढ़ा दिया। उस हाथ को अपने हाथों में पकड़कर अनवर को अजीब-सा लगा, जैसे वह स्वयं मौत से हाथ मिला रहा हो।

“कहिए, मेरा महल आपको कैसा पसंद आया?” उसका मजाक भी निराशा के रंग में डूबा हुआ था और उसकी आवाज बच्चों की तरह पतली और बेभिभक थी।

अनवर ने कमरे में चारों तरफ नजर दौड़ाकर देखा। दीवार पर कार्ल मार्क्स, ताल्सताय, लेनिन और स्तालिन की तस्वीरें लगी थी। एक तरफ हसिया और हथौड़ेवाला लाल झंडा लगा हुआ था, काटियावाड़ के कुछ परदे दीवार पर टंगे हुए थे और एक कील पर टैम्परेचर का चार्ट लटक रहा था। हर तरफ किताबों के ढेर थे—अलमारियों में, मेज पर, पलंग के पास लगी हुई एक लम्बी बच पर और खुद पलंग पर भी। यह साफ जाहिर था कि वह मार्क्सवादी था और उसे पढ़ने-लिखने का शौक था। और वह जिस नरमी के साथ आशा से कोई काम करने को कहता था उससे साफ जाहिर था कि वह उससे बेहद प्यार करता था।

अनवर ने यशवत से कहा कि उसका कमरा उसे बेहद पसंद आया था और



उसने किताबों का इतना अच्छा संग्रह लाइब्रेरियों के अलावा और कहीं नहीं देखा था। यह सुनकर बीमार खुश हुआ।

आशा फौरन कमरा ठीक करने में जुट गई। उसने किताबें भाँडकर फिर अलमारियों में रखी, तस्वीरें सीधी की और पलंग पर बिस्तर ठीक से बिछाया। बड़े प्यार से सहारा देकर उसने यशवत को बिठा दिया और उसकी पीठ के पीछे तकिये ठीक से लगा दिए। फिर वह बैच पर पड़ी हुई जूठी प्लेटें और गिनास उठाकर उन्हें धोने के लिए नल पर चली गई। अनवर देख रहा था कि यशवत आशा के हर काम को ऐसी नज़रों से देखता था जैसे वह अपनी किसी चीज़ पर गर्व कर रहा हो। अगर उसकी वह हालत न होती जो इस समय थी तो उसका यह आचरण हास्यास्पद लगता। अब उसकी हरकतों पर सिर्फ़ तरस आता था।

आशा के जाते ही रोगी ने अनवर से एक ऐसा सवाल पूछा जिसे सुनकर वह दग रह गया। यशवत ने पूछा, 'क्या तुम उससे प्यार करते हो?' यह सवाल इस तरह अचानक पूछा गया था और इतना अनुचित सवाल था कि एक क्षण के लिए तो अनवर की समझ में ही नहीं आया कि इसका क्या जवाब दे। फिर उसने लड़खड़ाती जवान से कुछ सिटपिटाकर ज़रूरत से ज्यादा जोर देकर कहा, 'नहीं, बिल्कुल नहीं।' तुम्हें यह खयाल ही क्यों पैदा हुआ? ... हमें अभी मिले हुए मुश्किल से दो हफ़्ते हुए हैं।'

यशवत खुद यह सवाल पूछकर पछता रहा था और उसने माफ़ी मागते हुए कहा, 'मैं जानता हूँ कि मुझे ऐसा सवाल नहीं पूछना चाहिए था। लेकिन तुम मेरी बात का बुरा न मानना। इस वक्त मेरी जो हालत है उसमें मेरे लिए उसकी मुहब्बत इतनी ज़रूरी है कि कभी-कभी मुझे विला वजह दूसरों से जलन होने लगती है। बात यह है कि मैं बीमार आदमी हूँ और मार्क्स की किताबें पढ़ने के बाद भी मेरी हर बात समझदारी की नहीं होती।' यह कहकर वह निढाल होकर लेट गया। अब अनवर के पछताने की बारी थी कि उसने उसकी बात का इतना बुरा क्यों माना था।

आशा प्लेटें धोकर वापस लौटी और उसने हमेशा की तरह खिली हुई मुस्कराहट के साथ पूछा, 'तुम दोनों क्या बातें कर रहे थे?' और फिर उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही उसने यशवत से पूछा, 'तुमने कुछ और काम किया?'

उसने स्वीकृति में सिर हिलाया और जब आशा ने कहा “तो फिर मुझे पढ़कर सुनाओ,” तो उसका चेहरा खिल उठा।

जितनी देर में यशवत ने अपने तकिये के नीचे से लिखे हुए कागजों का बडल निकालकर उन्हें सभाला उतनी देर में आशा ने अनवर को बताया कि यशवत साल-भर से मार्क्स के ‘कैपिटल’ का गुजराती में अनुवाद कर रहा था और अब यह काम लगभग पूरा हो गया था। अनुवादक ने खुद अपनी सफाई देते हुए कहा, “मुझे कुछ तो करना ही था। अगर मैं चगा होता तो मैं कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो जाता या किसी ट्रेड यूनियन में काम करता। अब मैं यहाँ लेटे-लेटे सिर्फ पढ़ता रहता हूँ या कभी-कभार कुछ लिख लेता हूँ। मौजूदा समाज बिल्कुल बीमार और सड़ा हुआ है—मेरी तरह—और उसे मरना होगा। जितनी जल्दी वह मर जाए उतना ही अच्छा है।”

इसके बाद वह धीमी कमजोर आवाज़ में अपना अनुवाद पढ़ने लगा और आशा उसपर अपनी नज़रें जमाए सुनती रही। बीच-बीच में वह कहीं पर तारीफ में कोई शब्द कह देती या अपनी तरफ से कोई सुझाव देती। अनवर गुजराती नहीं समझ पा रहा था लेकिन इतना वह जरूर जानता था कि यह अनुवाद उन दोनों के बीच सबंध स्थापित करनेवाली कोई कड़ी थी। एक का अनुवाद पढ़कर सुनाना और दूसरे का उसे सुनना बौद्धिक स्तर पर उनके प्रेम का चरम रूप था। यशवत के शरीर में बहुत देर तक पढ़ने की ताकत नहीं थी इसलिए शीघ्र ही उसके स्वर में थकान पैदा हो गई। उसकी पलकें कमजोरी की नींद से बोझिल हो गईं। “आज बस करो, यशवत। बहुत अच्छा अनुवाद हुआ है। बाकी मैं कल सुनूंगी।” और यह कहकर आशा ने यशवत के शिथिल हाथों से गिरे हुए पन्ने उठा लिए और उन्हें सभालकर तकिये के नीचे रख दिया। फिर उसने चुपके से उसके पीछे से गद्दिया हटा दी और उसका सिर तकिये पर टिका दिया। यशवत ने आंखें खोले बिना गुजराती में कुछ कहा और आशा ने उसका माथा थपककर उससे बिदा ली। उसने अनवर को इशारा किया और दोनों दबे पांव कमरे से बाहर निकल आए।

जिस समय वे दोनों उस मोटरखाने में से निकले उस समय सूरज डूब चुका

था और सड़क की बत्तियाँ एक-एक करके जलती जा रही थी। आशा सहसा किसी सोच में डूबकर बिलकुल चुप हो गई थी। सड़क पर पहुँचकर वह बोली, “चलो, जुहूँ चलते हैं। आज चादनी रात है।”

वे शहर के बाहर के छोटे-छोटे बगलों की कतारों के बीच में होते हुए चुपचाप मोटर पर जूले जा रहे थे। आखिरकार आशा ने कहा, “यशवन्त भी कमाल का आदमी है। क्यों, तुम्हारा क्या खयाल है? उसका शरीर बीमारी की वजह से बिलकुल तबाह हो गया है लेकिन उसका दिमाग बहुत तेज है—बिलकुल हीरे की तरह साफ।”

“क्या बीमारी है उसे?”

“टी०बी०।”

“अच्छा? मैंने तो उसे एक बार भी खासते नहीं देखा।”

“नहीं, वैसी टी० बी० नहीं है। उससे भी बुरी बीमारी है। उसे रीढ़ की हड्डी की टी० बी० है। कोई इलाज ही नहीं है इसका।”

“डॉक्टर क्या कहते हैं?”

“कहते हैं कुछ महीने और चल जाएगा, लेकिन जब तक यह अनुवाद पूरा नहीं होता तब तक वह मरनेवाला नहीं। उसीके सहारे वह जिन्दा है। ...”

“और तुम! तुम यह तो जानती ही हो कि वह तुम्हें बेहद प्यार करता है।”

आशा ने उदास होकर सिर हिला दिया।

“और तुम? क्या तुम भी उसे प्यार करती हो?”

आशा चुपचाप मोटर चलाती रही। थोड़ी देर बाद उसने जवाब दिया, “मैं हमेशा से उसकी बुद्धि और ईमानदारी की वजह से उसकी इज्जत करती रही हूँ। वह हमारे कालेज में सबसे तेज लड़का था। वह अपने विचारों का बहुत पक्का था। उसने अपना घरबार इसलिए छोड़ दिया कि उसके घरवाले बहुत बड़ा दहेज लेकर उसका ब्याह करना चाहते थे। कुछ दिन तक वह एक स्कूल में पढ़ाता रहा और वही उसे यह भयानक रोग लग गया। पिछले साल-भर से तो वह चारपाई से ही लगा है।”

“तुमने मेरे सवाल का जवाब नहीं दिया।”

“तुम्हारे सवाल का जवाब देना मुश्किल है। मैं उसे सराहती हूँ और मुझे



उसकी हालत देखकर दुःख होता है। क्या ये दोनों चीजें मिलकर मुहब्बत बन जाती है? नहीं, मेरा खयाल है मुहब्बत के लिए किसी और चीज की भी जरूरत होती है। और फिर जिस आदमी की कोई जरूरत से ज्यादा इज्जत करता हो उसे वह प्यार नहीं कर सकता। आदमी अपने बराबरवान से प्यार कर सकता है। मेरे ऊपर तो हमेशा उसकी विद्वत्ता का रोब रहा है।”

“लेकिन वह तो समझता है कि तुम उसे प्यार करती हो। तुम्हें यह बात मालूम है ना?”

“हां, मैं जानती हूँ और अगर इससे उसकी उम्मीद बघती है और उसमें जिन्दा रहने की ताकत आती है तो मैं इसमें कोई बुराई भी नहीं समझती।”

आशा ने मोटर नारियल के पेड़ों के एक झुंमुट में खड़ी कर दी और दोनों चादनी में एक रेत के टीले पर बैठ गए। समुद्र में ज्वार आ रहा था और लहरों में पिघली हुई चांदी की चमक थी। अनवर को इस शान्त वातावरण में पीड़ा का आभास हुआ। शायद इसकी वजह यह रही हो कि वह अभी यशवत से मिलकर आया था और उसके दयनीय आगाहीन प्रेम पर उसे दुःख हो रहा था। लेकिन अनवर के हृदय में भी निराशा व्याप्त थी, वह सलमा के लिए बेचैन था। उसने सोचा था कि आशा का साथ पाकर वह उसे भूल जाएगा, पर न जाने क्यों इसका असर बिल्कुल उलटा ही हुआ था। आशा जो कुछ भी करती थी या कहती थी उससे अनवर के दिल में सलमा की याद ताजा हो जाती थी।

आशा ने उससे कहा, “अनवर, मुझे अपने बारे में, अपने घरवालों और दोस्तों के बारे में, अपने बचपन और कालेज के दिनों के बारे में बताओ। तुम अपनी जिन्दगी में क्या करना चाहते हो?”

अनवर ने उसे बताना शुरू किया और एक-एक करके उसके जीवन की सारी घटनाएँ उसकी आंखों के सामने घूम गईं—अजुम के साथ बचपन के हसी-खुशी के दिन, अमृतसर की भयानक घटना की गहरी छाप, अजुम की मृत्यु और ईश्वर पर से उसका विश्वास उठ जाना, साम्प्रदायिक दंगे और गांधीजी से उसकी मुलाकात, यूनिवर्सिटी का जीवन और अंत में वहां से निकाला जाना। उसने आशा को अपने अब्बा के बारे में, रतन के बारे में, उस्मान के बारे में, और सुभानोव्स्की के बारे में बताया—आशा यह नाम सुनकर मुस्करा दी।

और आखिर में उमने यह भी बनाया कि वह खुद भी नहीं जानता कि वह जिन्दगी में क्या करना चाहता है। शायद वह पत्रकार बनना चाहता था लेकिन उसे अपने-आपपर और अपनी योग्यता पर इतना विश्वास नहीं था कि वह कुछ भी कर सके।

“अनवर,” आशा के स्वर में इतनी कोमलता थी कि अनवर को ऐसा लगा जैसे कोई अपने कोमल हाथों से बड़े प्यार से उसे सहला रहा हो, “तुम्हारे अन्दर इतनी हिम्मत और इतनी योग्यता है कि तुम अपने देश के लिए बहुत कुछ कर सकते हो। यह और बात है कि तुम अभी यह न बता सको कि तुम क्या कर सकते हो। इसलिए तुम मुझसे वादा करो कि तुम अपने-आपपर भरोसा रखना नहीं छोड़ोगे।”

अनवर ने सिर ऊपर उठाकर देखा और उमकी नजरे आशा की नज़रों से चार हुईं। वह रेत के कोमल गीतल तक्रिये में अपनी कुहनिया टिकाए बैठी थी और हवा ने उसके बाल बिखेर दिए थे। चादनी और समुद्र की लहरें और नारियल के पेड़ों के जालीदार साये—ये सब उस क्षण आशा के व्यक्तित्व में सिमट आए थे। वह बहुत अच्छी लग रही थी, अनवर बरबस उसकी ओर खिंचा जा रहा था। उमका जी चाह रहा था कि वह उसकी गरदन को, उमके गालों पर पड़नेवाले गढ़ों को, उसकी तजाई हुई पलकों को चूम ले। लेकिन उसकी नज़रों के सामने आशा नहीं थी, वह आशा को नहीं चूमना चाहता था, बल्कि वह सलमा थी—सलमा जैसी कि वह थी, और सलमा जैसी कि वह उसे बनाना चाहता था। और अगर इस समय वह आशा को चूम लेता तो यह उसके लिए अपने-अपको धोखा देना होता। वह आशा की इतनी ज्यादा इज्जत करता था कि वह उसे सलमा की जगह नहीं रख सकता था।\*\*\*

इसलिए उमने हाथ में कुछ रेत उठा ली और उगलियों के बीच से उसे गिराने लगा। उसके हाथों को रेत ठंडी लग रही थी और इस प्रकार उसे अपने उद्विग्न मन को शान्त करने में बहुत मदद मिली। थोड़ी देर बाद उसने कहा, “आशा, जानती हो, यशवत मुझसे पूछ रहा था कि क्या मैं तुमसे प्यार करता हूँ।”

“फिर तुमने क्या कहा?” आशा ने बिना किसी संकोच के उससे पलटकर पूछा।

“मैंने कहा...मैंने कहा...,” वह आशा को वह बात नहीं बताना चाहता था जो उसने कही थी बल्कि जो उसे कहनी चाहिए थी। “मैंने कहा कि तुम इतनी अच्छी हो कि मैं तुम्हारे लायक नहीं, कि मैं तुम्हारी इतनी इज्जन करता हूँ कि तुम्हें प्यार नहीं कर सकता। इसके अलावा मुझे एक दूसरी लड़की से मुहब्बत है जो तुमसे आधी भी अच्छी या संभेदावार नहीं है। मेरा तो खयाल है कि वह मुझसे प्यार भी नहीं करती। लेकिन फिर भी मैं उसे प्यार करता हूँ—क्या इसमें कोई अजीब बात या बुराई है ?”

“नहीं, मैं तो नहीं समझती। इसान का दिल इतना पेचीदा है कि वह किसी कानून का पाबन्द नहीं हो सकता।” उसके होठों से एक हलकी-सी आह निकलकर समुद्र की लहरों और नारियल के पत्तों में से होकर बहती हुई हवा के शोर में खो गई। थोड़ी देर बाद वह उठी और बोली, “चलो चलो, बहुत देर हो गई।”

गांधीजी की गिरफ्तारी की खबर सारे देश में आग की तरह फैल गई और जगह-जगह विद्रोह होने लगे। लोगो ने अपना गुस्सा जाहिर करने के लिए हड़तालें की, जुलूस निकाले, नमक सत्याग्रह ने फिर जोर पकड़ा, विदेशी कपड़े का बायकाट शुरू हुआ और सड़कों पर विलायती कपड़े की होलिया जलाई जाने लगी, शराब की दुकानों पर धरने दिए गए। गिरफ्तारियां हुईं, लाठिया और गोलिया चली।

जब अनवर दूसरे दिन सुबह राबर्ट से मिला तो वह बूढ़ा अमरीकी पत्रकार क्रोध से पागल हो रहा था। उससे पहले दिन शाम को उसने अपनी आंखों से मैदान में विरोध-सभा करने के लिए एकत्र सत्याग्रहियों पर एक पाशविक लाठी-चार्ज देखा था। सैकड़ों लोग बेहोश हो गए थे।

“बाई गॉड, अनवर,” उसने कसम खाकर कहा, “मैंने अपनी सारी जिंदगी में ऐसा भयानक दृश्य नहीं देखा। मैंने एक आदमी को मार खाते देखा—मुश्किल से बीस बरस का लड़का रहा होगा। वह बार-बार चोट खाकर गिरता था, उसका चेहरा खून से लथपथ था, लेकिन वह हर बार उठ खड़ा होता था और कहता था ‘और मारो !’ यहाँ तक कि अंग्रेज पुलिस सार्जेंट भी, जो उसे



पीट रहा था, लज्जित हो गया और उसने अपना डडा फेंक दिया।”

राबर्ट ने अपनी रिपोर्ट में इस लडके की पिटाई का जिक्र किया था। उसने हमेशा से ज्यादा कठोर शब्दों का प्रयोग किया था और इसीलिए स्थानीय सेसर ने उसकी रिपोर्ट रोक ली थी। इसपर बूढ़े को गुस्सा आ गया था और वह सबको टेलीफोन करके धमकी दे रहा था कि अगर उसकी रिपोर्ट रोकी गई तो इंग्लैंड और अमरीका के कूटनीतिक सम्बन्ध टूट जाएंगे। अनवर ने उससे पूछा कि उसे यह कैसे मालूम हुआ कि उसका तार रोक लिया गया है। राबर्ट ने उसे बताया कि बहुत सवेरे उसे एक गुमनाम पर्वी मिली थी जिसपर लिखा था, ‘आपकी रिपोर्ट सेसर ने रोक ली है। होम सेक्रेटरी से बात कर लीजिए।’ जब उसने होम सेक्रेटरी को टेलीफोन किया तो साम्राज्य का भार अपने कंधों पर संभालनेवाले उस सूरमा ने न सिर्फ यह स्वीकार किया कि उसका तार रोक लिया गया है बल्कि राबर्ट से यह कहने की धृष्टता भी की कि उसकी रिपोर्ट में सच्चाई को तोड़-मरोड़कर और बहुत बढा-चढाकर पेश किया गया था।

“उसकी यह मजाल कि मुझसे यह कहे,” बूढ़े ने गरजकर कहा, “मुझसे—राबर्ट मिल्स से—मैं जोकि पांच महाद्वीपों में खबरों को सच-सच, बल्कि कुछ कम करके ही बयान करने के लिए मगहूर हूँ।”

अनवर को उस बिफरे हुए अमरीकी पत्रकार का क्रोध शांत करने में काफी समय लगा और इस बीच में उसे कई गिलास ठंडा शरबत भी पिलाना पड़ा। थोड़ी देर बाद अनवर ने उससे कहा, ‘राबर्ट, तुम उसे डाक से क्यों नहीं भेज देते? अगर हवाई जहाज से डाक भेजने का इतजाम होता तो कितना अच्छा होता !...’

“मेरी समझ में आ गया,” सहसा राबर्ट उछल पड़ा। “बस, अब कुछ न कहना। तुमने मुझे ऐसी तरकीब सुझा दी है कि मैं इन अन्धे साहब लोगों के दिमाग ठिकाने लगा दूंगा। ज़रा मुझे टेलीफोन तो देना।”

उसने फिर होम सेक्रेटरी का नम्बर मिलाया। “मैं फिर राबर्ट मिल्स बोल रहा हूँ। बस !...जी हाँ, अपनी उसी रिपोर्ट के बारे में जिसे सेसर ने रोक लिया है !...जी हाँ !...लेकिन अगर मैं एक प्राइवेट हवाई जहाज चार्टर करके ईरान चला जाऊँ और वहाँ से अपना तार भेजूँ तो आपको कोई

एतराज तो न होगा, और उसके बाद में यह भी जोड़ दू कि हिन्दुस्तान में उसे सेसर ने रोक लिया था। ‘‘जी नहीं, मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ। दरअसल मैं एयरोड्रोम ही जा रहा था लेकिन मैंने सोचा कि आपको बता दूँ, शायद आपने अपना इरादा बदल दिया हो।’’ क्या कहा? ‘‘रिपोर्ट?’’ ‘‘जी हाँ, मैं अपनी इज्जत की कसम खाकर कह सकता हूँ कि उसका एक-एक लफ्ज सच है और मैंने जो कुछ अपनी आख से देखा है वही लिखा है। अगर आप सच पूछें तो मैंने सचाई को कुछ घटाकर ही पेश किया है।’’ तो आप उसे जाने देंगे।’’ आपका बहुत-बहुत शुक्रिया।’’

तार भेज दिया जाएगा। लेकिन इसके बाद होम सेक्रेटरी बहुत देर तक टेलीफोन पर कुछ कहता रहा, जिसे सुनकर राबर्ट के चेहरे पर चिंता के बादल छा गए।

दूसरे दिन अनवर को अपने अब्बा का एक खत मिला जिसमें उन्होंने लिखा था कि उसकी चचेरी बहिन बिलकीस की शादी सलामपुर के नवाब साहब के बेटे के साथ हो गई थी और चूँकि अनवर छोटे नवाब की ऐयाशी से भली भाँति परिचित था इसलिए उसे यह खबर सुनकर कोई खुशी नहीं हुई। वह सोचने लगा, बेचारी बिलकीस सोने के पिंजरे में बंद हो गई। पेशावर से यूनूस का खत आया था जिसमें उसने खान अब्दुलगफ्फारखा के बारे में लिखा था, जिनका नाम पठानों ने प्यार से ‘बादशाह खा’ रख छोड़ा था। उसने लिखा था, ‘बादशाह खा ने हम पठानों में एक नई हिम्मत फूँक दी है—यह हिम्मत कि हम अपनी जान दे दें लेकिन न तो दुश्मनों को पलटकर मारे न उससे डरे। काश तुम देख पाते कि उन्होंने पठानों को कितना बदल दिया है।’ बेजवाडा जेल से सुदरम का खत आया था। उसने लिखा था कि उसे सरकार के खिलाफ लोगों को भड़काने के जुर्म में दो साल की सजा हो गई थी।

उसने दूसरा खत उठाया और जब उसने उसपर लिखाई देखी तो उसका दिल बल्लियों उछलने लगा। सलमा का खत था जो दिल्ली के पते पर गया था और उसके अब्बा ने उसे बम्बई भेज दिया था। आखिरकार उसने खत लिखा। उसने इस बात की माफी माँगी होगी कि वह उसे ठीक से पहचान न सकी,

और शायद उसने फिर अपनी मूहब्बत का यकीन दिलाया होगा। लिफाफा खोलते वक्त अनवर के हाथ वाप रहे थे। ..

“अनवर !” राबर्ट ने मोटे कागज के लैटरहेड पर छपे हुए खत पर से नज़र उठाकर उसे सम्बोधित करते हुए कहा, “सारे-मुल्क का चक्कर लगाने के बारे में तुम्हारा क्या खयाल है ? मेरे अखबारवालों ने लिखा है कि मैं तुम्हारी इस अनोखी लड़ाई के हर मोर्चे पर जाकर वहाँ की खबरें भेजूँ।”

अनवर ने कोई जवाब नहीं दिया। शायद उसने राबर्ट की बात सुनी ही नहीं। वह आखे फाड़े अपने हाथ के खत को देख रहा था। वह खत नहीं था। खूबसूरत कागज पर सुनहरे अक्षरों में छपा हुआ निमंत्रण-पत्र था। प्रोफेसर मुहम्मद सलीम ने उसे डिप्टी-सुपरिटेण्डेंट आफ पुलिस मि० मजूरमालम के साथ अपनी बेटी सलमा की शादी के मुबारक मौके पर १० मई, १९३१ को अपनी कोठी सलीम मजिल, मंरिम रोड, अलीगढ़ पर दावत में आने का न्योता दिया था।





## मृगतृष्णा

. अनवर कई महीनों के लिए दौरे पर जानेवाला था इसलिए वह माजी और मोहन से मिलने गया, लेकिन वे दोनों कहीं बाहर गए हुए थे, शायद कांग्रेस के किसी काम से गए होंगे। निराश होकर वह वहाँ से वापस आ रहा था कि इतने में एक नौकर ने आकर उससे कहा कि सेठजी उससे मिलना चाहते हैं। अनवर को ताज्जुब हुआ। सेठ मानिकलाल ने उसमें पहली बार दिलचस्पी दिखाई थी। आखिर वे उससे क्या बातें करना चाहते थे? वह डर रहा था कि सेठजी उसपर अपना रोब भाड़ेंगे और उससे इस तरह से बातें करेंगे जैसे वह उनके सामने बहुत ही घटिया आदमी हो। अनवर को उनके बात करने के इस ढंग से बड़ी भुभुलाहट होती थी। पर जाने से इकार करना भी तो बहुत बदतमीजी होती। आखिर वह उनके घर में हफ्ते-भर तक मेहमान रह चुका था और उनका 'नमक खा चुका था', फिर उसे यह जानने की भी उत्सुकता थी कि उसे क्यों बुलाया गया है। उन्होंने केवल शिष्टाचार के नाते उसे बुला लिया था या उन्हें उससे कोई जरूरी बात कहनी थी?

वह उस कमरे में गया जो उनका 'पढ़ने का कमरा' कहलाता था, हालांकि वहाँ जो बहुत-सी किताबें रखी हुई थी वे सिर्फ सजावट के लिए मंगाई गई थीं और शायद ही कभी अलमारी में से निकाली जाती थी। सेठजी तो खैर कभी कोई किताब छूते ही नहीं थे क्योंकि उनकी साहित्यिक रुचि 'टाइम्स आफ इंडिया' के वाणिज्य तथा व्यापारवाले पृष्ठ तक सीमित थी। सेठ मानिकलाल ने, जो बढिया चीनी सिल्क का कुरता और मलमल की धोती पहने थे और जिनकी हीरे की तीन अंगूठियाँ और सोने के दो दात चमक रहे थे कुर्सी से उठकर बड़े तपाक से अनवर का स्वागत किया। पहले तो उन्होंने अनवर से उसके स्वास्थ्य के बारे में पूछा और फिर यह पूछा कि वह 'मानिक मेशन' छोड़कर राज में क्यों रहने लगा था; वहाँ तो उसका पैसा बेकार ही खर्च होता।

होगा। अनवर ने उन्हें बताया कि मि० मिल्स को, जिनके साथ वह काम करता था, वहा हर वक्त उसकी जरूरत रहती थी और रही खर्च की बात सो वह तो अमरीकन न्यूज एजेंसी देती थी। इस बात का सेठजी पर काफी रोब पड़ा। करोड़पति सेठजी की नज़रो में अनवर की इज़्जत बढ गई क्योंकि वे हर आदमी को पैसो की दृष्टि से आकते थे।

“मेरा खयाल है कि इस अमरीकन जर्नलिस्ट के साथ काम करने दौरान में तुम बहुत-से कांग्रेसी लोगो से भी मिलते होगे। मैंने सुना है कि तुम गांधी से, मेरा मतलब है महात्माजी से मिल चुके हो और उनसे बातें कर चुके हो।”

अनवर ने स्वीकार किया कि उसे यह सौभाग्य प्राप्त तो हो चुका था।

“और तुम्हें बहुत-सी ऐसी राजनीतिक बातों का भी पता होगा जिनकी खबर भी हमें नहीं होती?”

इसपर उस आधे पत्रकार ने (अनवर अपने-आपको अब आधा पत्रकार कहने लगा था) जवाब दिया कि जो कुछ वे देखते या सुनते थे वह सब अखबारों में भी छप जाता था।

सेठजी ने सोचा कि अनवर विनम्रता के कारण ही ऐसा कह रहा है और उन्होंने एक बार फिर जोर देकर कहा कि पत्रकारों को हमेशा उससे ज्यादा बातें मालूम होती हैं जितनी कि वे अखबारों में छापते हैं। “बात यह है,” उन्होंने अपना आशय समझाते हुए कहा, “मैं कांग्रेस के बारे में और इस आंदोलन के बारे में जानना चाहता था, जोकि—मेरा मतलब है—महात्माजी ने शुरू कर रखा है।”

अनवर सोचने लगा कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि सेठजी में हृदय-परिवर्तन हो रहा हो और वे देशभक्त बनते जा रहे हों। उसने कहा, “आपके अपने घर में तीन पक्के कांग्रेसी हैं जो शायद आपको इन बातों के बारे में मुझसे ज्यादा बता सकते हैं।”

“अरे, उनकी बात छोड़ो!” सेठजी ने बड़े तिरस्कार से कहा, “मेरी बीवी तो हर बात को धार्मिक काम समझकर करती है और इसलिए वह गांधीजी को देवता की तरह पूजती है। आशा बिल्कुल बच्ची है और उसे राजनीति का कुछ भी पता नहीं है हालांकि वह जेल भी चली गई है। और मोहन—मोहन के लिए यह सब एक तमाशा है, एक नया फैशन है।” हालांकि सेठजी ने अपने परिवार

के सभी सदस्यों के बारे में बहुत सख्त बातें कही थीं लेकिन उनकी राजनीति के बारे में उन्होंने काफी सोच-समझकर अपनी राय कायम की थी।

“आप क्या बात जानना चाहते हैं?” अनवर ने आखिरकार पूछा।

“पहली बात तो यह कि तुम्हारी राय में क्या यह आंदोलन चलेगा या राजनीतिक आतिशबाजों की तरह कुछ दिन बाद ठंडा पड़ जाएगा? या यों समझ लो, मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या कांग्रेस के पीछे इतनी ताकत है कि वह सरकार पर काफी दिन तक दबाव डाल सके? ‘टाइम्स आफ इंडिया’ का तो कहना है कि कांग्रेस के साथ सिर्फ कुछ मिट्टी-भर सिरफिरे लोग, कुछ ऐसे लोग जिनके पास राजनीति के अलावा और कोई काम ही नहीं है और कुछ गैरजिम्मेदार नौजवान ही हैं।”

अनवर ने उन्हें बताया कि ‘टाइम्स आफ इंडिया’ जैसे अखबार से, जिसके मालिक अंग्रेज हैं और जो सरकार का पिढू है, यह उम्मीद ही करना बेकार है कि वह कभी भी इस बात को मानेगा कि ज्यादातर लोग कांग्रेस के साथ हैं—लेकिन यह हकीकत है। चूँकि अनवर जानता था कि सेठ मानिकलाल जैसे लोग विदेशी लोगों की राय को कितना महत्त्व देते हैं इसलिए उसने कहा, “और यह सिर्फ मेरी या मिस्टर मिल्स की ही राय नहीं है बल्कि इस वक्त हिन्दुस्तान में विदेशी अखबारों के ज़िन्ने कारेस्पाडेंट हैं—क्या अंग्रेज क्या अमरीकन—उनमें से लगभग सभी की यह राय है।”

“अच्छा।” सेठजी को सचमुच आश्चर्य हुआ और साथ ही उनपर इस बात का रोब भी पड़ा।

“उनमें से एक अंग्रेज कारेस्पाडेंट ने तो, जो कई महीने से हिन्दुस्तान में है, अपने अखबार में यहां तक लिखा है कि ‘जेल में बंद महात्मा गांधी अब भारत की आत्मा का साकार रूप हैं’ और एक दूसरे कारेस्पाडेंट ने अमरीकी अखबारों में लिखा है कि आज हिन्दुस्तान में सरकार के मुकाबिले में कांग्रेस की बात ज्यादा मानी जाती है।”

यह बात सुनकर तो ‘टाइम्स आफ इंडिया’ पढ़नेवाले सेठजी का रहा-सहा संदेह भी दूर हो गया। उन्होंने अपने कागजों में से एक छपा हुआ फार्म निकालकर पूछा, “तो फिर तुम्हारी क्या राय है, मैं इस करारनामे पर दस्तखत कर दूँ?”



अनवर ने फार्म लेकर देखा । उसने उस फार्म के बारे में सुन तो रखा था पर उसे देखने का मौका पहली बार मिला था । यह एक ऐलान था जिसपर कांग्रेस हिन्दुस्तानी कपड़ा मिलों के मालिकों से दस्तखत कराना चाहती थी । यह ऐलान इन शब्दों से शुरू होता था कि 'हमें जनता की राष्ट्रीय आकांक्षाओं से पूरी हमदर्दी है ।' इस घोषणा का मुख्य उद्देश्य तो यह था कि इस बात का पक्का प्रबन्ध कर लिया जाए कि मिलें पूरी तरह हिन्दुस्तानी कारोबारों की शक्ति में चलाई जाएंगी, उनमें सिर्फ हिन्दुस्तानियों को नौकर रखा जाएगा और वे सिर्फ हिन्दुस्तानी बीमा कंपनियों, हिन्दुस्तानी जहाजों की कंपनियों के साथ व्यवहार रखेंगी, लेकिन साथ ही उसमें एक धारा यह भी थी जिसमें मिल-मालिकों से यह घोषणा करने को कहा गया था कि वे स्वदेशी के प्रचार में सहायता देंगे, जिसके लिए सबसे पहले तो मिल के बने हुए कपड़े और खादी की आपस की होड़ को खत्म करेंगे और दूसरे कपड़े की कीमतें बढ़ाकर या उसकी क्वालिटी गिराकर इस आंदोलन से पैदा होनेवाली परिस्थिति का लाभ स्वयं अपने हित में नहीं उठाएंगे ।

“बोलो, तुम्हारा क्या खयाल है ? क्या हम अपने मौत के परवाने पर खुद दस्तखत कर दें ?”

“मेरे खयाल में तो आपके पास इसके अनायास और कोई चारा ही नहीं है । जन मिलों के मालिक इसपर दस्तखत नहीं करेंगे उनकी लिस्ट तयार की जा रही है और विदेशी कपड़े की तरह ही उनके माल का भी बायकाट कर दिया जाएगा ।”

“मैं जानता हूँ । इसीलिए ज्यादातर लोगों ने दस्तखत कर दिए हैं । मैं सिर्फ यह सोच रहा था कि क्या इस तरह अपने-आपको किसी राजनीतिक पार्टी के हाथों बेच देना मुनासिब होगा ।”

अनवर ने चितित सेठजी को ढाढस देने के लिए कहा, “कुल मिलाकर देखा जाए तो मेरी राय में तो आपको इसपर दस्तखत कर देने से कोई नुकसान नहीं होगा । बहरहाल, गांधीजी कुछ भी कहें पर हाथ के बुने हुए कपड़े से तो मुल्क की आधी जरूरत भी पूरी नहीं होगी । और जब बायकाट होगा तो हिन्दुस्तानी मिलों का कारोबार चमक उठेगा । रहा किसी पार्टी के हाथ अपने-आपको बेच देने का सवाल, तो मेरे कुछ कम्युनिस्ट साथियों का तो यह खयाल है कि मिल-

मालिक कांग्रेस को खरीदे ले रहे हैं। आपके लिए यह सौदा बुरा नहीं रहेगा।”

“देखना यह है कि कांग्रेस कितने दिन तक इस तरह अपना आंदोलन चला सकती है,” सेठ मानिकलाल ने आह भरकर सदेह के साथ कहा। “काश मुझे किसी तरह यह यकीन हो जाता कि यह घोड़ा जीतेगा।”

“आप मेरी बात मानिए, इसी घोड़े पर दाव लगाइए। आज की सबसे अच्छी ‘बैट’ यही है।” अनवर ने भी बम्बई आने के बाद से घुड़दौड़ के कुछ शब्द सीख लिए थे। “अच्छा, अब मैं चलूंगा। माजी से मेरा सलाम कहिएगा।”

अपनी बीवी के जिक्र से मानिकलाल सेठ कुछ खुश नहीं हुए और उन्होंने कुछ उदास होकर अस्फुट स्वर में कहा, “अच्छा, कह दूंगा—जब मुलाकात होगी।” अनवर जानता था कि माजी से उनकी मुलाकात तो अब अगले दिन सुबह ही होगी।

दोपहर को जब अनवर ताज पहुंचा उस समय खाने का वक्त हो चुका था और राबर्ट डाइनिंग रूम में जा चुका था। अनवर ने देखा कि वह वहां सुनहरे बालोंवाले किसी अजनबी के साथ खाना खा रहा है जिसके माथे की चौड़ाई देखकर ऐसा लगता था कि वह बहुत विद्वान है, उसकी दाढ़ी के बाल कुछ-कुछ लाल थे। अनवर उसे कोई प्रोफसर समझ रहा था, लेकिन परिचय होने पर मालूम हुआ कि वह ‘डेली हेराल्ड’ का विशेष सवाददाता जार्ज स्लोकोब था। राबर्ट और स्लोकोब पुराने मित्र थे और वे दुनिया के कई ऐतिहासिक घटना-स्थलों पर साथ रह चुके थे और इस समय वे पेरिस के शांति-सम्मेलन, लेनिन, त्रात्स्की, लायड जार्ज और ब्राया के बारे में अपने पुराने सस्मरण दुहरा रहे थे। अनवर जानता था कि स्लोकोब का अखबार एक तरह से लेबर पार्टी का सरकारी अखबार माना जाता था। एक जमाने में यही लेबर पार्टी भारत की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की आकांक्षाओं के प्रति गहरी सहानुभूति रखती थी। लेकिन जब से कुछ वोटों के बहुमत से उसने अपनी सरकार बना ली थी तब से उसने भी भारत और उपनिवेशों की तरफ वही पुरानी टोरी नीति अपना ली थी। भारत के राष्ट्रवादी अखबार उन ‘विश्वासघातक’ लेबर पार्टीवालों की कड़ी आलोचना करते थे, जो एक जमाने में समाजवाद और सभी राष्ट्रों की

बराबरी का दम भरते थे लेकिन अब उसी पुराने साम्राज्यवाद के रास्ते पर चल रहे थे। कांग्रेस के एक दैनिक पत्र ने अ.ने सम्पादकीय लेख में लिखा था, “भारत को स्वतन्त्रता देने से इकार करके लेबर पार्टी ने यह साबित कर दिया है कि वे अंग्रेज भी, जो समाजवादी होने का दावा करते हैं, दिल में साम्राज्यवादी हैं।”

अनवर भी जला बैठा था। उसका बहुत जी चाहता था कि अब जबकि उसकी मेज पर ब्रिटेन के शासक दल का एक प्रतिनिधि बैठा था वह अपने विचार खुलकर उसके सामने व्यक्त करे। लेकिन स्लोकोब बहुत दुनिया देखे हुए था और उसके विचार बंधनों में जकड़े हुए नहीं थे। उसका रवैया भी साम्राज्यवादियों जैसा नहीं था। वह अपनी भारत की विचित्र यात्रा का वर्णन जिस रोचक ढंग से कर रहा था, उसे राजनीतिक बहस की दिशा में मोड़ना बहुत मुश्किल था। वह उन्हें बता रहा था कि कुछ ही घंटों के नोटिस पर वह पेरिस से, जहाँ वह सवाददाता के रूप में नियुक्त था, भागकर लंदन पहुँचा था और वहाँ से डाक ले जानेवाले हवाई जहाज पर सवार हुआ था। जहाज एक भयंकर तूफान में फँस गया था इसलिए उन्हें रात जर्मनी में नूरेमबर्ग में बितानी पड़ी थी। उसने लगे हाथों यह भी बताया कि ‘दूसरे दिन नाश्ते के वक्त हम वियना पहुँचे, दोपहर के खाने के वक्त वूदापेस्त और रात के खाने पर वेलग्रेड।’ हवाई जहाज पर यूनान से होता हुआ वह काहिरा पहुँचा था और वहाँ से मोटर पर पोर्ट नईद जाकर उसने हिन्दुस्तान जानेवाला पानी का जहाज पकड़ा था। इस मफे हुए सवाददाता ने जिस आसानी के साथ इन तमाम अनोखी जगहों के नाम गिनाए थे उससे अनवर बहुत रोमांचित हुआ था, क्योंकि मन ही मन वह भी इसी प्रकार के घटनामय जीवन के लिए लालायित रहता था।

इतने में कॉफी आई और कॉफी पीते हुए स्लोकोब उन्हें बताने लगा कि उसे इस बात का तो पूरा यकीन था कि भारत के करोड़ों लोग गांधीजी के इशारे पर चलते थे लेकिन—यह कहकर उसने कॉफी का एक घूट लिया—वह फिर भी उनसे कुछ सवाल पूछना चाहेगा।

उसने पूछा, “क्या गांधीजी ने इस संभावना को बिल्कुल ठुकरा दिया है कि पूर्ण स्वराज्य के उस आदर्श के बजाय, जो केवल एक दूर की कल्पना है, भारत को काफी हद तक आत्मशासन का अधिकार दे दिया जाए? साराश



यह कि वे किस कीमत पर असहयोग आंदोलन वापस ले सकते हैं ? सत्याग्रह-आंदोलन वापस लेने के लिए और आगामी शरदऋतु में लदन में होनेवाले गोलमेज सम्मेलन में अपना सहयोग देने के लिए वे क्या शर्तें रखना चाहते हैं ?”

स्लोकोब के इस सकेत पर कि गांधीजी कांग्रेस की आजादी की बुनियादी मांग से कम पर भी समझौता करने को राजी हो सकते हैं अनवर को कुछ गुस्सा आ गया और उसने भुभुलाकर कहा, “गांधीजी ने और कांग्रेस ने भारत की जनता की ओर से अपनी मांगें रख दी हैं । अब ब्रिटिश सरकार को, बल्कि ब्रिटिश जनता को, हमारी मांगों का जवाब देना है, अगर उनके पास पुलिस के डंडों के अलावा कोई दूसरा जवाब हो ।”

स्लोकोब ने अनवर की इस भुभुलाहट का बुरा नहीं माना । उसने कहा कि उसने पुलिस को डंडे वरसाते देखा था और एक अंग्रेज होने के नाते वह इस-पर बहुत लज्जित था । इसीलिए ब्रिटेन में बहुत-से लोग चाहते हैं कि वर्तमान परिस्थिति समाप्त हो और इसीलिए वह अपने सवालियों के जवाब जानना चाहता है ।

“उनके जवाब तो गांधीजी ही दे सकते हैं और वे जेल में बन्द हैं और मुझे यकीन है कि सरकार आपको उनसे ये सवाल पूछने का मौका नहीं देगी ।”

इस बात का स्लोकोब ने जो रहस्यमय उत्तर दिया उसपर दोपहर के खाने के समय का यह वार्तालाप समाप्त हो गया । उसने कहा, “मुझे इस बात का इतना यकीन नहीं है ।”

कुछ दिन बाद राबर्ट ने कहा, “अनवर, हम लोग अभी अपना सारे देश का दौरा कुछ दिनों के लिए टाल दें । जल्द ही समझौते की बातचीत शुरू होगी और इस सिलसिले में कुछ कदम उठाए जाएंगे । ऐसी हालत में हमारे लिए बम्बई में ही रहना बेहतर होगा, अपना जार्ज जेल में गांधीजी से इंटर्व्यू करने जा रहा है ।”

“राबर्ट, यह हो ही नहीं सकता ।” अनवर इस बात पर यकीन कर ही नहीं सकता था कि सरकार एक ऐसे कैदी को जिसपर राजद्रोह का अभियोग लगाया

गया था, जेल में ऐसा इंटर्व्यू देने की इजाजत देगी जो अखबारों में छपा जाए।

“अनवर किसी बात का इतना ज्यादा यकीन न रखो। औरतों की तरह सरकारों का मत भी ज़रा-सी देर में बदल जाता है। सच तो यह कि स्लोकोव को इजाजत मिल गई है और वह पूना चला भी गया है।”

“अगर मि० स्लोकोव गांधीजी से जेल में मिल सकते हैं तो आप भी इंटर्व्यू के लिए अर्जी क्यों नहीं देते? एक अंग्रेज के मुकाबले में गांधीजी एक अमरीकन पत्रकार से ज्यादा खुलकर अपनी बात कह सकेंगे।”

“इसी वजह से तो शायद सरकार मेरी अर्जी को इतनी आसानी से मंजूर न करे। मुझे तो यह यकीन नहीं है कि स्लोकोव सिर्फ एक पत्रकार की हैसियत से उनसे मिलने गया है—इसमें शायद कोई राजनीतिक चाल भी है। उसका संबंध एक ऐसे अखबार से है जो ब्रिटेन के शासक दल का सरकारी अखबार है और अगर वह अपनी मर्जी से भी आया है तब भी यह मुमकिन है कि बम्बई की सरकार उसे ब्रिटिश सरकार का ही दूत या प्रतिनिधि समझेगी।”

“मुझे यह बात कुछ अच्छी नहीं लगी,” अनवर ने स्वीकार किया, “वह शायद गांधीजी को इस बात के लिए राजी करने की कोशिश करेगा कि वे अपनी आजादी की मांग को कुछ कम कर दें और डोमिनियन स्टेट्स या इसी किस्म की किसी चीज़ के लिए राजी हो जाए।”

“वह इस बात की कोशिश तो कर सकता है,” राबर्ट ने अपनी सहमति प्रकट की, “लेकिन यह क्या ज़रूरी है कि गांधीजी उसकी बात मान ही लें?”

“कह नहीं सकता। गांधीजी बहुत सीधे आदमी हैं, राजनीति के ये दाव-पेच उनके बस के नहीं हैं और अंग्रेज बहुत चालाक हैं।”

“अभी से हिम्मत हारने की कोई ज़रूरत नहीं है,” राबर्ट ने सलाह दी, “देखें आगे क्या होता है।”

अगले दिन स्लोकोव पूना से वापस आ गया और चूँकि अखबारों में गांधीजी से उसके इंटर्व्यू के बारे में कुछ नहीं छपा इसलिए अनवर ने यह मान लिया कि वह गांधीजी को समझौते के लिए राजी करने में असफल रहा था, और यह सोचकर उसके मन को शांति हुई। उसने राबर्ट से कहना शुरू किया कि अब वे अपना दौरा शुरू कर दें। वह एक और वजह से भी घूमते रहना चाहता था। सलमा की शादी की खबर से उसके दिल को बहुत धक्का पहुँचा था और उसका

खयाल था कि सफर करते रहने से, नई-नई जगह देखने और नये-नये लोगो से मिलने से शायद उसकी यह बेचैनी कुछ कम हो ।

राबर्ट बम्बई से चल देने पर कुछ-कुछ राजी हो गया था । लेकिन इतने में एक दिन एक अप्रत्याशित घटना हुई । एक दिन 'इंडियन डेली मेल' नामक अखबार ने गांधीजी के साथ स्लोकोब के दूसरे इटरव्यू का विवरण छाप दिया । उससे अदाजा होता था कि गांधीजी ने अपनी मांगे काफी कम कर दी थी, जिसका कि अनवर को डर था । स्लोकोब के अनुसार चार शर्तों पर 'गांधीजी कांग्रेस को असहयोग आंदोलन वापस ले लेने और गोलमेज सम्मेलन में सहयोग देने की सलाह देने को तयार थे' और इनमें से सबसे महत्वपूर्ण शर्त में केवल यह कहा गया था कि 'गोलमेज सम्मेलन में जिन समस्याओं पर विचार किया जाए उनमें एक ऐसा सविधान बनाने का सवाल भी शामिल किया जाए जिसके द्वारा भारत को स्वतन्त्रता की बुनियादी बातें मिल जाए ।'

“देखा, आपके दोस्त ने क्या किया ।” अनवर ने राबर्ट को, जो अभी तक बिस्तर से उठा नहीं था, अखबार दिखाते हुए कहा । “लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि आखिर गांधीजी इन सब बातों के लिए राजी कैसे हो गए ।”

“बुढ़े ने भी कुछ सोच-समझकर ही यह किया होगा,” राबर्ट ने अनवर को तसल्ली देने की कोशिश की । “वे भी कोई नादान तो है नहीं । मुझे तो ऐसा लगता है कि महात्माजी अपनी विनम्रता से जीत लेने के लिए ही भुक् रहे हैं ।”

लेकिन अनवर ने अपने दिल को ढाढस बधाने का दूसरा ही तरीका निकाल लिया था । “अगर महात्माजी समझौता करने को तैयार भी है, तब भी अंग्रेजों को अभी हमारे जवाहर से निबटना पड़ेगा । यह न भूलो कि वे कांग्रेस के अध्यक्ष हैं । और मुझे पूरा यकीन है कि वे पूरी आजादी और अंग्रेजों से बिलकुल नाता तोड़ लेने से कम किसी चीज़ पर राजी ही नहीं होंगे ।”

राबर्ट ने अनवर के इस भोलेपन पर मुस्कराकर सिर्फ इतना कहा, “अनवर, राजनीति में किसी बात पर इतना यकीन नहीं रखना चाहिए ।”

मोहन ने टेलीफोन करके अनवर को कुछ बातें करने के लिए बुलाया ।



अनवर ने देखा कि मोहन के दिमाग में तरह-तरह के सन्देह थे और एक-एक करके उसके जो दूसरे दोस्त आते गए वे भी समझौते की उस योजना की कड़ी आलोचना कर रहे थे, जिसका उल्लेख स्लोकोव के इंटरव्यू में किया गया था। अजीब बात तो यह थी कि बैठे-बैठे कुर्सी तोड़नेवाले इन क्रांतिकारियों के सामने, जिनमें से ज्यादातर बहुत रईस घरानों के बिगड़े हुए लड़के थे, जो कभी एक दिन भी जेल में नहीं रहे थे और जिन्होंने एक भी लाठी नहीं खाई थी, अनवर गांधीजी के खिलाफ उनके हमलों का जवाब दे रहा था। “आखिर बुढ़ा कोई नादान तो है नहीं,” अनजाने में ही अनवर राबर्ट की दलील दुहरा रहा था, “यह भी तो हो सकता है कि महात्माजी अपनी खाकसारी से दुश्मन को जीतने के लिए ही भुक् रहे हों और यह जाहिर करके कि वे समझौते के लिए तैयार हैं, वे सारी दुनिया के सामने ब्रिटिश सरकार को मुजरिम ठहरा रहे हों।”

जब सब लोग चले गए तो वे घर की बातें करने लगे। आशा को छ. महीने की सजा हुई थी और उसने माजी को लिखा था कि वह अच्छी तरह थी और उत्तर भारत की एक दूसरी स्वयंसेविका से हिन्दी पढ़ना सीख रही थी। इसके बाद अनवर ने पूछा, “तुमने सबसे ज्यादा सनसनी की खबर सुनी? पापा ने उस करारनामे पर दस्तखत कर दिए जिसपर दस्तखत करने के लिए कांग्रेस सभी मिल-मालिकों पर जोर डाल रही है।”

अनवर ने मोहन को बताया कि उसकी इस विषय में उसके पापा से बात हुई थी। “मैं उसी वक्त समझ गया था कि उनका दिल बदलनेवाला है।”

“दिल-विल कुछ नहीं बदला है,” बेटे ने अपने बाप के प्रति असम्मान की भावना के साथ कहा, “यह सब कुछ माजी की वजह से हुआ है।”

“सो कैसे?”

“तुम्हें मालूम नहीं? माजी ने धमकी दी थी कि अगर उन्होंने दस्तखत नहीं किए तो वे उनकी मिल के सामने भूख-हड़ताल कर देगी। जब उनके पति खुद गद्दारा कर रहे हों तो वे दूसरों की मिलों के आगे घरना कैसे दे सकती थी?”

अनवर को इस बात का यकीन नहीं था कि सिर्फ अपनी बीवी की भूख-

होगी। जब मोहन ने उसे बताया कि उन्होंने न सिर्फ दस्तखत कर दिए थे बल्कि वे कांग्रेस के मेम्बर भी बन गए थे और उन्होंने खद्दर पहनना भी शुरू कर दिया था, तो अनवर को यकीन हो गया कि सेठ मानिकलाल ने अपना स्वार्थ देखकर ही दस्तखत किए होंगे, हालांकि उसने यह बात मोहन से कही नहीं।

अनवर ने बस इतना कहा, “मुझे यकीन है कि यह सौदा उनके लिए बुरा नहीं रहेगा।” जब मोहन ने उसकी इस बात का मतलब पूछा तो उसने उसे यह नहीं बताया कि उसका संकेत उस बातचीत की ओर था जो राजनीतिक पार्टियों को ‘खरीदने’ के औचित्य के बारे में उसने सेठ मानिकलाल से की थी।

अनवर और उसके जैसे हजारों दूसरे नौजवानों को जिस समझौते का डर था वह हुआ नहीं, क्योंकि गांधीजी ने जो प्रस्ताव रखा था उसका ब्रिटिश सरकार की ओर से कोई जवाब नहीं मिला। कुछ दिन तक तो लोग यह इतजार करते रहे कि देखें अब क्या होता है और जगह-जगह सत्याग्रह-आंदोलन भी कुछ समय के लिए धीमा पड़ गया। लेकिन जब कुछ भी नहीं हुआ तो आंदोलन फिर शुरू हो गया। धरसाना के समुद्र-तट पर, जहां से सत्याग्रही नमक बटोरते थे, एक रणक्षेत्र बन गया। वहां निहत्थे सत्याग्रहियों और सशस्त्र पुलिसवालों के बीच रोज़ टक्कर होती थी।

विदेशी सवाददाताओं की अब बम्बई में कोई कमी नहीं थी। इन्हींके एक दल के साथ अनवर और राबर्ट धरसाना गए। मोटर का यह लम्बा और तकलीफदेह सफर बेकार नहीं गया, क्योंकि वहां पहुंचकर उनकी मुलाकात श्रीमती सरोजिनी नायडू से हुई जो राजनीतिज्ञ होने के साथ ही कवयित्री भी थी और जिनकी जिह्वा पर सरस्वती वास करती थी। सत्याग्रह के अन्य नेताओं के साथ गिरफ्तार होने के आघे घंटे पहले तक वे अपनी दिलचस्प बातों से सब लोगों को हसा रही थी। इसके बाद वालंटियरों पर बड़ी बेरहमी से लाठिया बरसाई जाने लगी। इस भयानक दृश्य को देखकर कुछ सवाददाता तो सन्नाटे में आ गए, क्योंकि पुलिस अत्याचार के बारे में जो बातें उन्होंने अब तक सुनी

थी उनपर वे यकीन नहीं करते थे। उन्होंने अपनी आखों से देखा कि घुडसवार गोरे अफसर सत्याग्रहियों के बीच से सरपट घोड़े दौड़ाते हुए गुजर गए और बहुत-सी औरतों और बच्चों को उन्होंने रौंद डाला। अनवर ने देखा कि सवेदनशील अमरीकी पत्रकार वैब मिलर इस दृश्य को देखकर स्तब्ध रह गया था। बाद में बम्बई वापस पहुंचकर अनवर ने मिलर को ताज के लाउज में किसीसे कहते सुना कि वह अठारह बरस से सवाददाता का काम कर रहा था और इस सिलसिले में दो दर्जन देशों में हो आया था लेकिन उसने घरसाना जैसा भयानक दृश्य आज तक नहीं देखा था।

एक अंग्रेज भी उसकी बात सुन रहा था। उसने बहुत चिन्तित होकर पूछा, “लेकिन जाहिर है कि ये सारी बातें तुम अखबार में लिखोगे नहीं।” और यह सुनकर मृदुभाषी मिलर गरज पड़ा, “लिखूंगा क्यों नहीं? और मैं यहाँ आया किसलिए हूँ?”

कुछ दिन बाद पंडित मोतीलाल नेहरू बम्बई आए। उन दिनों वे जेल में बंद अपने बेटे की जगह पर कांग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष थे। बम्बई में पंडित मोतीलाल का जैसा शानदार स्वागत हुआ वैसा बड़े-बड़े राजे-महाराजों को भी नसीब नहीं था। दूसरे सवाददाताओं के साथ अनवर भी मोतीलालजी से मिलने गया। उन्होंने बाड स्ट्रीट के सिले हुए सूट छोड़कर अब खद्दर के कपड़े पहनना शुरू कर दिया था, लेकिन खद्दर के कपड़ों में भी वे खानदानी रईस मालूम पड़ते थे। वे बहुत ही हसमुख और मस्त किस्म के आदमी थे और विदेशी सवाददाता फौरन उनसे घुल-मिल गए। गांधीजी के तपस्वियों जैसे आध्यात्मिक रवैये के मुकाबले में उन्हें मोतीलालजी का रईसाना ठाठ ज्यादा आसानी से समझ में आता था। इस अवसर पर वयोवृद्ध बिट्ठलभाई पटेल भी मौजूद थे। हवा में उड़ती हुई उनकी वह लम्बी सफेद दाढ़ी अनवर को अभी तक याद थी। उसने उन्हें उस दिन जब भगतसिंह ने बम फेंका था, लेजिस्लेटिव असेम्बली के अध्यक्ष-पद पर सुशोभित देखा था। उन्हें देखकर अनवर को उस रहस्यमय क्रांतिकारी की याद आ गई जिसकी आखों में कवियों जैसी कोमलता थी, और जिसके सिर पर मौत की क्रूर छाया मंडरा रही थी। उसपर षड्यंत्र का जो मुकदमा इतने दिन से चल रहा था वह अब खत्म होनेवाला था और यह लगभग निश्चित था कि उसे फासी की सजा दी जाएगी।



इन नेताओं से मिलकर जब पत्रकार बाहर निकल रहे थे उसी समय बाहर एक मोटर आकर रुकी और रेशमी सूट पहने हुए एक व्यक्ति, जो देखने में कोई बड़ा आदमी मालूम होता था, उसमें से उतरा। एक स्थानीय पत्रकार ने अनवर को बताया कि ये उदार दल के नेता एम० आर० जयकर थे जो समझौते का कोई रास्ता ढूँढ रहे थे। ऐसा लगता था कि जार्ज स्लोकोव भी इस काम में उनके साथ था क्योंकि और पत्रकारों के चले जाने के बाद भी वह जयकर से कुछ बातें करता रहा और उनके साथ फिर मोतीलालजी से मिलने गया।

दो दिन बाद पता चला कि मोतीलालजी इस बात पर राजी हो गए थे कि कोई 'तीसरा आदमी' समझौते की कोशिश करे और इसी योजना के अनुसार जयकर साहब वाइसराय से मिलने शिमला जा रहे थे। अनवर को एक बार फिर ऐसा लगा कि समझौता होनेवाला है और उसे इस बात पर आश्चर्य भी हुआ। सरकार अब भी किसी किस्म का समझौता करने को तैयार नहीं मालूम होती थी और जिस समय बेचारे जयकर साहब शिमला का लम्बा सफर कर रहे थे उसी समय संयुक्त प्रान्त की सरकार के वारंट पर मोतीलाल नेहरू गिरफ्तार कर लिए गए।

“अब कोई समझौता नहीं होने का,” अनवर ने विजयोल्लास के साथ घोषणा की।

“तो फिर हम लोग अपना बोरिया-बिस्तर बांधें,” राबर्ट ने फैसला किया।  
“लड़ाई लम्बी चलेगी और हमें कई मोर्चों की खबरें लानी हैं।”

खबर मिली थी कि गुजरात के गावों में लगान अदा न करने का जबर्दस्त आंदोलन चल रहा था इसलिए वे पहली ट्रेन पकड़कर सूरत पहुँचे और एक टूटी हुई मोटर पर, जो कुछ मील चलने के बाद बार-बार ठप हो जाती थी, उन्होंने देहातो का चक्कर लगाया। यहाँ की जमीन बहुत उपजाऊ थी, कपास, ईख और तम्बाकू की फसल के लिए मिट्टी बहुत अच्छी थी। अब तक अनवर ने संयुक्त प्रान्त के जो गाव देखे थे उनके मुकाबले में यहाँ के गाव ज्यादा समृद्ध दिखाई देते थे। यहाँ के गावों में बहुत-से मकान पक्के बने हुए थे। कुछ घर दुमज़िले

भी थे। दरवाजो के चौखट नक्काशीदार लकड़ी के थे और दीवारों पर रंग-बिरंगी तस्वीरें बनी हुई थी। इनमें से ज्यादातर धार्मिक चित्र थे—कृष्ण और गोपियों के चित्र, राम और सीता के चित्र और हनुमानजी के चित्र। कुछ आधुनिक चित्र भी थे, जैसे रेलगाड़ी या हवाई जहाज के चित्र। एक घर की दीवार पर उन्होंने एक बहुत ही महत्वपूर्ण चित्र बना हुआ देखा जिसमें गांधीजी को बीच में बैठा हुआ दिखाया गया था (उनके सिर के चारों ओर एक गोला खींचकर उनके मुख का तेज दिखाया गया था) और वे हिंदुओं, मुसलमानों, पारसियों और ईसाइयों के एक जनसमुदाय को आशीर्वाद दे रहे थे। जनसमुदाय में कंधे पर हल रखे हुए एक किसान और काले रंग का एक अछूत भी दिखाया गया था। यह जनसमुदाय भारत की समस्त जनता का प्रतीक था।

यह सचमुच गांधी का देश था। वे कई बरस तक इस इलाके में रहे थे; यहां के लोग उनकी गुजराती भाषा बोलते थे। यहां के ज्यादातर लोगों ने उन्हें देखा था और उनकी बातें सुनी थीं और उनके एक शिष्य वल्लभभाई पटेल ने कई बरसों की मेहनत के बाद यहां के किसानों को संगठित किया था। खेती की पैदावार की कीमतें गिर जाने की वजह से उनकी समृद्धि में बेहद कमी आ गई थी और उनकी आर्थिक दशा बिगड़ती गई थी। दो वर्ष पहले बार्दोली जिले के काश्तकारों ने भारत के इतिहास में पहली बार लगान देने से इकार किया था क्योंकि उनका कहना था कि उनका लगान बहुत ज्यादा आका गया था। क्रूर दमन के बावजूद उन्होंने सराहनीय एकता का परिचय दिया था और सरकार को मजबूर होकर उनका लगान कम करना पड़ा था।

अब पूरे गुजरात ने घृणित विदेशी सरकार को लगान देने से इकार कर दिया था। सरकार ने भी क्रुद्ध होकर बहुत अत्याचार किए थे। इन गांवों में जिन किसानों का असर था उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया था। बाकी लोगों को पुलिस लगातार सता रही थी। उनकी जमीन-जायदाद, यहां तक कि उनके मवेशी भी, जब्त करके मिट्टी के मोल नीलाम किए जा रहे थे और इस तरह लगान वसूल किया जा रहा था। नतीजा यह हुआ कि हजारों किसान घरबार और जमीन-जायदाद छोड़कर ब्रिटिश भारत की सीमा पार करके पास की बड़ौदा रियासत में जाकर बसने लगे। रोज कुछ किसान अपना घरबार छोड़कर यही

रास्ता अपनाते थे । कुछ गाव बिलकुल खाली हो चुके थे और उनकी सुनसान गलियों में घूमते हुए अनवर को वैसा ही लगा जैसा फतेहपुर सीकरी देखते समय लगा था, जहाँ की शानदार पुरानी इमारतों का रीतापन किसीकी प्रतीक्षा करता हुआ प्रतीत होता था—ये गाव अपने काश्तकारों की प्रतीक्षा कर रहे थे कि वे न जाने किस क्षण वापस लौट आए ।

वे बड़ौदा रियासत की सीमा तक गए और उन्होंने देखा कि सीमा के उस पार ब्रिटिश भारत से आए हुए असंख्य किसानों ने सूरज की तपती हुई धूप से बचने के लिए चटाई और ताड़ के पत्तों के बने हुए छप्परो में शरण ले रखी है । एक बूढ़े किसान से, जिसके सिर पर बहुत बड़ी पगड़ी बधी थी और जिसके चेहरे पर बड़ी-बड़ी मूछें थी, अनवर ने पूछा कि वह कब तक अपने घर लौटने की आशा करता है, जिसके जवाब में उस बूढ़े किसान ने तुरंत बड़ी दृढ़ता से उत्तर दिया, “जब हमारे महात्माजी की सरकार बन जाएगी ।”

इसी बीच में उन्हें खबर मिली कि वल्लभभाई पटेल छोड़ दिए गए हैं और इसलिए वे दोनों उनका भाषण सुनने अपनी मोटर पर वहाँ से पचास मील दूर एक छोटे-से कस्बे में पहुँचे । अनवर ने ‘बार्दोली के हीरो’ को पहली बार देखा था । वह उनके कठोर चेहरे की गहरी लकीरों में शक्ति और दृढ़ता का भाव देखकर बहुत प्रभावित हुआ । ऐसा लगता था जैसे पत्थर की चट्टान को काटकर उनका चेहरा गढ़ा हो गया हो । उनके शब्दों में बहुत कटुता भरी थी और जनसमूह के सामने हिंदुस्तानी में बोलते हुए उन्होंने वाइसराय द्वारा दिए गए उस भाषण का मुंहतोड़ जवाब दिया जिसमें धमकी दी गई थी कि अगर सत्याग्रह-आंदोलन वापस न लिया गया तो कांग्रेस को इसका मजा चखा दिया जाएगा । पटेल राजनीतिज्ञों की तरह घुमा-फिराकर बात नहीं कहते थे, वे तो बिलकुल किसानों की तरह दोढ़क बात कहते थे । यह स्पष्ट था कि अपने प्रांत के किसानों पर इसी कारण उनका इतना अधिक प्रभाव था ।

मीटिंग के बाद राबर्ट ने कहा, “उन्होंने क्या कहा यह तो मेरी समझ में नहीं आया, लेकिन यह बात मुझे कुछ अजीब जरूर मालूम हुई कि ये महात्मा गांधी के अनुयायी कैसे हैं ।”

“क्यों ?” अनवर ने आश्चर्य से पूछा ।

“इसलिए कि महात्मा गांधी तो बहुत कोमल स्वभाव के आदमी हैं और



पटेल इतने कठोर, इतने निर्मम है। और ऐसा लगता है कि वे किसी चीज़ पर भी विश्वास नहीं रखते, हर चीज़ को नष्ट कर देना चाहते हैं।”

“शायद यह अच्छा ही है। उनकी सख्ती गांधीजी की हद से ज्यादा नरमी के साथ मिलकर हालत को सभाले रहती है और इसलिए यह हिन्दुस्तान के लिए अच्छा है।”

“हा, शायद भगवान की ऐसी ही मर्जी है।”

गुजरात के दौरे का राबर्ट मिल्स पर बहुत गहरा असर पड़ा और उसने गुजरात के बहादुर किसानों के बारे में कई बहुत ही मर्मस्पर्शी लेख लिखे। दिल्ली जाते हुए रास्ते में उसने कहा, “अनवर, मैं सोचता हूँ कि शिमला जाकर मैं वाइसराय से मिलूँ। मुझे तो ऐसा लगता है कि इस देश में जो कुछ हो रहा है उसका उन्हें पता ही नहीं है। किसीको उन्हें सचाई बतानी चाहिए और चूँकि कोई और नहीं बताएगा इसलिए मैं ही जाकर बताऊँगा।”

अनवर को यकीन नहीं था कि इससे कोई फायदा होगा और उसने राबर्ट को इस मामले में अपनी राय बता भी दी।

“मैं तो नहीं समझता कि मेरा जाना बिल्कुल बेकार रहेगा। बहरहाल कोशिश कर लेने में क्या हर्ज है। मैंने सुना है कि लार्ड इर्विन बहुत ही धार्मिक आदमी है और मैं तो इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता कि जानते-बूझते वे पुलिस के इन अत्याचारों की इजाजत देंगे जो इस समय देश में हो रहे हैं।”

अनवर मिल्स के ईसाइयोवाले इस उत्साह से सहमत नहीं था और उसने यह बात उससे कही भी कि उसने जहाँ तक इतिहास पढ़ा है उससे उसे यही अंदाजा हुआ है कि पूरब में, और पश्चिमी देशों में भी, जो सबसे ज़ालिम बादशाह हुए हैं वे अपने धर्म के बहुत पक्के थे। “अरे, तुम नास्तिकों से तो पार पाना मुश्किल है।” राबर्ट ने कुछ झुझलाकर कहा, “कम से कम मुझे एक पत्रकार की हैसियत से तो मुलाकात कर लेने दो और मुलाकात होने पर अगर मैं उन्हें दो-चार सच बातें बता दूँ तो तुम्हें क्या एतराज़ है?”

राबर्ट सीधा शिमला चला गया और अनवर कुछ दिन बाद शिमला आने

का वायदा करके रास्ते में दिल्ली में उतर पड़ा। वह कई महीनों से अपने अब्बा से नहीं मिला था और उसके अब्बा ने लिखा था कि वह कम से कम कुछ दिन के लिए घर जरूर हो जाए।

उस बड़े-से खाली घर में अकेले रहने की वजह से अकबरअली बहुत बूढ़े लगने लगे थे और वे पहले से ज्यादा उदास भी रहते थे। उनके इस अकेलेपन को देखकर उनपर तरस आता था।

दोपहर को खाना खाकर जब बाप-बेटे अदरवाले ठंडे कमरे में सोने के लिए लेटे तो अनवर ने शिकायत के लहजे में कहा, “अब्बा, आप अपनी तन्दुरुस्ती का खयाल नहीं रखते। आप बहुत कमजोर और बीमार लगते हैं।”

“बेटा, मैं बीमार नहीं हूँ। बुढ़ापे का असर है। अब दिन-ब-दिन कोई मैं जवान थोड़े ही होता जाऊंगा। हा, मुझे रामेश्वर की जरूर फिक्र है।”

“क्यों, रामेश्वर काका को क्या हुआ?”

“तुम तो जानते ही हो कि उनकी सेहत वैसे भी कभी ठीक नहीं रही। खासी और दमे को शिकायत तो थी ही, बीच-बीच में बुखार भी आ जाता था। लेकिन इधर कुछ महीनों से उनकी तबियत कुछ ज्यादा ही खराब रहने लगी है। दिन-भर हलका-हलका बुखार रहने लगा है और बलगम के साथ अब खून भी आने लगा है। डाक्टरों का कहना है कि उन्हें कई बरस से टी० बी० है। एक फेफड़ा तो बिल्कुल बेकार हो चुका है।”

अनवर को बचपन से ही रामेश्वर काका से बहुत लगाव था और इसीलिए अब यह जानकर उसे बहुत दुःख हुआ कि वे इतने बीमार हैं।

“अब्बा, चलकर उन्हें देख आना चाहिए।”

“जरूर बेटा। मैं तो अभी कल ही गया था। तुम कल जाकर मिल आना। वे तुम्हारे बारे में अक्सर पूछते रहते हैं।”

रामेश्वर काका के फेफड़े की बात सुनकर अनवर बहुत दुःखी था। इतने दिन से टी० बी० का शिकार रहने की वजह से उन्होंने कितनी तकलीफ उठाई होगी, यह विचार आते ही अनवर डर गया। डाक्टर जमशेदजी ने उससे भी तो कहा था कि उसके फेफड़े कमजोर हैं और अगर उसने अपनी तन्दुरुस्ती का बहुत खयाल न रखा तो आगे चलकर...

“अब्बा!” उसने अचानक चौककर कहा, उसे डाक्टर साहब की एक दूसरी

बात याद आ गई थी। “अब्बा, मुझे अम्मा के बारे में कुछ बताइए।”

इस तरह अचानक यह सवाल पूछ लेना बहुत अनुचित था। अनवर ने जब अपने अब्बा की खोई-खोई नजरों में उदासी देखी तब उसे अपनी गलती का एहसास हुआ। बहुत दूर सून्य में ताकते हुए उन्होंने जवाब दिया “क्यों अनवर, उनके बारे में क्या जानना चाहते हो ? बहुत नेक औरत थी वह।”

“नहीं, मैं तो उनकी सेहत के बारे में जानना चाहता था। क्या उन्हें दिक की बीमारी थी ? क्या उनके फेफड़े कमजोर थे ? क्या वे टी० बी० में मरी थी ?”

“नहीं, नहीं,” बूढ़े अकबरअली ने बहुत जोर देकर इंकार किया, मानो अपनी मृत पत्नी के बारे में उन्हें इस तरह की बात बहुत बुरी लगी हो। “नहीं, उनकी सेहत तो हमेशा बहुत अच्छी रही। तुम्हारी पैदाइश के वक्त दाई की गलती की वजह से उनके खून में जहर फैल गया था और उसीमें वे मर गई थी। लेकिन यह खयाल तुम्हारे दिमाग में कैसे आया ?”

“कुछ नहीं अब्बा, बस योही। मैं बस जानना चाहता था।”

जिस समय अनवर रामेश्वरदयाल को देखने के लिए कमरे में गया उस समय उनके चेहरे पर मौत का पीलापन छाया हुआ था। वे पलंग पर लेंटे थे और चारों तरफ दवा की न जाने कितनी शीशिया रखी थी। रामेश्वरदयाल की पत्नी लाजवती ने अनवर को कमरे में जाने से पहले बताया था कि अच्छे से अच्छे डाक्टर का इलाज करा लिया गया था और डाक्टरों का ही नहीं बल्कि हकीमों, वैद्यों और होमियोपैथों का भी, लेकिन कई फायदा नहीं हुआ था। लाजवती पहले के मुकाबले में बहुत दुबली हो गई थी और ऐसा लगता था कि वे कई हफ्तों से सोई नहीं थी। उनकी सूजी हुई लाल आखों में आसू थे और उन्होंने सिसकिया लेकर रोते हुए कहा, “अब तो बस भगवान का नाम बाकी है।”

“काका !” अनवर ने धीमे से पुकारा, “मैं हूँ, अनवर।” रोगी की धंसी हुई आखों में उल्लास की चमक आ गई।

“बैठ जाओ बेटा,” उनकी आवाज इतनी धीमी थी कि ऐसा लगता था



जैसे किसी दूसरी दुनिया से लौटकर आ रही हो। “बम्बई से कब आए ?”

अनवर से उन्हें बताया और उसे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि अपनी बीमारी में भी रामेश्वर काका यह मालूम करते रहे थे कि वह कहा है।

“आपकी तबियत कैसी है काका ?” यह सवाल बेकार था, लेकिन शिष्टाचार के नाते पूछना आवश्यक था।

रामेश्वरदयाल के सूखे हुए चेहरे पर एक अजीब मुरझाई हुई मुस्कराहट दौड़ गई, मानो वे इस बात को समझ गए हो कि यह सवाल केवल शिष्टाचार के नाते पूछा गया था। जवाब में लालाजी ने, जिन्होंने स्कूल में अकबर-अली के साथ उर्दू और फारसी पढ़ी थी, सिर्फ इकबाल का यह मिसरा पढ़ा ‘चिरागे-सहर हू बुझा चाहता हू।’

न जाने क्यों अनवर को ऐसा लगा कि ये असली रामेश्वर काका थे जो मौत के बिस्तर पर लेटे हुए भी इकबाल के शेर पढ़ रहे थे, रामेश्वर काका वे नहीं थे जो घटो बैठे रुपये, आने, पाई का हिमाब जोड़ते रहते थे।

“अकबर का क्या हाल है ?” रामेश्वरदयाल ने पूछा और अनवर ने उन्हें बताया कि उनको कुछ काम पड़ गया था इसलिए वे कल आएंगे।

“सच्चा दोस्त हो तो अकबर जैसा हो। उसने मेरे लिए बहुत कुछ किया है। अगले जनम में भी मैं उसका एहसान नहीं चुका पाऊंगा।” इतना कहकर वे सांस लेने के लिए रुके मानो अपने क्षीण शरीर की सारी ताकत बटोर रहे हो। फिर उन्होंने एक ऐसी बात कही जो अनवर को कुछ अजीब लगी। “बेटा, उनका ध्यान रखना। और मुझसे वादा करो कि तुम उन्हें छोड़कर कभी नहीं जाओगे।” बीमार का दिल रखने के लिए अनवर ने कहा, “काका, आप फिक्र न कीजिए। मैं अब्बा को छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगा।”

बीमार रामेश्वरदयाल बिल्कुल थक गए थे। उनकी पत्नी ने उनसे आराम करने को कहा। उनको अब तक यह आशा बधी हुई थी कि वे अपनी सेवा से उन्हें फिर चंगा कर देगी। उनकी इस व्यर्थ आशा पर उनपर तरस आता था।

“काका, मैं आपसे फिर मिलूंगा,” इतना कहकर अनवर चला आया, लेकिन वह जानता था कि वह झूठ बोल रहा है। वह जानता था कि यह आखिरी मुलाकात है।

दूसरे दिन रामेश्वर काका का देहान्त हो गया और जब लोग उनका क्रिया-

कर्म करके लौटे तो अनवर को ऐसा लगा कि उसके अब्बा एक दिन में दस बरस और बूढ़े हो गए थे ।

अनवर ऐसे वक्त अपने अब्बा को छोड़कर नहीं जाना चाहता था जबकि उनके दिल पर अपने सबसे गहरे दोस्त की मौत का सदमा था । इसलिए उसने राबर्ट को शिमला खत लिख दिया था कि वह अभी दिल्ली में दो हफ्ते और रुकेगा और उसके बाद वह शिमला में या किसी भी दूसरी जगह उसमें मिल सकता है ।

अनवर के लिए दिल्ली में ठहरना कुछ अच्छा नहीं साबित हुआ । उसने देखा कि उसके अब्बा की बैठक में बहुत-से कट्टर मजहबी लोग जमा होने लगे थे । अपने बचपन में उसने वहाँ जो शांत और सुसंस्कृत वातावरण देखा था वह अब बाकी नहीं रह गया था—जब हकीम बेदिल अपने शेर सुनाते थे, रामेश्वर काका अपनी जाघ पर हाथ मारकर 'वाह, वाह' करके दाद देते थे और कोई अखबार से खबरे पढ़कर सुनाता था और चाय या शरबत के दौर चलते थे और उनके साथ हंसी-खुशी और रवादारी के वातावरण में राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक विषयों पर चर्चा होती थी । ऐसा लगता था कि रामेश्वर काका के मरते ही एक युग समाप्त हो गया था, जिन्दगी का एक ठर्रा मिट गया था । पुराने दोस्तों में बस चौधरी मुहम्मदउमर बाकी रह गए थे । और ये पजाबी व्यापारी सज्जन भी अब खान बहादुर हो गए थे, सरकारी ठेकेदार थे और म्युनिसिपल काउंसिलर भी । उनका कारोबार चमक गया था और उनके बेटे मोटरों में घूमते थे । वे बड़ी बेशरमी से सरकार का पक्ष लेते थे और कांग्रेस को बुरा-भला कहते थे और गांधीजी को सत्याग्रह शुरू करने के कारण बहुत गालियाँ देते थे ; क्योंकि सत्याग्रह का मतलब था आए दिन की हड़तालें और हर हड़ताल में उनके कारोबार का बहुत नुकसान होता था । लेकिन चूंकि वे इस बात को जानते थे कि अकबरअली खुद पहले सत्याग्रही रह चुके थे और वे सरकार से कुछ ज्यादा खुश नहीं थे, इसलिए चौधरी मुहम्मदउमर साहब कांग्रेस के खिलाफ जो भी बात कहते उसे साम्प्रदायिकता की आड़ में छिपाकर कहते । अनवर ने उन्हें एक बार यह भी कहते सुना था कि "अगर मैं हिन्दू

होता तो शायद मैं भी गांधी के साथ होता, लेकिन चूँकि मैं मुसलमान हूँ इसलिए मैं इस बनिये के पीछे नहीं चल सकता क्योंकि उसकी सारी तहरीक का मकसद मुसलमानों को खत्म कर देना है।” और जब भी वे इस तरह की कोई बात कहते थे तो उनके साथ के पाच-छ हाली-मवाली हमेशा उनकी हा में हा मिलाने को तैयार रहते थे।

ये सब बातें तो थी ही, तिसपर एक दिन ताया अमजदअली रियासत के किसी काम से दिल्ली आ धमके। इसके बाद तो अनवर के लिए वहाँ रहना बिल्कुल असह्य हो गया। अब वे सिर्फ रियासत के दीवान ही नहीं थे बल्कि छोटे नवाब साहब के ससुर भी थे, इसलिए उनकी अकड़ की कोई हद ही नहीं रह गई थी और अनवर के लिए उन्हें एक मिनट के लिए भी बर्दाश्त करना नामुमकिन था। यह जानते हुए कि अनवर कांग्रेसी विचारों का है, वे जान-बूझकर उसके सामने गांधीजी के बारे में और कांग्रेस के दूसरे नेताओं के बारे में बुरी-बुरी बातें कहते थे ताकि उसे गुस्सा आए और वे उसे डाट-फटकारकर धौंसिया सकें। अकबरअली को इस तरह की बातें अच्छी नहीं लगती थी लेकिन अपने बड़े भाई की जबान पर काबू रखना उनके बस के बाहर था। इसलिए जब उन्होंने देखा कि अनवर के लिए वहाँ रहना बहुत मुश्किल हो रहा है तो एक दिन उन्होंने खुद ही कहा, “मेरा खयाल है कि मिस्टर राबर्ट बहुत दिन से तुम्हारी इतजार कर रहे हैं। अब मैं भी बिल्कुल चगा हो गया हूँ और भाई साहब भी यहाँ हैं। तुम अब शिमला क्यों नहीं चले जाते? वहाँ की आबोहवा से भी तुम्हें बहुत फायदा होगा।”

उसी रात अनवर शिमला चला गया।

इतने महीनों से साथ-साथ काम करते रहने की वजह से राबर्ट अपने इटर-प्रेटर-असिस्टेंट को बहुत पसन्द करने लगा था इसलिए अनवर के वापस आ जाने पर वह बहुत खुश हुआ। उसकी पीठ पर एक जोर का धप मारते हुए राबर्ट ने कहा, “हैलो, अनवर ब्वाय, बहुत अच्छा हुआ कि तुम आ गए। सरकारी अफसरों के इस मनहूस शहर में तुम्हारा जैसा इंसान देखने को आखे तरस गईं।”

खबरों की दुनिया से वापस पहुँचकर अनवर भी बहुत खुश था। सेसिल



होटल में, जहाँ राबर्ट ठहरा हुआ था, राजनीतिज्ञों की भरमार थी—जाहिर है ये सारे नेता नरम दिल के थे। इनके अलावा बड़े-बड़े सरकारी अफसर और विदेशी मेहमान और अखबारों के विशेष सवाददाता भी बेशुमार थे।

“तो राबर्ट, भला वाइसराय से भी मुलाकात हुई?” अनवर बड़ी देर से यह सवाल पूछने की राह देख रहा था। खाना खाते वक्त भी वह बड़ी मुश्किल से ही चुप रहा। लेकिन राबर्ट के कमरे में पहुँचते ही उसे अकेला पाकर उसने यह सवाल पूछ ही लिया।

“हा हा, मिला क्यों नहीं।” फिर राबर्ट ने वाइसराय के एक एडीकांग की नकल उतारते हुए कहा, “हिज एक्सेलेंसी द गवर्नर-जनरल-इन-काउंसिल एंड वाइसराय ऑफ इंडिया विल बि ग्रेससली प्लीज्ड टु गिव यू द ऑनर ऑफ हैविंग योर कम्पनी ऐट लंच ऐट द वाइसरीगल लॉज, डाइनिंग रूम नम्बर थी। ट्राउजर्स कम्पलसरी, पिन-स्ट्राइप्स ऐंड स्पैट्स ऑप्शनल।”

अनवर के लिए अपनी हसी रोकना मुश्किल हो रहा था। उसने कहा, “मतलब यह कि उन्होंने लंच पर बुलाया था। और कौन-कौन था?”

“एक महाराजा साहब थे जिन्हें तीन पटाखों की सलामी दी जाती है। एक पादरी साहब थे जिन्हें यह शिकायत थी कि लोग ईसाई नहीं बन रहे हैं। एक आसाम के चाय के बागों के मालिक थे जो बहुत बड़े शिकारी की तरह यह बता रहे थे कि हिन्दुस्तान आकर पहले-पहल शेर कैसे मारना चाहिए। और एक बूढ़ा मेम साहब थी—मिसेज मिन-मिन जो लूली-लंगड़ी बिल्लियों की मदद के लिए पैसे जमा करने के लिए बहुत-से बूढ़े सनकी लोगों की एक दावत करने के इतजाम में तन-मन से जुटी हुई थी।” राबर्ट सचमुच उस दिन सबका मजाक उड़ाने पर तुला हुआ था।

“जब आपके बाईं तरफ मिसेज मिन-मिन बैठी हो और दाहिनी तरफ पादरी साहब बैठे हो तो आप उनकी बात काटकर यह तो कह नहीं सकते थे कि ‘योर एक्सेलेंसी, लूली-लंगड़ी बिल्लियों की बात पर मुझे याद आया कि मुल्क में जो सत्याग्रह का आंदोलन चल रहा है...’।”

“यही बात थी। बातचीत के दौरान में राजनीति का कोई सवाल उठाना नामुमकिन था, हालाँकि एक बार चाय के बागों के मालिक ने एक मौका दिया था। शिकार की बातें करते-करते जोश में आकर उन्होंने कहा कि अगर उनके

बस चलता तो इस 'बूढ़े गांधी' को गोली से उड़वा देते । लेकिन खाना खत्म हो जाने के बाद वाइसराय साहब जाकर एक सोफे पर बैठ गए । एक एडीकाग मेहमानों को एक-एक करके उनके पास ले जाता था और हर आदमी को सिर्फ पांच मिनट का वक्त दिया जाता था । मैं पन्द्रह मिनट तक बातें करता रहा और वाइसराय साहब का सारा प्रोग्राम गड़बड़ हो गया । दस मिनट ज्यादा लग गए । इसपर एडीकाग ने मुझे इतना घूरकर देखा जैसे ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिल गई हो ।”

“क्या-क्या बातें हुईं ?”

“वाइसराय साहब ने पहली गलती तो यह की कि वे मुझसे पूछ बैठे कि मैंने हिन्दुस्तान में क्या देखा ।”

“और आपने जो कुछ देखा था सब उन्हें बता दिया ?”

“एक-एक बात खोलकर उनके सामने रख दी । लाठी-चार्ज, बम्बई में औरतो का जुलूस, गुजरात के किसानों की बगावत—मैंने सारा कच्चा चिट्ठा उनके सामने खोलकर रख दिया । आखिर मैंने हिज एक्सेलेंसी को यह भी चेतावनी दे दी कि शिमला में वे एक ज्वालामुखी के मुह पर बैठे हैं जो फूट रहा है ।”

“यह बात तो उन्हें अच्छी नहीं लगी होगी ?”

“मेरे खयाल से तो अच्छी नहीं लगी होगी । लेकिन अनवर, सच कहता हूँ, मुझे उस बेचारे पर तरस आता है । जिस मुल्क पर वह हुकूमत करता है, उसके बारे में उसे बहुत ही थोड़ी जानकारी है । तुम्हें अन्दाज़ा नहीं कि शिमला के लोग कितने जाहिल हैं ।”

“इसमें किसका कसूर है ?”

“जाहिर है हुकूमत के इस तरीके का जो गर्मी और धूल और मुल्क की हकीकतों से बचाकर उन्हें यहाँ इतनी दूर बिठाकर रखता है । यहाँ कोई अखबार पढ़ता ही नहीं है, क्योंकि यहाँ अखबार दो-तीन दिन देर से पहुँचते हैं । हर आदमी, यहाँ तक कि वाइसराय भी, रायटर की भेजी हुई रिपोर्ट पढ़ता है जिसमें खबरों को बहुत काट-छांटकर, एकतरफा ढंग से बहुत ही थोड़े में पेश किया जाता है । होम डिपार्टमेंट सूबों की राजधानियों से आनेवाली रिपोर्टें वाइसराय के पास भेजता है, लेकिन जो कुछ होता है उसकी मोटी-मोटी रूपरेखा का पता चलने

मैं भी एक-एक हफ्ता लग जाता है।”

लेकिन अनवर तो यह जानने के लिए बेचैन था कि वाइसराय ने क्या कहा।

“मैंने उनसे पूछा कि गांधीजी के बारे में उनकी क्या राय है। और उन्होंने मुझे अपनी राय बताई—लेकिन इस शर्त पर कि मैं किसीसे कहूँगा नहीं। हर पत्रकार को वाइसराय से इसी शर्त पर मिलने दिया जाता है कि लाट साहब जो कुछ भी कहेंगे उसे वह किसीसे कहेंगा नहीं। लेकिन तुम्हें मैं बता सकता हूँ। मुझे उनकी बात अच्छी तरह याद है क्योंकि मुझे एक वाइसराय के लिए ऐसी बात कहना कुछ अजीब लगा था। उन्होंने बहुत चालाकी से गोल-मोल बात कही थी, लेकिन उनकी राय कुछ बहुत अच्छी नहीं थी। उन्होंने कहा, ‘जब मैं पहली बार गांधी से मिला तो मैं उनकी पवित्रता से बहुत प्रभावित हुआ। जब मैं उनसे दुबारा मिला तो मुझपर कानूनी मामलों में उनकी होशियारी का बहुत असर पड़ा। तीसरी बार मिलने पर मुझे इस बात का यकीन हो गया।’ जब मैंने पूछा, ‘योर एक्सेलेंसी, आपको इन दोनों में से किस बात का यकीन हुआ गया?’ तो उन्होंने मुस्कराकर सिर्फ इतना कहा, ‘इसका फैसला आप खुद करें।’”

वाइसराय के इस मजाक पर अनवर कुछ खास खुश नहीं हुआ। “तो इसका मतलब यह है कि सरकार समझौता करने को तैयार नहीं है—और एक तरह से मुझे इस बात की खुशी ही है।”

“वाइसराय की बातों से तो मुझे ऐसा नहीं लगा। मैं तो समझता हूँ कि लाख जानकारी न होते हुए भी उन्हें अब इस बात पर खीझ होने लगी है कि गांधीजी की अहिंसा को कुचलने के लिए उन्हें पुलिस के डंडों का सहारा लेना पड़ता है। इस बात को न भूलो कि वे भी अपनी इस ख्याति को कायम रखना चाहते हैं और निभाना चाहते हैं कि वे ‘ईसाई वाइसराय’ हैं। जब वक्त आएगा और विलायत में सरकार अहिंसा की ताकत को महसूस करने लगेगी तब वे भी गांधीजी से समझौते की बातचीत करने पर फौरन राजी हो जाएंगे।”

“अहिंसा की ताकत को या विलायती माल के बायकाट के असर को?”

“अंग्रेज के लिए दोनों एक ही चीज़ है।”

राबर्ट के साथ काम करने में सबसे बड़ा फायदा यही था कि उसमें विचारों



के आदान-प्रदान का और बौद्धिक दाव-पेच दिखाने का बहुत मौका मिलता था। इससे अनवर का दिमाग भी तेज रहता था और जीवन तथा काम के प्रति उसका उत्साह बना रहता था।

शिमला में गर्मियों में सरकार की राजधानी जरूर रहती थी लेकिन वहां खबर कोई नहीं मिलती थी। इसलिए वहां के ठंडे मौसम का काफी दिन तक आनन्द ले चुकने के बाद उन्होंने फैसला किया कि वे पहाड़ से नीचे उतरकर अपना दौरा फिर शुरू करेंगे और अलग-अलग सूबों में सत्याग्रह का आंदोलन देखेंगे। एक दिन रात को सेसिल होटल में खाना खाते हुए अनवर ने राबर्ट के कान में कहा, “वे सर तेजबहादुर सप्रू बैठे हैं। उनके यहां होने में भी कोई सियासी चाल जरूर होगी।” अनवर ने बताया कि सप्रू और जयकर को ‘राजनीति के क्षेत्र के जुड़वा भाई’ कहा जाता था और चूंकि यह बात सबको मालूम थी कि जयकर साहब सरकार और कांग्रेस के बीच समझौता कराने की कोशिश कर रहे थे इसलिए सप्रू का भी इसमें शामिल होना जरूरी था।

‘कमरे में वापस पहुंचकर अनवर ने ‘स्टेट्समैन’ उठाकर देखा। उसमें लिखा था कि उससे पिछली रात को सप्रू ने वाइसराय के साथ खाना खाया था। दूसरे दिन अनवर ने होटल के दफ्तर में पूछा तो मालूम हुआ कि सर तेज उसी दिन इलाहाबाद वापस जा रहे थे।

“वे इलाहाबाद में ही रहते हैं न?” राबर्ट ने पूछा।

“हां,” अनवर ने जवाब दिया, “लेकिन साथ ही यह बात भी है कि वहीं नैनी जेल में जवाहरलाल भी कैद है। अगर सप्रू साहब को अपने घर ही वापस जाना होता तो वे सिर्फ दो दिन के लिए शिमला न आते।”

संयोग कुछ ऐसा हुआ कि कुछ दिन बाद जब इलाहाबाद के पास नैनी के छोटे-से स्टेशन पर एक दिन बहुत रात गए जेल की गाड़ी में पंडित मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल और डाक्टर महमूद को लाया गया तो वहां सिर्फ दो ही पत्रकार मौजूद थे—राबर्ट और अनवर। जेल की गाड़ी से उतारकर उन्हें सीधे एक सुनसान प्लेटफार्म पर ले आया गया। वहां एक स्पेशल ट्रन उनके लिए खड़ी थी। इंजन से धुआं निकल रहा था और गाड़ी पूना जाने के लिए तैयार थी।

अनवर ने देखा कि मोतीलालजी बीमार लग रहे थे और उनका रंग पीला पड़ गया था। उसने मौका पाकर जवाहरलाल से पूछ ही तो लिया, “आपकी राय में क्या समझौता होने की कोई गुंजाइश है?” इतने में गाड़ी चल दी और अनवर के सवाल के जवाब में जवाहरलाल ने अपने पास सीट पर रखा हुआ उस दिन का अखबार उठाकर उसकी तरफ इशारा करते हुए बड़ी कटुता से पूछा, “क्या यह समझौते की निशानी है?” अखबार के पहले ही पृष्ठ पर एक भयानक लाठी-चार्ज और कांग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष वल्लभभाई पटेल, पंडित मदनमोहन मालवीय, तसद्दुकअहमदखा शेरवानी और वर्किंग कमेटी के दूसरे सदस्यों की गिरफ्तारी की खबर छपी हुई थी। साथ ही गिरफ्तार किए गए इन नेताओं की एक तसवीर भी छपी हुई थी। अनवर को तसवीर में उनके पीछे ‘बाइकना हाउस आफ करेक्शन’ का बड़ा-सा साइनबोर्ड लगा हुआ देखकर बहुत हसी आई। यहां बिगड़े हुए आवारा बच्चों को सुधारने के लिए रखा जाता था।

जब ट्रेन चली गई तो राबर्ट ने कहा, “इन लोगों को इस तरह जाते देखकर मुझे उस बद गाड़ी की याद आ गई जिसमें लेनिन को क्रांति शुरू करने के लिए जर्मनी से रूस ले जाया गया था।”

“हमें तो हिन्दुस्तान में जो क्रांति हो रही है उसकी खबरे जमा करनी हैं। चलिए, हम लोग अपना काम करें। जवाहरलाल की सूरत देखकर तो मुझे इस बात का यकीन हो गया कि कोई समझौता नहीं होगा।”

और एक बार फिर उस पुराने पत्रकार ने अनवर को चेतावनी दी “अनवर, किसी बात का इतना ज्यादा यकीन नहीं रखना चाहिए।”

उन्होंने संयुक्त प्रांत में अपना दौरा शुरू किया। कांग्रेस ने यहां के किसानों को संगठित करके लगान अदा न करने का आंदोलन चलाया था। कांग्रेस ने जमींदारों से भी कहा था कि वे सरकार को मालगुजारी न दें। लेकिन वे तो सरकार की दया पर पलते थे इसलिए उनमें से लगभग सभीने मालगुजारी अदा कर दी थी। यहां तक कि उन जमींदारों ने भी, जो कांग्रेस के आंदोलन के साथ सहानुभूति रखने का दम भरते थे, चुपचुपाते सरकार की मालगुजारी भर दी

थी। लेकिन अनपढ़ और गरीब किसान अपनी जगह पर डटे रहे और उन्होंने लगान नहीं दिया। उनकी गरीबी ने उन्हें अपनी जान की बाजी लगा देने की हिम्मत दी थी—उनके पास खोने को था ही क्या।

“कांग्रेस ने हिंदुस्तान के गांवों में समाजवाद का संदेश पहुंचा दिया है और किसानों की आखें खोल दी हैं,” राबर्ट ने अपनी एक रिपोर्ट में लिखा, “लेकिन एक दिन कांग्रेस खुद पछताएगी जब वह देखेगी कि समाजवादी आंदोलन के बढ़ने से उसके लिए खतरा पैदा हो गया है।” अनवर ने यह पढ़कर कहा, “राबर्ट, तुम भी बला के ‘सिनिक’ हो।”

गांव का दौरा करते हुए बीच-बीच में वे गंगा की घाटी के प्रख्यात ऐतिहासिक नगरों का भी दौरा करते थे—इलाहाबाद, जिसे पुराने जमाने में प्रयाग कहा जाता था और जो गंगा और यमुना के पवित्र संगम पर बसा हुआ था; गोमती के किनारे बसा हुआ लखनऊ, जहां अवध के नवाबों के खानदानवाले अभी तक वसीका पाते थे और अपने बीते हुए ऐश के दिनों पर आसू बहाते थे;—कानपुर का तेजी से बढ़ता हुआ औद्योगिक नगर, जहां मजदूरों में बेचैनी पैदा होने लगी थी और जहां अब से सात साल पहले हिन्दुस्तानी कम्युनिस्टों ने अपना पहला सम्मेलन किया था। दिन-रात एक जगह से दूसरी जगह घूमते हुए और राजनीतिक हलचल की खबरें जमा करते हुए अनवर ने अपने हृदय की पीड़ा को दबा लिया था। लेकिन एक दिन कानपुर के स्टेशन पर वेटिंग-रूम में बंठे-बैठे उसने वक्त काटने के लिए ‘इल ट्रेडेड वीकली’ का एक पुराना अंक उठा लिया जिसके पन्नों के कोने मुड़ गए थे। अचानक एक पृष्ठ पर, जिस पर नवविवाहितों के चित्र छपे थे, उसे सलमा और मजूर का चित्र दिखाई दिया। सलमा का चेहरा खुशी के मारे फूल की तरह खिला हुआ था और उसका खिला हुआ चेहरा देखकर अनवर को ऐसा लगा जैसे कोई उसे कोड़े मार रहा हो। चित्र के नीचे लिखा था: ‘अलीगढ़ यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर एम० सलीम की बेटी सलमा खातून जिनका विवाह अभी कुछ दिन पहले यू० पी० पुलिस सर्विस के मजूरआलम के साथ हुआ, जो आजकल कानपुर में नियुक्त है।’

उसी दिन बाद में एक फटीचर तागे पर सिविल लाइस से गुजरते हुए अनवर ने एक बंगला देखा जिसके चारों ओर मेहदी की झाड़ियां लगी हुई थी जिन्हें बहुत सफाई से काट रखा गया था और फाटक पर एक तख्ती लगी थी



जिसपर लिखा था : 'मंजूरआलम, डी० एस० पी०।' तो यहा रहती थी उसकी सलमा— इन भाडियो के पीछे। अगर वह उसका नाम लेकर पुकारता तो वह सुन लेती। अगर वह फाटक के अंदर चला जाता तो उससे मिल सकता था। वह सलमा के कितना पास था—फिर भी कितना दूर।

“क्या हुआ तुम्हे ?” राबर्ट ने पूछा। तागा हिचकोले खाता हुआ चल रहा था, “ऐसा लगता है जैसे तुमने कोई भूत देखा हो।”

अनवर के होठो पर एक फीकी-सी मुस्कराहट दौड़ गई। “शायद भूत ही देखा है।”

अनवर बहुत खुश हुआ कि उसी रात वे कलकत्ता के लिए रवाना हो गए। वह कानपुर से दूर चला जाना चाहता था—बहुत दूर।

इसके बाद छ महीने तक उनकी जिन्दगी रेलगाडी के पहियों की गडगडाहट की धुन पर ही चलती रही। वे सारे देश का दौरा करते रहे। किसी प्रकाशक ने राबर्ट से एक किताब लिखने को कहा था, इसलिए वह अब जहा भी जाता था वहा ज्यादा दिन तक ठहरता था और मौजूदा राजनीति की सतह के नीचे भारतीय जीवन के स्रोतो को ज्यादा गहराई से देखता था। कलकत्ता में अनवर ने राय का पता लगाने की कोशिश की लेकिन वह जेल में था। उनकी मुलाकात जोशीले नौजवानो से हुई, जिन्होंने खुले तौर पर उन्हें बताया कि वे महात्मा गांधी को सिर्फ यह साबित करने का मौका दे रहे हैं कि उनकी अहिंसा कारगर हो सकती है और अगर वे कामयाब न हुए तो वे बम और रिवाल्वर का अपना तरीका इस्तेमाल करेंगे। कुछ नौजवान तबे सत्याग्रह की सफलता से निराश भी हो चुके थे और उन्होंने पूर्वी बंगाल में चटगाव के पास जान हथेली पर रखकर एक फौजी चौकी पर छापा मारा था और क्रांतिकारी आंदोलन की वीरतापूर्ण घटनाओं में 'चटगाव शस्त्रागार कांड' का भी उल्लेख किया जाने लगा था। वे शातिनिकेतन में रवीन्द्रनाथ ठाकुर से भी मिले। वे कवि भी थे, दार्शनिक भी और जीवन-सौंदर्य के प्रेमी भी। इस प्रकार वे गांधीजी से बहुत भिन्न थे पर दोनों एक-दूसरे का बहुत सम्मान करते थे। साल-भर से राजनीति की हलचल में फसे रहने के बाद अनवर को शातिनिकेतन जाकर बहुत शांति मिली।

वर्षा अभी समाप्त ही हुई थी। चारो ओर हरियाली छाई हुई थी। हर तरफ शांति का राज्य था। वह इच्छानुसार कहीं भी जा सकता था। कोई रोक-टोक नहीं थी। एक पेड़ के नीचे कुछ लड़के घास पर बैठे हुए अध्यापक का व्याख्यान सुन रहे थे। नृत्यशाला में काली-काली आखोवाली सुकोमल बंगाली लड़कियाँ मणिपुरी नृत्य की मनोमोहक मुद्राओं का अभ्यास कर रही थी। एक जगह कोई गायक अपनी गूँजती हुई आवाज़ में टैगोर का गीत गा रहा था।

वर्षा समाप्त होकर अब शरदऋतु आ गई थी, इसलिए सफर करने में भी अब कोई तकलीफ नहीं होती थी। दूर तक फैले धान के खेतों को पार करते हुए, जिनपर जमींदारों का कब्जा था, वे बंगाल से बिहार पहुँचे। यही महात्मा बुद्ध का प्राचीन देश था जिन्होंने ईसा से भी पहले अहिंसा का उपदेश दिया था। यहाँ से वे संयुक्त प्रांत और दिल्ली होते हुए पंजाब के लहलहाते हुए गेहूँ के खेतों के बीच पहुँचे। अनवर राबर्ट को ऐतिहासिक जलियाँवाला बाग दिखाने ले गया और दीवारों पर गोलियों के निशान देखकर उसे दस वर्ष पहले के दुर्न भयानक क्षणों की याद आ गई।

अब तक पुराने जमाने से जितने लोगो ने भी भारत पर हमला किया था वे सब पेशावर से लाहौर की तरफ आए थे। पर वे उलटी दिशा में लाहौर से पेशावर जा रहे थे। किस्मत से यूनस जेल के बाहर था। एक ही साल के अंदर वह काफी लम्बा हो गया था और काफी बड़ा लगने लगा था। उसने उन दोनों को दिखाया कि उसके वतन में कैसा चमत्कार हो गया था। सिर्फ इतना ही नहीं हुआ था कि हमेशा से अपनी बहादुरी के लिए सराहे जानेवाले पठानों ने अब अहिंसा का रास्ता अपना लिया था और वे मौत को तिरस्कार से देखने लगे थे बल्कि उनका एक मजबूत राजनीतिक और सामाजिक संगठन भी बन गया था जिसमें आने के बाद कबीलों और खानदानों के सारे पुराने झगड़े मिट गए थे। इस संगठन का कांग्रेस के साथ गहरा संबंध था और ये लोग अपने को 'खुदाई खिदमतगार' कहते थे। वे राजनीतिक चेतना फैलाने के साथ ही साथ शिक्षा, समाज-सुधार और एकता के लिए भी काम करते थे। चूँकि इस इलाके में उस पार, जहाँ दो देशों की सीमा भी ठीक से तै नहीं थी, खौफनाक कबीलों की बस्तियाँ थी जिनकी गोली का निशाना कभी नहीं चूकता था और जो ज़रा-ज़रा-सी बात पर मरने-मारने को उतारू रहते थे और चूँकि अंग्रेजों ने यह होआ

खड़ा कर रखा था कि रूसी किसी भी वक्त अफगानिस्तान के रास्ते भारत पर हमला कर सकते हैं, इसलिए सरकार इस इलाके को फौजी बचाव की दृष्टि से बहुत महत्त्व देती थी। इसीलिए यहाँ दमन भी ज्यादा हुआ था। दूसरी जगहों पर जितनी लाठियाँ चली होगी उतनी ही बार यहाँ गोली चली थी।

यूनुस ने उन्हें एक कमाल की घटना बताई जिसके बारे में अखबारों में लगभग कुछ भी नहीं कहा गया था। ज़ाहिर था कि पेशावर से आनेवाली इन खबरों को सेसर ने काट दिया था। हमेशा से सरकार के वफादार गढ़वाली सिपाहियों की एक टुकड़ी को उनके अग्रेज अफसरों ने पेशावर की एक बड़ी सड़क पर आते हुए जुलूस पर गोली चलाने का हुक्म दिया, लेकिन गढ़वालियों ने इकार कर दिया; कोर्ट मार्शल की धमकी देने पर भी उन्होंने गोली नहीं चलाई। उन सबको लम्बी सजाए दे दी गई, लेकिन आम लोगों पर इसका बहुत गहरा असर पड़ा।

२६ जनवरी, १९३२ ! एक और स्वतन्त्रता दिवस। यूनुस इस मौके पर उन दोनों को एक गाँव में ले गया जो लाल कुर्तीवालों का गढ़ था और जहाँ वे कांग्रेस का झंडा फहराकर स्वतन्त्रता की शपथ लेनेवाले थे।

कई सौ बलिष्ठ और लम्बे-चौड़े पठानों के सामने जब पश्तो में स्वतन्त्रता की शपथ पढ़ी गई तो अनवर के कानों को वह कुछ अजीब-सी लगी। उनमें से ज्यादातर पठान कत्थई रंग की खद्दर की कमीजें पहने थे। उनके पीछे मशहूर खैबर दर्रा दिखाई दे रहा था। अनवर सोचने लगा कि इन बहादुर पठानों ने बहुत-से गुण इन्हीं कठोर निर्जन पहाड़ियों से ग्रहण किए हैं जिनके बीच वे सदियों से रहते आए हैं।

जब झंडाभिवादन समारोह समाप्त हो गया तो उन्हें खैबर दर्रे की तरफ से बार-बार गोलियाँ चलने की आवाज़ आती हुई सुनाई दी। थोड़ी ही देर बाद दो हवाई जहाज़ पहाड़ियों पर नीचे-नीचे उड़ते हुए दिखाई दिए और कहीं बहुत दूर चट्टानों के बीच बम का धमाका सुनाई दिया। आर० ए० एफ० के हवाई जहाज़ 'विद्रोही सीमांत प्रदेश' में 'विद्रोहियों को दंड' दे रहे थे। भारत में चलनेवाले आंदोलन से भुभुलाकर साम्राज्यवादी सीमा के उस पार अपनी



‘फ़ारवर्ड पालिसी’ चला रहे थे ।

वे जब मोटर पर पेशावर वापस पहुँचे तो उन्होंने देखा कि बाज़ार में बड़ी हलचल है । कोई बहुत बड़ी घटना हो गई थी । उन्होंने मोटर रोककर एक आदमी से पूछा कि आखिर बात क्या थी । उस सीधे-सादे पठान ने बड़े जोश के साथ पश्तो में कहा :

“ गांधीखान को छोड़ दिया ।

“ जवाहरखान को छोड़ दिया ।

“ इन्कलाबखान को मगर नहीं छोड़ा । क्यों ? ”

जब वे दिल्ली पहुँचे उस वक़्त तक गांधी-इर्विन समझौते की बातचीत शुरू हो गई थी और विंस्टन चर्चिल ने बहुत आग-बबूला होकर कहा था कि अजब अंधेर है कि एक नगा फकीर हिज़ मैजेस्टी किंग-एम्परर के प्रतिनिधि के साथ बराबरी से बातचीत करने के लिए वाइसराय की कोठी की सीढ़ियों पर चढ़ेगा ।

कांग्रेस के नेता डाक्टर असारी के यहाँ ठहरे हुए थे और अनवर बिना रोक-टोक के कहीं भी जा सकता था । जिसकी वजह से उसे दूसरे सवाददाताओं की तरह बरामदे में बैठकर इन्तज़ार नहीं करना पड़ता था । उसने देखा कि जवाहरलाल अपने पिता के मर जाने की वजह से बहुत उदास थे । बादशाहों जैसी तबियत रखनेवाले मोतीलालजी जेल से छूटने के कुछ ही दिन बाद मर गए थे । सरोजिनी नायडू भी वहाँ मौजूद थी । नवयुवक अनवर इस बूढ़ी कवयित्री को देखकर बहुत प्रभावित हुआ था । उन्होंने ड्राइंग-रूम के एक कोने में अपना दरबार लगा रखा था जहाँ उनके पुराने दोस्तों और युवा प्रशंसकों का जमाव था और उन्हें वे अपनी ज्ञान-भरी बातें सुना रही थी और बीच-बीच में उन्हें हसाती भी जाती थी । देश-भर से विभिन्न प्रांतों के बहुत-से नेता भी आए हुए थे और डाक्टर असारी के बार्चियों को इतने बहुत-से लोगों को अलग-अलग उनकी पसंद का खाना खिलाने में बहुत मुश्किल पड़ रही थी । कुछ नेताओं का खाना तो सबसे निगला होता था । गांधीजी तो सिर्फ बकरी का दूध पीते थे और खजूर खाते थे । उनके एक चेले सिर्फ दही खाते थे । एक और सज्जन सिर्फ दर्जन-भर सतुरे और छः सेब खाकर ज़िन्दा रहते थे ।

सारा घर एक अजीब राजनीतिक सराय बना हुआ था। दिन-भर, और रात के वक्त भी, राजनीतिज्ञ, पत्रकार, अखबारों के फोटोग्राफर, विदेशी समाशबीन और अवसरवादी लोग वहां मडराते रहते थे। उनमें से कुछ तो अभी कल तक सरकार के पिटू थे लेकिन अब हवा का रुख पलटता हुआ देखकर उन्होंने कांग्रेसियों के साथ मेल-जोल बढ़ाना शुरू किया था। बातचीत चलते हुए कई हफ्ते हो गए थे पर अभी तक कोई समझौता नहीं हो पाया था। वातावरण में एक अजीब तनाव था और हर आदमी आशा लगाए बैठा था। रोज रात को वाइसराय की कोठी से गांधीजी के वापस लौटने पर बंद कमरे में वर्किंग कमेटी की मीटिंग होती थी। लेकिन सदस्य कोई बात बाहर न कहने के लिए वचनबद्ध थे, इसलिए पत्रकारों को अटकल से काम लेना पड़ता था और रोज विशेष सवाददाताओं को कोई न कोई तर्कसंगत कहानी गढ़नी पड़ती थी। कोई लिखता : समझौते की बातचीत पारस्परिक सम्मान और सद्भावना के वातावरण में चल रही है। परिस्थिति आशाजनक है। विश्वास किया जाता है कि ब्योरे की कुछ बातों पर मतभेद के कारण समझौता होने में विलम्ब हो रहा है। वाइसराय ने लदन तार देकर आदेश मांगा है। गांधीजी वर्किंग कमेटी के सदस्यों के साथ विचार-विनिमय करके समझौते की शर्तें तै कर रहे हैं।

रोज रात को सब लोग जागते रहते थे और वाइसराय के यहां से गांधीजी के लौटने की प्रतीक्षा करते थे, यह सुनने की आशा में कि समझौते पर हस्ताक्षर हो गए। कभी-कभी गांधीजी सुबह तक लौटकर नहीं आते थे और उनके आने में इस विलम्ब से ही लोगों को आशा बघने लगती थी। अखबारवाले भागकर उनकी मोटर के पास पहुंचते थे और पूछते थे, “हो गया ?” और वे मुस्कराकर अपना सिर हिला देते थे, “नहीं, मैं दो दिन बाद फिर वाइसराय से मिलने जाऊंगा।” फिर कोई पूछता, “क्या आपको अब भी उम्मीद बाकी है ?” और वे जवाब देते, “मैं कभी उम्मीद नहीं छोड़ता।” फिर कोई लाचारी से पूछता, “गांधीजी, कब तक समझौता होने की उम्मीद है ?” और गांधीजी आकाश की ओर आंखें उठाकर कहते, “सब भगवान के हाथों में है।”

भगवान—और समझौते की बातचीत करनेवाले दोनों व्यक्ति जो दैवी

पथ-प्रदर्शन में हठ आस्था रखते थे—सारी दुनिया को तीन सप्ताह तक प्रतीक्षा कराते रहे। लोगो की उत्सुकता बेहद बढ़ गई। सवाददाता भी विलम्ब के लिए नये बहाने गढ़ते-गढ़ते तग आ चुके थे। अनवर, जो उस घर में बिना रोक टोक आ-जा सकता था, बाकी लोगो से कुछ ज्यादा जानकारी रखता था। एक बार समझौते की बातचीत में कुछ दिन खाली चले गए तो लोग यह समझने लगे कि बातचीत असफल रही। कुछ नेता तो अपना बोरिया-बिस्तर भी बाधने लगे और वकिंग कमेटी ने फिर से सघर्ष शुरू करने की योजना पर विचार करने के लिए एक लम्बी बैठक की, लेकिन दूसरे ही दिन वाइसराय का एक दूत गांधीजी के लिए एक मुहरबद लिफाफा लाया। बाद में पता यह चला कि उसी रात को दोनों फिर मिलेगे।

शाम को गांधीजी डाक्टर असारी के मकान की एक छत पर प्रार्थना करने-वाले थे। छत पर से सामने ही यमुना का सुन्दर दृश्य दिखाई पड़ता था। इस अवसर पर बहुत-से लोग वहा जमा थे। कुछ लोग तो अपनी धार्मिक प्रवृत्ति के कारण वहा जमा थे और कुछ केवल उत्सुकतावश आ गए थे। जब प्रार्थना समाप्त हुई और लोग जाने लगे तो दूध जैसे सफेद खद्दर के वस्त्र पहने हुए किसी आदमी ने अनवर को नाम लेकर पुकारा। एक क्षण के लिए तो अनवर उन्हें पहचान नहीं पाया, पर सहसा उसे ध्यान आया कि वे सेठ मानिकलाल शाह थे। वे यहा क्या कर रहे थे ?

“हेलो, अनवर,” वे जरूरत से ज्यादा तपाक से अनवर से मिले और यह बताने के बाद कि वे किसी काम से दिल्ली आए थे और माजी, आशा और मोहन के बारे में अनवर के सवालो का जवाब देने के बाद वे फौरन अपने मतलब की बात पर आ गए। “अनवर, तुम्हारी क्या राय है ? क्या समझौता हो जाएगा ?”

अनवर खुद अभी तक इस सिलसिले में कोई फैसला नहीं कर पाया था, फिर भी उसने कहा, “वाइसराय ने फिर गांधीजी को बुलाया है। इसलिए कुछ उम्मीद तो है।”

“थैंक यू !” इतना कहकर सेठजी गायब हो गए और अनवर अपने विचारों में खोया खड़ा रहा।

उस रात सब सवालो का जवाब मिल गया और सारी शकाए दूर हो गई ।



आशाओं का भग हो जाना भी हफ्तों की उस दुविधा से बेहतर था ।

आधी रात के बाद अघेरे को चीरती हुई मोटर की तेज रोशनिया आगे बढ़ती हुई दिखाई दी । सब लोग गांधीजी का स्वागत करने के लिए उठ खड़े हुए लेकिन मोटर पर केवल एक उत्साही पत्रकार था, एक स्थानीय अखबार का चीफ रिपोर्टर । “हो गया !” उसने चिल्लाकर कहा, “मैं सीधा वाइसरीगल लॉज से आ रहा हूँ ? उन लोगों ने कागज़ और कलम मगवाया है ।”

घंटे-भर बाद गांधीजी मोटर पर आए । मोटर पर नम्बर की जगह ताज लगा हुआ था । गांधीजी के हाथ में एक लिपटा हुआ कागज़ था । जवाहरलाल आधी रात से कुछ पहले ही जाकर सो गए थे । उन्हें जगाया गया और वे आखे मलते हुए गांधीजी से मिलने आए । फिर दोनों वर्किंग कमेटी की मीटिंग करने के लिए अदर चले गए । मीटिंग बहुत थोड़ी देर चली । समझौते की शर्तें सदस्यों को पढ़कर सुनाई गई । और फिर सब लोग सोने चले गए ।

अनवर कहीं से समझौते की एक नकल ले आया और उसकी शर्तें पढ़कर उसका दिल बैठने लगा । इसमें तो सदेह नहीं कि सरकार को कुछ झुकना पड़ा था, और यह समझौता खुद इस बात का सबूत था कि सरकार ने कांग्रेस और गांधीजी की ताकत और साख को मान लिया था । पर अनवर को लाख ढूढ़ने पर भी कहीं इस बात का उल्लेख नहीं मिला कि भारत को स्वतंत्र और आजाद होने का अधिकार दिया गया है । ‘भारत की सावैधानिक सरकार की योजना’ का जहाँ पर उल्लेख किया गया था वहीं पर ‘प्रतिरक्षा, वैदेशिक मामलात, अल्पमत जातियों की स्थिति, भारत के वित्तीय ऋण और दायित्वों की पूर्ति’ के सबंध में कुछ अधिकार ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथ में रोक भी लिए थे । गांधीजी ने इस शर्त में इतना जरूर जुड़वा लिया था कि ‘भारत के हित में’, लेकिन यह एक झूठी तसल्ली थी क्योंकि इसका अर्थ हमेशा दो तरह से लगाया जा सकता था । क्या साम्राज्यवाद का यह दावा नहीं था कि भारतवासियों को आजादी न देना भी ‘भारत के हित में’ था ?

रात बहुत हो गई थी । वह अब घर नहीं जा सकता था । उसने टेलीफोन पर राबर्ट को समझौते का खुलासा बताया और ड्राइंग-रूम में सोफे पर लेट गया । लेकिन उसे नींद नहीं आई । बगलवाले कमरे में रोशनी हो रही थी और उसने दरवाज़े के काच से झाँककर देखा कि जवाहरलाल भी जाग रहे थे ।

वे विचारों में डूबे हुए थे और सामने रात्रि के अंधकार में घूर रहे थे। अनवर सोचने लगा कि शायद वे रावी के किनारे की उस यादगार रात के बारे में सोच रहे होंगे, जनता के साहसपूर्ण कारनामों को, लोगों ने जो मुसीबतें भेली थी उनको और उनकी कुरबानियों को याद कर रहे होंगे। उस क्षण अनवर को ऐसा लगा कि उसके हृदय में भी वही पीड़ा और उदासी थी जो उस चेहरे पर स्पष्ट झलक रही थी जिसे वह इतने समय से अपनी समस्त भावनाओं, विचारों और आशाओं का प्रतीक समझता आया था।

यही सोचते-सोचते उसकी आँख लग गई और जब उसकी आँख खुली उस समय रात्रि के पिछले पहर की ठंडी हवा चल रही थी। नदी की ओर से आने-वाली ठंडी हवा के झोंके से एक खिड़की खुल गई थी और जब वह खिड़की बंद करने के लिए उठा तो उसने देखा कि जवाहरलाल का कमरा खाली पड़ा है। वह जानता था कि रोज इस समय वे गांधीजी के साथ टहलने जाते थे। इसलिए वह हिम्मत करके कमरे में चला गया। जहाँ वे बैठे थे, वहाँ मेज़ पर लैम्प के पास एक पैड रखा था जिसपर बार-बार उन्होंने अंग्रेजी में कविता की दो पक्तियाँ लिख रखी थी :

This is the way the world ends,  
Not with a bang but a whimper.

.(ससार का अंत इसी प्रकार होता है—धमाके के साथ नहीं बल्कि एक छुटी हुई आवाज़ के साथ।)

जब वह निकलकर बाहर बरामदे में आया तो उसने गांधीजी और जवाहरलाल को टहलकर वापस लौटते हुए देखा। गांधीजी हमेशा की तरह गंभीर और प्रसन्नचित्त थे। स्पष्टतः उन्होंने अपने असंतुष्ट शिष्य को अपने मन के पक्ष में कर लिया था। रात-भर जोगते रहने के बावजूद जवाहरलाल भी ज्यादा शांत दिखाई दे रहे थे। अनवर सोचने लगा कि शायद यह मुद्रा उस खिलाड़ी जैसी है जो हार जाने पर भी दुःखी नहीं होता।

नदी के पार पूर्वी क्षितिज पर धीरे-धीरे उषा की लाली फैलती जा रही थी। एक नये दिन का उदय हो रहा था। अनवर ने अपने कोट का कालर खड़ा कर लिया और ठंडी हवा में कापता हुआ वह एक प्याली चाय की तलाश में बावर्चीखाने की तरफ चल दिया।

## अब किधर ?

राबर्ट न्यूयार्क का जहाज पकड़ने के लिए बम्बई जा रहा था। जब अनवर उसे विदा करके स्टेशन से घर लौटने लगा तो उसे ऐसा लगा कि जैसे अचानक वह अन्दर से खोखला हो गया है। साल-भर तक उसने राबर्ट के साथ काम किया था, भारत को समझने में उसकी मदद की थी। इस स्पष्टवादी और आदर्शवादी अमरीकी पत्रकार के साथ काम करना उसे बहुत अच्छा लगा था। यह एक वर्ष उसके लिए बहुत घटनामय और रोमाचकारी रहा था, और उन दोनों ने साथ रहकर बहुत-सी विचित्र और युगांतरकारी घटनाएँ देखी थीं। वे कांग्रेस के कार्यकर्ताओं से मिले थे और उन्होंने पूरे आंदोलन को सही ढंग से देखने और पेश करने की कोशिश की थी, उन्होंने बड़े-बड़े लोगों की बातों और उनके कामों को उचित महत्त्व दिया था लेकिन वे जनसाधारण को एक क्षण के लिए भी नहीं भूने थे, जिनके बिना आंदोलन में कभी इतना जोर और क्रांतिकारी उत्साह पैदा न होता। राबर्ट अक्सर कहा करता था, “नेताओं को तो छोड़ दो। उनके भाषणों की खबर देने के लिए तो दर्जनों सवाददाता हैं। हमें आम लोगों को देखना चाहिए।” इसी तरह एक बार और उसने कहा था, “जनता जिस लायक होती है उसे वैसे ही नेता भी मिलते हैं, क्योंकि नेता कहीं आसमान से नहीं टपकते हैं बल्कि जनता के बीच से पैदा होते हैं। वे जनता के व्यक्तित्व, उसकी ताकत, उसकी कमजोरियों, उसकी आकांक्षों और उसकी सामूहिक इच्छा को व्यक्त करते हैं।”

अनवर ने राबर्ट से इसके अलावा और भी बहुत-सी बातें सीखी थीं। लेकिन अनवर अक्सर सोचा करता था कि क्या सफर में उसका साथ देने के अलावा भी उसने राबर्ट के लिए कुछ किया था। लेकिन राबर्ट का खयाल था कि उसने उसके लिए बहुत कुछ किया था और इसीलिए उसने अपनी किताब में भी उसकी सहायता का आभार माना था। उसने अपनी किताब ‘द जाइंट अवेक्स’ प्रकाशक



के पास भेजते समय उसे अनवर के नाम समर्पित किया था और लिखा था : अनवर के नाम— जिसने भारत में मेरी आखों और मेरे कानों का, और बूढ़ा मेरी जवान का भी काम किया ।

घर जाते हुए अनवर इस समर्पण के बारे में सोच रहा था और उन बहसों को याद करके मुस्करा रहा था जो सारे देश का भ्रमण करते समय उसने राबर्ट के साथ की थी । उसे इस बात का बड़ा अफसोस था कि राबर्ट को वापस जाना पड़ा, लेकिन उसे इस बात का सतोष था कि वह अमरीका में भी उपयोगी काम करेगा । उसने अमरीका में घूम-घूमकर विभिन्न स्थानों पर व्याख्यान देने की योजना बनाई थी जिनमें वह अपनी देशवासियों को बतानेवाला था कि उसने भारत में क्या देखा था और इस प्रकार कैथरीन मेयो जैसे लेखकों ने अमरीकी पाठकों के सामने भारत का जो बीभत्स और विकृत रूप प्रस्तुत किया था, उसके स्थान पर वह भारत का सच्चा चित्र प्रस्तुत करनेवाला था । राबर्ट के रूप में भारत को एक बहुत अच्छा मित्र मिल गया था और अनवर को यकीन था कि वह हमेशा...

लेकिन सहसा उसने अपने विचारों को रोक लिया और राबर्ट की उस नसीहत को याद करके वह मुस्करा दिया जिसे वह बार-बार दुहराया करता था, 'अनवर, किसी बात का इतना पक्का यकीन नहीं रखना चाहिए ।'

राबर्ट ठीक ही कहता था । अनवर को बहुत-सी बातों का बिल्कुल पक्का यकीन था—जैसे इस बात का कि पूरी आजादी के मामले में किसी तरह का समझौता नहीं हो सकता । स्वाभाविक ही था कि उसे बहुत निराशा हुई थी । दो-तीन दिन तक तो वह बिल्कुल खोया-खोया-सा रहा । वह इस नई परिस्थिति को पूरी तरह समझ नहीं पा रहा था । ऐसा लगता था कि उसकी नाव का लगर टूट गया है और वह निराशा के अथाह सागर के थपेड़े खा रही है—उसका पथ-प्रदर्शन करने के लिए आशा की एक किरण भी नहीं थी ।

'अब कहा जाए ?' उसे सहसा एक पत्रकार का यह प्रश्न याद आया जो उसने समझौते के दूसरे दिन सुबह पूछा था और वहां पर जो पांच-छ दूसरे पत्रकार गांधीजी से मिलने की प्रतीक्षा कर रहे थे उनमें से किसीन भी उसके

इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश नहीं की थी ।

अनवर चादनी चौक पार करके जामा मस्जिद की तरफ मुड़ा था । एक ट्राम खडखड करती हुई उसके पास से गुजरी और उससे थोड़ी दूर पर जाकर रुक गई । उसने ट्राम नहीं पकड़ी । वह पैदल घर जाना चाहता था ताकि रास्ते में अपने उलझे हुए विचारों को सुलझा सके ।

‘अब हमें किधर जाना है ? सचमुच किधर ?’

कुछ दिन तक तनाव के साथ शांति रहने के बाद फिर सत्याग्रह की ओर ?

अभी से यह चर्चा होने लगी थी कि समझौते में जिन शर्तों पर दस्तखत हुए थे उनमें से कुछ को सरकार पूरा नहीं कर रही है । लेकिन अब एक बार यह साबित हो चुकने के बाद कि पूरी आजादी के लक्ष्य के बारे में भी सौदेबाजी हो सकती है क्या कांग्रेस फिर कभी जनता में पहले जैसा उत्साह पैदा कर सकेगी ? क्या वह फिर कभी जनता का उतना समर्थन प्राप्त कर सकेगी ? वह सोच रहा था कि आज हजारों मामूली कांग्रेसी—मर्द और औरतें—जेल से बाहर आकर क्या महसूस करते होंगे ? इस समझौते से गुजरात और संयुक्त प्रांत के किसानों को क्या उम्मीद बधेगी जिन्हें गोलमेज सम्मेलन से कोई सरोकार नहीं था, जो अपने भूखे पेट भरने के लिए सिर्फ कुछ रोटिया चाहते थे ? क्या अब, क्रांतिकारी अहिंसा को हमेशा के लिए तिलाजलि दे दी गई थी ? क्या अब आजादी की लड़ाई फिर सम्मेलनों और कौंसिल चैम्बरों में हुआ करेगी—जिस लड़ाई में नेता शब्दों से लड़ेंगे और जनता केवल तालिया बजाएगी और वाह-वाह करेगी ? क्या वे फिर वही पर पहुंच गए थे जहां से वे नरम दलवालों और संविधानवादियों के साथ चले थे ?

‘अब किधर ?’ इस बड़े राष्ट्रीय सवाल में अनवर का अपना निजी सवाल भी निहित था । अब वह किधर जाए ? फिर यूनिवर्सिटी वापस ? शायद अब समझौते के इस वातावरण में उसे फिर दाखिल कर लिया जाए, लेकिन सालभर तक बाहर की खुली हुई दुनिया में रह चुकने के बाद क्लास में बैठकर उसका दम घुटेगा और यूनिवर्सिटी में जो कुछ उसे पढ़ाया जाएगा वह उसे बहुत ही बेकार मालूम होगा । फिर क्या वह राजनीतिक काम करना शुरू कर दे ? उसने कालेज के दिनों में भाषण देने को जो अभ्यास किया था क्या उससे वह कोई फायदा उठा सकता था ? लेकिन उसमें ‘नेता बनने’ का सुरा नहीं था ।

वह कभी जेल नहीं गया था। उसकी उम्र बहुत थोड़ी थी और उसके पास पैसा भी नहीं था। वह अपना पेट कैसे पालेगा? क्या वह पत्रकार बन सकता था? लेकिन नई-नई चीजों के बारे में जानने की उत्सुकता के अलावा उसमें इस काम के प्रति भी कोई विशेष रुचि नहीं थी। उसने अपनी सारी जिंदगी में वस एक लेख लिखा था और उस एक लेख की बुनियाद पर उसे कौन अपने अखबार में ले लेगा? इसके अलावा उसे उन विषयों का भी बहुत थोड़ा ही ज्ञान था जिनके बारे में एक पत्रकार को जानना चाहिए—अर्थशास्त्र, राजनीति, संविधान-संबंधी कानून। क्या उसे 'आगे पढ़ने' के लिए विदेश जाना चाहिए? क्या वह जा सकता था? आगे पढ़ने का तो नाम था वह सचमुच दुनिया देखना चाहता था और अपना दृष्टिकोण व्यापक बनाना चाहता था। वह जानता था कि उसके अम्बा के पास इतना पैसा नहीं है कि वे उसे बाहर भेज सकें, उसे सरकारी वजीफा भी नहीं मिल सकता था।

‘अब हमें किधर जाना है?’—और उस वक्त के लिए तो उसने इस संवाल का जवाब ढूँढ लिया और अपने घर की गली में मुड़ गया।

जिस समय वह घर पहुँचा उसके अम्बा वहीं बाहर गए हुए थे। उसने नौकर से पूछा कि कोई खत तो नहीं आया था और उसे यह देखकर ताज्जुब हुआ कि खतों का एक पूरा ढेर उसके लिए रखा हुआ था। आशा की नाजुक लिखाई पहचानकर उसने सबसे पहले उसीका खत खोला। वह जेल से छूट आई थी लेकिन वह बहुत दुखी थी क्योंकि उसके पीछे यशवत की हालत बहुत खराब हो गई थी और अब वह मौत की घड़िया गिन रहा था। “मैं अपना दुःख बटाने के लिए तुम्हें लिख रही हूँ। अनवर, यह देखकर मेरा कलेजा फटने लगता है कि इतना अच्छा और इतना हिम्मतवाला नौजवान मौत की घड़िया गिन रहा हो और हम उसके लिए कुछ भी न कर सकें। मैं सोचती हूँ कि उसे ऐसी हालत में बीमार छोड़कर मैंने जेल जाकर बड़ा अपराध किया है। लेकिन शायद तुम्हें मालूम है कि मैं क्यों इतनी कायर बन गई।” अनवर जानता था और इसीलिए उसे आशा पर बड़ा तरस आ रहा था।

उसने अपना पत्र समाप्त करने के बाद भी कुछ पंक्तियाँ लिखी थीं। “वह



मर गया। आज सुबह उसकी मौत हुई। उस वक्त तक मैं यह खत डाक में नहीं डाल सकी थी। लेकिन एक बात की तसल्ली है कि उसने 'कैपिटल' का अनुवाद कल रात पूरा कर लिया था।" खत पर जहा-जहा आशा के आसू गिरे थे वहा स्याही फैल गई थी।

यशवत और उसके वीरतापूर्ण संघर्ष के बारे में सोचते हुए कि उसने मरते दम तक उस काम को पूरा करने में हिम्मत नहीं हारी जिसमें वह दृढ़ आस्था रखता था, अनवर ने दूसरा लिफाफा खोला। इसपर भी बम्बई की मुहर लगी हुई थी। मोहन का खत था। हलके कासनी रंग के बढियाँ कागज पर उसने इतना घसीट लिख रखा था कि पढा भी नहीं जाता था। उसने अपने हमेशा के अदाज में लिखा था, "अनवर, माई ब्वाय, अब सुलह हो गई है, लडाई के झुंटे लपेट लिए गए हैं, इसलिए अब इस मुल्क में रहने में कोई मजा नहीं। मुझे बिदा दो, मैं अगले हफ्ते विलायत जा रहा हूँ। अगर कभी 'रंगीन पेरिस' आने का इत्फाक हो तो अमेरिकन एक्सप्रेस के पते पर मुझे खबर देना। मैं तुम्हें पेंटिंग करना सिखाऊंगा—सारे शहर को लाल रंग देना।" खत के एक-एक शब्द पर मोहन की छाप थी। वही रंगीला देशभक्त, जो प्लैटिनम के सिगरेट केस में से निकालकर बीड़ी पीता था और ताज के डाइनिंग-रूम में सरकार के खिलाफ पर्चे बाटता था।

वह अब किधर जा रहा था? पेरिस की रंगीन सड़को की तरफ। ऐसा लगता था कि अनवर को छोड़कर बाकी सभी लोग अपने जीवन की योजनाएं बना रहे थे। 'राज' ने लखनऊ से लिखा था कि उसने जेल में बहुत-सी नज़में लिखी थी और वह उन्हें जल्द ही छपवानेवाला था। किताब के नाम से ही जाहिर था उसकी नज़में बहुत जोशीली होंगी। किताब का नाम उसने रखा था—'आग और आसू'। इसके बाद उसने गाव-गाव घूमकर लोकगीत और किसान कवियों की अप्रकाशित कविताएँ जमा करने का फैसला किया था। सुभान का भी एक खत था और आग उगलनेवाले उस मार्क्सवादी ने लिखा था कि वह सत्याग्रह से तग आ चुका था और अब वह कानपुर के चमड़े के कारखानों में मजदूरों को संगठित कर रहा था। उसने लिखा था—“अब पुलिस की नजर मेरे ऊपर भी रहने लगी है और मुझे दो बार चेतावनी भी मिल चुकी है। भला जानते हो यहा का डी० एस० पी० कौन है? सलमा के शौहर मजूर-

आलम । वे अपने दफ्तर में मुँहसे सवाल-जवाब कर रहे थे कि इतने में वह भी वहाँ आ गई । काफी मोटी हो गई है और ऐसी खुश नजर आती है जैसे खिला-पिलाकर तैयार की हुई मोटी-नाज़ी गाय ।” अनवर इस भद्दी उपमा पर तिलमिला उठा लेकिन इसके बाद जो कुछ लिखा था उसे पढ़कर उसे बहुत हसी भी आई । ‘मैंने तुमसे कहा था न कि हार्मोन ज़िंदगी के लिए उन शायरो की हवाई बकवास से ज्यादा जरूरी है जो एक ऐसी चीज़ के बारे में जो हमारे लिए उतनी ही जरूरी है जितना कि पीने का पानी, ज़मीन-आसमान के कुलाबे मिलाते रहते हैं ।’

दुनिया बहुत छोटी थी और लाख कोशिश करने पर भी सलमा की याद उसके दिल से नहीं जाती थी । वह उसे भूल क्यों नहीं जाता था ? काश वह कुछ दिनों के लिए इन सब चीज़ों से दूर विलायत जा सकता । शायद उससे कुछ फायदा होता । हालांकि तब भी सुभानोव्स्की यह कहने से न चूँता कि यह हकीकत से दूर भागना था, जो उसके सामंती ढंग के पालन-पोषण और दृष्टिकोण का प्रमाण था ।

सारे खत पढ़ चुकने के बाद उसने सुबह का अखबार उठाया । उसकी नजर पहले ही पन्ने पर छपी हुई एक मोटी-सी खबर पर पड़ी आतंकवादी कैदी फाँसी लगने से पहले ही जेल से भाग निकला । जल्दी-जल्दी उसने पूरी खबर पढ़ डाली । यह उसका पुराना दोस्त रतन ही था । वह उन कैदियों में से एक था जिन्हें फाँसी की सज़ा सुनाई गई थी । जब उसे बैरक से कालकोटरी में ले जाया जा रहा था उस वक्त वह जेल से भाग निकला था । कहा जाता था कि पुलिस उसे खोज रही थी पर अनवर को यकीन था कि अब वह उनके चंगुल में आनेवाला नहीं था ।

इसके पास ही एक दूसरी खबर छपी हुई थी जिसमें लिखा था कि भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु की मौत की सज़ाए रद्द कराने में गांधीजी की सारी कोशिशें बेकार साबित हुई थी और चूँकि कैदियों ने दया की भीख मागने से इकार किया था इसलिए उन्हें फौरन फाँसी पर चढ़ाया जानेवाला था । कम से कम तीन नौजवान ऐसे थे जिनके सामने यह सवाल नहीं था कि ‘अब हमें किधर जाना है ?’ उन्होंने मौत का रास्ता चुना था और उनके कदम अखिर तक नहीं डगमगाए थे ।

उस दिन रात को जब अकबरअली मस्जिद से नमाज़ पढ़कर लौटे और बाँपे-बेटे खाना खाने बैठे तो उन्होंने अनवर से पूछा, “अच्छा अनवर, अब तुमने क्या करने का फैसला किया है? मेरा तो खयाल है कि अगर तुम एम० ए० पास करना चाहो तो यूनिवर्सिटीवाले तुम्हें फिर वापस ले लेंगे।”

“नहीं अब्बा, अब अलीगढ़ जाने को जी नहीं चाहता। मैं तो दो-एक बरस के लिए विलायत जाना चाहता हूँ, लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि आपके पास मुझे बाहर भेजने के लिए पैसे नहीं हैं। इसलिए मेरा तो खयाल है कि मैं कुछ दिन यही रहकर कोई नौकरी तलाश करूँगा। अगर किसी अखबार में मिल जाए तो अच्छा है।”

“मेरा तो खयाल है कि अखबार में फौरन इतनी अच्छी नौकरी नहीं मिलेगी। अगर विलायत से कोई डिग्री ले आओ तो अच्छा रहेगा। कुछ दुनिया भी देख लोगे और तजुर्बा भी हो जाएगा, जो आगे चलकर अखबार की नौकरी में काम आएगा।”

“यह तो ठीक है अब्बा लेकिन इतना पैसा कहा से आएगा? मैं नहीं चाहता कि आप कहीं से कर्ज ले या कोई चीज़ गिरवी रखें।”

“इसकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी,” अकबरअली ने धीरे-धीरे कुछ झिझकते हुए कहा। “तुम अपने पैसे से जा सकते हो। अनवर, बात यह है कि तुम्हारे रामेश्वर काका मरते वक्त तुम्हारे लिए दस हजार रुपये छोड़ गए थे।”

“दस हजार!” अनवर ने आश्चर्य से कहा। यह तो बहुत बड़ी रकम थी। “लेकिन क्यों?”

“उनके अपनी कोई औलाद नहीं थी और वे तुम्हें बहुत प्यार करते थे। इसलिए वे अपनी जायदाद का कुछ हिस्सा तुम्हारे लिए छोड़ गए थे। वह तुम्हारा पैसा है और तुम जिस तरह चाहो उसे खर्च कर सकते हो।”

अपने बीमार और बूढ़े रामेश्वर काका की याद आते ही अनवर की आँखों में आसू आ गए। वे बहुत ही उदार आदमी थे और अनवर को अभी तक याद था कि वे उसे सोने के बटन बनवा देने को कहा करते थे और अगर अकबरअली ने उन्हें ज्यादा लाड़ करके बेटे को तबाह कर देने से रोका न होता तो वे बनवा भी देते। लेकिन दस हजार रुपये। रामेश्वरदयाल जैसे अमीर आदमी



के लिए भी यह काफी बड़ी रकम थी ।

“मैं सोचता हूँ कि इंग्लैंड चला जाऊँ,” अनवर ने अपने अब्बा से कहा, “और वहाँ से लन्दन स्कूल आफ इकॉनॉमिक्स की डिग्री ले आऊँ । हो सका तो जर्नलिज्म का डिप्लोमा भी ले लूँगा । लेकिन बुनियादी तौर पर तो मैं सारी दुनिया घूमना चाहता हूँ, अगर आप यह न समझें कि यह वक्त बरबाद करना होगा ।”

अकबरअली पक्के मुसलमान थे । उन्होंने अनवर की देश-देश घूमने की इच्छा का समर्थन किया क्योंकि रसूल ने भी कहा था कि हर सच्चे मुसलमान का यह फर्ज है कि ‘वह इल्म हासिल करे, चाहे इसके लिए उसे चीन ही क्यों न जाना पड़े ।’ उस जमाने में, अब से तेरह सौ साल पहले, अरबवालों के लिए चीन ही दुनिया की हद्द थी ।

‘मैं एक और बात के बारे में तुमसे पूछना चाहता था । आम तौर पर तो यह माँ के पूछने की बात होती है...’ इतना कहकर वे कुछ सकोच में पड़कर रुक गए । अनवर समझ गया कि उसके अब्बा क्या कहना चाहते हैं लेकिन वह उनके कहने की प्रतीक्षा करता रहा ।

“अब तुम जवान हुए,” अकबरअली ने फिर कहना शुरू किया “और इस उम्र में आदमी शादी करके घर बसाने की सोचता है । अगर तुम कहो तो मैं तुम्हारे लिए कोई लड़की देखू...”

“नहीं, नहीं अब्बा,” अनवर ने विरोध करते हुए कहा, “अभी जल्दी क्या है ?”

“तुम इक्कीस बरस के हो,” उसके अब्बा ने उसे याद दिलाया । “जब मेरी शादी हुई थी उस वक्त मैं तो उन्नीस ही बरस का था ।”

“यह तो सच है,” बेटे ने बहस करते हुए कहा, “लेकिन अब्बा, जमाना बदल गया है । कम से कम मुझे इंग्लैंड तो हो आने दीजिए ।”

बाप ने बेटे की बात मान ली । “मैं तुम्हें मजबूर नहीं करना चाहता । तुम खुद अच्छी तरह सोच-समझकर फैसला कर लो । लेकिन यह बना दो कोई लड़की है तो नहीं ।” बेटे से ऐसी बात कहते हुए उनकी ज़बान कुछ लड़खड़ा गई—“मेरा मतलब है कोई खास लड़की जिसे तुम जानते हो और जो तुम्हें पसंद हो ...?”

“जी नहीं अब्बा, ऐसी कोई लड़की नहीं है,” अनवर ने काफी यकीन

के साथ कहा और उमने अपने मन को भी समझा लिया कि अब यही सच बात भी थी।

गांधी-इर्विन समझौते की शर्तें छपी तो देश में लोगों पर उसका अलग-अलग असर हुआ। जो क्रांतिकारी नौजवान ब्रिटिश सरकार की टक्कर पर अलग सरकार बनाने के स्वप्न देख रहे थे उनकी आशाओं पर पानी फिर गया। नरम दलवालों ने सपू और जयकर की समझौता कुराने की कोशिशों की कामयाबी पर अपने-आपको बधाई दी। सरकार के पुराने वफादारों में वाइसराय के इस कदम पर बौखलाहट फैल गई कि उन्होंने एक पुराने राजद्रोही को बराबरी का पद दे दिया था और वे इसमें आगे चलकर अपने वर्ग का विनाश देखने लगे। सरकारी अफसर यह सोच सोचकर परेशान थे कि अब खहरधारी कांग्रेसी नेता शासन करेंगे और उनपर हुकम चलाएंगे। हिन्दू सम्प्रदायवादियों का खग्रास था कि अब वे सिर्फ सरकार का सहारा नहीं ले सकते, उन्हें अपने हितों की रक्षा के लिए कांग्रेस के पास भी जाना पड़ेगा। मुसलमान सम्प्रदायवादियों ने तो घोषणा कर दी कि यह उनके साथ विश्वासघात था, उन्हें हिन्दुओं के हाथ बेच दिया गया था और उन्होंने 'इस बनिये गांधी' से अपना नाता तोड़ने और उसे बदनाम करने के लिए अपना संगठन भी बनाना शुरू कर दिया। उन्हें शिकायत थी कि वह सब हिंदुस्तानियों की तरफ से बोलने का दावा कैसे करता है। छ सौ से ऊपर देसी रजवाड़े यह महसूस करने लगे कि जैसे कोई भूकम्प आ गया हो और उनके सिंहासन डोल गए हो। कांग्रेस-राज का भूत उनके सिर पर मड़राने लगा। उन्हें ऐसा दिखाई देने लगा कि लोकतन्त्र का दानव उन्हें खा जाने के लिए मुंह फाड़े बड़ा आ रहा है। उनमें से कुछ तो इतने भयभीत हो गए कि वे भागे-भागे वाइसराय के पास फरियाद लेकर आए कि उन्हें गांधी से बचाया जाए, कुछ ने इसी उद्देश्य से नई दिल्ली के खुदा के पास अपने दूत भेजे।

इन सहमे हुए रजवाड़ों में सलामपुर के नवाब साहब भी थे जिन्होंने सरकार के राजनीतिक विभाग के सामने अपनी फरियाद रखने के लिए ताय्य अमजदअली को भेजा था। अनवर की विलायत जाने की तैयारियों के वक्त उनके वहां पहुंचने से उसका सारा जोश ठंडा पड़ गया, क्योंकि यह जाहिर था

कि वे इस बात से खुश नहीं थे। और उन्होंने अपनी इस राय को अपने तक ही नहीं रखा। उन्होंने अनवर के सामने यह बात कही कि नौजवान लड़के विलायत जाकर बिगड़ जाते हैं और दीन-मजहब सब कुछ भूल जाते हैं। उनकी उम्र का लिहाज करके अनवर ने कुछ भी नहीं कहा और इस डर से कि कहीं भगडा बढ न जाए वह उठकर कमरे से बाहर चला गया।

जब अनवर वापस आया तो उसने देखा कि अमजदअली अपने छोटे भाई के साथ किसी गंभीर समस्या पर बातें कर रहे हैं। अनवर को आता देखकर उन्होंने अपनी आवाज और धीमी कर दी लेकिन अनवर ने अपने अब्बा को कहते सुना, “भाई साहब, माफ कीजिएगा लेकिन यह मुमकिन ही नहीं है।” अनवर सोचने लगा कि वे क्या बातें कर रहे होंगे।

उन रात दरियागज के मुसलमानों की एक मीटिंग होनेवाली थी। ‘नापाक’ गांधी-इर्विन समझौते की निंदा करने के लिए और यह ऐलान करने के लिए कि गोलमेज सम्मेलन में गांधीजी को ‘कांग्रेस के हिंदुओं’ के अलावा और किसी-का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार नहीं था। दिल्ली के मुहल्लों में ही नहीं बल्कि सारे देश में इस तरह की मीटिंगें की जा रही थी। अनवर जानता था कि इन सभी मीटिंगों में एक ही प्रस्ताव स्वीकार किया जाना था और इस प्रस्ताव के अंत में भारत के मुसलमानों की तरफ से यह घोषणा की जानी थी कि वे हिज हाईनेस द आगाखा के नेतृत्व में गोलमेज सम्मेलन में भाग लेनेवाले मुसलमान प्रतिनिधियों में पूरा विश्वास रखते थे।

अकबरअली साहब को इस मीटिंग की सदारत करने के लिए राजी कर लिया गया था। अनवर चाहता था कि उसके अब्बा गोलमेज सम्मेलन में सबका प्रतिनिधित्व करने के गांधीजी के अधिकार का विरोध करने की इस प्रतिक्रियावादी कोशिश में न फसते। लेकिन चूँकि कुछ ही दिन बाद वह विलायत जानेवाला था इसलिए वह अपने अब्बा के साथ कोई राजनीतिक भगडा नहीं मोल लेना चाहता था। यही सोचकर वह चुप रह गया।

लेकिन ताया अमजदअली अनवर को चिंगाने पर तुले हुए थे। जब वे लोग स्नाना खा चुके और मीटिंग में जाने की तैयारी करने लगे, जो पास की ही एक मस्जिद में होनेवाली थी, तो उन्होंने अनवर की तरफ गौर से देखा। वह एक किताब लेकर सोने जा रहा था। उन्होंने अनवर से पूछा, “अनवर, तुम नहीं



चलोगे ?”

अकबरअली ने बेकार के भगड़े को रोकने के लिए शेरवानी के बटन बंद करते हुए कहा, “भाई साहब, उसे रहने दीजिए, उसे हमारी मीटिंगो में दिल-चस्पी नहीं है।”

अनवर ने सोचा था कि ताया अमजदअली अब चुप हो जाएंगे, लेकिन वे इतनी आसानी से हार माननेवाले नहीं थे। “अगर वह कांग्रेसी भी है,” और ‘कांग्रेसी’ शब्द उन्होंने बड़े तिरस्कार के साथ कहा, “तब भी उसे कभी-कभी यह भी सुनना चाहिए कि मुसलमान क्या कहते हैं।” और फिर वे अनवर से बोले, “या तुम्हें उस मीटिंग में जाते शर्म आती है जिसमें तुम्हारे अब्बा सदारत कर रहे हो ?”

यह बहुत ही ओछा और कमीनेपन का वार था। अकबरअली को अपने भाई की यह बात अच्छी नहीं लगी लेकिन मुह से निकली हुई बात वापस तो नहीं ली जा सकती थी। अनवर नहीं चाहता था कि उसके ताया-अब्बा की वजह से उसके अब्बा को उसकी तरफ से किसी तरह की गलतफहमी हो, इसलिए उसने उठकर शेरवानी पहन ली। अमजदअली की तरफ कोई ध्यान दिए बिना उसने अपने अब्बा से कहा, “अब्बा, अगर आपको कोई एतराज न हो तो मैं भी चलूँ।”

अनवर इन मीटिंगो से भली भांति परिचित था। पहले कुरान की कुछ आयते पढ़ी गईं ताकि सुननेवालों पर मजहबी फजा छा जाए और फिर जोशीली नज़्मों में पढ़ी गईं जिनमें बताया गया था कि इस्लाम ने कितने शानदार दिन देखे थे और किस तरह मुसलमानों ने स्पेन से लेकर चीन तक सारी दुनिया को जीत लिया था। इन नज़्मों से सुननेवालों में लड़ने का जोश पैदा किया गया। इसके बाद अकबरअली साहब से मीटिंग की सदारत करने को कहा गया।

प्रस्ताव पेश करते समय अपने भाषण में अकबरअली ने जितनी भी बातें कही थीं उनमें से ज्यादातर से अनवर सहमत नहीं था। लेकिन उसे यह मनुष्य पड़ा कि उसके अब्बा बहुत सभलकर भाषण दे रहे थे और उन्होंने गांधीजी पर या कांग्रेस के दूसरे नेताओं पर कोई बेहूदा ज़ाती हमला नहीं किया था। उनमें

अब तक पुराना साम्राज्य-विरोधी जोश कुछ-कुछ बाकी था और उन्होंने सबसे ज्यादा सख्त बातें कांग्रेस के बारे में नहीं बल्कि अंग्रेजों के बारे में कही थीं। उन्होंने अंग्रेजों पर सारी दुनिया में, और हिन्दुस्तान में भी, मुसलमानों को तबाह कर देने की साजिश करने का इलजाम लगाया था। उन्होंने मध्य-पूर्व के देशों में साम्राज्यवादी षड्यंत्रों का उल्लेख किया था लेकिन न जाने किस तरह गांधी-इर्विन समझौते को भी उनमें शामिल कर दिया था।

अकबरअली के भाषण के बाद दूसरे लोगों के भाषणों का रुख खराब होता गया। जिन नेताओं की अनवर इज्जत करता था उन्हें ऐसी गद्दी-गद्दी गालियाँ दी गईं कि अनवर सुनकर दग रह गया। कई वक्ताओं के 'खालिस इस्लामी' भाषण सुनकर तो वह हैरत में आ गया—खास तौर पर अपने ताया-अब्बा का भाषण सुनकर जो उस जमाने की डींग मार रहे थे जब सारी दुनिया पर मुसलमानों की हुकूमत थी। "हम अंग्रेजों की तरह यहाँ तिजारत करने के बहाने से नहीं आए थे, हम हाथ में तलवार लेकर इस मुल्क में आए थे और हमने तलवार के जोर से इसे जीता था।" इसके बाद उन्होंने धमकी दी कि एक बार फिर मुसलमानों को 'इस्लाम की तलवार' निकालनी पड़ेगी और फिर से इस्लामी सल्तनत कायम करनी होगी, चाहे उन्हें खून की नदियाँ ही क्यों न पार करनी पड़े। उसके ताया-अब्बा ने अपने भाषण में जो भयानक चित्र खींचा था उसकी कल्पना करके अनवर के रोंगटे खड़े हो गए। उसने देखा कि उसके अब्बा सदर की हैसियत से वक्ता को रोकने का असफल प्रयत्न कर रहे थे। अमजदअली गरज रहे थे, "हम सरकार को बता देना चाहते हैं कि हम मुसलमानों का गांधी से कोई नाता नहीं हैं। गोमूत्र पीनेवाले हिन्दुओं से हमें कोई सरोकार नहीं है। हम मुसलमान एक अलग कौम है, हमारी अलग ज़बान है, हमारी अलग तहजीब है, हम हमेशा अलग रहे हैं और हमेशा अलग रहेंगे।"

थोड़ी देर बाद अनवर को ऐसा लगा कि उसे यह भी सुनाई नहीं दे रहा है कि ताया अमजदअली क्या कह रहे हैं। उसे उनकी सूरत भी नहीं दिखाई दे रही थी। उसके सामने न जाने कितने अमजदअली खड़े थे—हिन्दू अमजदअली, मुसलमान अमजदअली, पारसी और मिख अमजदअली, ईसाई और हरिजन अमजदअली, जिनके दाढ़ियाँ थी, चोटियाँ थी, जिनके गले में जनेऊ पड़े थे और जिनके गले में जंजीरो से सलीबें लटक रही थी—और सब चिल्ला रहे थे, 'हम

अलग कौम है ।' उनके हाथों में इस्लाम की तलवार, हिन्दुत्व की तलवार, सिख धर्म की तलवार चमक रही थी और वे भारतमाता के शरीर में ये तलवारें भोंक रहे थे । थोड़ी देर बाद अनवर ने देखा कि हर तलवार से खून टपक रहा था ।

बड़ा भयानक दृश्य था । अनवर चौंक पड़ा और उसका ध्यान फिर उस मीटिंग की तरफ लौट गया । अमजदअली अपना भाषण खत्म कर चुके थे और सदर साहब प्रस्ताव पर वोट लेने जा रहे थे । 'लेकिन इससे पहले कि मैं आप लोगों से हाथ उगाने को कहूँ अगर यहाँ पर कोई इस तजवीज़ के खिलाफ हो और वह यहाँ आकर बोलना चाहता हो तो वह खुशी से बोल सकता है ।' अनवर को ऐसा लगा कि उसके अम्बा की नज़रें सीधे उसीपर जमी हुई थी और जिस तरह से उन्होंने यह बात कही थी उससे ऐसा लगता था कि वे अनवर को बोलने के लिए ललकार रहे थे ।

"अनवर मिया ।" किसीने उसे पीछे से पुकारा और जब उसने मुड़कर देखा तो उसकी नज़रें खहरधारी रहमत चाचा पर पड़ी । रहमत सफेद दाँढ़ी-वाला बूढ़ा जुलाहा था जो सत्याग्रह और खिलाफत के जमाने में अकबरअली के साथ काम कर चुका था । वह कांग्रेस से अलग नहीं हुआ था और सत्याग्रह में जेल भी हो आया था । समझौते पर दस्तखत होने के बाद वह अभी जेल से छूटकर आया था । "अनवर मिया " वह अपने सीधे-सादे ढग से कह रहा था, "तुम बोलते क्यों नहीं ? ये गौरमिटवाले हमारी आवाज़ भी तो सुने ।"

'हा रहमत चाचा, मैं जरूर बोलूंगा,' उसने इस सीधे-सादे देशभक्त को आश्वासन दिलाया और उठकर खड़ा हो गया । अपने अम्बा की आँखों में आँखें डालकर उसने कहा, "मैं इस तजवीज़ के खिलाफ बोलना चाहता हूँ ।"

अनवर जब अपने अम्बा की बगल में जाकर खड़ा हुआ तो उसे इस बात का आभास था कि उसकी इस हरकत से सभा में एक सनसनी फैल गई थी । सैकड़ों लोगों की नज़रें उसपर जमी हुई थी और उन नज़रों में उसे आश्चर्य, यह जानने की उत्सुकता कि वह क्या कहने जा रहा है, घृणा, जिज्ञासा और अंत में सभी कुछ दिखाई दे रहा था—जैसे वे किसी नये किस्म के खूखार जानवर



को देख रहे हो। ताया अमजदअली गुस्से के मारे खौल रहे थे और अपनी लम्बी मूँटों की नोके चबा रहे थे। अगर उनका बस चलता तो शायद वे अपने इस गुस्ताख भतीजे को वही कोड़े लगवा देते। लेकिन सबसे ज्यादा ताज्जुब तो उसे अकबरअली के चेहरे को देखकर हुआ। वे न सिर्फ मुस्कराकर उसका हौसला बढ़ा रहे थे बल्कि अजीब बात यह थी कि अपने बेटे की इस हिम्मत को देखकर उनका चेहरा खुशी से खिल उठा था।

अनवर को यह सोचकर काफी तसल्ली हुई कि कम से कम उसके अब्बा उसकी तकरीर पर नाराज नहीं होंगे। अनवर ने बोलना शुरू किया और छूटते ही उसने ऐसी बात कही जिससे सुननेवाले दग रह गए। “जितने लोग यहाँ बोले हैं उन सबने गांधी-इविन समझौते की बुराई की है। मैं भी इस समझौते को अच्छा नहीं समझता।” इसके बाद वह कुछ देर के लिए रुका ताकि उसकी यह बात लोगों के दिमाग में अच्छी तरह बैठ जाए। फिर उसने बोलना शुरू किया, “इसलिए नहीं कि सरकार ने महान्मा गांधी और कांग्रेस की कुछ मांगें मान ली हैं, बल्कि इसलिए कि कुछ इससे भी ज्यादा बुनियादी मांगें नहीं मानी गई हैं। मैं तो यह चाहता था कि गांधी जी आजादी के बुनियादी मसले पर समझौता न करते।”

शुरू-शुरू में उसे जो घबराहट थी वह अब दूर हो गई थी और उसने उन वक्तों पर जबर्दस्त हमला शुरू किया जिन्होंने कांग्रेस को ‘हिंदुओं की जमाअत’ कहकर उसपर हमला किया था। अलीगढ़ यूनिवर्सिटी की यूनियन में उसने व्यंग करने का जो अभ्यास किया था उससे उसने इस वक्त पूरा फायदा उठाया।

“तो कांग्रेस हिंदुओं की जमाअत है। मेरी राय में तो कुछ लोग यह भी कहेंगे कि कांग्रेस में कोई मुसलमान है ही नहीं। मेरे अब्बा एक जमाने में, जब खिलाफत का जोर था, मौलाना अबुलकलाम आजाद को इमाम उल-हिंद कहा करते थे। मेरे खयाल से अब मौलाना आजाद शायद हिंदू हो गए हैं। मेरे खयाल से मौलाना हुसेनअहमद मदनी और जमीअत-उल-उलेमा के दूसरे मौलानाओं के बारे में भी यही बात सच है। जस्टिस अब्बाम तयबजी और हमनइमाम साहिब को भी हिंदू कहा जाना चाहिए, क्योंकि वे गांधीजी के दोस्त हैं। अगर मैं अपने दोस्तों के नाम गिनाऊँ, जैसे असगरहुसेन, ‘राज’, सुभन और यूनुस तो

आप कह देंगे कि ये सब दहरिये हैं। क्या सरहद के खुदाई खिदमतगार और उनके लीडर खान अब्दुलगफ्फारखा भी दहरिये हैं? दिल्ली के, बल्कि कहना चाहिए अपने दरियागज के, आसफअली साहब के बारे में आपका क्या खयाल है? आपमें से ज्यादातर लोग उन्हें जाती तौर पर जानते हैं। क्या आप उनके बारे में भी यह कहेंगे कि वे हिन्दू हो गए हैं?" अनवर ने देखा कि वह तडातड जो नाम गिनाता जा रहा था उन्हें सुनकर वे लोग तिलमिला उठे थे। इसके बाद उसने अपना तुरूप का पत्ता निकाला। सफेद दाढ़ीवाले उस बूढ़े जुलाहे को सम्बोधित करके, जो वक्ता के तीखे व्यंग पर बैठा मन ही मन हस रहा था, अनवर ने ऊँचे स्वर में पूछा, "रहमत चाचा, तुम कब से इस्लाम छोड़कर काफिर बन गए?" अब बहस अपने घर की मिसालों पर आ गई थी और जब रहमत ने जवाब दिया, "अनवर मिया, तुम्हें मालूम नहीं? मेरी शुद्धी तो इसी मस्जिद में इसी मीटिंग से पहले अभी ईशा की नमाज के बाद हुई है।" सब लोग हन पड़े। रहमत चाचा की इस बात में बड़ा तीखा व्यंग था, क्योंकि सब लोग जानते थे कि रहमत चाचा उस इलाके के सबसे पक्के मुसलमान थे। मस्जिद में अंकर पाचो वक्त की नमाज पाबदी के साथ पढ़ते थे।

यह देखकर कि वहाँ पर बैठे हुए लोग उसकी बात अब गौर से सुन रहे हैं, अनवर ने राजनीतिक तर्क देने शुरू किए। उसने कांग्रेस का इतिहास बताना शुरू किया और यह बताया कि किस तरह हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर उसे बनाया था। फिर अपने ताया-अब्बा की तरफ देखकर उसने भरपूर वार किया, "लेकिन जाहिर है, एक खास किस्म के मुसलमान ऐसे भी हैं, और हिंदू भी, जो कभी कांग्रेस में नहीं रहे हैं। ये लोग वे हैं जो हमेशा सरकार के टुकड़ों पर पले हैं।" फिर उसने चौधरी मुहम्मदउमर की तरफ देखकर कहा, "और जो सरकारी ठेके पाने की उम्मीद लगाए रहते हैं।" इसके बाद तो वह बरस पड़ा, "आप इस्लाम की तलवार फिर निकालने की बात करते हैं। क्या आप इसे सिर्फ अपने हिन्दुस्तानी भाइयों के खिलाफ इस्तेमाल करना चाहते हैं? अजीब बात है कि जिन विदेशियों ने मुगलों से उनका तख्त छीना था, आपके बादशाह को कैद करके बर्मा भेज दिया था, आपके शाहजादों और जागीरदारों को इसी दरियागज में इसी मस्जिद के सामने सूली पर लटका दिया था, आपकी शाहजादियों की बेइज्जती की थी, उनके खिलाफ यह तलवार चलते मैने न

देखी। जी नहीं, आप अपनी इस्लाम की तलवार अंग्रेजों के खिलाफ कैसे उठा सकते हैं, क्योंकि आपकी तजवीज के मुताबिक आपके लीडर तो आगाखा हैं जो अंग्रेजों के पुराने वफादार दोस्त हैं। जहाँ तक मेरा सवाल है मैं आपके आगाखा के मुकाबले में रहमत चाचा को मुसलमानों का ज्यादा अच्छा लीडर समझता हूँ।”

वह समझता था कि उसकी इस बात पर तहलका मच जाएगा, लेकिन किसी ने चू भी नहीं की। उसने अपने अब्बा की तरफ देखा। वे सोच में डूबे हुए मुह लटकाए बैठे थे। सिर्फ ताया अमजदगली दात पीस रहे थे। उन्हें देखकर अनवर को उनकी जहर में बुझी हुई तकरीर याद आ गई।

“यहाँ कुछ लोगो ने कहा है कि मुसलमान एक अलग कौम है, जिनका हिन्दुओं और दूसरे लोगो के साथ कोई ताल्लुक नहीं है। मैं आपको बताता हूँ कि उनका क्या ताल्लुक है।” इसके बाद उसने बहुत गंभीर और धीमे स्वर में उन्हें जलियावाला बाग की भयानक दास्तान सुनाई जहाँ हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखों का खून एकसाथ बहा था। “उस खून को अलग करने की कोशिश कीजिए,” उसने कहा और उसका गला भर आया। फिर उसने बताया कि बम्बई में उसने क्या देखा था—किस तरह पठान और सिख वालंटियरों पर एकसाथ लाठिया बरसाई गई थी और उन्होंने मिलकर उन लाठियों का मुकाबला किया था। “यह भी खून बहाने का एक तरीका है। लेकिन यहाँ कुछ लोग यह देखना ज्यादा पसंद करेंगे कि मुसलमान और सिख एक-दूसरे के छुरे भोके।”

बहुत देर हो गई थी। अनवर का भाषण समाप्त होने का समय आ गया था। इसलिए उसने सिर्फ इतना कहा कि हिंदुस्तान में ऐसा नहीं है कि एक तरफ हिंदू हैं और दूसरी तरफ मुसलमान, बल्कि बटवारा इस तरह है कि एक तरफ वे लोग हैं जो अपने मुल्क को आजाद देखना चाहते हैं और दूसरी तरफ वे लोग हैं जो ऐसा नहीं चाहते। “और भी कई बटवारे हैं,” उसने कहा, “एक तरफ किसान हैं जो भूखो मरते हैं और दूसरी तरफ जमींदार हैं, जो ज़रा भी मेहनत किए बिना मोटे होते जाते हैं। एक तरफ मजदूर हैं जो कारखानों में अपना खून-पसीना एक करते हैं और दूसरी तरफ सरमायादार हैं जो दूसरों की मेहनत पर ऐश करते हैं। आप खुद फैसला कर लीजिए कि आप



किस तरफ है। आपमे मे कुछ लोग सरकार की हिमायत करके और कांग्रेस को गालिया देकर अपना धन दौलत और अपनी ताकत बचाए रखना चाहेंगे। आप खुशी से ऐसा कीजिए। लेकिन कम से कम इस्लाम की दुहाई न दीजिए और अपने मजहब को अपनी बुजदिली और अपनी खुदगुरजी व लिए आड न बनाइए।”

वह बिलकुल थककर बैठ गया और उसने देखा कि उसके अब्बा की आखों में आसू थे। वे उठे और उन्होंने भारी मन से बहुत धीरे-धीरे कहा, “अनवर ने जो कुछ कहा है उसकी हर बात को मैं सही नहीं समझता, लेकिन मुझे इस बात का फख है कि मेरे बेटे मे इतनी हिम्मत थी कि वह जिस बात को सही समझता था वह उमने खुलकर सबके सामने कही। अब जो लोग इस तजवीज के हक मे हो....”

अमजदअली फौरन उठ खड़े हुए और अपने भाई की बात काटकर बोले, “जो लोग हक मे हो वे अल्लाहो-अकबर का नारा लगाए।”

अल्लाहो-अकबर के नारे से आसमान गूँज उठा और सदर साहब ने ऐलान किया कि तजवीज मजूर हो गई, जिसपर अमजदअली साहब ने चिल्लाकर कहा, “इत्तफाके-राय से।”

एक क्षण मे सब कुछ हो गया, जैसे गर्मियों मे निर्मल आकाश से अचानक तूफान फट पड़े।

वे तीनों चुपचाप घर वापस जा रहे थे। एक अजीब तनाव था। किसीने एक शब्द भी नहीं कहा। फिर भी ऐसा लगता था कि यह खामोशी ज़रा-सी ठेस लगने पर काच की तरह टूट जाएगी। जब वे घर के भीतर पहुँचे और आगन के दरवाजे की कुडी चढ़ा दी गई तो अमजदअली ने अपनी व्यंगपूर्ण हसी से इस खामोशी को भग किया। “तो तुम्हारा यह खयल था कि तुम अपनी लच्छेदार बातों से और अपनी ठिठाई से सुननेवालों को अपनी तरफ कर लोगे ! मगर देखा, एक आदमी ने भी तुम्हारी तरफ वोट नहीं दिया।”

अकबरअली कपड़े बदलने अदर के कमरे मे चले गए थे और अमजदअली उनके मौजूद न होने का पूरा फायदा उठा रहे थे। फिर भी अनवर ने सोचा

कि उसके ताया-अब्बा की बातों में व्यग और चोट जरूर है पर यह बक्ती बात है, वे शायद उसकी सब्ब बातों पर नाराज़ हो गए होंगे । इसलिए उसने भी योही उन्हें छेड़ने के लिए कह दिया, “लेकिन ताया-अब्बा, तजवीज इत्तफाकै-राय से नहीं पास हुई थी—जैसाकि आपने ऐलान किया था ।” शायद उसने ‘आपने’ शब्द पर जरूरत से ज्यादा जोर दिया था और अकबरअली यह सुनते ही आपे में बाहर हो गए ।

“तुम्हारे कहने का मतलब है कि मैं भूठा हूँ, क्यों ?” उन्होंने चिल्लाकर कहा । ‘तो मैं भी तुम्हें बता दूँ कि मेरा मतलब यह था कि किसी मुसलमान ने खिलाफ वोट नहीं दिया था । वह मीटिंग मुसलमानों की थी और तुम्हारे जैसे हिंदू हरामजादों के वोट की कोई हैसियत नहीं थी ।’

अकबरअली अदर के कमरे से भागकर बाहर निकल आए और उन्होंने बेहद परेशानी और घबराहट के साथ कहा, “भाई साहब !”

अनवर के लिए जिस अपमानजनक शब्द का प्रयोग किया गया था उसका पूर्ण तात्पर्य समझने में उसे कुछ क्षण लग गए । अनवर को ‘हरामजादा’ शब्द अनीत की एक प्रतिध्वनि जैसा लगा और न जाने क्यों वह उस दिन की याद करने लगा जब उसने अपने अब्बा से इस शब्द का अर्थ पूछा था और आज दस बरस बाद भी अपने देखा कि यह शब्द सुनते ही अकबरअली के चेहरे पर फिर वही अजीब परेशानी छा गई ।

“भाई साहब !” आज अपने बड़े भाई से ये शब्द कहते समय उनके चेहरे पर फिर वही भाव था । “आपको मेरे बेटे को इस तरह की बात कहने का कोई हक नहीं है ।” और इतना कहकर वे अनवर का हाथ पकड़कर उसे दूसरे कमरे की तरफ ले जाने लगे ।

“अब्बा, मुझे छोड़ दीजिए ।” यह कहकर उसने अपना हाथ छुड़ा लिया । फिर वह अपने ताया-अब्बा के पास गया और एक-एक शब्द को तौलकर बोला, “आपन अभी जो कुछ कहा था ज़रा फिर तो कहिएगा ।”

“अनवर, जाने दो ।” अकबरअली के हाथ-पैर फूल गए थे । “तुम इनकी बात न सुनो । इनका तो दिमाग खराब है ।” और फिर वे लपककर अपने बड़े भाई के पास गए और आखों में आसू भरकर बोले, “भाई साहब, खुदा के वास्ते, मेरी खातिर मेरे बेटे को मुझसे न छीनिए ।”

लेकिन अमजदअली पर तो जैसे भून सवार था। उन्होंने बड़ी क्रूरता से कहा, “वह आपका बेटा नहीं है। उसने आज साबित कर दिया कि आपकी इक्कीस बरस की परिवारिश का उसपर कोई असर नहीं हुआ। आज वह फिर उसी घूरे पर वापस पहुंच गया जहां से वह आया था। उसने साबित कर दिया कि वह एक काफिर के बंज से पैदा हुआ है; कि वह एक रडो का अनचाहा बेटा है।” फिर वे अनवर की तरफ मुड़े जो अवाक् खड़ा यह सब सुन रहा था, “और कुछ जानना चाहते हो? अपने बाप का नाम जानना चाहते हो? वह वही दिक का मारा हुआ खबीस काफिर रामेश्वर था। वह तो जहन्नुम पहुंच गया, लेकिन तुम अपनी मा छमिया के पास क्यों नहीं जाते? वह तो बहुत नामी औरत है। हर आदमी चावडी बाजार में उसका कोठा जानता है।”

आखिरकार अनवर ने भी अपनी जबान खोली। अकबरअली को सम्बोधित करके उसने पूछा, ‘क्या यह सच है?’ अकबरअली की आंखों से आसू बह-बहकर उनकी दाढ़ी पर गिर रहे थे। उन्होंने कहा, “लेकिन अनवर, सुनो तो...” वे उससे कहना चाहते थे कि कुछ भी हो पर वह उनका बेटा है। लेकिन अनवर उनकी यह बात सुनने के लिए वहां था ही नहीं।

बिना कुछ कहे वह घर से बाहर निकल गया।

अकबरअली ने आसू और गुस्से से भरी हुई आंखों से अपने बड़े भाई को देखा और उम्र में पहली बार उन्होंने उनकी अवज्ञा करते हुए कहा, “आपने मुझसे मेरा बेटा छीन लिया। अब आपको तसल्ली हो गई? अब आप यहां से तशरीफ ले जाइए।”

घर से बाहर निकलकर और गलियों में निरुद्देश्य घूमने हुए अनवर अपने-आपसे कहता रहा : नहीं ! नहीं ! यह नहीं हो सकता ! यह असंभव है ! यह हो ही नहीं सकता ! इस तरह एक क्षण में किसीके कुछ शब्द कह देने से किसीकी पूरी जिंदगी तबाह नहीं हो सकती। ऐसा कहीं नहीं होता। जरूर कहीं कोई गलती होगी। ये सारी बातें उसके ताया-अब्बा के दूषित मस्तिष्क की उपज होगी। या कहीं ऐसा तो नहीं है कि आवेश में स्वयं उसकी कल्पना ने यह चित्र बना लिया हो !

उसके कदमों की ताल पर उसका दिल भी धडक रहा था। ‘नहीं ! नहीं ! ऐसा नहीं हो सकता ! यह नामुमकिन है ! ऐसा हो ही नहीं सकता !’



लेकिन उसके दिल की गहराई में यह डर धीरे-धीरे बढ़ना जा रहा था कि ज़ी कुछ उसने सुना था वह सच था। समझ में आने वाली बात नहीं थी लेकिन फिर भी सच थी। नामुमकिन ज़रूर थी—लेकिन फिर भी हुई थी।

उसकी आँखों के सामने बचपन के चित्र घूमने लगे। उसके कानों में बचपन के सुने हुए शब्दों की प्रतिध्वनि गूँजने लगी और अब वे नया अर्थ धारण करने लगे और अभी उसके सामने जो रहस्य खोला गया था, उसकी पुष्टि करने लगे।

चावडी बाजार की वे 'दूमरी औरते'। क्या यही वजह थी कि जब उसने अकबरअली में 'छज्जो रर खडी हुई रगी-पुनी औरतो' के बारे में पूछा था तब से वे उस रास्ते से कतराकर जाने लगे थे ?

क्या यही वजह थी कि जब अनवर ने उनमें 'हरामजादा' का मतलब पूछा था तो वे इतने परेशान हो गए थे और खिसिया गए थे ?

अखिरकार उसे इस रहस्य का पता चल गया था कि उसकी सेहत इतनी खराब क्यों थी और डाक्टर जमशेदजी उसकी बीमारी का कारण क्यों नहीं समझ पाए थे। उसे यह स्वास्थ्य अपने असली बाप से उत्तराधिकार में मिला था। तो रामेश्वर काका इसीलिए उसे इतना प्यार करते थे। इसीलिए वे उसके लिए दस हजार रुपये छोड़ गए थे।

दस हजार रुपये। एक इंसान की जिंदगी की कीमत ? हरामजादा होने का मुआवजा ? रडी के बेटे का कलक छिगाने के लिए रिश्वत ? रगीन-मिजाज सेठजी यह कीमत चुकाकर, यह मुआवजा अदा करके, यह रिश्वत देकर चले गए थे—निर्वाण प्राप्त करने। अनवर का दिमाग इसी तरह के कटु विचारों से भर गया।

अनवर सुनसान सड़कों के भयानक सन्नाटे में घूम रहा था। कभी-कभी कोई खजहा कुत्ता उसके पीछे हो लेता था। अनवर ने यकायक महसूस किया कि वह इस दुनिया में अकेला है और दुनिया उसके लिए अब मिट चुकी है। उसे ऐसा लगा कि वह अकेला है और नगा और उसके जन्म का कलक अब सड़की आँखों के सामने है। उसे ऐसा लग रहा था कि उसे जीवन के जिन सिद्धांतों का सम्मान करना सिखाया गया था—शराफत और भलाई, उदारता और नेकी,

दया और मानवता—वे सब मागे के कपड़ों की तरह उसके शरीर से उतार लिए गए थे, क्योंकि ये कपड़े उसके ठीक नहीं आते थे। अब केवल घृणा उसके साथ रह गई थी।

अब अपने कलकित जन्म का चित्र उसके सामने स्पष्ट रूप से आता जा रहा था। शायरी का शौक रखनेवाले एक रंगीन-गिजाज लेकिन बुझदिल नौजवान ने चोरी-छिपे पाप की गलियों में ऐयाशी के बीज बोए थे और जब इस बीज से फल निकला तो वह कड़वा था। उसने यह फल अपने एक ऐसे मित्र के हवाले कर दिया जिनके कोई बेटा नहीं था और जो उस बच्चे को गोद लेने को तैयार थे। अनवर को उस आदमी से और उस औरत से कितनी नफरत थी जिन्होंने उसे इस दुनिया में पैदा किया था और पैदा होते ही उसके कलक का टीका लगा दिया था। उसे उस ऐयाश आदमी से और उस वेश्या से नफरत थी।

वह जल्दी-जल्दी लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ चला जा रहा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह किस चीज से भाग रहा था। क्या वह कभी भी अपनी उस पिछली जिंदगी से दूर भाग सकेगा जिसने अचानक उसे आदबोचा था।

‘अब हमें कहा जाना है?’ अब इस प्रश्न में जो नया अर्थ पैदा हो गया था उसपर विचार करते हुए उसे हसी आ गई—एक व्यंगपूर्ण कटु हसी। और जब उसने देखा कि उसके कदम उसे चावडी बाजार तक ले आए थे तो उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उसने अपने-आपसे पूछा क्या उसका खून का रिश्ता उसे यहां खींचकर लाया है या उत्तराधिकार में मिली हुई पाप की प्रवृत्ति?

“नवाब साहब,” एक चिकने-चुपड़े दलाल ने शरारत-भरी मुस्कराहट के साथ उसे पुकारा, “कैसा माल चाहिए, गद्दर या पक्का, पजाबी, कश्मीरी...?”

“छमियाबाई का ठिकाना मालूम है?”

“वह तो अब बूढ़ी हो गई है और बहुत दिन से उसने घघा भी छोड़ रखा है। लेकिन कुछ पटाखा लौडिया जरूर रख छोड़ी है। अगर हुजूर कहे तो...”

“मुझे उसीके यहां ले चलो।”

रास्ते में अनवर के दिमाग में अपनी मा की सूरत का एक झलक देखने की उत्सुकता ने एक भयानक योजना का रूप धारण कर लिया। जीवन-भर वह अपने-आपको उस चीज से बचाता आया था जो उसे 'पाप' बताई गई थी। उसने अपने शरीर को पवित्र रखा था, उसपर कोई कलक नहीं लगने दिया था, क्योंकि वह अपने-आपको शरीफ बाघ का बेटा समझता था। लेकिन अब उसे पता चला था कि वह खुद उसी 'पाप' से पैदा हुआ था जिससे उसे अपने-आपको बचाना था। किस्मत ने उसके साथ बहुत क्रूर मजाक किया था और उसने बदला लेने की ठान ली थी... उसी रात... अपनी मा के ही घर की किसी लड़की के साथ... उसका जी चाहा कि उसने जो पैशाचिक योजना बनाई थी उसपर ठहाका मारकर हस पड़े।

लकड़ी की सीढ़ियाँ पैर रखते ही चरमरा उठी—गंदी, अवेरी और बदबूदार सीढ़ियाँ। जैसे-जैसे वह सीढ़ियों पर ऊपर चढ़ता गया उसका हिम्मत जवाब देती गई और उसके उम्र-भर के दबूपन ने फिर उसे आ दबोचा। अब उसकी हातत उस आदमी जैसी नहीं थी जो किसीसे बदला लेने जा रहा हो बल्कि उस शर्मिले नौजवान जैसी थी जो पहली बार रड्डी के कोठे पर जा रहा हो।

एक औरत, जो वक्त से पहले ही बूढ़ी हो गई थी, फर्श पर बिछी हुई सफेद रंग की गद्दी चादनी पर गाव तकिये के सहारे बैठी हुई पान लगा रही थी। अपने छोटे कद की वजह से वह कुछ मोटी लगती थी। उसकी खाल अब भी कोमल थी पर उसपर झुर्रियाँ पड़ गई थी और उसके सफेद बालों में मेहदी की लाली थी।

“छमियाबाई,” दलाल ने उस औरत को सम्बोधित करते हुए कहा, “मवाब साहब छोकड़ियों को देखना चाहते हैं।”

छमियाबाई ने नज़रें ऊपर उठाकर देखा और इतना कम उम्र ग्राहक देखकर वह कुछ चौंक गई। “बैठिए, तशरीफ रखिए,” उसने अपने पेशे की परम्पराओं के अनुसार ज़रूरत से ज्यादा तकल्लुफ के साथ कहा।

तो यह थी उसकी मा। यह सोचकर अनवर ने खून का घूट पी लिया। उसने सुन रखा था कि मा अगर पचास बरस बाद भी अपने बच्चे को देखे तो वह उसे पहचान लेती है, लेकिन उसकी मां ने तो उसे नहीं पहचाना था। शायद अपने नीच पेशे की वजह से उसमें इंसानियत इतनी मर चुकी थी कि अब मनुष्य के



स्वाभाविक गुण भी उसमें बाकी नहीं रह गए थे। वह उतनी पतित, अश्लील और घृणास्पद नहीं लगी जितनी कि अनवर ने उसकी तरह की औरतों के बारे में कल्पना की थी, फिर भी अनवर के दिल में उसके लिए वह प्यार नहीं पैदा हुआ जो बेटे को मा से होता है। उसके दिल में सिर्फ नफरत थी—गहरी नफरत, जिसकी कोई सीमा नहीं थी।

दलाल अपनी दाली लेकर खट-खट करता हुआ सीढ़ियां उतर गया और अनवर उस औरत के पास अकेला रह गया—वह अपने विचारों में भी उसे मां नहीं कहना चाहता था।

“बिजली ! श्यामा ! यहा तो आओ,” उसने जोर से आवाज दी और दो लड़कियां, जो मुश्किल से सोलह-सोलह बरस की रही होगी, शरमाती हुई कमरे में दाखिल हुईं। उन्होंने अपने चेहरों पर इतनी सुर्खी पोत रखी थी कि यह बताना भी मुश्किल था कि उनके चेहरे अन्दर से कैसे थे। अनवर को वे सुन्दरता का भोडा स्वाग लग रही थी। उसकी स्वीकृति की प्रतीक्षा करते हुए वे इतनी दयनीय लग रही थी जैसे मवेशियों के मेले में गाय-बकरिया हो। मनुष्य का शरीर खरीदने के विचार से ही अनवर को मतली होने लगी और पहली बार एक झलक देख लेने के बाद वह आख भरकर उन्हें देख भी नहीं सका। एक क्षण के लिए तो वह यह भी भूल गया कि वह वहा आया किस काम से था। जब एक लड़की पान लेकर उसके पास आई तो उसने पान लेने में इन्कार कर दिया और उसे यह भी ध्यान नहीं रहा कि उसे तश्तरी में कुछ पैसे रख देने चाहिए थे।

“अभी शरम आती है, क्यों ?” छमियाबाई ने उससे पूछा और कोई उत्तर न मिलने पर उसने लड़कियों को हाथ के इशारे से अन्दर जाने को कहा और बड़ी देर तक फर्श पर बिछी हुई सफेद चादनी पर पान के धब्बों को देखती रही।

लड़किया अपनी पायले छनकाती हुई कमरे से चली गईं और थोड़ी देर बाद अनवर को दूसरे कमरे से खिखिया करहसने की आवाज सुनाई दी। अनवर समझ गया कि वे उसकी नामर्दों का मजाक उड़ा रही थी।

“ऐसी जगह आने का पहला इत्फाक है, क्यों ?” छमियाबाई की आवाज में एक पेशेवर औरत की दिलचस्पी की अपेक्षा एक इन्सान का कौतूहल ज्यादा था।

अनवर ने चुपचाप सिर हिलाकर स्वीकृति प्रकट की। उसे ऐसा लगा कि शर्म के मारे उसका चेहरा लाल हो रहा है। उसने रूमाँल निकालकर अपने तमतमाए हुए चेहरे पर से पसीना पोछा।

“किसी अच्छे घर के मालूम होते हो,” छमियाबाई ने यह बात अनवर से नहीं कही थी बल्कि शायद वह अपने-आपसे बातें कर रही थी, इसलिए अनवर ने भी कोई जवाब देना जरूरी नहीं समझा।

कुछ देर तक वह विचारों में डूबी हुई चुपचाप बैठी रही, मानो अपने मन में कोई फैसला कर रही हो। फिर उसने बेहद प्यार से अनवर से कहा, ‘जाओ बेटा, अपने घर जाओ। और अब फिर कभी यहाँ न आना।’

अनवर को ऐसा लगा कि यह बात छमियाबाई ने नहीं बल्कि किसी दूसरी ही औरत ने कही हो। वह कुछ कहे बिना जाने के लिए उठ खड़ा हुआ और जब वह टटोल-टटोलकर सीढ़ियाँ उतर रहा था तो उसने छमियाबाई की आवाज सुनी, “जीते रहो बेटा।”

बेटा !

रुमाँल, उसने उसे यही तो कहा था। उसे इससे पहले भी कई लोगों ने बड़े प्यार से बेटा कहा था—अकबरअली ने, जो अभी घटे-भर पहले तक उसके बाप थे ; रामेश्वरदयाल ने, जिन्हें हमेशा से यह मालूम था कि वह उनका बेटा है ; और बम्बई में माजी ने। लेकिन इस शब्द में इससे पहले उसने कभी इतनी मिठास, इतना स्नेह, जीवन की सबसे आधारभूत भावना की इतनी परिपूर्णता अनुभव नहीं की थी, जितनी कि इस समय इस पतित नारी के मुँह से सुनने पर, पाप की इस बेटा के मुँह से—अपनी इस माँ के मुँह से।

अगर उसे यह मालूम होता कि वह सचमुच उसका बेटा है तो शायद यह बात न होती। तब इसमें कोई अनोखी या महत्वपूर्ण बात न होती। सारी दुनिया में करोड़ों माँ अपने बेटों के साथ प्यार का बरताव करती हैं। लेकिन छमियाबाई की नज़रों में तो वह उसकी छोकरियों का एक कमबिन ग्राहक था, जिसे इस चीज़ का अभी नया-नया शौक पैदा हुआ था। फिर भी उसने अपने मुँहासे को भूलकर उसे पाप के रास्ते पर चलना सिखाने के बजाय उसे वहाँ से

वापस भेज दिया था; उसने उसे 'बेटा' कहा था और मा की तरह उसे दुग्रा की थी। उसने मानकता और उदारता की श्रेष्ठतम भावनाओं का परिचय दिया था। अब अनवर को उसे अपनी 'मा' समझने में कोई लज्जा नहीं आ रही थी।

जितनी देर में अनवर सीढ़ियों से नीचे उतरा उसकी दुनिया ही बदल चुकी थी। अब उसकी दुनिया घृणा और लालच और गन्दी स्वार्थपरता से भरी हुई नहीं थी। छमियाबाई ने उसकी दुनिया बदल दी थी—केवल एक शब्द से।

यह जानकर कि इन्सानियत उस गन्दे और क्रूर वातावरण में भी पाई जाती है जहाँ उसकी मा रहती थी, अनवर के मन से मानो वह सारी कटुता दूर हो गई जो अभी घंटे-भर पहले तक मौजूद थी। उसने अपने जीवन से संबंधित इस नाटक के पात्रों को एक नये प्रकाश में देखा और उसे उन सबसे सहानुभूति हुई—रामेश्वरदयाल, जो बुज्जदिल आदमी थे लेकिन जिनके हृदय में उदारता थी, जिन्होंने अपनी युवावस्था की उच्छृंखलता के फल को तिरस्कार से ठुकरा नहीं दिया था बल्कि उसके लिए एक शरीफ घर में रहने का प्रबन्ध कर दिया था, और उसे एक परिवार का सदस्य बना दिया था और मरते समय भी वे उसके लिए उचित प्रबन्ध करना नहीं भूले थे, छमिया, जो एक ऐसी औरत थी जिसे न जाने किन परिस्थितियों ने पाप का यह जीवन व्यतीत करने पर विवश कर दिया था, पर जिसमें उसकी बुनियादी इन्सानियत और नेकदिली अभी तक बाकी थी, और अकबरअली, जो उनमें सबसे ज्यादा नेक और शरीफ थे, जिन्होंने एक दूसरे आदमी की जारज सतान को अपने बेटे की तरह पाला था, उसे किसी दूसरे इन्सान से बढ़कर चाहा था, उसकी हर इच्छा को समझने और पूरा करने की कोशिश की थी।

लेकिन वह खुद, जो क्रूर भाग्य की पैदावार था? क्या उसके जन्म और पालन-पोषण की इन विचित्र परिस्थितियों के पीछे भी कोई सुव्यवस्थित योजना थी? वह एक हिन्दू का बेटा था जो सबसे अभाग्य तथा तिरस्कृत वर्ग की औरत की कोख से पैदा हुआ था और जिसका पालन-पोषण एक मुस्लिम परिवार में, एक मुस्लिम के रूप में हुआ था। वह एकता का एक अनोखा प्रतीक था, मानवता का एक ऐसा सगम जिसमें रक्त और संस्कृति की अनेक धाराएँ आकर मिली थी। वह देश में उभरते हुए साम्प्रदायिक द्वेष और घृणा के बारे में सोचने लगा, उस तीव्र हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के बारे में जिसकी आग फिर



भडकाई जा रही थी। कल रात की मीटिंग इसी खतरे की सूचक थी। और भी बहुत-सी बातें इसी दिशा में सकेत करती थी। यदि अमजदअली इस्लामी सल्तनत के ख्वाब देख रहे थे तो बहुत-से दूसरे लोग हिन्दू-राज के भी स्वप्न देख रहे थे। लोगो में घृणा थी और इससे बुरी बात यह थी कि उनमें भय था—हिन्दुओं के मन में मुसलमानों का भय और मुसलमानों के मन में हिन्दुओं का भय। और जब भय के वश मनुष्य शासन-सत्ता के स्वप्न देखने लगता है तो रक्तपात अनिवार्य हो जाता है।

हो सकता है कि आज खतरा बहुत बड़ा न हो लेकिन आगे चलकर बढ़ते-बढ़ते वह न सिर्फ उस आजादी के लिए खतरा बन सकता था जिसके लिए वे सभी संघर्ष करते आए थे, बल्कि सामाजिक न्याय के उस अधिक विशाल तथा विस्तृत ध्येय के लिए भी खतरा बन सकता था जिसके लिए उन्हें अभी संघर्ष करना था। क्या यह सच नहीं था कि वह जो अपने जन्म की दृष्टि से न हिन्दू था न पूरी तरह मुसलमान ही, या बल्कि जो दोनों ही था, जो भारतमाता की सतान का एक अनोखा प्रतीक था, दोनों ही सम्प्रदायों की मनोवृत्ति को ज्यादा अर्च्छी तरह समझ सकता था, और उनकी एकता के लिए काम कर सकता था जिसका कि वह प्रतीक था, और साथ ही अपनी मा की याद उसे हमेशा अभागे, ठुकुराए हुए और उत्पीड़ित लोगो के हितों के लिए लड़ने के लिए प्रेरणा प्रदान कर सकती थी ?

‘अब हमें कहा जाना है ?’

अब सड़को पर उतना सन्नाटा नहीं था। जब उसने अपने थके हुए कदम घर की तरफ उठाए तो सड़को पर कुछ कुछ चहलपहल दिखाई देने लगी थी।

दूधवाले बंहगियो में पीतल के कलसे लटकाए जल्दी-जल्दी भागे जा रहे थे। कारखानों के मजदूर रात-पाली पूरी कर जल्दी-जल्दी घर की तरफ कदम बढ़ा रहे थे। चाय की दुकानों और होटलों के दरवाजे खुल रहे थे। नानबाइयों की दूकानों से ताजी डबल रोटियों की सोधी-सोंधी गर्म खुशबू आ रही थी।

जिंदगी ! जिंदगी !! जिंदगी !!!

अनवर अपने थके हुए शरीर में भी जिंदगी को, उसकी लय को और उसकी तेजी को महसूस कर रहा था। वह अपने भविष्य के बारे में सोचने लगा, वह पढ़ने और घूमने के लिए विदेश जाएगा, भारत वापस आकर फिर काम करेगा